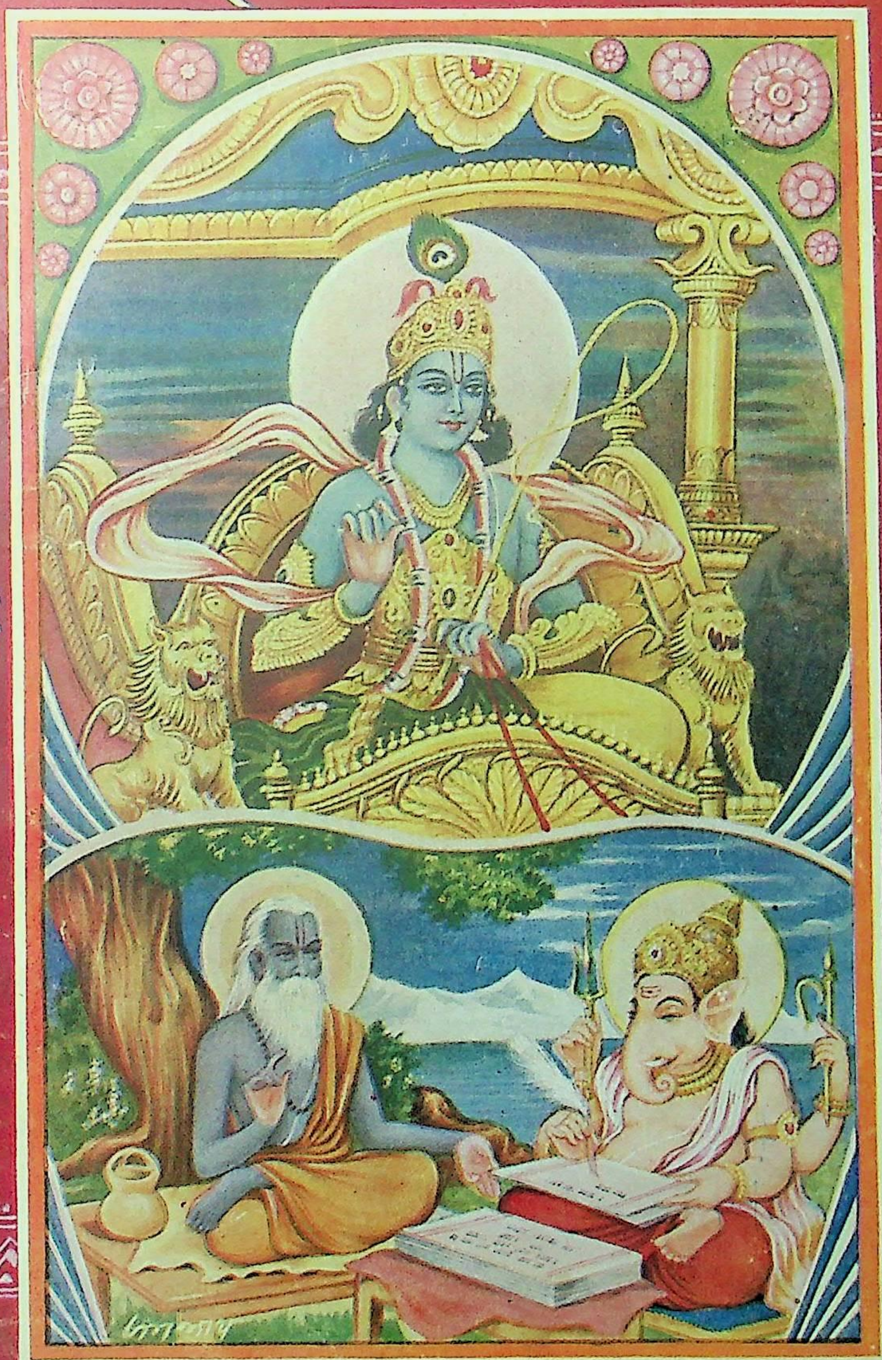
महाभारत

संस्कृत मूल

हिन्दी अनुवाद



संस्कृत मूल

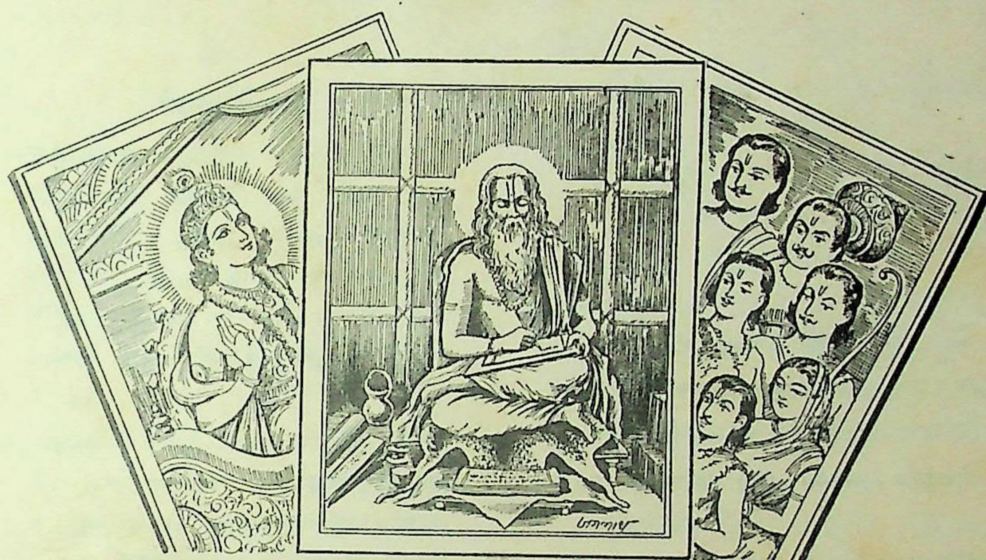
हिन्दी अनुवाद

वर्ष ४

हरिवंश-टीकासहित

संख्या ५

ॐ श्रीपरमात्मने नमः



महाभारत

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥
व्यासाय विष्णुरूपाय व्यासरूपाय विष्णवे । नमो वै ब्रह्महृदये वासिष्ठाय नमो नमः ॥

वर्ष ४ } गोरखपुर, वैशाख २०१६, मई १९५९ { संख्या ५ पूर्ण संख्या ४१

ब्रह्मा, विष्णु और शिवकी एकता

यो विष्णुः स तु वै रुद्रो यो रुद्रः स पितामहः ।
एका मूर्तिस्त्रयो देवा रुद्रविष्णुपितामहाः ॥
वरदा लोककर्तारो लोकनाथाः स्वयंभुवः ।
अर्धनारीश्वरास्ते तु व्रतं तीव्रं समाश्रिताः ॥
(हरि० विष्णु० १२५ । ३१-३२)

जो विष्णु हैं, वे ही रुद्र हैं, जो रुद्र हैं, वे ही ब्रह्मा हैं, मूलतः इनका स्वरूप एक है, किंतु कार्यभेदसे ये रुद्र, विष्णु और ब्रह्मा तीन देवता कहे जाते हैं । ये सभी वरदायक, लोकस्रष्टा, जगदीश्वर, स्वयम्भू, अर्धनारीश्वर तथा तीव्र व्रतका आश्रय लेनेवाले हैं । (इन्हें सादर नमस्कार है)।

र्षिक मूल्य
रतमें १५)
देशमें २०)
० शिलिंग)

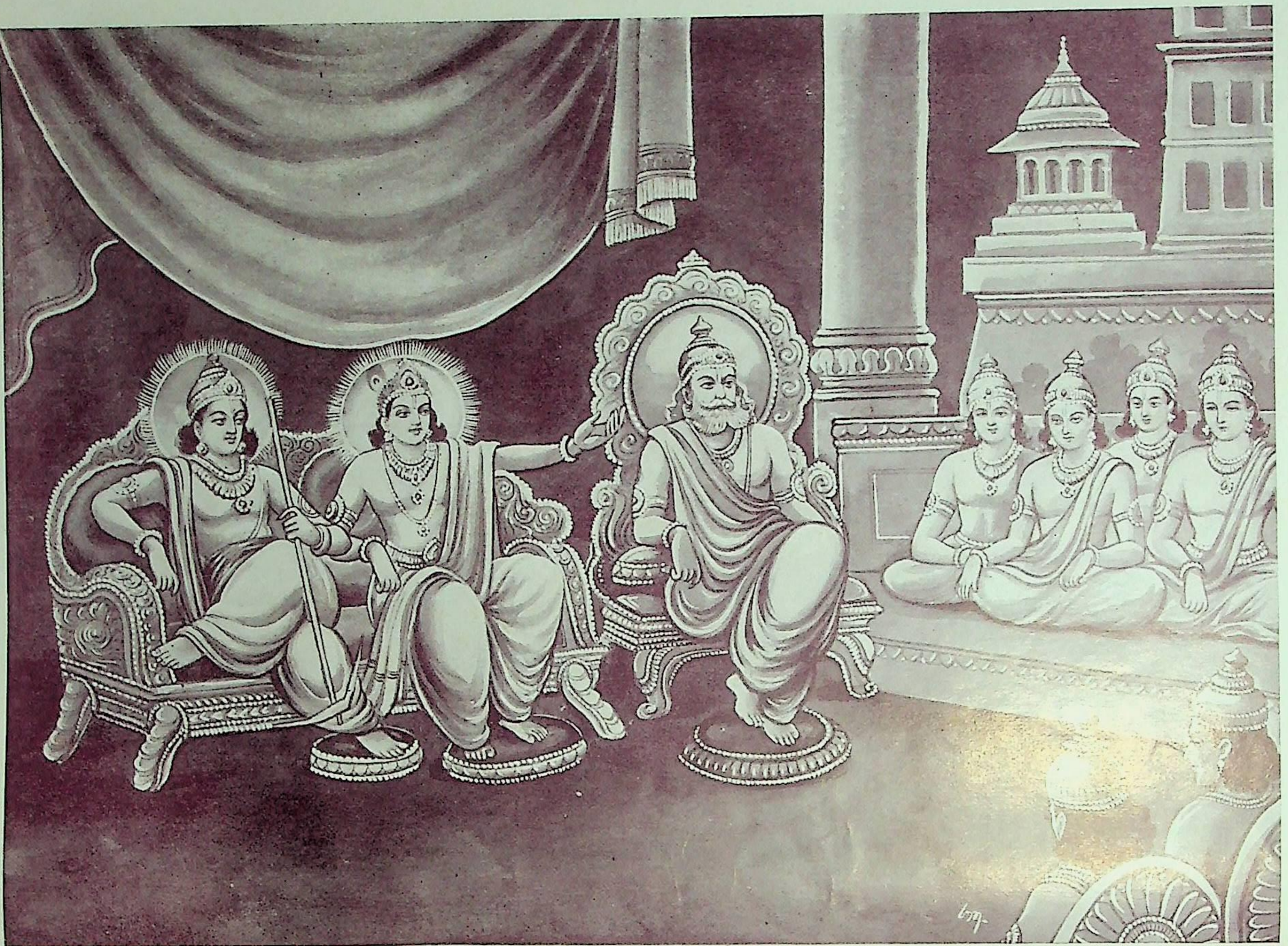
सम्पादक, मुद्रक तथा प्रकाशक
हनुमानप्रसाद पोद्दार, गीताप्रेस, गोरखपुर

एक प्रति
भारतमें १॥
विदेशमें
(३ शिलिंग

श्रीहरिः

खिलभाग हरिवंशके विषय-सूची

चित्र-सूची



महाराज उग्रसेनकी सभामें बलराम-श्रीकृष्ण

नवतितमोऽध्यायः

निकुम्भद्वारा भानुमतीका अपहरण, श्रीकृष्ण, अर्जुन और प्रद्युम्नके साथ उसका युद्ध, गोकर्णतीर्थमें उसका पतन, प्रद्युम्नका भानुमतीको लेकर द्वारका पहुँचाना, फिर तीनोंका निकुम्भके साथ युद्ध, उसकी अद्भुत मायाका वर्णन और श्रीकृष्णद्वारा निकुम्भका वध

वैशम्पायन उवाच

तेषां क्रीडावसक्तानां यदूनां पुण्यकर्मणाम् ।
छिद्रमासाद्य दुर्बुद्धिर्देवशत्रुर्दुरासदः ॥ १ ॥
कन्यां भानुमतीं नाम भानोर्दुहितरं नृप ।
जहारात्मवधाकाङ्क्षी निकुम्भो नाम दानवः ॥ २ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! जब पुण्यकर्मा यदुवंशी जलक्रीड़ामें आसक्त हो रहे थे, उसी समय मौका पाकर दुर्जय देवद्रोही दुर्बुद्धि दानव निकुम्भने मानो अपने ही वधकी इच्छासे भानु नामक यादवकी पुत्री भानुमतीका अपहरण कर लिया ॥ १-२ ॥

अन्तर्हितो मोहयित्वा यदूनां प्रमदाजनम् ।
मायावी मायया राजन् पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ ३ ॥

राजन् ! अदृश्यरूपसे अन्तःपुरमें पहुँचकर मायाद्वारा यादवोंकी स्त्रियोंको मोहित करके उस मायावी दानवने पहलेके वैरको याद रखते हुए ही भानुमतीका अपहरण किया था ॥ ३ ॥

भ्रातुर्हि वज्रनाभस्य तस्य कन्या प्रभावती ।
प्रद्युम्नेन हृता वीर वज्रनाभस्तथा हतः ॥ ४ ॥

वीर नरेश ! उसके भाई वज्रनाभकी एक कन्या थी, जो प्रभावतीके नामसे विख्यात थी । प्रद्युम्नने उसे हर लिया और वज्रनाभको भी मार डाला ॥ ४ ॥

भानोरेव तथारण्ये वसत्यवसरेण हि ।
अस्वाधीने दुराधर्षे छिद्रज्ञो दानवाधमः ॥ ५ ॥

तबसे वह नीच दानव अवसरकी खोजके लिये भानुके ही उपवनमें रहा करता था । भानुका कन्यापुर यद्यपि बड़ा ही दुर्धर्ष था, तथापि उस समय किसी रक्षकके अधीन नहीं था । उसकी इस दुर्बलताको दानवाधम निकुम्भ जानता था; (इसलिये उसे कन्याको हर लेनेका अवसर मिल गया)॥५॥

कन्यापुरे महानादः सहसा समुपस्थितः ।
तस्यां ह्रियन्त्यां कन्यायां रुदन्त्यां समितिंजय ॥ ६ ॥

शत्रुविजयी नरेश ! जब उस भानुकुमारीका अपहरण होने लगा और वह रोने-चिल्लाने लगी, उस समय सहसा कन्यापुरमें बड़े जोरसे कोलाहल मच गया ॥ ६ ॥

वसुदेवाहुकौ वीरौ दंशितौ निर्गतावुभौ ।
आर्तनादमुपश्रुत्य भानोः कन्यापुरे तदा ॥ ७ ॥

भानुके कन्यापुरमें होनेवाले आर्तनादको सुनकर वीर वसुदेव और उग्रसेन दोनों कवच धारण करके तत्काल बाहर निकले ॥ ७ ॥

न दृष्टिगोचरे तौ तु ददृशातेऽपकारिणम् ।
तथैव दंशितौ यातौ यत्र कृष्णो महाबलः ॥ ८ ॥

परंतु जहाँतक उनकी दृष्टि गयी, वहाँतक किसी अपराधीको उन्होंने नहीं देखा; फिर वे दोनों उसी तरह कवच बाँधे उस स्थानपर गये, जहाँ महाबली श्रीकृष्ण विराजमान थे ॥ ८ ॥

श्रुतार्थः स्वं विमानं तदारुरोह जनार्दनः ।
पार्थेन सहितस्तार्क्ष्यं नागशत्रुमरिंदमः ॥ ९ ॥

उनके मुखसे द्वारकापुरका सब समाचार सुनकर शत्रुओंका दमन करनेवाले श्रीकृष्ण उस समय अर्जुनके साथ अपने वाहन सर्पशत्रु गरुड़पर आरूढ़ हुए ॥ ९ ॥

रथी त्वमनुगच्छेति संदिश्य मकरध्वजम् ।
त्वरेति गरुडं वीरः संदिदेश च काश्यपम् ॥ १० ॥

फिर वे वीर श्रीकृष्ण प्रद्युम्नको यह आदेश देकर कि तुम रथपर बैठकर मेरे साथ आओ, कश्यपनन्दन गरुड़से बोले, शीघ्रता करो ॥ १० ॥

वज्रं नगरमायान्तं निकुम्भं रणदुर्जयम् ।
पार्थकृष्णौ महात्मानावासेदतुररिंदमौ ॥ ११ ॥

वज्र नामक नगरकी ओर जाते हुए रणदुर्जय निकुम्भको शत्रुओंका दमन करनेवाले महात्मा अर्जुन और श्रीकृष्णने रास्तेमें ही पा लिया ॥ ११ ॥

प्रद्युम्नश्च महातेजा मायिनां प्रवरो नृप ।
निकुम्भश्चाथ तान् दृष्ट्वा त्रिधाऽऽत्मानमथाकरोत्॥१२॥

नरेश्वर ! मायावियोंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी प्रद्युम्न भी उसके पास जा पहुँचे । निकुम्भने उन तीनोंको देखकर अपने तीन रूप बना लिये ॥ १२ ॥

तान् सर्वान् योधयामास निकुम्भः प्रहसन्निव ।
बहुकण्टकगुर्वीभिर्गदाभिरमरोपमः ॥ १३ ॥

तत्पश्चात् देवोपम वीर निकुम्भ अनेक काँटोंसे भरी हुई भारी गदाके द्वारा उन सबके साथ हँसता हुआ-सा युद्ध करने लगा ॥ १३ ॥

सव्येनालभ्य हस्तेन कन्यां भानुमतीं नृप ।
दक्षिणेनाथ हस्तेन गदया प्राहरत् पुनः ॥ १४ ॥

नरेश्वर ! बायें हाथसे यादवकन्या भानुमतीको पकड़कर

(उसे ढालकी भाँति सामने रखकर) वह दाहिने हाथसे बारंबार गदाका प्रहार करता था ॥ १४ ॥

कन्यार्थं न च कृष्णौ वा कामो वा नृपसत्तम।
निर्दयं प्रहरन्ति स्म निकुम्भे च महासुरे ॥ १५ ॥

नृपश्रेष्ठ ! कन्याकी रक्षाके लिये ही श्रीकृष्ण, अर्जुन तथा प्रद्युम्न उस निकुम्भ नामक महान् असुरपर निर्दयतापूर्वक प्रहार नहीं करते थे ॥ १५ ॥

समर्थास्ते महात्मानः शत्रुं हन्तुं दुरासदाः।
निशश्वसुर्नरपते दयाभारावपीडिताः ॥ १६ ॥

महाराज ! वे दुर्जय महात्मा उस शत्रुका वध करनेमें सर्वथा समर्थ थे तो भी दयाके भारसे दबे होनेके कारण वे निःश्वास लेकर रह जाते थे ॥ १६ ॥

श्रेष्ठो धनुष्मतां पार्थः सर्वथा कुशलो युधि।
नागोष्ट्रविधिना दैत्यं शरपङ्क्त्या जघान ह ॥ १७ ॥

धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन युद्धमें सर्वथा कुशल थे; अतः वे नागोष्ट्र-विधिसे अपने बाणसमूहद्वारा उस दैत्यको घायल करने लगे ॥ १७ ॥

ते तु वैतस्तिकैर्बाणैर्विविधान् दानवान् युधि।
न कन्यां कलया युक्त्या शिक्षया च महीपते ॥ १८ ॥

पृथ्वीनाथ ! वे श्रीकृष्ण आदि वीर अपनी कला, युक्ति और शिक्षाके प्रभावसे एक-एक बित्तेके बाणोंद्वारा नाना प्रकारके दानवोंको उस युद्धमें घायल करते थे; किंतु राजकन्याको चोट नहीं लगने देते थे ॥ १८ ॥

ततः स कन्यया सार्द्धं तत्रैवान्तरधीयत।
आसुरीमाश्रितो मायां न च तां वेत्ति कश्चन ॥ १९ ॥

तब वह आसुरी मायाका आश्रय लेकर कन्याके साथ वहीं अन्तर्धान हो गया। उस मायाको उन तीनोंमेंसे कोई नहीं जानता था ॥ १९ ॥

तं कृष्णौ रौक्मिणेयश्च पृष्ठतोऽनुययुस्तदा।
हारितः शकुनो भूत्वा तस्थावथ महासुरः ॥ २० ॥

श्रीकृष्ण, अर्जुन और प्रद्युम्न तीनोंने ही तत्काल उस दानवका पीछा किया। आगे जाकर वह महान् असुर हारित पक्षी होकर बैठ गया ॥ २० ॥

तं बाणैः पुनरेवाथ वीरो भूयो धनंजयः।
वैतस्तिकैर्मर्मभिद्भिः कन्यां रक्षन्नताडयत् ॥ २१ ॥

तब वीर धनंजयने पुनः कन्याकी रक्षा करते हुए वैतस्तिक नामक मर्मभेदी बाणोंद्वारा उस दैत्यपर प्रहार किया॥

स इमां पृथिवीं कृत्स्नां सप्तद्वीपां महासुरः।
बभ्रामानुगतश्चैव तैर्वीरैररिमर्दनः ॥ २२ ॥

तब वह शत्रुमर्दन महान् असुर इस सात द्वीपोंसे युक्त सारी पृथ्वीपर चक्कर लगाने लगा और वे तीनों वीर निरन्तर उसका पीछा करते रहे ॥ २२ ॥

गोकर्णस्योपरिष्टात्तु पर्वतस्य महासुरः।
पपात वेलां गङ्गायाः पुलिने सह कन्यया ॥ २३ ॥

वह महान् असुर जब गोकर्ण पर्वतके ऊपरसे होकर निकलने लगा, उस समय कन्यासहित गङ्गातटपर समुद्रके किनारे गिर पड़ा ॥ २३ ॥

न देवा नासुराश्चापि लङ्घयन्ति तपोधनाः।
गोकर्णं तेजसा गुप्तं महादेवस्य भारत ॥ २४ ॥

भरतनन्दन ! गोकर्ण पर्वत महादेवजीके तेजसे सुरक्षित है। उसे देवता, असुर तथा तपोधन महर्षि भी नहीं लाँघ सकते हैं ॥ २४ ॥

एतदन्तरमासाद्य प्रद्युम्नः शीघ्रविक्रमः।
कन्यां भानुमतीं भैमो जग्राह रणदुर्जयः ॥ २५ ॥

यह अवसर पाकर भीमकुलभूषण शीघ्रपराक्रमी रणदुर्जय वीर प्रद्युम्नने उस कन्या भानुमतीको अपने साथ ले लिया २५

असुरः सोऽर्दितो राजन् कृष्णाभ्यां निशितैः शरैः।
त्यक्त्वाथोत्तरगोकर्णं निकुम्भो दक्षिणां दिशम्।
जगाम पृष्ठतो यातौ कृष्णौ तार्क्ष्यगतौ तदा ॥ २६ ॥

राजन् ! श्रीकृष्ण और अर्जुनद्वारा तीखे बाणोंसे पीड़ित किया गया असुर निकुम्भ उत्तर गोकर्णको त्यागकर दक्षिण दिशाकी ओर चल दिया। गरुडपर बैठे हुए श्रीकृष्ण और अर्जुन भी उस समय उसके पीछे-पीछे गये ॥ २६ ॥

विवेश षट्पुरं चैव ज्ञातीनामालयं तदा।
तत्र वीरौ गुहाद्वारि कृष्णौ रात्रौ तदोषतुः ॥ २७ ॥

निकुम्भ अपने सजातीय बन्धुओंके निवासस्थान षट्पुरमें जा घुसा। श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों वीर रातमें वहाँ गुफाके द्वारपर बैठे रहे ॥ २७ ॥

रौक्मिणेयोऽपि कृष्णेन संदिष्टो द्वारकां पुरीम्।
अनयद् भानुतनयां प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ २८ ॥

श्रीकृष्णकी आज्ञा पाकर रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्नने प्रसन्नमनसे भानुकुमारी भानुमतीको द्वारकापुरीमें पहुँचा दिया २८

नयित्वा चाययौ वीरः षट्पुरं दानवाकुलम्।
ददर्श च गुहाद्वारि कृष्णौ भीमपराक्रमौ ॥ २९ ॥

उसे पहुँचाकर वीर प्रद्युम्न पुनः दानवोंसे भरे हुए षट्पुरमें आये और वहाँ गुफाके द्वारपर भयंकर पराक्रमी श्रीकृष्ण और अर्जुनसे मिले ॥ २९ ॥

---

१. नागोष्ट्रका अर्थ है सर्प और ऊँट। किसी वनमें एक ऊँटके शरीरपर अजगर सर्प लिपट गया था। यह देख किसी धनुर्धर वीरने अपना अस्त्र-लाघव दिखाते हुए ऐसा बाण मारा, जिससे अजगर तो मारा गया, किंतु ऊँट बाल-बाल बच गया। यही नागोष्ट्र-विधि है। ये अर्जुन आदि वीर अपने बाणोंसे दैत्यको घायल करते थे, किंतु कन्याके शरीरपर आँच नहीं आने देते थे।

ऊषतुर्द्वारमाक्रम्य षट्पुरस्य महाबलौ ।
कृष्णौ प्रद्युम्नसहितौ निकुम्भवधकाङ्क्षिणौ ॥ ३० ॥

निकुम्भके वधकी इच्छा रखनेवाले महाबली श्रीकृष्ण और अर्जुन प्रद्युम्नके साथ षट्पुरका दरवाजा घेरकर बैठे थे ॥

ततोऽनन्तरमेतस्माद् बिलादतिबलस्तदा ।
निर्जगाम बली योद्धुं निकुम्भो भीमविक्रमः ॥ ३१ ॥

तदनन्तर भयंकर पराक्रमी अत्यन्त बलशाली बली निकुम्भ युद्धके लिये उस बिलसे बाहर निकला ॥ ३१ ॥

तस्य निर्गच्छतस्तस्माद् बिलात् पार्थो विशाम्पते ।
रुरोध सर्वतो मार्गं शरैर्गाण्डीवनिःसृतैः ॥ ३२ ॥

प्रजानाथ! उस बिलसे निकलते समय निकुम्भके मार्गको अर्जुनने गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा चारों ओरसे अवरुद्ध कर दिया ॥ ३२ ॥

सोऽभिसृत्य गदां घोरामुद्यम्य बहुकण्टकाम् ।
शिरस्यताडयत् पार्थं निकुम्भो बलिनां वरः ॥ ३३ ॥

तब बलवानोंमें श्रेष्ठ निकुम्भने निकट आकर बहुतेरे कण्टकोंसे भरी हुई अपनी भयानक गदाको उठाकर अर्जुनके मस्तकपर दे मारा ॥ ३३ ॥

अदृष्टेनाहतो वीरः शिरस्यथ मुमोह सः ।
गदयाभिहते पार्थे रक्तं वमति मुह्यति ॥ ३४ ॥
हसित्वा सोऽसुरो दृप्तो रौक्मिणेयमताडयत् ।
तं प्राङ्मुखमुखं वीरं मायावी मायिनां वरम् ।
अदृष्टेनाहतो वीरः शिरस्यथ मुमोह सः ॥ ३५ ॥

उसने अदृश्य रहकर यह आघात किया था। सिरपर गदाकी चोट पड़नेसे वीर अर्जुन मूर्च्छित हो गये। वे रक्त वमन करते हुए जब अचेत हो गये, तब उस घमंडी एवं मायावी असुरने हँसकर मायावियोंमें श्रेष्ठ वीर रुक्मिणी-कुमारको चोट पहुँचायी। वे पूर्वाभिमुख होकर खड़े थे; अतः उस असुरको उन्होंने देखा नहीं था। उस अदृश्य असुरके द्वारा सिरपर आघात होनेसे वीर प्रद्युम्नको भी मूर्च्छा आ गयी ॥ ३४-३५ ॥

तथागतौ तु दृष्ट्वा तौ मुह्यमानौ सुताडितौ ।
अभिदुद्राव गोविन्दो निकुम्भं क्रोधमूर्छितः ॥ ३६ ॥
कौमोदकीं समुद्यम्य गदपूर्वोद्भवो गदाम् ।

भारी आघातसे पीड़ित हो अचेत पड़े हुए उन दोनों वीरोंको देखकर भगवान् श्रीकृष्णका क्रोध बहुत बढ़ गया और वे गदके बड़े भाई गोविन्द कौमोदकी गदा उठाकर निकुम्भकी ओर दौड़े ॥ ३६½ ॥

तावन्योन्यं दुराधर्षौ गर्जन्तावभिपेततुः ॥ ३७ ॥
ऐरावतगतः शक्रः सर्वैर्देवगणैः सह ।
ददर्श तन्महायुद्धं घोरं देवासुरं तदा ॥ ३८ ॥

वे दोनों दुर्धर्ष वीर गर्जना करते हुए एक-दूसरेपर टूट पड़े। ऐरावतपर बैठे हुए इन्द्र समस्त देवताओंके साथ आकर उस समय देवताओं और असुरोंके उस घोर महायुद्ध-को देखने लगे ॥ ३७-३८ ॥

दृष्ट्वा देवान् हृषीकेशश्चित्रैर्युद्धैररिंदमः ।
इयेष दानवं हन्तुं देवानां हितकाम्यया ॥ ३९ ॥

देवताओंको देखकर शत्रुओंका दमन करनेवाले श्रीकृष्णने उनके हितकी कामनासे विचित्र युद्धोंद्वारा उस दानवको मार डालनेकी इच्छा की ॥ ३९ ॥

स मण्डलानि चित्राणि दर्शयामास केशवः ।
कौमोदकीं महाबाहुर्लालयन् युद्धकोविदः ॥ ४० ॥

युद्धकलाकोविद महाबाहु श्रीकृष्ण अपनी कौमोदकी गदाका लालन करते हुए विचित्र मण्डल (पैंतरे) दिखाने लगे ॥ ४० ॥

तथैवासुरमुख्योऽपि गदां तां बहुकण्टकाम् ।
शिक्षया भ्रामयाणोऽथ मण्डलानि चचार ह ॥ ४१ ॥

इसी प्रकार असुरोंमें श्रेष्ठ निकुम्भ भी अपनी बहुत-से कण्टकोंवाली गदाको शिक्षाके अनुसार घुमाता हुआ पैंतरे दिखाने लगा ॥ ४१ ॥

वृषभाविव गर्जन्तौ बृहन्ताविव कुञ्जरौ ।
इषितान्तरमासाद्य क्रुद्धौ शालावृकाविव ॥ ४२ ॥

जैसे वासिता—मैथुनकी इच्छावाली गायको अपने बीचमें पाकर दो साँड़ हँकड़ते हुए आपसमें लड़ते हैं; जैसे वासिता हथिनीके लिये दो हाथी चिग्घाड़ते हुए परस्पर युद्ध करते हैं तथा जैसे दो भेड़िये किसी माँदा भेड़ियाके लिये परस्पर जूझते हैं, उसी प्रकार वे श्रीकृष्ण और निकुम्भ क्रोधमें भरकर एक दूसरेसे भिड़े हुए थे ॥ ४२ ॥

आजघान निकुम्भस्तु गदया गदपूर्वजम् ।
स्पष्टाष्टघंटया वीर नादं मुक्त्वातिदारुणम् ॥ ४३ ॥

वीर नरेश! निकुम्भने अत्यन्त भयंकर सिंहनाद करके जिसमें आठ घण्टियाँ स्पष्ट दिखायी देती थीं, ऐसी गदाके द्वारा भगवान् गदाग्रजपर आघात किया ॥ ४३ ॥

तत्कालमेव कृष्णोऽपि भ्रामयित्वा महागदाम् ।
निकुम्भमूर्द्धनि तदा पातयामास भारत ॥ ४४ ॥

भरतनन्दन! भगवान् श्रीकृष्णने तत्काल ही अपनी विशाल गदा घुमाकर उस समय निकुम्भके मस्तकपर दे मारी ॥ ४४ ॥

अवष्टभ्य मुहूर्तं तु हरिः कौमोदकीं गदाम् ।
तस्थौ जगद्गुरुर्धीमान् मुमोह पतितः क्षितौ ॥ ४५ ॥

उस समय बुद्धिमान् जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्ण दो घड़ी-तक कौमोदकी गदाको थामे हुए खड़े रहे। तत्पश्चात् (अपनी ही इच्छासे) मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ४५ ॥

हाहाभूतं जगत् सर्वं तत्कालमभवत् तदा ।
तथागते वासुदेवे नरदेव महात्मनि ॥ ४६ ॥

नरदेव ! उस समय महात्मा वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णकी वैसी अवस्था हो जानेपर तत्काल सारे जगत्में हाहाकार मच गया ॥ ४६ ॥

आकाशगङ्गातोयेन शीतेन च सुगन्धिना ।
सिषेचामृतमिश्रेण कृष्णं देवेश्वरः स्वयम् ॥ ४७ ॥

स्वयं देवेश्वर इन्द्रने अमृतमिश्रित आकाशगङ्गाके शीतल एवं सुगन्धित जलसे श्रीकृष्णका अभिषेक किया ॥४७॥

नूनमात्मेच्छया कृष्णस्तथा चक्रे सुरोत्तमः ।
को हि शक्तो महात्मानं युद्धे मोहयितुं हरिम् ॥ ४८ ॥

निश्चय ही सुरश्रेष्ठ श्रीकृष्णने अपनी इच्छासे ही ऐसा (मूर्च्छाका अभिनय) किया था; अन्यथा युद्धमें उन महात्मा श्रीहरिको मूर्च्छित कर देनेकी शक्ति किसमें है ? ॥ ४८ ॥

कृष्णः प्रत्यागतप्राणश्चक्रमुद्यम्य भारत ।
प्रतीच्छेति दुरात्मानमुवाच रिपुनाशनः ॥ ४९ ॥

भारत ! सचेत होनेपर शत्रुनाशन श्रीकृष्णने चक्र उठाकर उस दुरात्मासे कहा—'अरे ! अब इस चक्रकी चोट सहन कर' ॥ ४९ ॥

निकुम्भोऽप्यतिमायावी उत्पपात दुरासदः ।
शरीरं तत् परित्यज्य न तु तं वेत्ति केशवः ॥ ५० ॥

उनकी यह बात सुनकर अत्यन्त मायावी दुर्जय वीर निकुम्भ भी अपने उस शरीरको वहीं त्यागकर ऊपरकी ओर उड़ गया । श्रीकृष्णको उसकी इस चालका पता न लगा ॥ ५० ॥

मुमूर्षति मृतो वायमिति मत्वा जनार्दनः ।
ररक्ष स्मरमाणोऽथ वीरो वीरव्रतं विभो ॥ ५१ ॥

प्रभो ! यह मरना चाहता है अथवा मर गया है—ऐसा समझकर वीर-व्रतका स्मरण रखते हुए वीर जनार्दनने उसकी रक्षा की (गिरे हुए उस दानवके शरीरपर अपना अस्त्र नहीं चलाया) ॥ ५१ ॥

अथ प्रद्युम्नकौन्तेयावागतौ लब्धचेतनौ ।
स्थितौ नारायणाभ्याशे निकुम्भवधनिश्चितौ ॥ ५२ ॥

तदनन्तर प्रद्युम्न और अर्जुन दोनों सचेत हो श्रीकृष्णके निकट आकर खड़े हो गये । उन दोनोंने निकुम्भके वधका निश्चय कर लिया था ॥ ५२ ॥

प्रद्युम्नोऽप्यथ मायावी विदितः कृष्णमब्रवीत् ।
निकुम्भस्तात नास्त्यत्र गतः क्वापि सुदुर्मतिः ॥ ५३ ॥

प्रद्युम्न भी मायावी थे; अतः उन्होंने निकुम्भकी मायाको पहचान लिया और श्रीकृष्णसे कहा—'तात ! निकुम्भ यहाँ नहीं है । वह दुर्बुद्धि कहीं चला गया' ॥५३॥

प्रद्युम्नेनैवमुक्ते तु तन्ननाश कलेवरम् ।
प्रजहासाथ भगवानर्जुनेन सह प्रभुः ॥ ५४ ॥

प्रद्युम्नके इतना कहते ही निकुम्भका वह कलेवर अदृश्य हो गया । यह देख अर्जुनके साथ भगवान् श्रीकृष्ण जोर-जोरसे हँसने लगे ॥ ५४ ॥

तदायुतसहस्राणि निकुम्भानां जनाधिप ।
ददृशुस्ते ततो वीराः क्षितौ दिवि च सर्वतः ॥ ५५ ॥

नरेश्वर ! इतनेहीमें उन वीरोंने पृथ्वीपर, आकाशमें तथा सब ओर सहस्रों अयुत (एक करोड़) निकुम्भके शरीर देखे ॥ ५५ ॥

सहस्राण्येव कृष्णं तु तथा पार्थमरिंदम ।
रौक्मिणेयं तथा वीरं तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ५६ ॥

शत्रुदमन नरेश ! श्रीकृष्ण, अर्जुन तथा रुक्मिणीकुमार वीर प्रद्युम्नके भी सहस्रों शरीर दिखायी दिये । वह अद्भुत-सा दृश्य प्रकट हुआ ॥ ५६ ॥

पाण्डवस्य धनुः केचित्केचिदस्य महाशरान् ।
अन्येऽस्य जगृहुर्हस्तावन्ये पादौ महासुराः ॥ ५७ ॥

किन्हीं महान् असुरोंने अर्जुनका धनुष ले लिया; किन्हींने उनके बड़े-बड़े बाण छीन लिये, दूसरोंने उनके दोनों हाथ पकड़ लिये और अन्य असुरोंने उनके दोनों पैर ॥

एवं प्रगृह्य तं वीरमगमंस्ते विहायसि ।
पार्थानामपि कोट्यस्तु गृहीतानां तदाभवन् ॥ ५८ ॥

इस तरह वीर अर्जुनको पकड़कर वे सब आकाशमें ले गये; फिर उन असुरोंद्वारा पकड़े गये अर्जुनके करोड़ों रूप हो गये ॥ ५८ ॥

नान्तं ददर्श कृष्णश्च कार्ष्णिश्च रिपुनाशनौ ।
चिच्छिद्य तौ शरैर्वीरौ निकुम्भं पार्थवर्जितौ ॥ ५९ ॥

शत्रुओंका नाश करनेवाले श्रीकृष्ण और प्रद्युम्न दोनों वीरोंने पार्थसे रहित हो अपने बाणोंसे निकुम्भको काट डाला तो भी उसका अन्त होता नहीं देखा ॥ ५९ ॥

एकैकस्तु द्विधा च्छिन्नो द्वेधा भवति भारत ।
दिव्यज्ञानस्तदा कृष्णो भगवाननुदृष्टवान् ॥ ६० ॥

भारत ! एक-एक निकुम्भके दो टुकड़े कर देनेपर वह एकसे दो रूप धारण कर लेता था । उस समय दिव्य-ज्ञानसम्पन्न भगवान् श्रीकृष्णने बारंबार उसके विषयमें विचार किया ॥ ६० ॥

निकुम्भं तत्त्वतश्चापि ददर्श मधुसूदनः ।
स्रष्टारं सर्वमायानां हर्तारं फाल्गुनस्य च ॥ ६१ ॥

तब भगवान् मधुसूदनने सम्पूर्ण मायाओंके स्रष्टा तथा अर्जुनका अपहरण करनेवाले निकुम्भको यथार्थ रूपसे देखा ॥

सं चक्रेण शिरस्तस्य चकर्तासुरसूदनः ।
पश्यतां सर्वभूतानां भूतभव्यभवो हरिः ॥ ६२ ॥

भूत, वर्तमान और भविष्यको उत्पन्न करनेवाले असुरसूदन श्रीहरिने समस्त प्राणियोंके देखते-देखते अपने चक्रसे निकुम्भका सिर काट लिया ॥ ६२ ॥

स मुक्त्वा फाल्गुनं राजञ्छिन्ने शिरसि भारत ।
पपातासुरमुख्योऽथ छिन्नमूल इव द्रुमः ॥ ६३ ॥

राजन् ! भरतनन्दन ! सिर कट जानेपर वह मुख्य असुर अर्जुनको छोड़कर जड़से कटे हुए वृक्षकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ६३ ॥

अथाकाशगतं पार्थं पतमानं विहायसः ।
कृष्णवाक्येन जग्राह कार्ष्णिर्वियति मानद ॥ ६४ ॥

मानद ! उस समय श्रीकृष्णकी आज्ञासे प्रद्युम्नने आकाशमें पहुँचकर वहाँसे गिरते हुए अर्जुनको पकड़ लिया॥

निकुम्भे पतिते भूमौ समाश्वास्य धनंजयम् ।
जगाम द्वारकां देवः पार्थकामसमन्वितः ॥ ६५ ॥

निकुम्भके धराशायी हो जानेपर अर्जुनको आश्वासन दे उनके और प्रद्युम्नके साथ भगवान् श्रीकृष्ण द्वारकाको चले गये ॥ ६५ ॥

समियाय दशार्होऽथ द्वारकां मुदितो विभुः ।
नारदं च महात्मानं ववन्दे यदुनन्दनः ॥ ६६ ॥

दशार्हवंशी यदुकुलनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने बड़ी प्रसन्नताके साथ द्वारकामें पदार्पण किया और वहाँ महात्मा नारदजीको मस्तक झुकाया ॥ ६६ ॥

नारदोऽथ महातेजा भानुं यादवमब्रवीत् ।
भानो मा कार्षीर्मन्युं त्वं श्रूयतां भैमनन्दन ॥ ६७ ॥

तदनन्तर महातेजस्वी नारदजीने भानु नामक यादवसे कहा—"भैमनन्दन ! भानो ! कन्याका अपहरण होनेके कारण मनमें खेद न करो । मेरी बात सुनो ॥ ६७ ॥

क्रीडन्त्या रैवतोद्याने दुर्वासाः कोपितोऽनया ।
स शशाप ततो रोषान्मुनिर्दुहितरं तव ॥ ६८ ॥

"यह भानुमती किसी दिन रैवतवनके उद्यानमें खेल रही थी । वहाँ इसने दुर्वासा मुनिको क्रोध दिला दिया । तब मुनिने क्रोधवश आपकी पुत्रीको शाप दे दिया—॥ ६८ ॥

अतिदुर्ललितैः कन्या शत्रुहस्तं गमिष्यति ।
सुतार्थे ते मया सार्द्धं मुनिभिः स प्रसादितः ॥ ६९ ॥
बालां व्रतवतीं कन्यामनागसमिमां मुने ।
शप्तवानसि धर्मज्ञ कथं धर्मभृतां वर ।
अनुग्रहं विधत्स्वात्र वयं विज्ञापयामहे ॥ ७० ॥

"यह कन्या अपनी दुर्ललित चेष्टाओंसे शत्रुके हाथमें पड़ जायगी ।' उस समय मैंने तथा दूसरे मुनियोंने आपकी इस पुत्रीके लिये दुर्वासाको प्रसन्न किया और कहा—'मुने ! यह बाला ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करनेवाली कन्या है । इसने आपका कोई अपराध भी नहीं किया है; फिर आपने इसे कैसे शाप दे दिया ? धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ धर्मज्ञ महर्षे ! इस कन्यापर अनुग्रह कीजिये । इसके लिये हमलोग यहाँ प्रार्थना करते हैं' ॥ ६९-७० ॥

अस्माभिरेवमुक्तस्तु दुर्वासा भैमनन्दन ।
उवाचाधोमुखो भूत्वा मुहूर्तं कृपयान्वितः ॥ ७१ ॥

"भैमनन्दन ! हमारे ऐसा कहनेपर दुर्वासाजी नीचे मुँह किये दो घड़ीतक मौन रहे; फिर दयापूर्वक बोले—॥ ७१ ॥

यदवोचमहं वाक्यं तत् तथा न तदन्यथा ।
रिपुहस्तमवश्यं हि गमिष्यति न संशयः ॥ ७२ ॥
अदूषिता नु धर्मेण भर्तारमुपलप्स्यति ।
बहुपुत्रा बहुधना सुभगा च भविष्यति ॥ ७३ ॥

"'महर्षियो ! मैंने जो बात कही है, वह उसी तरह होगी । उसे कोई बदल नहीं सकता । यह शत्रुके हाथमें अवश्य पड़ेगी, इसमें संशय नहीं है; परंतु यह भी निश्चय है कि यह दूषित नहीं होने पायगी और धर्मके अनुसार पतिको प्राप्त करेगी । इसके बहुत-से पुत्र होंगे । यह बहुत धनसे सम्पन्न और सौभाग्यवती होगी ॥ ७२-७३ ॥

सुगन्धगन्धा च सदा कुमारी च पुनः पुनः ।
न च शोकमिमं घोरं तन्वङ्गी धारयिष्यति ॥ ७४ ॥

"'इसके शरीरकी गन्ध सदा सुगन्धित होगी । यह पति-समागमके पश्चात् बारंबार कुमारी ही बनी रहेगी । इस कृशाङ्गी कन्याको अपने अपहरणजनित घोर शोकका स्मरण नहीं रहेगा' ॥ ७४ ॥

एवं भानुमती वीर सहदेवाय दीयताम् ।
श्रद्धधानः स शूरश्च धर्मशीलश्च पाण्डवः ॥ ७५ ॥

"वीर भानो ! तुम मेरी बात मानकर भानुमतीका सहदेवके साथ ब्याह कर दो; क्योंकि पाण्डुपुत्र सहदेव श्रद्धालु, शूरवीर तथा धर्मशील हैं" ॥ ७५ ॥

ततो भानुमतीं भानुर्ददौ माद्रीसुताय वै ।
सहदेवाय धर्मात्मा नारदस्य वचः स्मरन् ॥ ७६ ॥

तदनन्तर नारदजीके वचनोंको याद रखते हुए धर्मात्मा भानुने अपनी कन्या भानुमती माद्रीकुमार सहदेवको दे दी ॥

आनीतः सहदेवश्च प्रेषितश्चक्रपाणिना ।
विवाहे च तदा वृत्ते सभार्यः स पुरीं गतः ॥ ७७ ॥

चक्रपाणि भगवान् श्रीकृष्णने सहदेवको बुलवाया और उस समय विवाह-कार्य सम्पन्न हो जानेपर उन्हें पत्नीसहित विदा कर दिया, फिर वे अपनी पुरीको चले गये ॥ ७७ ॥

इमं कृष्णस्य विजयं यः पठेच्छृणुयादथ ।

विजयं सर्वकृत्येषु श्रद्दधानो लभेन्नरः ॥ ७८ ॥

जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक भगवान् श्रीकृष्णकी इस विजय-वार्ताको पढ़ेगा या सुनेगा, वह सभी कार्योंमें विजय प्राप्त करेगा ॥ ७८ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि भानुमतीहरणे निकुम्भवधो नाम नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें भानुमतीहरणके प्रसङ्गमें निकुम्भका वधविषयक नब्बेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९० ॥

एकनवतितमोऽध्यायः

वज्रनाभकी तपस्या और वरप्राप्ति, उसका त्रिभुवन-विजयके लिये उद्योग, इन्द्रकी श्रीकृष्णसे वार्ता, भद्रनामा नटको मुनियोंका वरदान, इन्द्रका हंसोंको आवश्यक कर्तव्य बताकर वज्रनाभपुरमें भेजना

जनमेजय उवाच

भानुमत्यापहरणं विजयं केशवस्य च ।
छालिक्यनयनं चैव देवलोकान्महामुने ॥ १ ॥
क्रीडां च सागरे दिव्यां वृष्णीनाममितेजसाम् ।
अश्रौषं परमाश्चर्यं मुने धर्मभृतां वर ॥ २ ॥

जनमेजयने कहा—धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ महामुने ! भानुमतीका अपहरण, श्रीकृष्णकी विजय, देवलोकसे छालिक्य गान्धर्वका आनयन और अत्यन्त तेजस्वी वृष्णिवंशियोंकी समुद्रमें होनेवाली दिव्यक्रीड़ा—इन सबका अत्यन्त आश्चर्य-युक्त वर्णन मैंने सुना है ॥ १-२ ॥

वज्रनाभवधो ह्युक्तो निकुम्भवधकीर्तने ।
तन्मे कौतूहलं श्रोतुं प्रसादाद् भवतो मुने ॥ ३ ॥

मुने ! निकुम्भ-वधका वर्णन करते समय आपने वज्रनाभके वधकी भी चर्चा की है । आपकी कृपासे उसे सुननेके लिये मेरे मनमें कौतूहल हो रहा है ॥ ३ ॥

वैशम्पायन उवाच

हन्त ते वर्तयिष्यामि वज्रनाभवधं नृप ।
विजयं चैव कामस्य साम्बस्यैव च भारत ॥ ४ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—नरेश्वर ! भरतनन्दन ! मैं प्रसन्नतापूर्वक तुम्हें वज्रनाभके वधका वृत्तान्त बताऊँगा । साथ ही प्रद्युम्न और साम्बकी विजयका भी वर्णन करूँगा ॥

मेरोः सानौ नरपते तपश्चक्रे महासुरः ।
वज्रनाभ इति ख्यातो निश्चितः समितिंजयः ॥ ५ ॥

नरेन्द्र ! वज्रनाभ नामसे विख्यात महान् असुर निश्चय ही युद्धमें विजय पानेवाला था । एक समय उसने मेरुपर्वतके शिखरपर बड़ी भारी तपस्या की ॥ ५ ॥

तस्य तुष्टो महातेजा ब्रह्मा लोकपितामहः ।
वरेण च्छन्दयामास तपसा परितोषितः ॥ ६ ॥

उसकी तपस्यासे महातेजस्वी लोकपितामह ब्रह्माजी बहुत संतुष्ट हुए । उन्होंने प्रसन्न होकर उससे इच्छानुसार वर माँगनेके लिये कहा ॥ ६ ॥

अवध्यत्वं स देवेभ्यो वव्रे दानवसत्तमः ।
पुरं वज्रपुरं चापि सर्वरत्नमयं शुभम् ॥ ७ ॥

तब उस श्रेष्ठ दानवने देवताओंसे अवध्य होनेका वर माँगा; साथ ही सम्पूर्ण रत्नोंके बने हुए सुन्दर वज्रपुर नामक नगरकी भी याचना की ॥ ७ ॥

स्वच्छन्देन प्रवेशश्च न वायोरपि भारत ।
अचिन्तितेन कामानामुपपत्तिर्नराधिप ॥ ८ ॥

भारत ! उस नगरमें स्वच्छन्दतापूर्वक वायुका भी प्रवेश नहीं होता था । नरेश्वर ! बिना चिन्तन किये ही वहाँ सम्पूर्ण मनोवाञ्छित भोगोंकी प्राप्ति होती रहती थी ॥ ८ ॥

शाखानगरमुख्यानां संवाहानां शतानि च ।
नगरस्याप्रमेयस्य समन्ताज्जनमेजय ॥ ९ ॥

जनमेजय ! उस अप्रमेय नगरके चारों ओर शाखा-नगरोंके मुख्य-मुख्य सैकड़ों उद्यान शोभा पाते थे, जो चहारदीवारियोंसे घिरे हुए थे ॥ ९ ॥

तथा तदभवत् तस्य वरदानेन भारत ।
उवास वज्रनगरे वज्रनाभो महासुरः ॥ १० ॥

भारत ! उसको मिले हुए वरदानसे ही वह नगर उस रूपमें प्रतिष्ठित हुआ था । महान् असुर वज्रनाभ उस वज्र-नगरमें निवास करता था ॥ १० ॥

कोटिशो वरलब्धं तमसुराः परिवार्य ते ।
ऊषुर्वज्रपुरे राजन् संवाहेषु तथैव च ॥ ११ ॥
शाखानगरमुख्येषु रम्येषु च नराधिप ।
हृष्टपुष्टप्रमुदिता नृप देवस्य शत्रवः ॥ १२ ॥

राजन् ! वर पाये हुए वज्रनाभको सब ओरसे घेरकर करोड़ों देवद्रोही असुर हृष्ट, पुष्ट और आनन्दित हो वज्रपुरमें तथा उसके शाखानगरोंके मुख्य-मुख्य घिरे हुए उद्यानोंमें निवास करते थे ॥ ११-१२ ॥

वज्रनाभोऽथ दुष्टात्मा वरदानेन दर्पितः ।
पुरस्य चात्मनश्चैव जगद् बाधितुमुद्यतः ॥ १३ ॥

अपनेको तथा अपने नगरको प्राप्त हुए वरदानसे घमंडमें भरा हुआ दुष्टात्मा वज्रनाभ सम्पूर्ण जगत्‌को कष्ट देनेके लिये उद्यत हो गया ॥ १३ ॥

महेन्द्रमब्रवीद् गत्वा देवलोकं विशाम्पते ।
अहमीशितुमिच्छामि त्रैलोक्यं पाकशासन ॥ १४ ॥

प्रजानाथ ! वह देवलोकमें जाकर महेन्द्रसे बोला—'पाकशासन ! मैं तीनों लोकोंपर शासन करना चाहता हूँ १४

अथवा मे प्रयच्छस्व युद्धं देवगणेश्वर ।
सामान्यं हि जगत्कृत्स्नं काश्यपानां महात्मनाम् ॥ १५॥

'देवगणेश्वर ! (या तो मेरे लिये देवलोक खाली कर दो) अथवा मुझे युद्ध प्रदान करो; क्योंकि सम्पूर्ण जगत्‌पर सभी महामनस्वी कश्यपपुत्रोंका समान अधिकार है' ॥ १५ ॥

स बृहस्पतिना सार्द्धं मन्त्रयित्वा महेश्वरः ।
वज्रनाभं सुरश्रेष्ठः प्रोवाच कुरुवंशज ॥ १६ ॥

कुरुनन्दन ! तब सुरश्रेष्ठ महेश्वर इन्द्रने बृहस्पतिजीके साथ सलाह करके वज्रनाभसे कहा—॥ १६ ॥

सत्रेषु दीक्षितः सौम्य कश्यपो नः पिता मुनिः ।
तस्मिन् वृत्ते यथा न्याय्यं तथा स हि करिष्यति ॥ १७ ॥

'सौम्य ! हम सबके पिता कश्यप मुनि यज्ञकी दीक्षा ले चुके हैं । उनका वह यज्ञ पूर्ण हो जानेपर वे जैसा उचित समझेंगे, वैसा हमलोगोंके लिये निर्णय कर देंगे' ॥ १७ ॥

ततः स पितरं गत्वा कश्यपं दानवोऽब्रवीत् ।
यथोक्तं देवराजेन तमुवाचाथ कश्यपः ॥ १८ ॥

तब उस दानवने अपने पिता कश्यपके पास जाकर देवराज इन्द्रने जो कुछ कहा था, सब कह सुनाया । उसकी बात सुनकर कश्यपजीने कहा—॥ १८ ॥

सत्रे वृत्ते करिष्यामि यथा न्याय्यं भविष्यति ।
त्वं तु वज्रपुरे पुत्र वस गच्छ समाहितः ॥ १९ ॥

'वत्स ! यज्ञ समाप्त हो जानेपर जैसा उचित होगा, वैसा करूँगा । तबतक तुम वज्रपुरमें चलकर सावधान होकर रहो' ॥ १९ ॥

एवमुक्ते वज्रनाभः स्वमेव नगरं गतः ।
महेन्द्रोऽपि ययौ देवो द्वारकां द्वारशालिनीम् ॥ २०॥

पिताके ऐसा कहनेपर वज्रनाभ अपने ही नगरको चला गया । उधर महेन्द्रदेव भी सुन्दर द्वारसे सुशोभित होनेवाली द्वारकापुरीको गये ॥ २० ॥

गत्वा चान्तर्हितो देवो वासुदेवमथाब्रवीत् ।
वज्रनाभस्य वृत्तान्तं तमुवाच जनार्दनः ॥ २१ ॥

वहाँ जाकर अदृश्य होकर ही इन्द्रदेवने भगवान् श्रीकृष्णसे वज्रनाभका सारा वृत्तान्त कह सुनाया । तब श्रीकृष्ण उनसे बोले—॥ २१ ॥

शौरेरुपस्थितो देव वाजिमेधो महाक्रतुः ।
तस्मिन् वृत्ते वज्रनाभं पातयिष्यामि वासव ॥ २२ ॥

'देव ! वासव ! मेरे पिताजीका अश्वमेध नामक महान् यज्ञ उपस्थित है । उसके पूर्ण हो जानेपर मैं वज्रनाभको अवश्य मार गिराऊँगा ॥ २२ ॥

तत्रोपायं प्रवेशे तु चिन्तयावः सतां गते ।
नानिच्छया प्रवेशोऽस्ति तत्र वायोरपि प्रभो ॥ २३ ॥

सत्पुरुषोंके आश्रयदाता प्रभो ! उसके नगरमें प्रवेश करनेका क्या उपाय है—यह हम दोनों सोचें; क्योंकि वज्रनाभकी इच्छाके बिना वहाँ वायुका भी प्रवेश नहीं हो सकता' ॥ २३ ॥

ततो गतो देवराजो वासुदेवेन सत्कृतः ।
वाजिमेधे च सम्प्राप्ते वसुदेवस्य भारत ॥ २४ ॥

तत्पश्चात् श्रीकृष्णके द्वारा सत्कार पाकर देवराज इन्द्र चले गये । भारत ! जब वसुदेवजीका अश्वमेध यज्ञ प्राप्त हुआ (तब उसमें देवराज इन्द्र भी पधारे ।) ॥ २४ ॥

तस्मिन् यज्ञे वर्तमाने प्रवेशार्थं सुरोत्तमौ ।
चिन्तयामासतुर्वीरौ देवराजाच्युतावुभौ ॥ २५ ॥

जब वह यज्ञ चालू हुआ, उस समय सुरश्रेष्ठ वीर देवराज इन्द्र और श्रीकृष्ण दोनों वज्रपुरमें प्रवेश करनेके लिये कोई उपाय सोचने लगे ॥ २५ ॥

तत्र यज्ञे वर्तमाने सुनाट्येन नटस्तदा ।
महर्षींस्तोषयामास भद्रनामेति नामतः ॥ २६ ॥

उस यज्ञमें भद्रनामा नामक एक नटने अपने उत्तम नाट्यके द्वारा महर्षियोंको संतुष्ट किया ॥ २६ ॥

तं वरेण मुनिश्रेष्ठाश्छन्दयामासुरात्मवत् ।
स वव्रे तु नटो भद्रो वरं देवेश्वरोपमः ॥ २७ ॥
देवेन्द्रकृष्णच्छन्देन सरस्वत्या प्रचोदितः ।
प्रणिपत्य मुनिश्रेष्ठानश्वमेधे समागतान् ॥ २८ ॥

तब उन श्रेष्ठ मुनियोंने उसे अपने योग्य वर माँगनेके लिये कहा । तब देवेन्द्र तथा श्रीकृष्णकी इच्छाके अनुसार सरस्वतीसे प्रेरित हो अश्वमेध यज्ञमें पधारे हुए मुनिवरोंको प्रणाम करके देवेन्द्रतुल्य भद्रनामक नटने इस प्रकार वर माँगा ॥ २७-२८ ॥

नट उवाच

भोज्यो द्विजानां सर्वेषां भवेयं मुनिसत्तमाः ।
सप्तद्वीपां च पृथिवीं विचरेयमिमामहम् ॥ २९ ॥

प्रसिद्धाकाशगमनः शक्त्युवंश्च विशेषतः।
अवध्यः सर्वभूतानां स्थावरा ये च जङ्गमाः ॥ ३० ॥

नट बोला—मुनिवरो ! मैं समस्त द्विजोंके लिये भोजनीय होऊँ अर्थात् सब द्विज मुझे सादर भोजन करावें। अथवा समस्त ब्राह्मण मेरा अन्न भोजन करें। सातों द्वीपोंसे युक्त इस सम्पूर्ण पृथ्वीपर मैं विचरण कर सकूँ। आकाशमें चलने-फिरनेकी उत्कृष्ट शक्ति मुझे प्राप्त हो। मैं विशेष शक्तिशाली रहकर स्थावर-जङ्गम सभी प्राणियोंके लिये अवध्य होऊँ ॥ २९-३० ॥

यस्य यस्य च वेषेण प्रविशेयमहं खलु।
मृतस्य जीवतो वापि भव्येनोत्पादितस्य वा ॥ ३१ ॥
सतूर्यस्तादृशः स्यां वै जरारोगविवर्जितः।
तुष्येयुर्मुनयो नित्यमन्ये च मम सर्वदा ॥ ३२ ॥

जो मर गया है, जीवित है, अथवा जो भविष्यरूपसे मेरे द्वारा तत्काल उत्पन्न किया गया है, ऐसे लोगोंमेंसे जिस-जिसके वेषसे मैं कहीं प्रवेश करना चाहूँ, मैं वाद्योंसहित ठीक वैसा ही हो जाऊँ ! जरा और रोग मुझे छू न सकें। मुझपर ऋषि-मुनि तथा अन्य लोग भी नित्य-निरन्तर संतुष्ट रहें ॥ ३१-३२ ॥

एवमस्त्विति सम्प्रोक्तो ब्राह्मणैर्नृपते नटः।
सप्तद्वीपां वसुमतीं पर्यटत्यमरोपमः ॥ ३३ ॥

नरेश्वर ! तब ब्राह्मणोंने 'एवमस्तु' कहकर उस नटको अभीष्ट वरदान दे दिया। तबसे वह देवोपम शक्तिशाली नट सातों द्वीपोंवाली पृथ्वीपर विचरण करता रहता है ॥ ३३ ॥

पुराणि दानवेन्द्राणामुत्तरांश्च कुरूँस्तथा।
भद्राश्वान् केतुमालांश्च कालाम्रद्वीपमेव च ॥ ३४ ॥

वह दानवेन्द्रोंके नगरोंमें तथा उत्तर-कुरु, भद्राश्व, केतुमाल तथा कालाम्र द्वीपोंमें घूमा करता था ॥ ३४ ॥

पर्वणीषु तु सर्वासु द्वारकां यदुमण्डिताम्।
आयाति वरदत्तः स लोकवीरो महानटः ॥ ३५ ॥

वह वर पाया हुआ लोकवीर महानट सभी पर्वोंपर यादवोंसे अलंकृत द्वारकापुरीमें आया करता था ॥ ३५ ॥

ततो हंसान् धार्तराष्ट्रान् देवलोकनिवासिनः।
उवाच भगवाञ्छक्रः सान्त्वयित्वा सुरेश्वरः ॥ ३६ ॥

तदनन्तर देवलोकमें निवास करनेवाले हंसोंको, जो धृतराष्ट्री एवं कश्यपके वंशज थे, देवराज इन्द्रने बुलवाया और उन्हें सान्त्वना देकर कहा— ॥ ३६ ॥

भवन्तो भ्रातरोऽस्माकं काश्यपा देवपक्षिणः।
विमानवाहा देवानां सुकृतीनां तथैव च ॥ ३७ ॥

'हंसो ! तुम लोकपिता कश्यपजीकी संतति होनेके कारण हमारे भाई हो, देवपक्षी हो तथा देवताओं और पुण्यात्माओंके विमानवाहक हो ॥ ३७ ॥

देवानामस्ति कर्तव्यं कार्यं शत्रुवधान्वितम्।
तत् कर्तव्यं न मन्त्रश्च भेत्तव्यो वः कथंचन ॥ ३८ ॥

'इस समय देवताओंके सामने शत्रुवध-सम्बन्धी कार्य उपस्थित है, जो हम सबके लिये आवश्यक कर्तव्य है। उस कार्यको तुम्हें पूरा करना है और इस गुप्त मन्त्रको किसी तरह फूटने नहीं देना है ॥ ३८ ॥

न कुर्वतां देवताज्ञामुग्रो दण्डः पतेदपि।
सर्वत्राप्रतिषिद्धं वो गमनं हंससत्तमाः ॥ ३९ ॥

'देवताओंकी इस आज्ञाका पालन न करनेपर तुम्हारे ऊपर भयानक दण्ड भी पड़ सकता है। श्रेष्ठ हंसो ! तुम्हारी सर्वत्र अप्रतिहत गति है ॥ ३९ ॥

गत्वाप्रवेश्यमन्येषां वज्रनाभपुरोत्तमम्।
इतोऽन्तःपुरवापीषु चरध्वमुचितं हि वः ॥ ४० ॥

'वज्रनाभके श्रेष्ठ नगरमें प्रवेश करना दूसरोंके लिये असम्भव है। तुम वहाँ जाकर अन्तःपुरकी बावड़ियोंमें विचरो, क्योंकि यह कार्य तुम्हारे ही योग्य है ॥ ४० ॥

तस्यास्ति कन्यारत्नं हि त्रैलोक्यातिशयं शुभम्।
नाम्ना प्रभावती नाम चन्द्राभेव प्रभावती ॥ ४१ ॥

'वज्रनाभके एक रत्नस्वरूपा कन्या है, जो त्रिलोकीमें अतिशय सुन्दरी है। उसका नाम प्रभावती है। वह ऐसी प्रतीत होती है मानो चन्द्रमाकी आभा ही उसकी प्रभा बनकर प्रकाशित हो रही हो ॥ ४१ ॥

वरदानेन सा लब्धा मात्रा किल वरानना।
हैमवत्या महादेव्याः सकाशादिति नः श्रुतम् ॥ ४२ ॥

'उसकी माताने गिरिराज हिमवान्‌की पुत्री महादेवी उमासे मिले हुए वरदानके प्रभावसे उस सुन्दर मुखवाली कन्याको प्राप्त किया है, ऐसा हमारे सुननेमें आया है ॥ ४२ ॥

स्वयंवरा च सा कन्या बन्धुभिः स्थापिता सती।
आत्मेच्छया पतिं हंसा वरयिष्यति शोभना ॥ ४३ ॥

'हंसो ! अपने बन्धुओंद्वारा सुरक्षित हुई वह सुन्दरी कन्या प्रभावती स्वयंवरा है। स्वयंवरमें अपनी इच्छाके अनुसार पतिका वरण करेगी ॥ ४३ ॥

तद्भवद्भिर्गुणा वाच्याः प्रद्युम्नस्य महात्मनः।
सद्भूताः कुलरूपस्य शीलस्य वयसस्तथा ॥ ४४ ॥

'अतः तुमलोग प्रभावतीके सम्मुख महात्मा प्रद्युम्नके उत्तम कुल, सुन्दर रूप, अच्छे शील-स्वभाव तथा नयी अवस्थाके श्रेष्ठ गुणोंका बखान करो ॥ ४४ ॥

यदा सा रक्तभावा च वज्रनाभसुता सती।
तस्याः सकाशात् संदेशो नयितव्यः समाधिना ॥ ४५ ॥
प्रद्युम्नस्य पुनस्तस्मादानयध्वं तथैव च।
स्वबुद्ध्या प्राप्तकालं च संविधेयं हितं मम ॥ ४६ ॥

'वज्रनाभकी वह सती साध्वी पुत्री जब प्रद्युम्नके प्रति हृदयसे अनुरक्त हो जाय, तब एकाग्रचित्त होकर उसका संदेश तुम्हें प्रद्युम्नके पास पहुँचाना चाहिये; फिर वहाँसे तुम लोग उस संदेशका उत्तर लाया करो। साथ ही, अपनी बुद्धिसे भी सोच-विचारकर अवसरके अनुरूप कार्य करके मेरा हित-साधन करो ॥ ४५-४६ ॥

नेत्रवक्त्रप्रसादश्च कर्तव्यस्तत्र सर्वथा ॥ ४७ ॥
तथा तथा गुणा वाच्याः प्रद्युम्नस्य महात्मनः ।
यथा यथा प्रभावत्या मनस्तत्र भवेत् स्थितम् ॥ ४८ ॥

'तुम्हें वहाँ अपने नेत्रों और मुखके द्वारा सब प्रकारसे प्रसन्नता प्रकट करनी चाहिये। महात्मा प्रद्युम्नके गुणोंको उसी-उसी प्रकारसे बताना चाहिये, जिससे प्रभावतीका मन उनमें पूर्णतः अनुरक्त हो जाय ॥ ४७-४८ ॥

वृत्तान्तश्चानुदिवसं प्रदेयो मम सर्वथा ।
द्वारवत्यां च कृष्णस्य भ्रातुर्मम यवीयसः ॥ ४९ ॥

'इन सब बातोंका समाचार तुम्हें प्रतिदिन मुझे और द्वारकामें मेरे छोटे भाई श्रीकृष्णको भी बताना चाहिये ॥४९॥

तावद्यत्नश्च कर्तव्यः प्रद्युम्नो यावदात्मवित् ।
पर्यावर्तेद् वरारोहां वज्रनाभसुतां विभुः ॥ ५० ॥

'जबतक आत्मज्ञानी वैभवशाली प्रद्युम्न वज्रनाभकी सुन्दरी पुत्री प्रभावतीको अपनी न बना लें तबतक तुम्हारा प्रयत्न चालू रहना चाहिये ॥ ५० ॥

अवध्यास्ते तु देवानां ब्रह्मणो वरदर्पिताः ।
देवपुत्रैर्हि हन्तव्याः प्रद्युम्नप्रमुखैर्युधि ॥ ५१ ॥

'ब्रह्माजीके वरदानसे घमंडमें भरे रहनेवाले वज्रनाभ आदि सारे दैत्य देवताओंके लिये अवध्य हैं। वे युद्धमें प्रद्युम्न आदि देवकुमारोंद्वारा ही मारे जा सकते हैं ॥ ५१ ॥

नटो दत्तवरस्तस्य वेषमास्थाय यादवाः ।
प्रद्युम्नाद्या गमिष्यन्ति वज्रनाभविनाशनाः ॥ ५२ ॥

'मुनियोंका वर प्राप्त करनेवाला जो भद्रनामा नट है, उसीका वेष धारण करके प्रद्युम्न आदि यादव वज्रनाभका विनाश करनेके लिये उसके नगरमें जायँगे ॥ ५२ ॥

एतच्च सर्वं कर्तव्यमन्यच्च सर्वमेव हि ।
प्राप्तकालं विधातव्यमस्माकं प्रियकाम्यया ॥ ५३ ॥

'ये तथा और भी जो समयोचित कर्तव्य प्राप्त हों, उन सबको हमारा प्रिय करनेकी इच्छासे तुमलोगोंको पूर्ण करना चाहिये ॥ ५३ ॥

प्रवेशस्तत्र देवानां नास्ति हंसाः कथंचन ।
वज्रनाभेप्सिते तत्र प्रदेशे खलु सर्वथा ॥ ५४ ॥

'हंसो! वहाँ वज्रनाभके अभीष्ट प्रदेशमें देवताओंका किसी तरह भी प्रवेश नहीं हो सकता। यह सर्वथा निश्चित है' ॥ ५४ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि वज्रनाभवधे एकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें वज्रनाभवधके प्रसंगमें इक्यानवेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९१ ॥

द्विनवतितमोऽध्यायः

हंसोंका वज्रपुरमें निवास, हंसीका प्रभावतीको प्रद्युम्नके प्रति अनुरक्त कराना, प्रभावतीका हंसीसे प्रद्युम्नकी प्राप्ति करानेका अनुरोध, हंसी और वज्रनाभका संवाद, हंसोंके मुँहसे सब समाचार सुनकर श्रीकृष्णका नटवेषमें प्रद्युम्न आदि यादवोंको वज्रपुरमें भेजना

वैशम्पायन उवाच

ते वासववचः श्रुत्वा हंसा वज्रपुरं ययुः ।
पूर्वोचितं हि गमनं तेषां तत्र जनाधिप ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजा जनमेजय! इन्द्रकी यह बात सुनकर वे हंस वज्रपुरमें गये। वहाँका मार्ग उनके लिये पूर्व-परिचित था ॥ १ ॥

ते दीर्घिकासु रम्यासु निपेतुर्वीर पक्षिणः ।
पद्मोत्पलैरावृतासु काञ्चनैः स्पर्शनक्षमैः ॥ २ ॥

वीर! वे पक्षी वहाँके रमणीय सरोवरोंमें, जो स्पर्शके योग्य सुवर्णमय कमलोंसे आवृत थे, जाकर बैठे ॥ २ ॥

ते वै नदन्तो मधुरं संस्कृतापूर्वभाषिणः ।
पूर्वमप्यागतास्ते तु विस्मयं जनयन्ति हि ॥ ३ ॥

वे हंस अपूर्व संस्कृत भाषा बोलते और मधुर कलरव करते थे। यद्यपि वे उस नगरमें पहले भी आ चुके थे, तथापि नये आये हुएके समान वहाँके निवासियोंको आश्चर्यमें डाल रहे थे ॥ ३ ॥

अन्तःपुरोपभोग्यासु चेरुर्वापीषु ते नृप ।
दृष्टास्ते वज्रनाभस्य त्रिविष्टपनिवासिनः ॥ ४ ॥

नरेश्वर! वे अन्तःपुरके उपभोगमें आनेवाली बावड़ियोंमें चरने लगे। उन स्वर्गवासी हंसोंपर वज्रनाभकी भी दृष्टि पड़ी ॥ ४ ॥

आलपन्तः सुमधुरं धार्तराष्ट्रा जनेश्वर ।
स तानुवाच दैतेयो धार्तराष्ट्रानिदं वचः ॥ ५ ॥

जनेश्वर! वे हंस अत्यन्त मधुर बोली बोल रहे थे। उन्हें देखकर उस दैत्यने उनसे इस प्रकार कहा— ॥ ५ ॥

त्रिविष्टपे नित्यरता भवन्तश्चारुभाषिणः ।
यदैवेहोत्सवोऽस्माकं भवद्भिरवगम्यते ॥ ६ ॥
आगन्तव्यं जालपादाः खमिदं भवतां गृहम् ।
विस्रब्धं च प्रवेष्टव्यं त्रिविष्टपनिवासिभिः ॥ ७ ॥

'हंसो ! तुमलोग सदा स्वर्गलोकमें रमते और मनोहर बोली बोलते हो । जब कभी यहाँ हमलोगोंके घर उत्सव हो और तुम्हें इसका पता लग जाय, तब तुम अवश्य यहाँ पधारना । यह तुम्हारा अपना ही घर है । स्वर्गनिवासी हंसोंको यहाँ निर्भय होकर प्रवेश करना चाहिये' ॥ ६-७ ॥

ते तथोक्ताः शकुनयो वज्रनाभेन भारत ।
तथेत्युक्त्वा हि विविशुर्दानवेन्द्रनिवेशनम् ॥ ८ ॥

भारत ! वज्रनाभके ऐसा कहनेपर उन पक्षियोंने 'तथास्तु' कहकर उसकी बात मान ली और उस दानवराजके महलमें प्रवेश किया ॥ ८ ॥

चक्रुः परिचयं ते च देवकार्यव्यपेक्षया ।
मानुषालापिनस्ते तु कथाश्चक्रुः पृथग्विधाः ॥ ९ ॥

उन्होंने देवताओंके कार्यको सिद्ध करनेकी इच्छासे वहाँ सबसे परिचय प्राप्त किया । वे मनुष्योंकी-सी बोली बोलते और भाँति-भाँतिकी कथाएँ कहते थे ॥ ९ ॥

वंशबद्धाः काश्यपानां सर्वकल्याणभागिनाम् ।
स्त्रियो रेमुर्विशेषेण शृण्वन्त्यः सङ्गताः कथाः ॥ १० ॥

समस्त कल्याणमय पदार्थोंका उपभोग करनेवाले कश्यपवंशी दानवोंकी स्त्रियाँ अपने वंशसे सम्बन्ध रखनेवाली सुसङ्गत कथाएँ सुनती हुई उनमें विशेषरूपसे रम जाती थीं ॥

विचरन्तस्ततो हंसा ददृशुश्चारुहासिनीम् ।
प्रभावतीं वरारोहां वज्रनाभसुतां तदा ॥ ११ ॥

तदनन्तर वहाँ विचरते हुए हंसोंने उस समय वज्रनाभकी पुत्री मनोहर मुसकानवाली सुन्दरी प्रभावतीको देखा ॥ ११ ॥

हंसाः परिचितां चक्रुस्तां ततश्चारुहासिनीम् ।
सखीं शुचिमुखीं चक्रे हंसीं राजसुता तदा ॥ १२ ॥

फिर उन सभी हंसोंने उस चारुहासिनी राजकुमारीसे परिचय कर लिया । राजकुमारी प्रभावतीने उस समय शुचिमुखी नामवाली हंसीको अपनी सखी बना लिया ॥ १२ ॥

सा तां कदाचित् पप्रच्छ वज्रनाभसुतां सखीम् ।
विश्रम्भितां पृथक्सूक्तैराख्यानकशतैर्वराम् ॥ १३ ॥

एक दिनकी बात है, शुचिमुखीने सैकड़ों कथाएँ तथा भाँति-भाँतिकी सुन्दर उक्तियाँ सुनाकर अपनी श्रेष्ठ सखी वज्रनाभकुमारी प्रभावतीके मनमें पूर्ण विश्वास पैदा कर लिया । तत्पश्चात् उससे पूछा—॥ १३ ॥

त्रैलोक्यसुन्दरीं वेद्मि त्वामहं हि प्रभावति ।
रूपशीलगुणैर्देवि किंचित् त्वां वक्तुमुत्सहे ॥ १४ ॥

'प्रभावती ! मैं तुम्हें त्रिभुवनकी अद्वितीय सुन्दरी मानती हूँ । देवि ! तुम रूप, शील और गुणोंमें श्रेष्ठ हो, इसलिये मैं तुमसे कुछ कहना चाहती हूँ ॥ १४ ॥

व्यतिक्रामति ते भीरु यौवनं चारुहासिनि ।
यदतीतं पुनर्नैति गतं स्रोत इवाम्भसः ॥ १५ ॥

'भीरु ! चारुहासिनि ! तुम्हारी जवानी व्यर्थ बीती जा रही है । जैसे जलका बहता हुआ स्रोत फिर पीछे नहीं लौटता, उसी प्रकार जो अवस्था बीत गयी, वह फिर वापिस नहीं आती है ॥ १५ ॥

कामोपभोगतुल्या हि रतिर्देवि न विद्यते ।
स्त्रीणां जगति कल्याणि सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ १६ ॥

'देवि ! कल्याणि ! संसारमें स्त्रियोंके लिये कामोपभोगके समान दूसरा कोई सुख नहीं है; यह मैं तुमसे सत्य कहती हूँ ॥

स्वयंवरे च न्यस्ता त्वं पित्रा सर्वाङ्गशोभने ।
न च कांश्चिद् वरयसे देवासुरकुलोद्भवान् ॥ १७ ॥

'सर्वाङ्गशोभने ! तुम्हारे पिताने तुम्हें स्वयंवरमें उपस्थित किया, परंतु तुम देवताओं तथा असुरोंके कुलमें उत्पन्न हुए किन्हीं योग्य पुरुषका वरण ही नहीं करती हो (इसका क्या कारण है ?) ॥ १७ ॥

व्रीडिता यान्ति सुश्रोणि प्रत्याख्यातास्त्वया शुभे ।
रूपशौर्यगुणैर्युक्तान् सदृशांस्त्वं कुलस्य हि ॥ १८ ॥
आगतान् नेच्छसे देवि सदृशान् कुलरूपयोः ।

'शुभे ! सुश्रोणि ! तुम्हारे इनकार कर देनेपर ब्याहके लिये आये हुए पुरुष लज्जित होकर लौट जाते हैं । देवि ! जो रूप और शौर्य आदि गुणोंसे युक्त हैं तथा तुम्हारे कुलके सर्वथा अनुरूप हैं, ऐसे कुल और रूपमें अपने ही समान पुरुषोंके आनेपर भी तुम उन्हें वरण करना नहीं चाहती (ऐसा क्यों करती हो ?) ॥ १८½ ॥

इहैष्यति किमर्थं त्वां प्रद्युम्नो रुक्मिणीसुतः ॥ १९ ॥
त्रैलोक्ये यस्य रूपेण सदृशो न कुलेन वा ।
गुणैर्वा चारुसर्वाङ्गि शौर्येणाप्यति वा शुभे ॥ २० ॥

'भला रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्न यहाँ किसलिये आयेंगे ? जिनके रूप और कुलकी समानता करनेवाला त्रिलोकीमें दूसरा कोई नहीं है । शुभे ! सर्वाङ्गसुन्दरी ! वे गुणों अथवा शौर्यमें भी सबसे बढ़कर हैं ॥ १९-२० ॥

देवेषु देवः सुश्रोणि दानवेषु च दानवः ।
मानुषेष्वपि धर्मात्मा मनुष्यः स महाबलः ॥ २१ ॥

'सुश्रोणि ! वे महाबली प्रद्युम्न देवताओंमें देवता, दानवोंमें दानव और मनुष्योंमें भी धर्मात्मा मनुष्य हैं ॥ २१ ॥

यं सदा देवि दृष्ट्वा हि स्रवन्ति जघनानि हि ।
आपीनानीव धेनूनां स्रोतांसि सरितामिव ॥ २२ ॥

'देवि ! जैसे दूध देनेवाली गौओंके थन और सरिताओंके स्रोत टपकते हैं, उसी तरह उन प्रद्युम्नको देखकर सदा ही स्त्रियोंके जघनप्रदेश आर्द्र हो जाते हैं ॥ २२ ॥

न पूर्णचन्द्रेण मुखं नयने वा कुशेशयैः ।
उत्सहे नोपमातुं हि मृगेन्द्रेणाथ वा गतिम् ॥ २३ ॥

'उनके मुखकी पूर्ण चन्द्रसे, नयनोंकी नीलकमलसे अथवा गति (चाल) की सिंहसे मैं उपमा नहीं दे सकती (क्योंकि ये सब हीन प्रतीत होते हैं) ॥ २३ ॥

जगतः सारमुद्धृत्य पुत्रः स विहितः शुभे ।
कृत्वानङ्गं वरे साङ्गं विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ २४ ॥

'शुभे ! सुन्दरी ! प्रभावशाली भगवान् विष्णुने सारे जगत्का सार निकालकर अनङ्गको साङ्ग करके अपने उस पुत्रका निर्माण किया है ॥ २४ ॥

हृतेन शम्बरो बाल्ये येन पापो निबर्हितः ।
मायाश्च सर्वाः सम्प्राप्ता न च शीलं विनाशितम् ॥ २५ ॥

'बाल्यावस्थामें उन्हें शम्बरासुरने हर लिया था; परंतु उन्होंने बड़े होनेपर उस पापीको मार डाला ! उसकी सारी मायाएँ प्राप्त कर लीं; फिर भी किसीके शीलका विनाश नहीं किया ॥ २५ ॥

यान् यान् गुणान् पृथुश्रोणि मनसा कल्पयिष्यसि ।
एष्टव्यांस्त्रिषु लोकेषु प्रद्युम्ने सर्व एव ते ॥ २६ ॥

'पृथुश्रोणि ! तुम मनसे जिन-जिन उत्तम गुणोंकी कल्पना करोगी अथवा तीनों लोकोंमें जो-जो श्रेष्ठ गुण वाञ्छनीय हैं, वे सब-के-सब प्रद्युम्नमें वर्तमान हैं ॥ २६ ॥

रुच्या वह्निप्रतीकाशः क्षमया पृथिवीसमः ।
तेजसा सूर्यसदृशो गाम्भीर्येण ह्रदोपमः ।
प्रभावती शुचिमुखीं त्वितीहोवाच भामिनी ॥ २७ ॥

'वे कान्तिमें अग्निके समान, क्षमामें पृथ्वीके तुल्य, तेजमें सूर्यके सदृश तथा गम्भीरतामें सागरके समान हैं' यह सुनकर भामिनी प्रभावतीने शुचिमुखीसे इस प्रकार कहा ॥

प्रभावत्युवाच

विष्णुर्मानुषलोकस्थः श्रुतः सुबहुशो मया ।
पितुः कथयतः सौम्ये नारदस्य च धीमतः ॥ २८ ॥

प्रभावती बोली—सौम्ये ! मैंने बुद्धिमान् नारदजी तथा अपने पिताके मुखसे कई बार सुना है कि भगवान् विष्णु इस समय मनुष्यलोकमें अवतीर्ण होकर विराज रहे हैं ॥

शत्रुः किल स दैत्यानां वर्जनीयः सदानघे ।
कुलानि किल दैत्यानां तेन दग्धानि मानिनि ॥ २९ ॥
प्रदीप्तेन रथाङ्गेन शार्ङ्गेण गदया तथा ।
शाखानगरदेशेषु वसन्ति किल येऽसुराः ॥ ३० ॥
इत्येते दानवेन्द्रेण संदिश्यन्ते हि तं प्रति ।

पापरहित मानिनि ! शाखानगरके प्रदेशोंमें जो असुर निवास करते हैं, उन्हें मेरे पिता दानवराज वज्रनाभ भगवान् विष्णुके विषयमें इस प्रकार संदेश दिया करते हैं—'विष्णु दैत्योंके शत्रुके रूपमें प्रसिद्ध हैं, अतः उन्हें सदाके लिये त्याग देना चाहिये । उन्होंने अपने तेजस्वी चक्र, शार्ङ्ग-धनुष तथा कौमोदकी गदाके द्वारा दैत्योंके बहुत-से कुल दग्ध कर डाले हैं' ॥ २९-३०½ ॥

मनोरथो हि सर्वासां स्त्रीणामेव शुचिस्मिते ॥ ३१ ॥
भवेद्धि मे पतिकुलं श्रेष्ठं पितृकुलादिति ।

पवित्र मुसकानवाली हंसी ! प्रायः सभी स्त्रियोंका ऐसा ही मनोरथ होता है कि मेरा पतिकुल पितृकुलसे श्रेष्ठ हो ॥

यदि नामाभ्युपायः स्यात् तस्येहागमनं प्रति ॥ ३२ ॥
महाननुग्रहो मे स्यात् कुलं स्यात् पावितं च मे ।

यदि प्रद्युम्नके यहाँ आनेके लिये कोई उपाय हो सके तो यह मुझपर तुम्हारा महान् अनुग्रह होगा और मेरा कुल पवित्र हो जायगा ॥ ३२½ ॥

समर्थना मे पृष्टा त्वं प्रयच्छ शुचिलापिनि ॥ ३३ ॥
प्रद्युम्नः स्याद् यथा भर्ता स मे वृष्णिकुलोद्भवः ।

पवित्र वार्ता करनेवाली हंसी ! मैंने तुमसे कार्यसिद्धिका उपाय पूछा है । वह उपाय तुम मुझे प्रदान करो । वृष्णिवंशा-वतंस प्रद्युम्न जिस प्रकार मेरे पति हो सकें, वैसा यत्न करो ॥

अत्यन्तवैरी दैत्यानामुद्वेजनकरो हरिः ॥ ३४ ॥
असुराणां स्त्रियो वृद्धाः कथयन्त्यो मया श्रुताः ।

मैंने असुरोंकी बड़ी-बूढ़ी स्त्रियोंके मुखसे यह बात सुनी है कि भगवान् विष्णु दैत्योंके अत्यन्त वैरी और उन्हें उद्वेगमें डालनेवाले हैं ॥ ३४½ ॥

प्रद्युम्नस्य तथा जन्म पुरस्तादपि मे श्रुतम् ॥ ३५ ॥
यथा च तेन निहतो बलवान् कालशम्बरः ।

प्रद्युम्नके जन्मका वृत्तान्त मैंने पहले भी सुना है । जिस प्रकार उनके द्वारा बलवान् कालशम्बर मारा गया था, वह प्रसङ्ग भी मेरे सुननेमें आया है ॥ ३५½ ॥

हृदि मे वर्तते नित्यं प्रद्युम्नः खलु सत्तमे ॥ ३६ ॥
हेतुः स नास्ति स्यात् तेन यथा मम समागमः ।

साध्वीशिरोमणे ! प्रद्युम्न सदा मेरे हृदयमें विद्यमान रहते हैं; परंतु ऐसी कोई युक्ति या साधन नहीं है, जिससे उनके साथ मेरा समागम हो सके ॥ ३६½ ॥

दासी तवाहं सख्यार्हे दूत्ये त्वां च विसर्जये ॥ ३७ ॥
पण्डितासि वदोपायं मम तस्य च संगमे ।

आदरणीया सखी ! मैं तुम्हारी दासी हूँ और तुम्हें दूतीके कामपर नियुक्त करती हूँ । तुम विदुषी हो । मेरे और प्रद्युम्नके मिलनका कोई उपाय बताओ ॥ ३७½ ॥

ततस्तां सान्त्वयित्वा सा प्रहसन्तीदमब्रवीत् ॥ ३८ ॥

तब हंसीने उसे सान्त्वना देकर हँसते हुए कहा ॥ ३८ ॥

शुचिमुख्युवाच

तत्र दूती गमिष्यामि तवाहं चारुहासिनि ।
इमां भक्तिं तवोदारां प्रवक्ष्यामि शुचिस्मिते ॥ ३९ ॥

शुचिमुखी बोली—चारुहासिनि ! शुचिस्मिते ! मैं वहाँ तुम्हारी दूती बनकर जाऊँगी और प्रद्युम्नसे तुम्हारी इस उदार भक्तिका वर्णन करूँगी ॥ ३९ ॥

तथा चैव करिष्यामि यथैष्यति तवान्तिकम् ।
साक्षात्कामेन सुश्रोणि भविष्यति सकामिनी ॥ ४० ॥

सुश्रोणि ! मैं ऐसा प्रयत्न भी करूँगी, जिससे वे तुम्हारे निकट पधारेंगे और तुम साक्षात् कामसे मिलकर अपनी कामना सफल करोगी ॥ ४० ॥

इति मे भाषितं नित्यं स्मरेथाः शुचिलोचने ।
कथाकुशलतां पित्रे कथयस्वायतेक्षणे ॥ ४१ ॥
मम त्वं तत्र मे देवि हितं सम्यक् प्रपत्स्यसे ।

पवित्र नेत्रोंवाली राजकुमारी ! विशाललोचने ! मेरी इस बातको तुम सदा याद रखना । अपने पिताके सामने बराबर मेरे कथा-कौशलकी चर्चा करती हुई यह कहना कि शुचिमुखी कथा कहनेमें बहुत ही कुशल है । देवि ! वहाँ पिताके निकट तुम सदा मेरे हित-साधनका ध्यान रखना ॥

इत्युक्ता सा तथा चक्रे यत्तत् सा तामथाब्रवीत् ॥ ४२ ॥
दानवेन्द्रश्च तां हंसीं पप्रच्छान्तःपुरे तदा ।
प्रभावत्या समाख्याता कथाकुशलता तव ॥ ४३ ॥
तत्त्वं शुचिमुखि ब्रूहि कथां योग्यतया वरे ।
किं त्वया दृष्टमाश्चर्यं जगत्युत्तमपक्षिणि ॥ ४४ ॥
अदृष्टपूर्वमन्यैर्वा योग्यायोग्यमनिन्दिते ।

शुचिमुखीके ऐसा कहनेपर प्रभावतीने वैसा ही किया, जैसा कि उस (हंसी) ने उससे कहा था। उस समय दानवराज वज्रनाभने अन्तःपुरमें उस हंसीसे पूछा—'शुचिमुखि ! प्रभावतीने बताया है कि तुम कथा कहनेमें बड़ी चतुर हो । अतः उत्तम पक्षिणि ! तुम कोई कथा कहो, क्योंकि योग्यतामें बड़ी हो। बताओ, संसारमें तुमने कौन-सी आश्चर्यकी बात देखी है ? अनिन्दिते ! जिसे दूसरोंने पहले कभी नहीं देखा हो, ऐसी कोई योग्य या अयोग्य आश्चर्यकी बात तुमने देखी हो तो बताओ' ॥ ४२–४४½ ॥

सोवाच वज्रनाभं तु हंसी नरवरोत्तम ॥ ४५ ॥
श्रूयतामित्यथामन्त्र्य दानवेन्द्रं महाद्युतिम् ।

नरेशशिरोमणे ! तब हंसीने महातेजस्वी दानवराज वज्रनाभको सम्बोधित करके कहा—सुनिये— ॥ ४५½ ॥

दृष्टा मे शाण्डिली नाम साध्वी दानवसत्तम ।
आश्चर्यं कर्म कुर्वन्तीं मेरुपार्श्वे मनस्विनीम् ॥ ४६ ॥

'दानवश्रेष्ठ ! मैंने मेरुगिरिके पार्श्वभागमें साध्वी मनस्विनी शाण्डिलीको देखा है, जो वहाँ आश्चर्यजनक कार्य करती हैं ॥ ४६ ॥

सुमनाश्चैव कौशल्या सर्वभूतहिते रता ।
कथंचिद् वरशाण्डिल्याः शैलपुत्र्याः शुभा सखी ॥ ४७ ॥

'समस्त प्राणियोंके हितमें तत्पर रहनेवाली कौशल्या सुमनाका भी किसी प्रकार दर्शन किया है, जो शैलपुत्री श्रेष्ठ शाण्डिलीकी शुभ सखी हैं ॥ ४७ ॥

नटश्चैव मया दृष्टो मुनिदत्तवरः शुभः ।
कामरूपी च भोज्यश्च त्रैलोक्ये नित्यसम्मतः ॥ ४८ ॥

'एक नटको भी मैंने देखा है, जिसे मुनियोंने अभीष्ट वर दे रक्खा है । वह शुभलक्षण नट इच्छानुसार रूप धारण करनेवाला, भोजनीय तथा त्रिभुवनमें सबको सदा ही प्रिय है ॥ ४८ ॥

कुरून् यात्युत्तरान् वीर कालाम्रद्वीपमेव च ।
भद्राश्वान् केतुमालांश्च द्वीपानन्यांस्तथानघ ॥ ४९ ॥

'वीर ! वह उत्तर कुरुमें जाता तथा कालाम्रद्वीपकी भी यात्रा करता है । अनघ ! वह भद्राश्व, केतुमाल तथा अन्य द्वीपोंमें भी जाया करता है ॥ ४९ ॥

देवगन्धर्वगेयानि नृत्यानि विविधानि च ।
स वेत्ति देवान् नृत्येन विस्मापयति सर्वथा ॥ ५० ॥

'देवता और गन्धर्व ही जिन्हें गाते हैं, उन गीतोंको भी वह गाता है तथा भाँति-भाँतिके नृत्योंको भी जानता है । वह अपने नृत्योंसे देवताओंको भी सर्वथा आश्चर्यचकित कर देता है' ॥ ५० ॥

वज्रनाभ उवाच

श्रुतमेतन्मया हंसि न चिरादिव विस्तरम् ।
चारणानां कथयतां सिद्धानां च महात्मनाम् ॥ ५१ ॥

वज्रनाभ बोला—हंसी ! थोड़े ही दिन हुए मैंने भी महात्मा, सिद्धों और चारणोंके मुखसे यह नटविषयक समाचार विस्तारपूर्वक सुना है ॥ ५१ ॥

कुतूहलं ममाप्यस्ति सर्वथा पक्षिनन्दिनि ।
नटे दत्तवरे तस्मिन् संस्तवस्तु न विद्यते ॥ ५२ ॥

पक्षिनन्दिनि ! मुझे भी उस वरप्राप्त नटको देखनेके लिये सर्वथा उत्कण्ठा हो रही है; परंतु मालूम होता है, मेरी प्रसिद्धि उसके कानोंतक नहीं गयी है (इसलिये वह अबतक यहाँ नहीं आ सका है) ॥ ५२ ॥

हंस्युवाच

सप्तद्वीपान् विचरति नटः स दितिजोत्तम ।
गुणवन्तं जनं श्रुत्वा गुणकार्यः स सर्वथा ॥ ५३ ॥
तव चेच्छृणुयाद् वीर सद्भूतं गुणविस्तरम् ।
नटं तदागतं विद्धि पुरं तव महासुर ॥ ५४ ॥

हंसीने कहा—दैत्यप्रवर ! वह नट सातों द्वीपोंमें विचरता है और गुणवान् पुरुषका नाम सुनकर उसके पास जाता है। उसके कार्य सर्वथा गुणयुक्त होते हैं। वीर महासुर ! यदि वह तुम्हारे श्रेष्ठ एवं विस्तृत गुणोंको सुन ले तो उसे अपने नगरमें आया हुआ ही समझो ॥ ५३-५४ ॥

वज्रनाभ उवाच

उपायः सृजतां हंसि येनेह स नटः शुभे।
आगच्छेन्मम भद्रं ते विषयं पक्षिनन्दिनि ॥ ५५ ॥

वज्रनाभ बोला—शुभे ! पक्षिनन्दिनी हंसी ! तुम्हारा भला हो। तुम ऐसा कोई उपाय करो, जिससे वह नट मेरे राज्यमें आ जाय ॥ ५५ ॥

ते हंसा वज्रनाभेन कार्यहेतोर्विसर्जिताः।
देवेन्द्रायाथ कृष्णाय शशंसुः सर्वमेव तत् ॥ ५६ ॥

वज्रनाभद्वारा अपने कार्यकी सिद्धिके लिये भेजे गये उन हंसोंने देवराज इन्द्र तथा भगवान् श्रीकृष्णसे वह सब समाचार कह सुनाया ॥ ५६ ॥

अधोक्षजेन प्रद्युम्नो नियुक्तस्तत्र कर्मणि।
प्रभावत्याश्च संसर्गे वज्रनाभवधे तथा ॥ ५७ ॥

तब भगवान् श्रीकृष्णने प्रद्युम्नको उस कार्यमें नियुक्त किया। उनका काम था प्रभावतीसे मेल-जोल बढ़ाना और वज्रनाभका वध करना ॥ ५७ ॥

दैवीं मायां समाश्रित्य संविधाय हरिर्नटम्।
नटवेषेण भैमानां प्रेषयामास भारत ॥ ५८ ॥

श्रीहरिने दैवी मायाका आश्रय लेकर प्रद्युम्नको नट बनाकर भेजा। भारत ! उन्होंने नटके वेषमें ही मुख्य-मुख्य यादवोंको वहाँ भेज दिया ॥ ५८ ॥

प्रद्युम्नं नायकं कृत्वा साम्बं कृत्वा विदूषकम्।
पारिपार्श्वे गदं वीरमन्यान् भैमांस्तथैव च ॥ ५९ ॥

उन्होंने प्रद्युम्नको नायक, साम्बको विदूषक और वीरवर गदको पारिपार्श्विक बनाकर अन्यान्य यादवोंको भी उसी तरह विभिन्न भूमिकाओंमें सजाकर भेजा ॥ ५९ ॥

वारमुख्या नटीः कृत्वा तत्तूर्यसदृशास्तदा।
तथैव भद्रं भद्रस्य सहायांश्च तथाविधान् ॥ ६० ॥

मुख्य-मुख्य वाराङ्गनाओंको नटी बनाकर, जो उस नृत्य, गीत एवं वाद्यके अनुरूप थीं, भेजा। उसी तरह भद्र और उसके सहायकोंको भी तदनुरूप वेषोंमें भेज दिया ॥ ६० ॥

प्रद्युम्नविहितं रम्यं विमानं ते महारथाः।
जग्मुरारुह्य कार्यार्थं देवानाममितौजसाम् ॥ ६१ ॥

वे महारथी वीर प्रद्युम्नके बनाये हुए रमणीय विमानपर आरूढ़ हो महातेजस्वी देवताओंके कार्यकी सिद्धिके लिये वहाँ गये ॥ ६१ ॥

एकैकस्य समा रूपे पुरुषाः पुरुषस्य ते।
स्त्रीणां च सदृशाः सर्वे ते स्वरूपैर्नराधिपाः ॥ ६२ ॥

वे सभी पुरुष रूपमें एक-एक पुरुषके अनुरूप थे तथा वे सभी राजकुमार अपने रूप-सौन्दर्यद्वारा स्त्रियोंकी भी समानता करते थे ॥ ६२ ॥

ते वज्रनगरस्याथ शाखानगरमुत्तमम्।
जग्मुर्दानवसंकीर्णं सुपुरं नाम नामतः ॥ ६३ ॥

वे सब-के-सब वज्रपुरके उत्तम शाखानगर सुपुरमें, जो दानवोंसे भरा-पूरा था, गये ॥ ६३ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि वज्रनाभप्रद्युम्नोत्तरे प्रद्युम्नादिगमने द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें वज्रनाभ और प्रद्युम्नकी प्रधानतामें होनेवाले युद्धके प्रसङ्गमें प्रद्युम्न आदिका वज्रपुरको गमनविषयक बानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९२ ॥

त्रिनवतितमोऽध्यायः

नटवेशधारी यादवोंका सुपुर और वज्रपुरमें सफल अभिनय करके दानवोंको रिझाकर उनसे उपहार पाना तथा प्रद्युम्नका प्रभावतीके घरमें प्रवेश

वैशम्पायन उवाच

ततः सुपुरवासीनामसुराणां नराधिप।
ददावाज्ञां वज्रनाभो दीयतां गृहमुत्तमम् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—नरेश्वर ! तदनन्तर वज्रनाभने सुपुरवासी असुरोंको आज्ञा दी कि 'इन नटोंके लिये उत्तम गृह प्रदान करो ॥ १ ॥

आतिथ्यं क्रियतामेषां बहुरत्नमुपायनम्।
वासांसि सुविचित्राणि सुखाय जनरञ्जनम् ॥ २ ॥

'इन सबका आतिथ्य-सत्कार करो। इन्हें उपहारमें बहुत-से रत्न तथा सुन्दर एवं विचित्र वस्त्र प्रदान करो। साथ ही इन्हें सुख पहुँचानेके लिये ऐसी सामग्री भेंट करो, जो मनुष्यमात्रके मनको प्रसन्न करनेवाली हो' ॥ २ ॥

भर्तुराज्ञां समालभ्य तथा चक्रुश्च सर्वशः।
पूर्वश्रुतो नटः प्राप्तः कौतूहलमजीजनत् ॥ ३ ॥

स्वामीकी आज्ञा पाकर उन असुरोंने सब कुछ वैसा ही किया। पहले जिसके विषयमें सुना गया था, वही नट आया

है; इस भावनाने सबके मनमें नयी उत्कण्ठा उत्पन्न कर दी थी ॥ ३ ॥

नटस्याथ ददुर्दैत्याः सत्कारं परया मुदा ।
पर्यायार्थं ददुश्चापि रत्नानि सुबहून्यथ ॥ ४ ॥

दैत्योंने भद्र नामक नटको बड़ी प्रसन्नताके साथ उत्तम सत्कार प्रदान किया । उन्होंने वेश-धारणके लिये उसे बहुत-से रत्न दिये ॥ ४ ॥

ततः स ननृते तत्र वरदत्तो नटस्तथा ।
सुपुरे पुरवासीनां परं हर्षं समादधत् ॥ ५ ॥

तदनन्तर वर प्राप्त किये हुए उस नटने वहाँ सुपुरमें नृत्य किया और पुरवासियोंके मनमें महान् हर्ष भर दिया ॥ ५ ॥

रामायणं महाकाव्यमुद्दिश्य नाटकं कृतम् ।
जन्म विष्णोरमेयस्य राक्षसेन्द्रवधेप्सया ॥ ६ ॥

उसने रामायण नामक महाकाव्यकी कथावस्तुको लेकर वहाँ एक नाटक किया । उसमें यह दिखाया गया कि राक्षस-राज रावणके वधकी इच्छासे अप्रमेयस्वरूप भगवान् विष्णुका भूतलपर अवतार हुआ ॥ ६ ॥

लोमपादो दशरथ ऋष्यशृङ्गं महामुनिम् ।
शान्तामप्यानयामास गणिकाभिः सहानघ ॥ ७ ॥

अनघ ! लोमपादने महामुनि ऋष्यशृङ्गको गणिकाओंके साथ अपने यहाँ बुलवाया; फिर महाराज दशरथने ऋष्य-शृङ्गके साथ उनकी पत्नी शान्ताको भी अपने यहाँ निमन्त्रित किया ॥ ७ ॥

रामलक्ष्मणशत्रुघ्ना भरतश्चैव भारत ।
ऋष्यशृङ्गश्च शान्ता च तथारूपैर्नटैः कृताः ॥ ८ ॥

भरतनन्दन ! राम, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, भरत, ऋष्यशृङ्ग तथा शान्ताका वेश उन्हींके जैसे रूपवाले नटोंने धारण किया था ॥ ८ ॥

तत्कालजीविनो वृद्धा दानवा विस्मयं गताः ।
आचचक्षुश्च तेषां वै रूपतुल्यत्वमच्युत ॥ ९ ॥

राजन् ! जो रामके समयमें जीवित थे, वे बूढ़े दानव भी उन्हें देखकर आश्चर्यचकित हो गये और कहने लगे, इनका रूप तो ठीक उन्हीं व्यक्तियोंके तुल्य है ॥ ९ ॥

संस्काराभिनयौ तेषां प्रस्तावानां च धारणम् ।
दृष्ट्वा सर्वे प्रवेशं च दानवा विस्मयं गताः ॥ १० ॥

उनके संस्कार (वेश-धारण), अभिनय, प्रस्तावों (क्रिया-प्रसङ्गों) का धारण तथा प्रवेश (पात्रोंका प्रथम दर्शन) देखकर सभी दानव बड़े विस्मयमें पड़ गये थे ॥ १० ॥

ते रक्ता विस्मयं नेदुरसुराः परया मुदा ।
उत्थायोत्थाय नाट्यस्य विषयेषु पुनः पुनः ॥ ११ ॥
ददुर्वस्त्राणि तुष्टाश्च ग्रैवेयवलयानि च ।
हारान् मनोहरांश्चैव हेमवैदूर्यभूषितान् ॥ १२ ॥

उस नाटकमें अनुरक्त हुए वे असुरगण नाट्य विषयोंमें बारंबार उठ-उठकर बड़ी प्रसन्नताके साथ आश्चर्ययुक्त कोलाहल करते और संतुष्ट हो नटोंको वस्त्र, गलेका भूषण, कङ्कण, मनोहर हेमवैदूर्यभूषित हार देते थे ॥ ११-१२ ॥

पृथगर्थेषु दत्तेषु लोकैस्ते तुष्टुवुर्नटाः ।
असुरांश्च मुनींश्चैव गोत्रैरभिजनैरपि ॥ १३ ॥

लोगोंके इस प्रकार पृथक्-पृथक् वस्तुओंकी भेंट देनेपर वे नट बहुत संतुष्ट हुए । उन्होंने उनके गोत्रों और पूर्वजोंका उल्लेख करके उन असुरों और ऋषि-मुनियोंकी भूरि-भूरि प्रशंसा की ॥ १३ ॥

प्रेषितं वज्रनाभस्य शाखानगरवासिभिः ।
नटस्य दिव्यरूपस्य नरेन्द्रागमनं तदा ॥ १४ ॥

नरेन्द्र ! उस समय शाखा-नगरनिवासी असुरोंने वज्रनाभके पास उस दिव्य रूपधारी नटके पधारनेका शुभ समाचार भेजा ॥

पुरा श्रुतार्थो दैत्येन्द्रः प्रेषयामास भारत ।
आनीयतां वज्रपुरं नटोऽसाविति हर्षितः ॥ १५ ॥

भारत ! दैत्यराजने पहले ही यह समाचार सुन लिया था । अतः उसने अत्यन्त हर्षित होकर यह संदेश भेजा कि उस नटको वज्रपुरमें ले आया जाय ॥ १५ ॥

दानवेन्द्रवचः श्रुत्वा शाखानगरवासिभिः ।
नीता वज्रपुरं रम्यं नटवेषेण यादवाः ॥ १६ ॥

दानवराजका वह आदेश सुनकर शाखानगरनिवासी असुर नटवेशधारी यादवोंको रमणीय वज्रपुरमें ले गये ॥ १६ ॥

आवासश्च ततो दत्तः सुकृतो विश्वकर्मणा ।
एष्टव्यं यच्च तत् सर्वं दत्तं शतगुणोत्तरम् ॥ १७ ॥

दैत्यराजने उन्हें ठहरनेके लिये विश्वकर्माका बनाया हुआ सुन्दर भवन प्रदान किया और जिन-जिन वस्तुओंकी इच्छा या आवश्यकता होती है, उन सबको उन्होंने सौ गुना अधिक करके दे दिया ॥ १७ ॥

अथ कालोत्सवं चक्रे वज्रनाभो महासुरः ।
कारयामास रम्यं च चमूवाटं प्रहृष्टवान् ॥ १८ ॥

तदनन्तर महान् असुर वज्रनाभने महाकाल नामक रुद्रदेवका उत्सव आरम्भ किया । उसमें उसने बड़े हर्षमें भरकर रमणीय चमूवाट (सैनिकोंके मनोरञ्जनका स्थान) बनवाया ॥ १८ ॥

ततस्तान् परिविश्रान्तान् प्रेक्षार्थाय प्रचोदयत् ।
दत्त्वा रत्नानि भूरीणि वज्रनाभो महाबलः ॥ १९ ॥

तत्पश्चात् जब वे नट पूर्ण विश्राम कर चुके, तब महाबली वज्रनाभने उन्हें बहुत-से रत्न देकर नाट्यकलाका प्रदर्शन करनेके लिये आज्ञा दी ॥ १९ ॥

उपविष्टश्च तान् द्रष्टुं सह ज्ञातिभिरात्मवान् ।
छन्ने चान्तःपुरे स्थाप्य चक्षुर्दृश्ये नराधिप ॥ २० ॥

नरेश्वर ! अन्तःपुरकी स्त्रियोंको पर्देकी ओटमें जहाँसे वे अपने नेत्रोंद्वारा सब कुछ देख सकती थीं, बिठाकर मनस्वी वज्रनाभ स्वयं भी जाति-भाइयोंके साथ उन नटोंका अभिनय देखनेके लिये बैठा ॥ २० ॥

भैमापि बद्धनेपथ्या नटवेषधरास्तथा ।
कार्यार्थं भीमकर्माणो नृत्यार्थमुपचक्रमुः ॥ २१ ॥

भयंकर कर्म करनेवाले वे यादवकुमार भी उपयुक्त श्रृङ्गार करके नट-वेश धारण किये नृत्यका उपक्रम करने लगे ॥ २१ ॥

ततो घनं सशुषिरं मुरजानकभूषितम् ।
तन्त्रीस्वरगणैर्विद्धानातोद्यानन्ववादयन् ॥ २२ ॥

फिर तो घन (झाँझ और करताल आदि), सुषिर (मुरली आदि), मुरज (मृदङ्ग), आनक (ढोल या नगाड़ा) तथा वीणाके स्वरोंसे मिश्रित दूसरे-दूसरे बाजे उन नटोंद्वारा बजाये जाने लगे ॥ २२ ॥

ततस्तु देवगान्धारं छालिक्यं श्रवणामृतम् ।
भैमस्त्रियः प्रजगिरे मनःश्रोत्रसुखावहम् ॥ २३ ॥

तत्पश्चात् यादवकुमारोंके साथ आयी हुई वाराङ्गनाएँ देवगान्धार नामक छालिक्य गान्धर्वका गान करने लगीं, जो कानोंको अमृतके समान मधुर प्रतीत होता था । वह श्रोताके मन और कान दोनोंको सुख देनेवाला था ॥ २३ ॥

आगान्धारग्रामरागं गङ्गावतरणं तथा ।
विद्धमासारितं रम्यं जगिरे स्वरसम्पदा ॥ २४ ॥

गान्धार आदि सातों स्वरोंको व्याप्त करके स्थित होनेवाले जो त्रिविध[1] ग्राम (कतिपय स्वरोंके समूह), वसन्त आदि राग तथा गङ्गावतरण नामक गीतविशेष हैं, उन्हें रागान्तरसे मिश्रित, व्याप्त तथा रमणीय बनाकर वे अपनी मधुर स्वर-सम्पत्तिके द्वारा गाने लगीं ॥ २४ ॥

लयतालसमं श्रुत्वा गङ्गावतरणं शुभम् ।
असुरांस्तोषयामासुरुत्थायोत्थाय भारत ॥ २५ ॥

भारत ! लय और तालके अनुरूप सुन्दर गङ्गावतरणको सुनकर (प्रद्युम्न, गद और साम्ब—ये तीनों बीच-बीचमें) खड़े हो-होकर असुरोंको संतोष प्रदान करते थे ॥ २५ ॥

नान्दिं च वादयामासुः प्रद्युम्नो गद एव च ।
साम्बश्च वीर्यसम्पन्नः कार्यार्थं नटतां गतः ॥ २६ ॥

कार्यवश नटभावको प्राप्त हुए पराक्रमसम्पन्न प्रद्युम्न, गद और साम्ब नान्दी[2] बजाने लगे ॥ २६ ॥

नान्द्यन्ते च तदा श्लोकं गङ्गावतरणाश्रितम् ।
रौक्मिणेयस्तदोवाच सम्यक् स्वभिनयान्वितम् ॥ २७ ॥

उस समय नान्दी (माङ्गलिक पद्यपाठ) के अन्तमें रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्नने गङ्गावतरणसे सम्बन्ध रखनेवाले श्लोकका उत्तम अभिनयके साथ पाठ किया ॥ २७ ॥

रम्भाभिसारं कौबेरं नाटकं ननृतुस्ततः ।
शूरो रावणरूपेण रम्भावेषा मनोवती ॥ २८ ॥

तत्पश्चात् कुबेरलोकसम्बन्धी रम्भाभिसार नामक नाटकका वे सब लोग अभिनय करने लगे । शूर नामक यादव रावण रूपसे उपस्थित हुए । मनोवती नामक वाराङ्गनाने रम्भाका वेष धारण किया ॥ २८ ॥

नलकूबरस्तु प्रद्युम्नः साम्बस्तस्य विदूषकः ।
कैलासो रूपितश्चापि मायया यदुनन्दनैः ॥ २९ ॥

प्रद्युम्न ही नलकूबर बने । साम्ब उनके विदूषक बनकर तदनुरूप कार्य करने लगे । यादवकुमारोंने मायासे वहाँ कैलासको ही मूर्तिमान् कर दिया ॥ २९ ॥

शापश्च दत्तः क्रुद्धेन रावणस्य दुरात्मनः ।
नलकूबरेण च यथा रम्भा चाप्यथ सान्त्विता ॥ ३० ॥
एतत् प्रकरणं वीरा ननृतुर्यदुनन्दनाः ।
नारदस्य मुनेः कीर्तिं सर्वज्ञस्य महात्मनः ॥ ३१ ॥

क्रोधमें भरे हुए नलकूबरने जिस प्रकार दुरात्मा रावणको शाप दिया और जिस तरह रम्भाको सान्त्वना प्रदान की, इस प्रकरणका, जिसके द्वारा सर्वज्ञ महात्मा नारद मुनिकी कीर्तिपर प्रकाश पड़ता है, उन वीर यादवकुमारोंने नाटकद्वारा प्रदर्शन किया ॥ ३०-३१ ॥

पादोद्धारेण नृत्येन तथैवाभिनयेन च ।
तुतुषुर्दानवा वीरा भैमानामतितेजसाम् ॥ ३२ ॥

अत्यन्त तेजस्वी भीमवंशियोंके पाद-विक्षेपपूर्वक किये गये नृत्य और अभिनयसे संतुष्ट हुए दानववीर उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे ॥ ३२ ॥

ते ददुर्वस्त्रमुख्यानि रत्नान्याभरणानि च ।
हारांस्तरलविद्धांश्च वैडूर्यमणिभूषितान् ॥ ३३ ॥

उन्होंने अच्छे-अच्छे वस्त्र, रत्नमय आभूषण तथा वर्तुलाकार मणिसे विद्ध एवं वैदूर्यमणिसे विभूषित हार दिये ॥

---

१. षड्ज, मध्यम और गान्धार—ये तीन ग्राम हैं ।

२. यहाँ नान्दि शब्द एक वाद्यविशेषका वाचक है । यह चमड़ेके थैलेके समान होता है और उसके मुखपर शिववाहन नन्दीके मुखकी आकृति बनी रहती है, इसीलिये उसे नान्दी कहते हैं । कुछ लोगोंके मतमें बारह पटहों (नगाड़ों) की ध्वनिको ही नान्दि कहते हैं । कहीं-कहीं नान्दिकी जगह नान्दी पाठ है । देवताओं और द्विजों आदिकी शुभाशंसा करनेवाली जो पद्य अथवा गीतमयी वाक्यावली है, जो नाटकके पूर्व रंगमें प्रार्थनाके रूपमें पढ़ी जाती हैं, उसका नाम नान्दी है । उस नान्दीके अन्तमें सूत्रधार नाटककी प्रस्तावना करता है ।

विमानानि विचित्राणि रथांश्चाकाशगामिनः ।
गजानाकाशगांश्चैव दिव्यनागकुलोद्भवान् ॥ ३४ ॥

विचित्र विमान, आकाशगामी रथ और दिव्य नागोंके कुलमें उत्पन्न हुए आकाशचारी हाथी भी प्रदान किये ॥ ३४ ॥

चन्दनानि च दिव्यानि शीतानि रसवन्ति च ।
गुरूण्यगुरुमुख्यानि गन्धाढ्यानि च भारत ॥ ३५ ॥
चिन्तामणीनुदारांश्च चिन्तिते सर्वकामदान् ।

भरतनन्दन ! उन दानवोंने यादवकुमारोंको दिव्य, शीतल एवं सरस चन्दन, अगुरु आदि श्रेष्ठ सुगन्धित पदार्थ तथा चिन्तन करनेमात्रसे सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाले उदार चिन्तामणि नामक रत्न भी दिये ॥ ३५½ ॥

प्रेक्षासु तासु बह्वीषु ददन्तो दानवास्तथा ॥ ३६ ॥
धनरत्नैर्विरहिताः कृताः पुरुषसत्तम ।
स्त्रियो दानवमुख्यानां तथैव च जनेश्वर ॥ ३७ ॥

पुरुषप्रवर ! नरेश्वर ! वहाँ बहुत बार नाटक देखनेको अवसर मिले । उन सभी अवसरोंपर दानवों तथा प्रधान-प्रधान दानवोंकी स्त्रियोंने इतने उपहार दिये कि वे सब-के-सब धन तथा रत्नोंसे रहित हो गये ॥ ३६-३७ ॥

ततो हंसी प्रभावत्याः सखी प्राह प्रभावतीम् ।
गतास्मि द्वारकां रम्यां भैमगुप्तामनिन्दिते ॥ ३८ ॥

तब प्रभावतीकी सखी हंसीने प्रभावतीसे कहा—'अनिन्दिते ! मैं यादवोंद्वारा सुरक्षित रमणीय द्वारकापुरीमें गयी थी ॥ ३८ ॥

प्रद्युम्नश्च मया दृष्टो विविक्ते चारुलोचने ।
भक्तिश्च कथिता तस्य मया तव शुचिस्मिते ॥ ३९ ॥

'चारुलोचने ! वहाँ एकान्तमें मैंने प्रद्युम्नसे भेंट की । शुचिस्मिते ! तुम्हारी प्रद्युम्नके प्रति जो भक्ति है, उसकी भी मैंने उनसे चर्चा की ॥ ३९ ॥

तेन हृष्टेन कालश्च कृतः कमललोचने ।
अद्य प्रदोषसमये त्वया सह समागमे ॥ ४० ॥

'कमललोचने ! मेरी बात सुनकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने आज ही प्रदोषकालमें तुमसे मिलनेका समय निश्चित किया है ॥ ४० ॥

तदद्य रुचिरश्रोणि तव प्रियसमागमः ।
न ह्यात्मवति भाषन्ति मिथ्या भैमकुलोद्भवाः ॥ ४१ ॥

'अतः सुश्रोणि ! आज ही तुम्हारी अपने प्राणवल्लभसे भेंट होगी; क्योंकि यदुकुलमें उत्पन्न हुए पुरुष अपने प्रेमीजनोंके प्रति कोई मिथ्या संदेश नहीं देते हैं' ॥ ४१ ॥

ततः प्रभावती हृष्टा हंसीं तामिदमब्रवीत् ।
उषितासि ममावासे स्वप्तुमर्हसि सुन्दरि ॥ ४२ ॥

यह सुनकर प्रभावतीको बड़ा हर्ष हुआ । वह उस हंसीसे इस प्रकार बोली—'सुन्दरि ! तुम पहले भी मेरे घरमें रह चुकी हो । उसी तरह आज भी मेरे ही महलमें शयन करो ॥ ४२ ॥

त्वयाहं सहिताऽऽवासे द्रष्टुमिच्छामि केशविम् ।
निःसाध्वसा भविष्यामि त्वया सह विहङ्गमे ॥ ४३ ॥

'विहङ्गमे ! आज इस घरमें तुम्हारे साथ रहकर ही मैं केशवकुमार प्रद्युम्नका दर्शन करना चाहती हूँ । तुम्हारे साथ होनेसे मैं निर्भय रहूँगी' ॥ ४३ ॥

हंसी तथेति चोवाच सखीं कमललोचनाम् ।
आरुरोह च तद्धर्म्यं प्रभावत्या विहङ्गमा ॥ ४४ ॥

तब आकाशचारिणी हंसीने अपनी कमललोचना सखी प्रभावतीसे कहा—'बहुत अच्छा, आज यहीं सोऊँगी ।' फिर वह प्रभावतीकी अट्टालिकापर आरूढ़ हुई ॥ ४४ ॥

विश्वकर्मकृते तत्र हर्म्यपृष्ठे प्रभावती ।
संविधानं चकाराशु प्रद्युम्नागमनक्षमम् ॥ ४५ ॥

विश्वकर्माके बनाये हुए प्रासादपृष्ठमें प्रभावतीने शीघ्र ही प्रद्युम्नके आगमनके योग्य सजावट कर दी ॥ ४५ ॥

तस्मिन् कृते संविधाने काममानयितुं ययौ ।
प्रभावतीमनुज्ञाप्य हंसी वायुसमा गतौ ॥ ४६ ॥

वह सजावट हो जानेपर वायुके समान तीव्र वेगसे चलनेवाली हंसी प्रभावतीसे पूछकर प्रद्युम्नको ले आनेके लिये गयी ॥ ४६ ॥

नटवेषधरं कामं गत्वोवाच शुचिस्मिता ।
अद्य भूतः स भगवन् समयो वर्तते निशि ॥ ४७ ॥

पवित्र मुसकानवाली वह हंसी नटवेषधारी प्रद्युम्नके पास जाकर बोली—'भगवन् ! आपने पहलेसे जो समय निश्चित कर रक्खा है, वह आजकी ही रातमें आ रहा है' ॥ ४७ ॥

तथेति प्राह तां कामः सा निवृत्ताथ पक्षिणी ।
अभ्यागता च सा हंसी प्रभावतिमथाब्रवीत् ।
अभ्येति रौक्मिणेयोऽसावाश्वसायतलोचने ॥ ४८ ॥

तब प्रद्युम्नने उससे कहा—'बहुत अच्छा' उनका यह उत्तर सुनकर पक्षिणी लौट गयी । महलमें लौटकर हंसीने प्रभावतीसे कहा—'विशाललोचने ! धीरज धारण करो । वे रुक्मिणीनन्दन तुम्हारे पास आ रहे हैं' ॥ ४८ ॥

प्रद्युम्नो नीयमानं तु ददर्शे माल्यमात्मवान् ।
भ्रमरैरावृतं वीरः सुगन्धमरिमर्दनः ॥ ४९ ॥

उधर शत्रुमर्दन मनस्वी वीर प्रद्युम्नने देखा कि प्रभावतीके यहाँ सुगन्धित पुष्पमाला ले जायी जा रही है, जिसपर बहुत-से भ्रमर आ बैठे हैं ॥ ४९ ॥

निलिल्ये तत्र माल्ये तु भूत्वा मधुकरस्तदा ।
प्रभावत्यां नीयमाने विदितार्थः प्रतापवान् ॥ ५० ॥

फिर तो सर्वज्ञ एवं प्रतापी वीर प्रद्युम्न प्रभावतीके यहाँ ले जायी जानेवाली मालामें भ्रमर होकर छिप गये ॥ ५० ॥

प्रवेशितं च तन्माल्यं स्त्रीभिर्मधुकरायुतम् ।
उपनीतं प्रभावत्यै स्त्रीभिस्तद् भ्रमरावृतम् ॥ ५१ ॥

स्त्रियोंने भ्रमरोंसे आवृत हुई उस मालाको प्रभावतीके महलमें पहुँचा दिया । फिर दूसरी स्त्रियोंने वह भ्रमरावृत माला प्रभावतीके हाथमें दे दी ॥ ५१ ॥

अविदूरे च विन्यस्तं प्रभावत्या जनाधिप ।
भ्रमरास्ते ययुः सौम्य संध्याकाले ह्युपस्थिते ॥ ५२ ॥

नरेश्वर ! प्रभावतीने उसे पास ही रख लिया । सौम्य ! संध्याकाल उपस्थित होनेपर वे भ्रमर चले गये ॥ ५२ ॥

स भैमप्रवरो वीरस्तैः सहायैर्विहीनतः ।
कर्णोत्पले प्रभावत्या निलिल्ये शनकैरिव ॥ ५३ ॥

उन अपने सहायकोंसे बिछुड़कर वीर यदुश्रेष्ठ प्रद्युम्न धीरेसे प्रभावतीके कानमें पहने गये कमलमें छिप गये ॥५३॥

ततः प्रभावती हंसीमुवाच वदतां वरा ।
उद्यतं पूर्णचन्द्रं सा समीक्ष्यातिमनोहरम् ॥ ५४ ॥

तब वक्ताओंमें श्रेष्ठ प्रभावतीने अत्यन्त मनोहर पूर्ण चन्द्रको उदित हुआ देख हंसीसे कहा—॥ ५४ ॥

सखि दह्यन्ति मेऽङ्गानि मुखं च परिशुष्यति ।
औत्सुक्यं हृदि चातीव कोऽयं व्याधिरनौषधः ॥ ५५ ॥

'सखी ! मेरे तो सारे अङ्ग जले जा रहे हैं । मुँह सूख रहा है । हृदयमें अत्यन्त उत्कण्ठा बढ़ गयी है । यह कौन-सा रोग लग गया, जिसकी कोई दवा ही नहीं है ? ॥ ५५ ॥

दधद् द्विगुणमौत्सुक्यमसौ पूर्णनिशाकरः ।
नवोदितः शीतरश्मिः सख्यं हरति च प्रियः ॥ ५६ ॥

'वह शीतल किरणोंवाला नवोदित पूर्ण चन्द्र दूनी उत्सुकता बढ़ा रहा है । वह देखनेमें प्रिय लगता है; परंतु मित्रभावका अपहरण कर रहा है—अप्रियवत् बर्ताव करने लगा है ॥ ५६ ॥

न दृष्टपूर्वो हि मया श्रुतमात्रेण काङ्क्षितः ।
अहो धूमयतेऽङ्गानि स्त्रीस्वभावस्य धिक् खलु ॥ ५७ ॥

'अहो ! जिसे मैंने पहले कभी देखा नहीं है, केवल नाम सुनकर उसे चाहने लगी हूँ तो भी वह मेरे सारे अङ्गोंमें आग सुलगा रहा है । मुझे धूमाच्छन्न किये देता है । नारीके इस स्वभावको धिक्कार है ॥ ५७ ॥

कल्पयामि यथा बुद्ध्या यदि नाभ्येति मे प्रियः ।
कुमुद्वतीगतं मार्गं हा गमिष्याम्यकिंचना ॥ ५८ ॥

'जैसा कि मैं बुद्धिसे सोच रही हूँ, यदि मेरे प्रियतम नहीं आये तो मैं अकिञ्चन नारी उसी मार्गको अपनाऊँगी, जिसपर कुमुद्वती चल चुकी है । अर्थात् प्रियतम पतिके जीते जी ही युवावस्थामें मुझे अपने प्राणोंका परित्याग करना पड़ेगा । हा ! यह कितने कष्टकी बात है ? ॥ ५८ ॥

मदनाशीविषेणास्मि हा हा दष्टा मनस्विनी ।
शीतवीर्याः प्रकृत्यैव जगतो ह्लादनाः सुखाः ।
दहन्ति मम गात्राणि किं नु चन्द्रगभस्तयः ॥ ५९ ॥

'हाय ! हाय !! मुझ मनस्विनी नारीको कामदेवरूपी विषधर सर्पने डँस लिया है, अन्यथा शीतलता ही जिनकी शक्ति है, जो स्वभावसे ही जगत्को आह्लाद एवं सुख प्रदान करनेवाली हैं, वे चन्द्रमाकी किरणें मेरे अङ्गोंको क्यों जला रही हैं ? ॥ ५९ ॥

प्रकृत्या शीतलो वायुर्नानापुष्परजोवहः ।
दावाग्निसदृशो मेऽद्य दन्दहीति शुभां तनुम् ॥ ६० ॥

'जो स्वभावसे ही शीतल है और नाना प्रकारके पुष्पोंकी सुगन्धित रज लेकर बहती है, वही वायु आज मेरे लिये दावानलके समान होकर मेरे सुन्दर शरीरको अत्यन्त दग्ध किये देती है ॥ ६० ॥

ततः संकल्पये एव स्थैर्यं कार्यमिवात्मनः ।
नावतिष्ठति निर्वीर्यं मनः संकल्पधर्षितम् ॥ ६१ ॥

'मैं बारंबार संकल्प कर रही हूँ कि मुझे अपने मनको स्थिर कर लेना चाहिये; परंतु मेरा मन कामसे मथित होकर अत्यन्त निर्बल हो गया है; अतः स्थिर नहीं हो पाता है ॥ ६१ ॥

विमनस्कास्मि मुह्यामि वेपथुर्मे महान् हृदि ।
बम्भ्रमीति च मे दृष्टिर्हा हा यामि ध्रुवं क्षयम् ॥ ६२ ॥

'उन्मनी हुई जा रही हूँ, मुझपर मोह छा रहा है । मेरे हृदयमें महान् कम्पन हो रहा है और मेरी दृष्टि बारंबार घूम रही है । हाय ! हाय ! अब निश्चय ही मैं नष्ट हो जाऊँगी' ॥ ६२ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि वज्रनाभपुरे प्रद्युम्नगमने त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें वज्रनाभपुरमें प्रद्युम्नका गमनविषयक तिरानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९३ ॥

चतुर्नवतितमोऽध्यायः

प्रद्युम्न और प्रभावतीका गान्धर्वविवाह एवं समागम; फिर गद और चन्द्रवतीका तथा साम्ब और गुणवतीका गान्धर्वविवाह

वैशम्पायन उवाच

आविष्टेयं मया बाला सर्वथेत्यवगम्य तु ।
कार्ष्णिर्हृष्टेन मनसा हंसीमिदमुवाच ह ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्नने जब यह समझ लिया कि असुरबाला प्रभावतीपर सर्वथा मेरा (कामका) आवेश हो गया है, तब वे प्रसन्न मनसे हंसीसे इस प्रकार बोले—॥ १ ॥

दैत्येन्द्रतनयां प्राप्तमवगच्छस्व मामिह ।
षट्पदैः सह षट्पादो भूत्वा माल्ये निलीय हि ॥ २ ॥
विधेयोऽस्मि प्रभावत्या यथेष्टं मयि वर्तताम् ।

'विहङ्गमे ! तुम्हें मालूम होना चाहिये कि मैं भ्रमरोंके साथ भ्रमर बनकर इसी मालामें लुक-छिपकर यहाँ दैत्यराज-कुमारी प्रभावतीके पास आ गया हूँ (तुम इसे मेरे आगमनकी सूचना दो) । मैं प्रभावतीका आज्ञापालक हूँ । वह मेरे प्रति जैसा चाहे बर्ताव कर सकती है' ॥ २½ ॥

इत्युक्त्वा दर्शयामास सुरूपो रूपमात्मनः ॥ ३ ॥
तद्धर्म्यपृष्ठं प्रभया द्योतितं तस्य धीमतः ।
अभिभूता प्रभा चैव राजंश्चन्द्रोद्भवा शुभा ॥ ४ ॥

राजन् ! ऐसा कहकर सुन्दर रूपवाले प्रद्युम्नने उसे अपने रूपका दर्शन कराया । वह प्रासादपृष्ठ प्रज्ञावान् प्रद्युम्नकी प्रभासे प्रकाशित हो उठा । उनकी कान्तिसे चन्द्रमाकी सुन्दर कान्ति भी तिरस्कृत हो गयी ॥ ३-४ ॥

प्रभावत्यास्तु तं दृष्ट्वा ववृधे कामसागरः ।
चन्द्रस्येवोदये प्राप्ते पर्वण्यां सरितां पतिः ॥ ५ ॥

प्रद्युम्नको देखते ही प्रभावतीके कामरूपी समुद्रमें ज्वार आ गया; ठीक उसी तरह, जैसे पूर्ण चन्द्रोदयका पर्व प्राप्त होनेपर सरिताओंके स्वामी समुद्रमें बाढ़ आ जाती है ॥ ५ ॥

सलज्जाधोमुखी किञ्चित् किञ्चित् तिर्यगवेक्षिणी ।
प्रभावती तदा तस्थौ निश्चलं कमलेक्षणा ॥ ६ ॥

प्रभावतीका मुख लज्जासे कुछ नीचेको झुक गया तो भी वह कुछ-कुछ तिरछी चितवनसे अपने प्राणवल्लभकी ओर देख लेती थी । उस समय कमलनयनी प्रभावती स्थिरभावसे खड़ी थी ॥ ६ ॥

करेणाधःप्रदेशे तां चारुभूषणभूषिताम् ।
स्पृष्ट्वोवाच वरारोहां रोमाञ्चिततनुस्ततः ॥ ७ ॥

मनोहर आभूषणोंसे विभूषित हुई सुन्दराङ्गी प्रभावतीके मुखके नीचेके भाग (ठोढ़ी) का [illegible] प्रद्युम्नका शरीर पुलकित हो गया । वे उससे इस प्रकार बोले—॥ ७ ॥

मनोरथशतैर्लब्धं किं पूर्णेन्दुसमप्रभम् ।
अधोमुखं मुखं कृत्वा न मां किञ्चित् प्रभाषसे ॥ ८ ॥
प्रभोपमर्दं मा कार्षीर्वदनस्य वरानने ।
साध्वसं त्यज्यतां भीरु दासः साध्वनुगृह्यताम् ॥ ९ ॥

'सुमुखि ! तुम्हारा यह पूर्ण चन्द्रमाके समान कान्तिमान् मुख मुझे सैकड़ों मनोरथोंके द्वारा आज प्राप्त हुआ है । तुम इसे नीचेकी ओर करके मुझसे कुछ बोलती क्यों नहीं हो ? तुम अपने मुखचन्द्रकी प्रभाका इस तरह तिरस्कार या लोप न करो । भीरु ! भय छोड़ो और इस दासपर भलीभाँति अनुग्रह करो ॥ ८-९ ॥

न कालमिव पश्यामि भीरु भीरुत्वमुत्सृज ।
याचाम्येषोऽञ्जलिं कृत्वा प्राप्तकालं निबोध मे ॥ १० ॥

'भीरु ! तुम्हारा यह सलज्ज मौनभाव मुझे इस समयके लिये उपयुक्त-सा नहीं दिखायी देता । भय त्याग दो । इसके लिये मैं यह हाथ जोड़कर याचना करता हूँ । समयोचित कर्तव्य क्या है—यह मुझसे सुनो ॥ १० ॥

गान्धर्वेण विवाहेन कुरुष्वानुग्रहं मम ।
देशकालानुरूपेण रूपेणाप्रतिमा सती ॥ ११ ॥

'संसारमें तुम्हारे रूपकी कहीं तुलना नहीं है । तुम देश-कालके अनुरूप गान्धर्व-विवाह करके मुझपर अनुग्रह करो' ॥

उपस्पृश्य ततो भैमो मणिस्थं जातवेदसम् ।
जुहाव समये वीरः पुष्पैर्मन्त्रानुदीरयन् ॥ १२ ॥

तदनन्तर वीर यादव प्रद्युम्नने आचमन करके सूर्यकान्त-मणिमें स्थित अग्निदेवको प्रकट किया और उस समय मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए पुष्पोंद्वारा आहुति दी ॥ १२ ॥

जग्राहाथ करं तस्या वराभरणभूषितम् ।
चक्रे प्रदक्षिणं चैव तं मणिस्थं हुताशनम् ॥ १३ ॥

तत्पश्चात् उन्होंने प्रभावतीके सुन्दर आभूषणोंसे विभूषित हाथको अपने हाथमें लिया और सूर्यकान्तमणिमें विराजमान अग्निदेवकी परिक्रमा की ॥ १३ ॥

प्रजज्वाल स तेजस्वी मानयन्नच्युतात्मजम् ।
भगवाञ्जगतः साक्षी शुभस्याथाशुभस्य च ॥ १४ ॥

उस समय सम्पूर्ण जगत्के शुभाशुभके साक्षी तेजस्वी भगवान् अग्निदेव अच्युतकुमार प्रद्युम्नका आदर करते हुए वहाँ प्रज्वलित हो उठे ॥ १४ ॥

उद्दिश्य दक्षिणां वीरो विप्राणां यदुनन्दनः।
उवाच हंसीं द्वारस्थां तिष्ठावां रक्ष पक्षिणि ॥ १५ ॥

इसके बाद वीर यदुनन्दनने ब्राह्मणोंके उद्देश्यसे दक्षिणा संकल्प करके द्वारपर खड़ी हुई हंसीसे कहा—'पक्षिणि ! तुम इस भवनके बाहरी द्वारपर खड़ी रहो और हम दोनोंको दूसरोंकी दृष्टि पड़नेसे बचाओ' ॥ १५ ॥

तस्यां प्रणम्य यातायां कामस्तां चारुलोचनाम्।
ग्रहाय दक्षिणे हस्ते निनाय शयनोत्तमम् ॥ १६ ॥

यह सुनकर हंसी उन्हें प्रणाम करके चली गयी। तब प्रद्युम्न मनोहर नेत्रोंवाली प्रभावतीका दाहिना हाथ पकड़कर उसे सुन्दर शय्यापर ले गये ॥ १६ ॥

ऊरावेवोपवेश्यैनां सान्त्वयित्वा पुनः पुनः।
चुचुम्ब शनकैर्गण्डं वासयन् मुखमारुतैः ॥ १७ ॥

वहाँ उसे अपनी जाँघपर ही बिठाकर उन्होंने बारंबार सान्त्वना दी और अपने मुखकी सुगन्धित वायुसे उसके कपोलको सुवासित करते हुए धीरेसे उसको चूम लिया ॥१७॥

ततोऽस्याश्च पपौ वक्त्रपद्मं मधुकरो यथा।
आलिलिङ्गे च सुश्रोणीं क्रमेण रतिकोविदः ॥ १८ ॥

तत्पश्चात् जैसे भ्रमर प्रफुल्ल कमलके मकरन्दका पान करता है, उसी प्रकार वे उसके मुखारविन्दका—उसके अधरोंका रस पीने लगे। फिर क्रमशः रति-कला-कुशल प्रद्युम्नने मनोहर नितम्बवाली प्रभावतीका पूर्णरूपसे आलिङ्गन किया ॥ १८ ॥

अरीरमद् रहस्येनां न चोद्वेजितवांस्तदा।
अपकृष्टं चरत्यर्थं रतिकार्यविशारदः।
उवास स तया सार्द्धं रमन् कृष्णसुतः प्रभुः ॥ १९ ॥

रतिकला-कोविद एवं सामर्थ्यशाली श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्न उसके साथ एकान्तमें रमण करने लगे। वे उसे उद्विग्न नहीं करते थे। कोई क्षुद्र बर्ताव (बलात्कार आदि) भी नहीं करते थे। उसके साथ रमण करते हुए वे रातभर वहीं रहे ॥ १९ ॥

अरुणोदयकाले च ययौ यत्र नटालयम्।
अकामया प्रभावत्या कथञ्चित् स विसर्जितः ॥ २० ॥

अरुणोदय-कालमें वे वहीं चले गये, जहाँ नटोंका स्थान था। प्रभावती नहीं चाहती थी कि वे एक क्षणके लिये भी उससे अलग हों तथापि किसी तरह उसने उस समय उन्हें विदा किया ॥ २० ॥

तामेव मनसा कान्तां कान्तरूपां समुद्वहन्।
त ऊषुर्नटवेषेण कार्यार्थं भैमवंशजाः ॥ २१ ॥
प्रतीक्षन्तस्तदा वाक्यमिन्द्रकेशवयोस्तदा।

प्रद्युम्न कमनीय रूपवाली उस प्राणवल्लभा प्रभावतीका ही मन-ही-मन चिन्तन करते रहे। वे भीमवंशी यादवकुमार उस समय देवराज इन्द्र और भगवान् श्रीकृष्णके आदेशकी प्रतीक्षा करते हुए अभीष्ट कार्यकी सिद्धिके लिये वहाँ नट-वेशमें रहने लगे ॥ २१½ ॥

उद्योगं वज्रनाभस्य त्रैलोक्यविजयं प्रति ॥ २२ ॥
प्रतीक्षन्तो महात्मानो गुह्यसंरक्षणे रताः।

वे महामनस्वी वीर अपने गूढ़ उद्देश्यको सर्वथा छिपाये रखनेके लिये तत्पर होकर वज्रनाभके त्रिलोकविजय-सम्बन्धी उद्योगकी राह देखते थे ॥ २२½ ॥

कश्यपस्य मुनेः सत्रं यावत् तावन्नराधिप ॥ २३ ॥
देवासुराणां सर्वेषामविरोधो महात्मनाम्।
त्रैलोक्यविजयार्थाय यततां धर्मचारिणाम् ॥ २४ ॥

नरेश्वर ! जबतक कश्यप मुनिका यज्ञ होता रहा, तबतक त्रैलोक्य-विजयके लिये प्रयत्नशील रहनेवाले समस्त महामनस्वी धर्मपरायण देवताओं और असुरोंमें परस्पर कोई विरोध नहीं हुआ ॥ २३-२४ ॥

एवं कालं प्रतीक्षाणां वसतां तत्र धीमताम्।
सम्प्राप्तः प्रावृषो रम्यः सर्वभूतमनोहरः ॥ २५ ॥

इस तरह समयकी प्रतीक्षा करते हुए वहाँ निवास करनेवाले बुद्धिमान् यादववीरोंके समक्ष वर्षा ऋतु प्राप्त हुई, जो समस्त प्राणियोंके लिये रमणीय एवं मनोहर है ॥ २५ ॥

अहर्निशं च वृत्तान्तं प्रयच्छन्ति मनोजवाः।
शक्रकेशवयोर्हंसाः कुमाराणां महात्मनाम् ॥ २६ ॥

मनके समान वेगशाली हंस उन महामनस्वी यादव-कुमारोंको प्रतिदिन इन्द्र और श्रीकृष्णका समाचार दिया करते थे ॥ २६ ॥

रेमे सह प्रभावत्या प्रद्युम्नश्चानुरूपया।
रात्रौ रात्रौ महातेजा धार्तराष्ट्राभिरक्षितः ॥ २७ ॥

प्रत्येक रात्रिको हंसोंसे सुरक्षित हुए महातेजस्वी प्रद्युम्न अपनी मनोऽनुरूप भार्या प्रभावतीके साथ रमण करते थे ॥

तैर्हि वज्रपुरं हंसैर्वसद्भिर्वासवाज्ञया।
व्याप्तं नृप नटांस्तांश्च न विदुः कालमोहिताः ॥ २८ ॥

नरेश्वर ! इन्द्रकी आज्ञासे वज्रपुरमें निवास करनेवाले हंसोंसे वह सारा नगर व्याप्त हो रहा था; परंतु कालसे मोहित हुए दानव यह नहीं जानते थे कि वास्तवमें वे हंस और वे नट कौन हैं ? ॥ २८ ॥

दिवापि रौक्मिणेयस्तु प्रभावत्या नृपालये।
तिष्ठत्यन्तर्हितो वीरो हंससंघाभिरक्षितः ॥ २९ ॥

राजन् ! वीर रुक्मिणीकुमार दिनमें भी हंससमुदायसे सुरक्षित हो छिपे रूपसे प्रभावतीके घरमें रहते थे ॥ २९ ॥

माययास्य प्रतिच्छाया दृश्यते हि नटालये।

देहार्धेन तु कौरव्य सिषेवेऽसौ प्रभावतीम् ॥ ३० ॥

कुरुनन्दन ! मायासे उनकी छायामात्र नटोंके स्थानमें दिखायी देती थी। वे अपने आधे शरीरसे प्रभावतीका ही सेवन करते थे ॥ ३० ॥

संनतिं विनयं शीलं लीलां दाक्ष्यमथार्जवम् ।
स्पृहयन्त्यसुरा दृष्ट्वा विद्वत्तां च महात्मनाम् ॥ ३१ ॥

उन महामनस्वी नटोंकी विनय, प्रणति, शील, लीला, चातुरी, सरलता और विद्वत्ता देखकर असुर सदा ही उन्हें चाहते रहते थे ॥ ३१ ॥

रूपं विलासं गन्धं च मञ्जुभाषामथार्यताम् ।
तासां यादवनारीणां स्पृहयन्त्यसुरस्त्रियः ॥ ३२ ॥

उन असुरोंकी स्त्रियाँ भी यादवकुमारोंके साथ आयी हुई सुन्दरियोंके रूप, विलास, सुगन्ध, मनोहर बोली और श्रेष्ठ स्वभावकी सदा ही अभिलाषा करती थीं ॥ ३२ ॥

वज्रनाभस्य तु भ्राता सुनाभो नाम विश्रुतः ।
दुहितृद्वयं च नृपते तस्य रूपगुणान्वितम् ॥ ३३ ॥

वज्रनाभके एक भाई था, जो सुनाभ नामसे विख्यात था। नरेश्वर ! उसके दो पुत्रियाँ थीं, जो सुन्दर रूप और उत्तम गुणोंसे युक्त थीं ॥ ३३ ॥

एका चन्द्रवती नाम्ना गुणवत्यथ चापरा ।
प्रभावत्यालयं ते तु व्रजतः खलु नित्यदा ॥ ३४ ॥

उनमेंसे एकका नाम चन्द्रवती और दूसरीका नाम गुणवती था। वे प्रतिदिन प्रभावतीके महलमें जाया करती थीं ॥ ३४ ॥

ददृशाते तु ते तत्र रतिसक्तां प्रभावतीम् ।
परिपप्रच्छतुश्चैव विस्रम्भोपगतां सतीम् ॥ ३५ ॥

उन दोनोंने वहाँ प्रभावतीको रतिमें आसक्त देखा। सती-साध्वी प्रभावतीका अपनी इन दोनों बहिनोंपर बड़ा विश्वास था; अतः इन दोनोंने उससे पूछा—('बहिन ! तुम किसके साथ क्रीड़ा करती हो ?') ॥ ३५ ॥

सोवाच मम विद्यास्ति याधीता काङ्क्षितं पतिम् ।
रत्यर्थं साऽऽनयत्याशु सौभाग्यं च प्रयच्छति ॥ ३६ ॥
देवं वा दानवं वापि विवशं सद्य एव हि ।

प्रभावती बोली—'मेरे पास एक विद्या है, जिसका अध्ययन कर लेनेपर वह रतिके लिये शीघ्र ही मनोवाञ्छित पतिको ला देती है और सौभाग्य प्रदान करती है। अभिलषित पुरुष देवता हो या दानव, यह विद्या उसे तत्काल विवश करके अपने पास उसे ला देती है ॥ ३६½ ॥

साहं रमामि कान्तेन देवपुत्रेण धीमता ॥ ३७ ॥
दृश्यतां मत्प्रभावेण प्रद्युम्नः सुप्रियो मम ।

'अतः मैं उसी विद्याके प्रभावसे परम बुद्धिमान् देवकुमारको अपना प्राणवल्लभ बनाकर उनके साथ रमण करती हूँ। देखो, मेरे या मेरी विद्याके प्रभावसे प्रद्युम्न मेरे अत्यन्त प्रिय हो गये हैं' ॥ ३७½ ॥

ते दृष्ट्वा विस्मयं याते रूपयौवनसम्पदम् ॥ ३८ ॥
पुनरेवाब्रवीत् ते तु भगिन्यौ चारुहासिनी ।
प्रभावती वरारोहा कालप्राप्तमिदं वचः ॥ ३९ ॥

उनके रूप और यौवनकी सम्पत्ति देखकर उन दोनों बहनोंको बड़ा विस्मय हुआ। फिर मनोहर हास्यवाली सुन्दरी प्रभावतीने उन दोनों बहनोंसे यह समयोचित बात कही—॥ ३८-३९ ॥

देवा धर्मरता नित्यं दम्भशीला महासुराः ।
देवास्तपसि रक्ता हि सुखे रक्ता महासुराः ॥ ४० ॥

'देवता सदा धर्ममें तत्पर रहते हैं और महान् असुर दम्भी होते हैं। देवता तपस्यामें अनुरक्त होते हैं और महान् असुर सुखमें आसक्त ॥ ४० ॥

देवाः सत्ये रता नित्यमनृते तु महासुराः ।
धर्मस्तपश्च सत्यं च यत्र तत्र जयो ध्रुवम् ॥ ४१ ॥

'देवता सदा सत्यमें तत्पर रहते हैं तो महान् असुर असत्यमें। जहाँ धर्म, तप और सत्य होता है, उसी पक्षको युद्धमें निश्चितरूपसे विजय प्राप्त होती है ॥ ४१ ॥

देवपुत्रौ वरयतां पतिविद्यां ददाम्यहम् ।
उचितौ मत्प्रभावेण सद्य एवोपलप्स्यथः ॥ ४२ ॥

'अतः तुम दोनों भी दो सुयोग्य देवकुमारोंका वरण कर लो। पतिकी प्राप्ति करानेवाली यह विद्या मैं तुम्हें देती हूँ। तुम मेरे प्रभावसे तत्काल ही अभीष्ट पति प्राप्त कर लोगी' ॥

तां तथेत्यूचतुर्हृष्टे भगिन्यौ चारुलोचनाम् ।
परिपप्रच्छ भैमं च कार्यं तत् पतिमानिनी ॥ ४३ ॥

तब वे दोनों बहनें अत्यन्त हर्षमें भरकर चारुलोचना प्रभावतीसे बोलीं, 'बहुत अच्छा।' तदनन्तर पतिको आदर देनेवाली प्रभावतीने प्रद्युम्नसे उस कार्यके विषयमें पूछा ॥४३॥

स पितृव्यं गदं वीरं साम्बं चाथाब्रवीत् तदा ।
रूपान्वितौ सुशीलौ च शूरौ च रणकर्मणि ॥ ४४ ॥

प्रद्युम्नने उस समय अपने चाचा वीरवर गद और भाई साम्बका नाम बताया और कहा—'वे दोनों सुन्दर रूपवाले, सुशील तथा युद्धकर्ममें शूरवीर हैं' ॥ ४४ ॥

प्रभावत्युवाच

परितुष्टेन दत्ता मे विद्या दुर्वाससा पुरा ।
परितुष्टेन सौभाग्यं सदा कन्यात्वमेव च ॥ ४५ ॥

तब प्रभावती अपनी दोनों बहनोंसे बोली— पूर्वकालमें संतुष्ट हुए दुर्वासा मुनिने मुझे यह विद्या

दी; साथ ही अखण्ड सौभाग्य तथा सदा कन्या-जैसी बनी रहनेका वरदान दिया ॥ ४५ ॥

देवदानवयक्षाणां यं ध्यास्यति स ते पतिः।
भवितेति मया चैव वीरोऽयमभिकाङ्क्षितः ॥ ४६ ॥

उन्होंने यह भी कहा था कि तुम देवता, दानव तथा यक्षोंमेंसे जिसका चिन्तन करोगी, वही तुम्हारा पति होगा। उनके इस वरदानके अनुसार मैंने उन्हीं वीर प्रद्युम्नको अपना पति बनानेकी इच्छा की ॥ ४६ ॥

गृहीतं तदिमां विद्यां सद्यो वां प्रियसङ्गमः।
ततो जगृहतुर्हृष्टे तां विद्यां भगिनीमुखात् ॥ ४७ ॥

अतः तुम दोनों ही इस विद्याको ग्रहण करो। इससे तुम्हें तत्काल ही प्रियतमका समागम प्राप्त होगा। यह सुनकर हर्षमें भरी हुई उन दोनों बहनोंने बहन प्रभावतीके मुखसे वह विद्या ग्रहण की ॥ ४७ ॥

दध्यतुर्गदसाम्बौ च विद्यामभ्यस्य ते शुभे।
तौ प्रद्युम्नेन सहितौ प्रविष्टौ भैमनन्दनौ ॥ ४८ ॥

उन शुभलक्षणा कन्याओंने विद्याका अभ्यास करके गद और साम्बका ध्यान किया; फिर तो वे दोनों यादवकुमार गद और साम्ब प्रद्युम्नके साथ ही उस महलमें प्रविष्ट हुए ॥

प्रच्छन्नौ मायया वीरौ कार्ष्णिना मायिना नृप।
गान्धर्वेण विवाहेन तावप्यरिबलार्दनौ ॥ ४९ ॥
पाणिं जगृहतुर्वीरौ मन्त्रपूर्वं सतां प्रियौ।
चन्द्रवत्या गदः साम्बो गुणवत्या च केशविः ॥ ५० ॥

नरेश्वर! मायावी प्रद्युम्नने अपनी मायासे उन दोनों वीरोंको छिपाकर वहाँ उपस्थित किया था। शत्रुसेनाका संहार करनेवाले उन दोनों वीरोंने भी गान्धर्व विवाहकी विधिसे मन्त्रोच्चारणपूर्वक उन कन्याओंका पाणिग्रहण किया। वे दोनों ही सत्पुरुषोंके प्रिय थे। चन्द्रवतीके साथ गद और गुणवतीके साथ केशवकुमार साम्बका विवाह हुआ।४९-५०।

रेमिरेऽसुरकन्याभिर्वीरास्ते यदुपुङ्गवाः।
मार्गमाणास्त्वनुज्ञां ते शक्रकेशवयोस्तदा ॥ ५१ ॥

इस तरह वे तीनों यदुपुङ्गव वीर उन दिनों इन्द्र और श्रीकृष्णके आदेशकी प्रतीक्षा करते हुए उन असुरकन्याओंके साथ रमण करने लगे ॥ ५१ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि प्रभावतीपाणिग्रहणे चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें प्रभावतीका पाणिग्रहणविषयक चौरानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९४ ॥

पञ्चनवतितमोऽध्यायः

प्रद्युम्नका प्रभावतीसे वर्षाका वर्णन करते हुए उसे अपने कुलका परिचय देना

वैशम्पायन उवाच

नभो नभस्येऽथ निरीक्ष्य मासि
कामस्तदा तोयदवृन्दकीर्णम्।
प्रभावतीं चारुविशालनेत्रा-
मुवाच पूर्णेन्दुनिकाशवक्त्रः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाले प्रद्युम्नने भाद्रपद मासमें आकाशको मेघोंकी घटासे आच्छन्न हुआ देख उस समय मनोहर एवं विशाल नेत्रोंवाली प्रभावतीसे कहा—॥ १ ॥

तवाननाभो वरगात्रि चन्द्रो
न दृश्यते सुन्दरि चारुबिम्बः।
त्वत्केशपाशप्रतिमैर्निरुद्धो
बलाहकैश्चारुनिरन्तरोरु ॥ २ ॥

'मनोहर एवं परस्पर सटी हुई जाँघोंवाली वराङ्गी! सुन्दरि! इस समय सुन्दर बिम्बवाला चन्द्रमा, जो तुम्हारे मुखके समान मनोरम जान पड़ता था, नहीं दिखायी देता है। तुम्हारे इन केशपाशोंके समान काले बादलोंने उसे छिपा दिया है ॥ २ ॥

संदृश्यते सुभ्रु तडिद् घनस्था
त्वं हेमचार्वाभरणान्वितेव।
मुञ्चन्ति धाराश्च घना नदन्त-
स्त्वद्धारयष्टेः सदृशा वराङ्गि ॥ ३ ॥

'सुन्दर भौंहोंवाली सुन्दरी! यह जो मेघोंके अङ्कमें विद्युत् दिखायी देती है, वह सोनेके मनोहर आभूषणोंसे भूषित हुई तुम-जैसी ही प्रतीत होती है और ये गरजते हुए मेघ तुम्हारे मौक्तिक हारोंके समान जलकी स्वच्छ धाराएँ गिरा रहे हैं ॥ ३ ॥

घनप्रदेशेषु बलाकपङ्क्तय-
स्त्वद्दन्तपङ्क्तिप्रतिमा विभान्ति।
निमग्नपद्मानि सरित्सु सुभ्रु
न भान्ति तोयानि रयाकुलानि ॥ ४ ॥

'सुभ्रु! आकाशमें जहाँ बादल घिरे हुए हैं, उन प्रदेशोंमें बगुलोंकी पंक्तियाँ तुम्हारे दाँतोंकी श्रेणियोंके समान सुशोभित हो रही हैं। सरिताओंके जलोंमें कमलोंके समूह डूब गये हैं और वे जल महान् वेगसे व्याप्त हैं; अतः उनकी विशेष शोभा नहीं हो रही है ॥ ४ ॥

अमी घना वायुवशोपयाता
बलाकमालामलचारुदन्ताः ।
अन्योन्यमभ्याहनितुं प्रवृत्ता
वनेषु नागा इव शुक्लदन्ताः ॥ ५ ॥

'ये बादल वायुके अधीन हो रहे हैं। बगुलोंकी पंक्तियाँ उनके निर्मल एवं मनोहर दाँतोंके समान शोभा पाती हैं। ये वनोंमें सफेद दाँतवाले हाथियोंके समान एक-दूसरेसे टक्कर लेनेके लिये उद्यत हैं ॥ ५ ॥

धनुस्त्रिवर्णं वरगात्रि पश्य
कृतं तवापाङ्गमिवाननस्थम् ।
विभूषयन्तं गगनं घनाश्च
प्रहर्षणं कामिजनस्य कान्ते ॥ ६ ॥

'सुन्दर अङ्गोंवाली प्राणवल्लभे ! वह इन्द्र-धनुष देखो, जो तुम्हारे मुखमण्डलमें स्थित नेत्रोंके कोणभाग-सा तिरंगा बना हुआ है। वह आकाश और बादलोंकी शोभा बढ़ाता हुआ कामी जनोंको महान् हर्ष प्रदान करता है ॥ ६ ॥

घनान् नदन्तः प्रतिनर्दमानान्
निरीक्ष्य सुश्रोणि शिखीन् प्रहृष्टान् ।
समादृतानुद्धतपिच्छभारान्
प्रियाभिरामानुपनृत्यमानान् ॥ ७ ॥

'अपनी बोली बोलते हुए मोर बादलोंको गरजते देख अत्यन्त हर्षमें भरकर नृत्य-कलाके प्रति आदर-भाव रखते हुए पंखोंके भारोंको ऊपर उठाकर आस-पास ही नृत्य कर रहे हैं; इस अवस्थामें ये बहुत ही प्रिय एवं मनोहर प्रतीत होते हैं। तुम इनकी ओर दृष्टिपात करो ॥ ७ ॥

हर्म्येषु चान्ये शशिपाण्डुरेषु
राजन्ति सुश्रोणि मयूरसंघाः ।
मुहूर्तशोभामतिचारुरूपां
दत्त्वा पतन्तो वलभीपुटेषु ॥ ८ ॥

'सुश्रोणि ! चन्द्रमाके समान श्वेत वर्णवाली अट्टालिकाओं-पर बैठे हुए दूसरे मयूर-समुदाय वहाँ दो घड़ीके लिये अत्यन्त मनोहर शोभा प्रदान करके छज्जोंपर उड़ते हुए बड़ी शोभा पा रहे हैं ॥ ८ ॥

प्रक्लिन्नपक्षास्तरुमस्तकेषु
मुहूर्तचूडामणितां विधाय ।
प्रयान्ति भूमिं नवशाद्वलाना-
माशङ्कमाना धृतचारुदेहाः ॥ ९ ॥

'मनोहर देह धारण करनेवाले मोर वृक्षोंकी सर्वोच्च शिखाओंपर बैठे हैं। उनकी पाँखें भींग गयी हैं और वे दो घड़ीके लिये उन वृक्षोंके सिरोंपर चूड़ामणिकी-सी शोभाकी सृष्टि करके नयी-नयी घासोंसे ढकी हुई भूमिपर जा रहे हैं। उनके मनमें यह शङ्का है कि ये घासें भूमिसे भिन्न हैं या अभिन्न ॥ ९ ॥

प्रवाति धारान्तरनिःसृतश्च
सुखोऽनिलश्चन्दनपङ्कशीतः ।
कदम्बसर्जार्जुनपुष्पभूतं
समावहन् गन्धमनङ्गबन्धुम् ॥ १० ॥

'जलकी धाराओंके बीचसे निकलकर सुखदायिनी हवा चल रही है, जो चन्दनपङ्कके समान शीतल प्रतीत होती है। यह कदम्ब, सर्ज और अर्जुनके फूलोंकी सुगन्ध लिये आ रही है। वह सुगन्ध कामोद्दीपनमें सहायक हो रही है ॥ १० ॥

रतिश्रमस्वेदविनाशहेतु-
र्नवोदभारानयने च हेतुः ।
न मारुतः स्याद् यदि चारुगात्रि
न मेघकालो मम वल्लभः स्यात् ॥ ११ ॥

'मनोहर अङ्गोंवाली प्रिये ! यदि इस समय रतिके श्रमसे प्रकट होनेवाले पसीनोंको मिटाने और नूतन जलके भारको खींच लानेमें सहायक यह वायु न चलती होती तो यह वर्षाकाल मुझे अधिक प्यारा न लगता ॥ ११ ॥

एवंविधेषु प्रियसङ्गमेषु
रतावसाने यदुपैति वायुः ।
रतिश्रमस्वेदहरः सुगन्धी
ततः परं किं सुखमस्ति लोके ॥ १२ ॥

'जब इस प्रकार प्रियजनोंके समागम प्राप्त हों, उस अवसरपर रतिक्रीड़ाके अन्तमें जो रतिश्रमजनित स्वेदबिन्दुओं-को हर लेनेवाली सुगन्धित वायु अपने पास आती है, उससे बढ़कर सुख इस संसारमें दूसरा कौन है ? ॥ १२ ॥

जलाप्लुतानीक्ष्य महानदीनां
सुगात्रि हंसाः पुलिनानि हृष्टाः ।
गताः श्रमं मानसवासलुब्धाः
ससारसाः क्रौञ्चगणानुविद्धाः ॥ १३ ॥

'सुन्दर अङ्गवाली प्राणवल्लभे ! बड़ी-बड़ी नदियोंके तटोंको जलमें निमग्न देख सारस और क्रौञ्चोंसहित हंस मानसरोवरमें निवासके लिये लुब्ध हो बड़े हर्षके साथ वहाँ-तक जानेका परिश्रम स्वीकार करते हैं ॥ १३ ॥

न भान्ति नद्यो न सरांसि चैव
हतत्विषीवायतचारुनेत्रे ।
गतेषु हंसेष्वथ सारसेषु
रथाङ्गतुल्याह्वयनेषु चैव ॥ १४ ॥

'विशाल एवं मनोहर नेत्रवाली प्रिये ! हंसों, सारसों और चक्रवाकोंके चले जानेपर नदी और तालाब श्रीहीन-से प्रतीत होते हैं। उनके बिना न तो नदियाँ अच्छी लगती हैं और न सरोवर ही ॥ १४ ॥

भोगैकदेशेन शुभं शयानं
ध्रुवं जगन्नाथमुपेन्द्रमीशम् ।
निद्राभ्युपेता वरकालतज्ज्ञा
श्रियं प्रणम्योत्तरचारुरूपाम् ॥ १५ ॥

'श्रेष्ठ वर्षाकाल और उसमें शयन करनेवाले भगवान् विष्णुको जाननेवाली योग-निद्रा निश्चय ही लोकोत्तर मनोहर रूप धारण करनेवाली श्रीदेवीको प्रणाम करके शेषके शरीरके एक देशमें सोये हुए मङ्गलमय ईश्वर जगन्नाथ उपेन्द्रके निकट आयी है ॥ १५ ॥

निद्रायमाणे भगवत्युपेन्द्रे
मेघाम्बराक्रान्तनिशाकरोऽद्य ।
पद्मामलाभः कमलायताक्षि
कृष्णस्य वक्त्रानुकृतिं करोति ॥ १६ ॥

'प्रफुल्ल कमलके समान विशाल नेत्रोंवाली प्रियतमे ! भगवान् उपेन्द्रके योगनिद्राको स्वीकार कर लेनेपर श्वेत कमलके समान अमल कान्तिवाले चन्द्रमा अब मेघरूपी अम्बर (वस्त्र) से आच्छादित हो भगवान् श्रीकृष्णके मुखका अनुकरण कर रहे हैं ॥ १६ ॥

कदम्बनीपार्जुनकेतकानां
स्रजो ध्रुवं कृष्णमुपानयन्ति ।
पुष्पाणि चान्यान्यृतवः समस्ताः
कृष्णात् प्रसादानभिकाङ्क्षमाणाः ॥१७॥

'सारी ऋतुएँ भगवान् श्रीकृष्णसे कृपाप्रसाद पानेकी अभिलाषा रखकर निश्चय ही उनकी सेवामें कदम्ब, नीप, अर्जुन और केवड़ोंके गजरे तथा दूसरे-दूसरे पुष्प ले आती हैं ॥ १७ ॥

नागाश्चरन्तो विषदिग्धवक्त्राः
स्पृशन्ति पुष्पाण्यपि पादपान्यान् ।
पेपीयमानान् भ्रमरैर्जनानां
कौतूहलं ते जनयन्त्यतीव ॥ १८ ॥

'जिन सुकुमारतर वृक्षों एवं फूलोंके रस भ्रमर बारंबार पीते हैं, उन्हें विषपूर्ण मुखवाले सर्प स्वच्छन्द विचरते हुए जब छू देते हैं, तब उनके स्पर्शमात्रसे वे कुम्हला जाते हैं। इस प्रकार वे लोगोंको अत्यन्त आश्चर्यमें डाल रहे हैं ॥१८॥

तोयातिभाराम्बुदवृन्दनद्धं
नभः पतिष्यन्तमिवाभिवीक्ष्य ।
निपानगम्भीरमभिन्नवृष्टं
मनोहरं चारुमुखस्तनोरु ॥ १९ ॥

'निपान-सदृश गम्भीर आकाशको जलके भारी भारसे युक्त मेघोंकी घटाद्वारा बँधकर गिरता हुआ-सा देख तुम्हारे मनोहर एवं सुन्दर मुख, स्तन और ऊरु कामोद्रेकवश पसीनेसे भर गये हैं ॥ १९ ॥

बलाकमालाकुलमाल्यदाम्ना
निरीक्ष रम्यं घनवृन्दमेतत् ।
सस्यानि भूमावभिवर्षमाणं
जगद्धितार्थं विमलाङ्गयष्टे ॥ २० ॥

'निर्मल अङ्गयष्टिवाली सुन्दरी ! जो बगुलोंकी पाँतसे परिपूर्ण होकर मानो श्वेत पुष्पहारसे अलंकृत हुआ है, उस रमणीय मेघसमूहकी ओर तो देखो; यह जगत्के हितके लिये पृथ्वीपर मानो अन्नकी वर्षा करता है ॥ २० ॥

जलावलम्बाम्बुदवृन्दकर्षी
घनैर्घनान् योधयतीव वायुः ।
प्रवृत्तचक्रो नृपतिर्वनस्थान्
गजान् गजैः स्वैरिव वीर्यदृप्तान् ॥ २१ ॥

'पानीके आधारभूत मेघसमूहोंको अपने साथ खींच लानेवाला पावससमीर बादलोंसे बादलोंको लड़ाता-सा जान पड़ता है; मानो कोई चक्रवर्ती नरेश बलके मदसे उन्मत्त हुए जंगली हाथियोंको अपने गजराजोंके साथ लड़ा रहा हो ॥२१॥

अभौममम्भो विसृजन्ति मेघाः
पूतं पवित्रं पवनैः सुगन्धि ।
हर्षावहं चातकबर्हिणानां
वराण्डजानां जलदप्रियाणाम् ॥ २२ ॥

'ये मेघ शुद्ध, पवित्र और सुगन्धित वायुसे सुवासित उस दिव्य जलकी वर्षा करते हैं, जो मेघोंके प्रेमी चातक और मोर आदि श्रेष्ठ पक्षियोंको हर्ष प्रदान करता है ॥२२॥

प्लवंगमः षोडशपक्षशायी
विरौति गोष्ठः सह कामिनीभिः ।
ऋचो द्विजातिः प्रियसत्यधर्मा
यथा सुशिष्यैः परिवार्यमाणः ॥ २३ ॥

'जो बरसातके पहले सोलह पक्षों (आठ महीनों) तक कहीं बिलमें शयन करता रहता है, वही मेढक बरसातके आठ पक्षोंमें गोष्ठ (गोसमुदाय) की भाँति अपनी स्त्रियोंके साथ आर्तनाद-सा करता है; मानो सत्य और धर्मसे प्रेम रखनेवाला कोई विद्वान् ब्राह्मण अपने अच्छे शिष्योंसे घिरकर वेदकी ऋचाओंका पाठ कर रहा हो ॥ २३ ॥

गुणो महांस्तोयदकालजोऽय-
मबुद्धमेघस्वनभीषितानाम् ।
परिष्वजन्तः परिवर्द्धयन्ति
विनापि शय्यासमयं प्रियाणाम् ॥ २४ ॥

'वर्षाकालका यह एक महान् गुण है कि अज्ञात मेघ-

---

१. कुएँके आसपास पशुओंकेपानी पीनेके लिये जो छोटा-सा जलकुण्ड बनाया जाता है, उसे 'निपान' कहते हैं ।

गर्जनाको सहसा सुनकर भयभीत हुई प्रियतमाओंको प्रेमी पुरुष हृदयसे लगाकर शयनकालके बिना भी उनकी कामवासनाओंको बढ़ा देते हैं ॥ २४ ॥

दोषोऽयमेकः सलिलागमस्य
मां प्रत्युदारान्वयवर्णशीले ।
न दृश्यते यत् तव वक्त्रतुल्यो
घनग्रहग्रस्ततनुः शशाङ्कः ॥ २५ ॥

'उत्तम वंश, सुन्दर वर्ण और अच्छे स्वभाववाली प्रिये ! मुझे अपने लिये वर्षाकालका यही एक दोष प्रतीत होता है कि तुम्हारे मुखके समान शोभा पानेवाला चन्द्रमा मेघरूपी ग्रहसे ग्रस्त होकर (मेघोंकी घटाओंमें छिपकर) दिखायी नहीं देता है ॥ २५ ॥

प्रदृश्यते भीरु यदा शशाङ्को
घनान्तरस्थो जगतः प्रदीपः ।
तदानुपश्यन्ति जनाः प्रहृष्टा
बन्धुं प्रवासादिव संनिवृत्तम् ॥ २६ ॥

'भीरु ! जब जगत्को प्रकाशित करनेवाला चन्द्रमा मेघोंके भीतर दीख जाता है, तब सब लोग परदेशसे लौटे हुए प्रेमी बन्धुकी भाँति उसे बड़े हर्षमें भरकर बारंबार देखने लगते हैं ॥ २६ ॥

विलापसाक्षी प्रियहीनितानां
संदृश्यते भीरु यदा शशाङ्कः ।
नेत्रोत्सवः प्रोषितकामुकानां
दृष्ट्वैव कान्तं भवतीत्यवैमि ॥ २७ ॥

'भीरु ! प्रियवियोगिनी वनिताओंके विलापका साक्षीभूत चन्द्रमा जब दृष्टिगोचर होता है, तब जिनके पति परदेशमें रहकर लौटे हैं, उन कामिनियोंके नेत्रोंमें अपने प्रियतमका दर्शन करके ही आनन्दोत्सव प्रतीत होता है, ऐसा मैं समझता हूँ ॥ २७ ॥

नेत्रोत्सवः कान्तसमागतानां
दावाग्नितुल्यः प्रियहीनितानाम् ।
तेनैव देहेन वराङ्गनानां
चन्द्रोऽपि तावत्प्रियविप्रियश्च ॥ २८ ॥

'यह नेत्रोत्सव उन्हींको प्रतीत होता है, जिन्हें अपने प्रियतमका संयोग प्राप्त है; प्रियवियोगिनी अबलाओंके लिये तो यह चन्द्रमा दावाग्निके तुल्य दाहक प्रतीत होता है । इस प्रकार चन्द्रमा आह्लादक होनेपर भी संयोग और वियोग-अवस्थाके भेदसे अपने उसी शरीरद्वारा श्रेष्ठ नारियोंको प्रिय और अप्रिय प्रतीत होता है ॥ २८ ॥

विनापि चन्द्रेण पुरे पितुस्ते
यतः प्रभा चन्द्रमसोऽतिगौरी ।
गुणागुणांश्चन्द्रमसो न वेद्मि
यतस्ततोऽहं प्रशशंसयिष्ये ॥ २९ ॥

'प्रिये ! तुम्हारे पिताके इस नगरमें तो चन्द्रमाके बिना भी चन्द्रकिरणोंके समान गौर प्रकाश छाया रहता है । अतः मुझे यहाँ चन्द्रमाके होने और न होनेके गुण-अवगुणका पता नहीं लगता; इसलिये मैं बारंबार इस बातकी चर्चा करूँगा ॥ २९ ॥

अवाप यो ब्राह्मणराज्यमीड्यो
दुरापमन्यैः सुकृतैस्तपोभिः ।
गायन्ति विप्राः पवमानसंज्ञं
समागताः पर्वणि चाप्युदारम् ॥ ३० ॥
पिता बुधस्योत्तरवीर्यकर्मा
पुरूरवा यस्य सुतो नृदेवः ।
प्राणाग्निरीड्योऽग्निमजीजनद् यो
नष्टं शमीगर्भभवं भवात्मा ॥ ३१ ॥

'जो दूसरे लोगोंके लिये पुण्य और तपस्यासे भी दुर्लभ है, उस ब्राह्मणराज्यको जिन्होंने अनायास ही प्राप्त कर लिया, जो स्तवन करनेके योग्य हैं, यज्ञमें एकत्र हुए ब्राह्मण पवमान नामवाले जिन उदार सोमदेवके गुण गाते हैं, वे उन बुधके पिता हैं, जिनके पुत्र लोकोत्तर बल और पराक्रमसे सम्पन्न राजा पुरूरवा हैं । वे प्राणाग्निस्वरूप और स्तुति करनेके योग्य हैं, (ओषधियों और वनस्पतियोंके स्वामी होनेके कारण) उन्होंने नष्ट हुई अग्निको अश्वत्थके उत्पादनद्वारा शमीके गर्भसे प्रकट किया । वे रुद्रस्वरूप हैं ॥ ३०-३१ ॥

तथैव पश्चाच्चकमे महात्मा
पुरोर्वशीमप्सरसां वरिष्ठाम् ।
पीतः पुरा योऽमृतसर्वदेहो
मुनिप्रवीरैर्वरगात्रि घोरैः ॥ ३२ ॥

'सुन्दर अङ्गोंवाली प्रिये ! तत्पश्चात् इन महात्मा चन्द्रदेवने पूर्वकालमें अप्सराओंमें श्रेष्ठ उर्वशीकी (पुरूरवारूपसे) कामना की थी । उनका सारा शरीर ही अमृतमय है । पहले कभी घोर स्वभाववाले श्रेष्ठ मुनियोंने उन अमृतमय चन्द्रमाको पी लिया था ॥ ३२ ॥

नृपः कुशाग्रैः पुनरेव यश्च
धीमानतोऽग्निर्दिवि पूज्यते च ।
आयुश्च वंशे नहुषश्च यस्य
यो देवराजत्वमवाप वीरः ॥ ३३ ॥

'उन्हींके वंशज बुद्धिमान् राजा पुरूरवा हुए, जो कुशाग्रोंद्वारा आरम्भ करके अनेकानेक यज्ञोंका सम्पादन कर स्वर्गमें अग्नितुल्य तेजस्वी रूपसे प्रतिष्ठित हो पूजित होते हैं । पुरूरवाके वंशमें आयु हुए, जिनके पुत्र नहुष थे । उन वीर नहुषने देवराजपद प्राप्त कर लिया था ॥ ३३ ॥

देवातिदेवो भगवान् प्रसूतो
वंशे हरिर्यत्र जगत्प्रणेता।
भैमः प्रवीरः सुरकार्यहेतो-
र्यैः सुभ्रु दक्षस्य वृतः सुताभिः ॥ ३४ ॥

'देवताओंके लिये भी उत्कृष्ट देवता, जगत्स्रष्टा भगवान् श्रीहरि देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये चन्द्रमाके ही वंशमें प्रमुख भीमवंशी वीरके रूपमें प्रकट हुए हैं। सुभ्रु! उन चन्द्रमाको नक्षत्रस्वरूपा दक्षकी कन्याओंने पतिरूपसे वरण किया है ॥ ३४ ॥

बभूव राजाथ वसुश्च यस्य
वंशे महात्मा शशिवंशदीपः।
यश्चक्रवर्तित्वमवाप वीरः
स्वैः कर्मभिः शक्रसमप्रभावः ॥ ३५ ॥

'चन्द्रमाके ही वंशमें शशिकुल-दीपक वीर एवं महात्मा राजा उपरिचर वसु हुए हैं, जो अपने कर्मोंसे चक्रवर्तीपदको प्राप्त हुए। उनका प्रभाव इन्द्रके समान था ॥ ३५ ॥

यदुश्च राजा शशिवंशमुख्यो
योऽवाप मह्यामधिराजभावम्।
भोजाः कुले यस्य नराधिपस्य
वीराः प्रसूताः सुरराजतुल्याः ॥ ३६ ॥

'चन्द्रवंशके प्रधान पुरुष राजा यदु हो गये हैं, जो इस पृथ्वीपर राजाधिराज पदको प्राप्त हुए थे। उन्हीं महाराजके कुलमें देवराज इन्द्रके तुल्य पराक्रमी भोजवंशी वीर प्रकट हुए हैं ॥ ३६ ॥

न कूटकृद् यस्य नृपोऽस्ति वंशे
न नास्तिको नैष्कृतिकोऽपि वाथ।
अश्रद्दधानोऽप्यथवा कदर्यः
शौर्येण वा वारिरुहाक्षि हीनः ॥ ३७ ॥

'कमललोचने ! यदुकुलमें कोई राजा ऐसा नहीं हुआ है, जो छल-कपटसे काम लेनेवाला हो। उस कुलमें न तो कोई नास्तिक हुआ है न शठ, न श्रद्धाहीन हुआ है न कदर्य अथवा शौर्यहीन ही ॥ ३७ ॥

वंशे वधूस्त्वं कमलायताक्षि
श्लाघ्या गुणानामतिपात्रभूता।
कुरु प्रणामं शिखराग्रदन्ति
तस्य त्वमीशस्य सतां प्रियस्य ॥ ३८ ॥

'कमलके समान विशाल नेत्र और शिखरमणिके तुल्य सुन्दर दाँतोंवाली सुन्दरी ! तुम उसी चन्द्रवंश एवं यदुवंशकी वधू हो। तुम सद्गुणोंका अत्यन्त पात्र एवं स्पृहणीय हो। तुम सत्पुरुषोंके प्रिय जगदीश्वर श्रीहरिको प्रणाम करो ॥ ३८ ॥

नारायणायात्मभवायनाय
लोकायनाय त्रिदशायनाय।
खगेन्द्रकेतोः पुरुषोत्तमाय
कुरु प्रणामं श्वशुराय देवि ॥ ३९ ॥

'देवि ! जो स्वयम्भू ब्रह्माजीके आश्रयस्थान हैं, सम्पूर्ण जगत् तथा देवताओंके भी आधार हैं, वे गरुडध्वज पुरुषोत्तम भगवान् नारायण तुम्हारे श्वशुर हैं। तुम उन्हें प्रणाम करो' ॥ ३९ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि प्रद्युम्नभाषणे पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें प्रद्युम्नका भाषणविषयक पञ्चानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९५ ॥

षण्णवतितमोऽध्यायः

कश्यपके मना करनेपर भी वज्रनाभका त्रिलोकविजयके लिये प्रस्थान, श्रीकृष्ण और इन्द्रका प्रद्युम्नको संदेश देना और उनकी संततिके प्रभावका उल्लेख करना, दैत्योंका प्रद्युम्न आदिके पुत्रोंको वंदी बनाना, प्रभावती आदिका पतियोंको तलवार देकर युद्धके लिये भेजना, इन्द्रके द्वारा उनकी सहायता तथा प्रद्युम्नका अद्भुत पराक्रम

वैशम्पायन उवाच

सत्रावसाने च मुनेः कश्यपस्यातितेजसः।
जग्मुर्देवासुराः स्वानि स्थानान्यमितविक्रमाः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! अत्यन्त तेजस्वी कश्यप मुनिका यज्ञ समाप्त होनेपर अमित पराक्रमी देवता और असुर अपने-अपने स्थानको गये ॥ १ ॥

वज्रनाभोऽपि निर्वृत्ते सत्रे कश्यपमभ्यगात्।
त्रैलोक्यविजयाकाङ्क्षी तमुवाचाथ कश्यपः ॥ २ ॥

यज्ञ पूर्ण होनेपर वज्रनाभ भी त्रिभुवन-विजयकी अभिलाषा लेकर कश्यपजीके पास गया। तब कश्यपजीने उससे कहा— ॥ २ ॥

वज्रनाभ निबोध त्वं श्रोतव्यं यदि चेन्मम।
वस पुत्र स्वजनेन समावृतः ॥ ३ ॥

'बेटा वज्रनाभ ! यदि मेरी बात सुनने और माननेयोग्य हो तो ध्यान देकर सुनो । तुम अपने स्वजनोंसे घिरे रहकर वज्रपुरमें ही निवास करो ॥ ३ ॥

तपसाभ्यधिकः शक्रः शक्तश्चैव स्वभावतः ।
ब्रह्मण्यश्च कृतज्ञश्च ज्येष्ठः श्रेष्ठतमो गुणैः ॥ ४ ॥

'इन्द्र तपस्यामें तुमसे बढ़े-चढ़े हैं । स्वभावसे ही शक्तिशाली हैं । ब्राह्मणभक्त, कृतज्ञ, भाइयोंमें ज्येष्ठ और उत्तम गुणोंकी दृष्टिसे श्रेष्ठतम हैं ॥ ४ ॥

राजा कृत्स्नस्य जगतः पात्रभूतः सतां गतिः ।
सम्प्राप्तो लोकराज्यं स सर्वभूतहिते रतः ॥ ५ ॥

'वे सम्पूर्ण जगत्के राजा, सुपात्र और सत्पुरुषोंके आश्रय हैं तथा तीनों लोकोंका राज्य पाकर समस्त प्राणियोंके हितमें तत्पर रहते हैं ॥ ५ ॥

नैव शक्यस्त्वया जेतुं वज्रनाभ विहन्यसे ।
अहिं पदा व्युत्क्रमन् वै नचिराद् विनशिष्यसि ॥ ६ ॥

'वज्रनाभ ! तुम उन्हें जीत नहीं सकते । जीतनेके प्रयत्नमें स्वयं ही मारे जाओगे । साँपको पैरोंसे ठुकरानेवालेकी भाँति शीघ्र ही नष्ट हो जाओगे' ॥ ६ ॥

वज्रनाभश्च तद्वाक्यं नाभिनन्दति भारत ।
कालपाशपरीताङ्गो मर्तुकाम इवौषधम् ॥ ७ ॥

भारत ! वज्रनाभका सारा शरीर कालके पाशसे बँधा हुआ था । जैसे मरनेवाले रोगीको दवा अच्छी नहीं लगती, उसी प्रकार उसे कश्यपजीकी बात पसंद नहीं आयी ॥ ७ ॥

अभिवाद्य स दुर्बुद्धिः कश्यपं लोकभावनम् ।
त्रैलोक्यविजयारम्भे मतिं चक्रे दुरासदः ॥ ८ ॥

अत्यन्त खोटी बुद्धिवाले उस दुर्जय असुरने लोकस्रष्टा कश्यपजीको प्रणाम करके त्रिभुवन-विजयका कार्य आरम्भ करनेका विचार किया ॥ ८ ॥

ज्ञातियोधान् समानीय मित्राणि सुबहूनि च ।
प्रतस्थे स्वर्गमेवाग्रे विजिगीषन् विशाम्पते ॥ ९ ॥

प्रजानाथ ! सजातीय बन्धुओं तथा बहुत-से मित्रोंको ही योद्धाओंके रूपमें साथ लेकर उसने विजयकी इच्छासे पहले स्वर्गलोकको प्रस्थान किया ॥ ९ ॥

एतस्मिन्नन्तरे देवौ कृष्णेन्द्रौ च महाबलौ ।
प्रेषयामासतुर्हंसान् वज्रनाभवधं प्रति ॥ १० ॥

इसी बीचमें महाबली श्रीकृष्ण और इन्द्र दोनों देवताओंने वज्रनाभ-वधके लिये संदेश देकर हंसोंको भेजा ॥ १० ॥

समागतास्तु तच्छ्रुत्वा यदुमुख्या महाबलाः ।
मन्त्रयित्वा महात्मानश्चिन्तामापेदिरे तथा ॥ ११ ॥

वज्रपुरमें एकत्र हुए महाबली महामनस्वी प्रमुख यादव वीर हंसोंके मुखसे वह संदेश सुनकर आपसमें सलाह करके इस प्रकार विचार करने लगे ॥ ११ ॥

वज्रनाभोऽद्य हन्तव्यः प्रद्युम्नेनेत्यसंशयम् ।
तयोर्दुहितरो भार्या भक्त्या नः सर्वभावनाः ॥ १२ ॥
सर्वाः सगर्भास्ताश्चैव किं नु कार्यमनन्तरम् ।
प्राप्तः प्रसवकालश्च तासां नातिचिरादिव ॥ १३ ॥

इसमें संदेह नहीं कि आज प्रद्युम्नके द्वारा वज्रनाभका वध अवश्य होना चाहिये । परंतु वज्रनाभ और उसके भाई दोनोंकी कन्याएँ भक्तिपूर्वक हमलोगोंकी भार्याएँ हो गयी हैं । वे सब-की-सब हर तरहसे हमारा शुभचिन्तन करती हैं । इस समय वे तीनों दानव-कन्याएँ गर्भवती हैं; अतः अब हमें क्या करना चाहिये ? उन तीनोंका प्रसव-काल शीघ्र ही आनेवाला है ॥ १२-१३ ॥

सम्मन्त्रयित्वैतदर्थं हंसानूचुर्महाबलाः ।
आख्येयमर्थवत् कृत्स्नं शक्रकेशवयोस्तदा ॥ १४ ॥

इस विषयमें भलीभाँति परस्पर विचार करके उन महाबली यादवोंने उस समय हंसोंसे कहा—'तुम्हें भगवान् श्रीकृष्ण और इन्द्रके पास जाकर यहाँकी प्रयोजनयुक्त सारी बातें कहनी चाहिये' ॥ १४ ॥

हंसैर्गत्वा तदाख्यातं देवयोस्तद् यथातथम् ।
ताभ्यां हंसास्तु संदिष्टा न भेतव्यमिति प्रभो ॥ १५ ॥
उत्पत्स्यन्ति गुणैः श्लाघ्याः पुत्रा वः कामरूपिणः ।
गर्भस्थाः सर्ववेदांश्च साङ्गान् वेत्स्यन्त्यनिन्दिताः ॥ १६ ॥

प्रभो ! तब हंसोंने वहाँ जाकर उन दोनों देवताओंसे वहाँकी सारी बातें यथार्थरूपसे कह सुनायीं । फिर उन दोनोंने हंसोंको यह संदेश दिया कि 'यादवो ! तुम्हें भयभीत नहीं होना चाहिये । तुम्हारे उन स्त्रियोंके गर्भसे इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले पुत्र उत्पन्न होंगे; जो अपने उत्तम गुणोंके कारण स्पृहणीय होंगे । वे उत्तम पुत्र गर्भमें रहते समय ही अङ्गोंसहित सम्पूर्ण वेदोंका ज्ञान प्राप्त कर लेंगे ॥

तथा चानागतं सर्वमस्त्राणि विविधानि च ।
सद्य एव युवानश्च भविष्यन्ति सुपण्डिताः ॥ १७ ॥

'इसी प्रकार उन्हें नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रों तथा भविष्यमें होनेवाली सारी बातोंका स्वतः ज्ञान हो जायगा । वे जन्म लेनेपर तत्काल ही तरुण एवं अच्छे पण्डित हो जायँगे' ॥ १७ ॥

एवमुक्ता गता हंसाः पुनर्वज्रपुरं विभो ।
शशंसुश्चैव भैमानां शक्रकेशवभाषितम् ॥ १८ ॥

प्रभो ! उनके ऐसा कहनेपर वे हंस पुनः वज्रपुरको गये । वहाँ उन्होंने यादवकुमारोंसे देवराज इन्द्र और श्रीकृष्णका संदेश कह सुनाया ॥ १८ ॥

प्रभावती तदा पुत्रं सुषुवे सदृशं पितुः।
सद्यो यौवनसम्प्राप्तं सर्वज्ञत्वं च भारत ॥ १९ ॥

उस समय प्रभावतीने एक पुत्रको जन्म दिया, जो अपने पिताके समान ही सर्वगुणसम्पन्न था। भारत! वह तत्काल युवावस्थाको प्राप्त हो गया तथा उसमें सर्वज्ञता भी थी ॥

मासमात्रेण सुषुवे देवी चन्द्रवती नृप।
चन्द्रप्रभमिति ख्यातं तनयं सदृशं पितुः ॥ २० ॥

नरेश्वर! उसके एक मासके बाद चन्द्रवती देवीने भी एक पुत्र उत्पन्न किया, जो अपने पिताके समान ही सुन्दर एवं शक्तिशाली था। उसका नाम चन्द्रप्रभ था ॥ २० ॥

सद्यश्च यौवनं प्राप्तं सर्वज्ञत्वं च भारत।
गुणवत्यपि पुत्रं च गुणवन्तमनिन्दिता ॥ २१ ॥
युवानावथ सद्यस्तौ सर्वशास्त्रार्थकोविदौ।
इन्द्रोपेन्द्रप्रसादेन संवृत्तौ युद्धवर्द्धनौ ॥ २२ ॥

भारत! वह भी तत्काल युवावस्थाको प्राप्त हो गया और उसमें भी सर्वज्ञता थी। तत्पश्चात् साध्वी गुणवतीने भी एक गुणवान् पुत्रको जन्म दिया। वे दोनों बालक तत्काल युवावस्थासे सम्पन्न और सम्पूर्ण शास्त्रोंके मर्मज्ञ हो गये। वे दोनों युद्धमें आगे बढ़नेवाले थे। इन्द्र और उपेन्द्रके प्रसादसे उन बालकोंमें ये सद्गुण आये थे ॥ २१-२२ ॥

हर्म्यपृष्ठे वर्द्धमाना दृष्टास्ते यदुनन्दनाः।
इन्द्रोपेन्द्रेच्छया वीर नान्यथेत्यवधार्यताम् ॥ २३ ॥

वीर! एक दिन अट्टालिकाकी छतपर घूमते हुए उन वृद्धिशील यादवकुमारोंको दानवोंने देख लिया। इन्द्र और उपेन्द्रकी इच्छासे ही ऐसा हुआ था, अन्यथा नहीं। इस बातको तुम निश्चितरूपसे जान लो ॥ २३ ॥

निवेदिताश्च सम्भ्रान्तैर्दैत्यैराकाशरक्षिभिः।
वज्रनाभाय वीराय त्रिविष्टपजयैषिणे ॥ २४ ॥

उस समय आकाशकी ओरसे नगरकी रक्षा करनेवाले दैत्योंने बड़ी घबराहटमें पड़कर स्वर्गविजयकी इच्छा रखनेवाले वीर वज्रनाभसे उन बालकोंके विषयमें निवेदन किया ॥

वधाय सर्वे गृह्यन्तां ममैते गृहधर्षकाः।
इत्युवाचासुरपतिर्वज्रनाभो महासुरः ॥ २५ ॥

यह सुनकर असुरोंके स्वामी महान् असुर वज्रनाभने कहा—'ये बालक मेरे घरको कलङ्कित करनेवाले हैं। इन सबको मार डालनेके लिये कैद कर लो' ॥ २५ ॥

ततः सैन्यं समाज्ञप्तमसुरेन्द्रेण धीमता।
आवारयामास दिशः सर्वाः कुरुकुलोद्वह ॥ २६ ॥
गृह्यन्तामाशु वध्यन्तामिति वाचस्ततस्ततः।
उच्चेरुरसुरेन्द्रस्य शासनादरिशासिनः ॥ २७ ॥

कुरुकुलतिलक जनमेजय! तदनन्तर बुद्धिमान् असुरराजकी आज्ञासे असुरोंकी सेनाने सम्पूर्ण दिशाओंकी ओरसे आकर उस नगरको घेर लिया। सब ओर इधर-उधर यही बात सुनायी देने लगी—'पकड़ लो, शीघ्र मार डालो।' शत्रुओंको दण्ड देनेवाले असुरराजके आदेशसे समस्त सैनिक ऐसी ही बातें बोल रहे थे ॥ २६-२७ ॥

तच्छ्रुत्वा व्यथितास्तेषां मातरः पुत्रवत्सलाः।
रुरुदुस्ता रुदन्तीश्च प्रद्युम्नः प्रहसन् ब्रवीत् ॥ २८ ॥

ये बातें सुनकर उन बालकोंकी पुत्रवत्सला माताएँ शोकसे व्यथित होकर रोने लगीं। उस समय उन रोती हुई देवियोंसे प्रद्युम्नने हँसते हुए कहा—॥ २८ ॥

मा भैष्ट जीवमानेषु स्थितेष्वस्मासु सर्वथा।
किं नो दैत्याः करिष्यन्ति सर्वथा भद्रमस्तु वः ॥ २९ ॥

'दानवकन्याओ! तुम डरो मत। तुम्हारा सर्वथा भला हो। जब हम सब प्रकारसे जीते-जागते यहाँ खड़े हैं, तब ये दैत्य हमारा क्या कर लेंगे' ॥ २९ ॥

प्रभावतीमथोवाच प्रद्युम्नो विप्लवां स्थिताम्।
पिता तव गदापाणिः पितृव्याश्च स्थितास्तत्र ॥ ३० ॥
भ्रातरश्चैव ते देवि ज्ञातयश्च तथापरे।
एते पूज्याश्च मान्याश्च तवार्थे खलु सर्वथा ॥ ३१ ॥

इसके बाद प्रद्युम्नने व्याकुल होकर खड़ी हुई प्रभावतीसे कहा—'देवि! तुम्हारे पिता और चाचा हाथमें गदा लेकर खड़े हैं। तुम्हारे भाई और दूसरे कुटुम्बीजन भी युद्धके लिये उपस्थित हैं। ये सब-के-सब तुम्हारे नाते सर्वथा मेरे पूजनीय एवं आदरणीय हैं ॥ ३०-३१ ॥

भगिन्यौ पृच्छ भद्रं ते कालोऽयं खलु दारुणः।
मरणं सहमानानां युद्ध्यतां विजयो ध्रुवम् ॥ ३२ ॥

'तुम्हारा कल्याण हो। तुम अपनी दोनों बहनोंसे भी पूछ लो। यह समय बड़ा भयंकर है। जो मरणका कष्ट सहकर युद्ध करते हैं, उनकी विजय अवश्य होती है ॥ ३२ ॥

दानवेन्द्रादयो ह्येते योत्स्यन्तेऽस्मद्वधैषिणः।
किमत्र कार्यमस्माभिः सर्वैश्चकान्तरस्थितैः ॥ ३३ ॥

'ये दानवराज वज्रनाभ आदि हमारे वधकी इच्छासे युद्ध करेंगे। ऐसी दशामें हमलोगोंको क्या करना चाहिये? हम सब लोग तुम्हारी आज्ञाके अधीन हैं' ॥ ३३ ॥

प्रभावती रुदन्ती तु प्रद्युम्नमिदमब्रवीत्।
शिरस्यञ्जलिमाधाय जानुभ्यां पतिता क्षितौ ॥ ३४ ॥

उस समय प्रभावती रोती हुई घुटनोंके बल पृथ्वीपर गिर पड़ी और मस्तकपर अञ्जलि बाँधकर प्रद्युम्नसे इस प्रकार बोली—॥ ३४ ॥

गृहाण शस्त्रमात्मानं रक्ष शत्रुनिबर्हण।
जीवन् पुत्रांश्च दारांश्च द्रक्ष्यसि यदुनन्दन ॥ ३५ ॥

आर्या नृवर वैदर्भीमनिरुद्धं च मानद।
स्मृत्वैतन्मोक्षयात्मानं व्यसनादरिमर्दन ॥ ३६ ॥

'शत्रुओंका संहार करनेवाले यदुनन्दन ! शस्त्र उठाओ और अपनी रक्षा करो । नरश्रेष्ठ ! मानद ! यदि जीवित रहोगे तो पुत्रों और पत्नियोंको देखोगे। आर्या रुक्मिणी तथा पुत्र अनिरुद्धसे भी मिल सकोगे । शत्रुमर्दन ! यह सब सोचकर अपने आपको संकटसे मुक्त करो ॥ ३५-३६ ॥

दुर्वाससा वरो दत्तो मुनिना मम धीमता।
वैधव्यरहिता हृष्टा जीवपुत्रा भविष्यसि ॥ ३७ ॥

'बुद्धिमान् दुर्वासा मुनिने मुझे वर दिया है कि तू वैधव्यरहित, प्रसन्न एवं जीवित पुत्रोंकी माता होगी ॥ ३७ ॥

एष मे हृदयाश्वासो भविता न तदन्यथा।
सूर्याग्नितेजसो वाक्यं मुनेरिन्द्रानुजात्मज ॥ ३८ ॥

'इन्द्रानुजकुमार ! यह वर मेरे हृदयको आश्वासन देनेवाला है। यह सूर्य और अग्निके समान तेजस्वी दुर्वासा मुनिका वचन सत्य होगा, मिथ्या कभी नहीं होगा' ॥ ३८ ॥

इत्युक्त्वाथासिमादाय सूपस्पृष्टा मनस्विनी।
प्रददौ रौक्मिणेयाय जयस्वेति वरं वरा ॥ ३९ ॥

ऐसा कहकर श्रेष्ठ मनस्विनी नारी प्रभावतीने एक तलवार लेकर उसे अच्छी तरह साफ किया और रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्नके हाथमें दे दिया। साथ ही यह वर दिया कि तुम विजयी होओ ॥ ३९ ॥

स तं जग्राह धर्मात्मा प्रहृष्टेनान्तरात्मना।
प्रणम्य शिरसा दत्तं प्रियया भक्तियुक्तया ॥ ४० ॥

अपने प्रति भक्ति रखनेवाली प्रियतमा प्रभावतीके दिये हुए उस खड्गको धर्मात्मा प्रद्युम्नने मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और प्रसन्न चित्तसे उसको हाथमें ले लिया ॥ ४० ॥

चन्द्रवत्यपि निस्त्रिंशं गदाय प्रददौ मुदा।
तदा गुणवती चैव साम्बायासिं महात्मने ॥ ४१ ॥

इसी प्रकार चन्द्रवतीने भी उस समय गदको प्रसन्नतापूर्वक खड्ग दिया। तदनन्तर गुणवतीने भी महात्मा साम्बको तलवार भेंट की ॥ ४१ ॥

हंसकेतुमथोवाच प्रद्युम्नः प्रणतं प्रभुः।
इहैव साम्बसहितो युध्यस्व सह यादवैः ॥ ४२ ॥

तदनन्तर प्रभावशाली प्रद्युम्नने विनीतभावसे खड़े हुए (अपने सारथि) हंसकेतुसे कहा—'तुम यहीं यादवों तथा साम्बके साथ रहकर असुरोंके साथ युद्ध करो ॥ ४२ ॥

आकाशे दिक्षु सर्वासु योत्स्याम्यहमरिंदम।
इत्युक्त्वाथ रथं चक्रे मायया मायिनां वरः ॥ ४३ ॥

'शत्रुदमन ! मैं आकाश तथा सम्पूर्ण दिशाओंमें युद्ध करूँगा।' ऐसा कहकर मायावियोंमें श्रेष्ठ प्रद्युम्नने मायासे एक रथका निर्माण किया ॥ ४३ ॥

सहस्रशिरसं नागं कृत्वा सारथिमात्मवान्।
अनन्तभोगं कौरव्य सर्वनागोत्तमोत्तमम् ॥ ४४ ॥
स तेन रथमुख्येन हर्षयन् वै प्रभावतीम्।
चचारासुरसैन्येषु तृणेष्विव हुताशनः ॥ ४५ ॥

कुरुनन्दन ! मनस्वी प्रद्युम्न अनन्त शरीरवाले, सहस्र मस्तकोंसे युक्त एक नागको, जो समस्त उत्तम नागोंसे भी उत्तम था, अपना सारथि बनाकर उस मुख्य रथके द्वारा प्रभावतीका हर्ष बढ़ाते हुए असुर-सेनाओंमें उसी तरह विचरने लगे, जैसे तिनकोंमें आग फैलती है ॥ ४४-४५ ॥

शरैराशीविषप्रख्यैरर्द्धचन्द्रानुकारिभिः।
भेदनैर्गाधनैश्चैव ततर्द दितिसम्भवान् ॥ ४६ ॥

प्रद्युम्न विषधर सर्पोंके समान भयंकर, अर्धचन्द्राकार, भेदन (पतली नोकवाले) तथा गाधन (मोटे अग्रभागवाले) बाणोंद्वारा दैत्योंको पीड़ित करने लगे ॥ ४६ ॥

असुराश्च रणे मत्ताः कार्ष्णिं शस्त्रैरितस्ततः।
जघ्नुः कमलपत्राक्षं परं निश्चयमास्थिताः ॥ ४७ ॥

असुर भी उत्तम निश्चयका आश्रय ले रणभूमिमें मतवाले होकर इधर-उधरसे शस्त्रोंद्वारा कमलनयन प्रद्युम्नपर प्रहार करने लगे ॥ ४७ ॥

चिच्छेद बाहून् केषांचित् केयूरवलयोज्ज्वलान्।
सकुण्डलानि केषांचिच्छिरांस्यपि च चिच्छिदे ॥४८॥

प्रद्युम्नने कितने ही असुरोंकी भुजाएँ काट डालीं, जो केयूर और कङ्कणकी कान्तिसे प्रकाशित हो रही थीं एवं कितनोंके कुण्डलयुक्त मस्तक भी धड़से अलग कर दिये॥४८॥

क्षुरच्छिन्नैः शिरोभिश्च कायैश्च शकलैरपि।
असुराणां मही कीर्णा प्रद्युम्नेनातितेजसा ॥ ४९ ॥

अत्यन्त तेजस्वी प्रद्युम्नने क्षुरोंद्वारा कटे हुए असुरोंके मस्तकों, शरीरों और उनके टुकड़ोंसे वहाँकी सारी धरती पाट दी ॥ ४९ ॥

देवेश्वरो देवगणैः सहितः समितिंजयः।
ददर्श मुदितो युद्धं भैमानां दितिजैः सह ॥ ५० ॥

युद्धमें विजय पानेवाले देवराज इन्द्र देवताओंके साथ आकाशमें खड़े होकर बड़ी प्रसन्नताके साथ दैत्यों और यादवोंका युद्ध देख रहे थे ॥ ५० ॥

ये गदं चैव साम्बं च दैत्याः समभिदुद्रुवुः।
ते ययुर्निधनं सर्वे यादांसीव महोदधौ ॥ ५१ ॥

जिन दैत्योंने गद और साम्बपर आक्रमण किया, वे सब-के-सब कालके गालमें चले गये; मानो अगणित जलजन्तु [illegible] हो गये हों ॥ ५१ ॥

विषमं तु तदा युद्धं दृष्ट्वा देवपतिर्हरिः ।
गदाय प्रेषयामास स्वं रथं हरिवाहनः ॥ ५२ ॥
दिदेश मातलिसुतं यन्तारं च सुवर्चसम् ।
साम्बायैरावणं नागं प्रेषयामास चेश्वरः ॥ ५३ ॥

उस समय उस युद्धको विषम स्थितिमें देखकर हरिवाहन[1] देवराज इन्द्रने गदके लिये अपना रथ भेज दिया; साथ ही मातलिके पुत्र सुवर्चाको सारथिके रूपमें दिया। इसके सिवा देवेश्वरने साम्बकी सवारीके लिये अपना ऐरावत हाथी भेज दिया ॥ ५२-५३ ॥

जयन्तं रौक्मिणेयस्य सहायमददाद् विभुः ।
ऐरावणमधिष्ठातुं प्रवरं स नियुक्तवान् ॥ ५४ ॥

इतना ही नहीं, भगवान् इन्द्रने जयन्तको प्रद्युम्नका सहायक बनाकर उन्हें दे दिया और ऐरावतका सञ्चालन करनेके लिये प्रवर नामक ब्राह्मणको नियुक्त किया ॥ ५४ ॥

देवपुत्रद्विजौ वीरावप्रमेयपराक्रमौ ।
अनुज्ञाप्य सुराध्यक्षं ब्रह्माणं लोकभावनम् ॥ ५५ ॥
तं मातलिसुतं चैव गजमैरावणं तदा ।
देवः प्रेषितवाञ्छक्रो विधिज्ञो वरकर्मसु ॥ ५६ ॥

देवकुमार जयन्त और ब्राह्मणकुमार प्रवर—ये दोनों वीर अप्रमेय पराक्रमी थे। श्रेष्ठ कर्मोंमें उसके आवश्यक विधानको जाननेवाले देवेन्द्रने सुराध्यक्ष लोकभावन ब्रह्माजीकी आज्ञा लेकर जयन्त, प्रवर, मातलिपुत्र सुवर्चा और अपने ऐरावत हाथीको उस समय वहाँ भेजा था ॥५५-५६॥

क्षीणमस्य तपो वध्यो यदूनामेष दुर्मतिः ।
प्रवदन्ति तु भूतानि सर्वत्र तु यथेप्सितम् ॥ ५७ ॥

सब प्राणी सर्वत्र अपने इच्छानुसार यही कहते थे कि 'इस वज्रनाभकी तपस्या क्षीण हो चली है। यह दुर्बुद्धि दैत्य अब यादवोंके हाथसे मारा जायगा' ॥ ५७ ॥

प्रद्युम्नश्च जयन्तश्च प्राप्तौ हर्म्यं महाबलौ ।
असुराञ्छरजालौघैर्विक्राम्यन्तौ प्रणश्यतुः ॥ ५८ ॥

प्रद्युम्न और जयन्त—ये दोनों महाबली वीर महलकी छतपर आ गये और पराक्रम प्रकट करते हुए अपने बाणसमूहोंद्वारा असुरोंको नष्ट करने लगे ॥ ५८ ॥

गदं कार्ष्णिस्तदोवाच दुर्वार्यरणदुर्जयः ।
उपेन्द्रानुज शक्रेण रथोऽयं प्रेषितस्तव ॥ ५९ ॥

उस समय किसीसे भी रोके न जा सकनेवाले रणदुर्जय वीर श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्नने गदसे कहा—'उपेन्द्रके छोटे भैया! देवराज इन्द्रने आपके लिये यह रथ भेजा है ॥५९॥

हरियुङ्मातलिसुतो यन्ता चायं महाबलः ।
प्रवराधिष्ठितश्चायं साम्बस्यैरावणो गजः ॥ ६० ॥

'इसमें हरे रंगके घोड़े जुते हैं और ये मातलिके महाबली पुत्र सुवर्चा इस रथके सारथि हैं तथा यह ऐरावत हाथी, जिसके अधिष्ठाता प्रवर हैं, साम्बकी सवारीमें आया है ॥६०॥

अद्योपहारो रुद्रस्य द्वारकायां महाबलः ।
श्व एष्यति हृषीकेशस्तस्मिन् वृत्तेऽच्युतानुज ॥ ६१ ॥

'चाचाजी! आज द्वारकामें महादेवजीकी महापूजा है। उसके पूर्ण हो जानेपर मेरे पूज्य पिता महाबली श्रीकृष्ण कल यहाँ पधारेंगे ॥ ६१ ॥

तस्याज्ञया वधिष्यामो वज्रनाभं सबान्धवम् ।
अभ्युत्थानकृतं पापं त्रिविष्टपजयं प्रति ॥ ६२ ॥

'उन्हींकी आज्ञासे स्वर्गलोकको जीतनेके लिये उठे हुए पापी वज्रनाभको उसके बन्धु-बान्धवोंसहित हमलोग मार डालेंगे ॥ ६२ ॥

करिष्यामि विधानं तु नैष शक्रं सुतान्वितम् ।
विजेष्यत्यप्रमादस्तु कर्तव्य इति मे मतिः ॥ ६३ ॥

'मैं ऐसा उपाय करूँगा, जिससे यह दैत्य पुत्रसहित देवराज इन्द्रको पराजित न कर सके; परंतु हमें तनिक भी प्रमाद नहीं करना चाहिये—सावधान रहना चाहिये; ऐसा मेरा विचार है ॥ ६३ ॥

कलत्ररक्षणं कार्यं सर्वोपायैर्नरैर्बुधैः ।
कलत्रधर्षणं लोके मरणादतिरिच्यते ॥ ६४ ॥

'विद्वान् पुरुषोंको सभी उपायोंद्वारा अपनी पत्नियोंकी रक्षा करनी चाहिये। यदि पत्नीका पर-पुरुषके द्वारा तिरस्कार हो जाय तो वह संसारमें मृत्युसे भी बढ़कर (कष्टदायक होता) है' ॥ ६४ ॥

एवं संदिश्य भैमः स गदसाम्बौ महाबलः ।
प्रद्युम्नकोट्यः ससृजे मायया दिव्यरूपया ॥ ६५ ॥

गद और साम्बसे ऐसा कहकर महाबली प्रद्युम्नने अपनी दिव्य मायासे करोड़ों प्रद्युम्नोंकी सृष्टि कर डाली ॥ ६५ ॥

तमश्च नाशयामास दैत्यसृष्टं दुरासदम् ।
जहृषे देवराजश्च तं दृष्ट्वा रिपुमर्दनम् ॥ ६६ ॥

तथा दैत्योंने जो दुर्निवार्य अन्धकार उत्पन्न किया था, उसे नष्ट कर दिया। शत्रुमर्दन प्रद्युम्नको ऐसा पराक्रम करते देख देवराज इन्द्रको बड़ा हर्ष हुआ ॥ ६६ ॥

ददृशुः सर्वभूतानि कार्ष्णिं सर्वेषु शत्रुषु ।
अन्तरात्मनि वर्तन्तं क्षेत्रज्ञमिव तं विदुः ॥ ६७ ॥

समस्त प्राणियोंने सभी शत्रुओंके बीचमें श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्नको देखा और उन्हें प्रत्येक अन्तरात्मामें विद्यमान क्षेत्रज्ञके समान समझा ॥ ६७ ॥

१. हरे रंगके घोड़े इन्द्रके रथको वहन करते हैं, इसलिये उन्हें हरिवाहन कहा गया है।

एवं व्यतीता रजनी रौक्मिणेयस्य युध्यतः ।
असुराणां त्रिभागश्च निहतश्चातितेजसा ॥ ६८ ॥

इस प्रकार युद्ध करते हुए रुक्मिणीकुमार प्रद्युम्नकी वह सारी रात बीत गयी । उन्होंने अपने अत्यन्त तेजसे असुरोंके तीन हिस्सोंको नष्ट कर दिया ॥ ६८ ॥

यावद् वियोधयामास कार्ष्णिर्दैत्यान् रणाजिरे ।
संध्योपास्ता जयन्तेन तावद् विष्णुपदीजले ॥ ६९ ॥

अयोधयज्जयन्तश्च यावद् दैत्यान् महाबलः ।
तावदाकाशगङ्गायां भैमः संध्यामुपास्तवान् ॥ ७० ॥

श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्न समराङ्गणमें जबतक दैत्योंके सा जूझते रहे, तबतक जयन्तने गङ्गाजीके जलमें संध्योपास कर ली । फिर महाबली जयन्त आकर जबतक युद्ध क रहे, तबतक प्रद्युम्नने भी आकाशगङ्गाके जलमें संध्योपासन का कार्य पूर्ण कर लिया ॥ ६९-७० ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि प्रद्युम्नदैत्ययुद्धे षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें प्रद्युम्न और दैत्यका युद्धविषयक छानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९६ ॥

सप्तनवतितमोऽध्यायः

प्रद्युम्नद्वारा वज्रनाभका वध तथा प्रद्युम्न आदिके पुत्रोंका राज्याभिषेक

वैशम्पायन उवाच

जगतश्चक्षुषि ततो मुहूर्ताभ्युदिते रवौ ।
प्रादुरासीद्धरिर्देवस्तार्क्ष्येणोरगशत्रुणा ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर जब जगत्के नेत्ररूप भगवान् सूर्यके उदित हुए दो घड़ी बीत गयी, तब सर्पशत्रु गरुड़के द्वारा भगवान् श्रीहरि वहाँ प्रकट हुए ॥ १ ॥

हंसवायुमनोभिश्च सुशीघ्रतरगः खगः ।
तस्थौ वियति शक्रस्य समीपे कुरुनन्दन ॥ २ ॥

कुरुनन्दन ! हंस, वायु और मनसे भी अत्यन्त शीघ्रतर गतिसे गमन करनेवाले पक्षी गरुड़ आकाशमें इन्द्रके समीप खड़े हो गये ॥ २ ॥

समेत्य च यथान्यायं कृष्णो वासवसंनिधौ ।
पाञ्चजन्यं हरिर्दध्मौ दैत्यानां भयवर्द्धनम् ॥ ३ ॥

श्रीकृष्णने देवराज इन्द्रके समीप जाकर उनके साथ यथोचित रीतिसे मिलकर अपना पाञ्चजन्य नामक शङ्ख बजाया, जो दैत्योंका भय बढ़ानेवाला था ॥ ३ ॥

तं श्रुत्वाभ्यागतस्तत्र प्रद्युम्नो परवीरहा ।
वज्रनाभं जहीत्युक्तः केशवेन त्वरेति च ॥ ४ ॥

शत्रु-वीरोंका संहार करनेवाले प्रद्युम्न वह शङ्खध्वनि सुनकर तुरंत वहाँ आये । उस समय श्रीकृष्णने उनसे कहा—'बेटा ! वज्रनाभको मार डालो और इस कार्यमें शीघ्रता करो'॥

तार्क्ष्यमारुह्य गच्छेति पुनरेव प्रणोदितः ।
चकार स तथा वीरः प्रणिपत्य सुरोत्तमौ ॥ ५ ॥

उन्होंने पुनः प्रेरित करते हुए कहा—'गरुड़पर चढ़कर जाओ ।' वीर प्रद्युम्नने उन दोनों श्रेष्ठ देवताओंको नमस्कार करके वैसा ही किया ॥ ५ ॥

स मनोरंहसा वीर तार्क्ष्येणाशु ययौ नृप ।
अभ्याशं वज्रनाभस्य महाद्वन्द्वस्य भारत ॥ ६

वीर ! भरतनन्दन ! नरेश्वर ! तब वे मनके सम वेगशाली गरुड़के द्वारा तुरंत ही महान् द्वन्द्वयुद्ध करनेव वज्रनाभके निकट जा पहुँचे ॥ ६ ॥

ततस्तार्क्ष्यगतो वीरस्ततर्द रणमूर्द्धनि ।
वज्रनाभं स्थिरो भूत्वा सर्वास्त्रविदनिन्दितः ॥ ७

सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंके ज्ञाता तथा निन्दारहित वीर प्र गरुड़पर स्थिर भावसे बैठकर युद्धके मुहानेपर वज्रनाभ पीड़ा देने लगे ॥ ७ ॥

तेन तार्क्ष्यगतेनैव गदया कृष्णसूनुना ।
उरस्यभ्याहतो वीरो वज्रनाभो महात्मना ॥ ८

गरुड़पर बैठे हुए ही महामना श्रीकृष्णकुमार प्रद्यु वज्रनाभकी छातीमें गदाद्वारा प्रहार किया ॥ ८ ॥

स तेनाभिहतो वीरो दैत्यो मोहवशं गतः ।
चक्षार च भृशं रक्तं बभ्रामैव गतासुवत् ॥ ९

उनसे आहत होकर वह वीर दैत्य मूर्च्छित हो गय उसने मुँहसे बहुत-सा रक्त वमन किया । उसे चक्कर लगा और वह मृतकतुल्य हो गया ॥ ९ ॥

आश्वसेत्यथ तं कार्ष्णिरुवाच रणदुर्जयः ।
लब्धसंज्ञः स वीरस्तु प्रद्युम्नमिदमब्रवीत् ॥ १०

तब रणदुर्जय श्रीकृष्णकुमारने उससे कहा—' आश्वस्त हो जाओ ।' इससे सचेत होकर उस वीरने प्रद्यु इस प्रकार कहा—॥ १० ॥

साधु यादव वीर्येण श्लाघ्यो मम रिपुर्भवान् ।
प्रतिप्रहारकालोऽयं स्थिरो भव महाबल ॥ ११

'बहुत अच्छा, यादव ! तुम शत्रु होते हुए भी पराक्र

के द्वारा मेरे लिये स्पृहणीय हो। अब यह मेरी ओरसे तुम्हारे प्रहारका उत्तर देनेका अवसर आया है। अतः महाबली वीर! तुम स्थिर हो जाओ' ॥ ११ ॥

एवमुक्त्वा महानादं मुक्त्वा मेघशतोपमम्।
गदां मुमोच वेगेन सघण्टां बहुकण्टकाम् ॥ १२ ॥

ऐसा कहकर सैकड़ों मेघोंकी गर्जनाओंके समान महान् सिंहनाद करके बहुत से कण्टकों तथा घण्टोंवाली गदाको उसने वेगपूर्वक चलाया ॥ १२ ॥

तया ललाटेऽभिहतः प्रद्युम्नो गदया नृप।
उद्वमन् रुधिरं भूरि मुमोह यदुनन्दनः ॥ १३ ॥

नरेश्वर! उस गदाने प्रद्युम्नके ललाटपर गहरा आघात किया। अतः यदुनन्दन प्रद्युम्न अधिक रक्त वमन करते हुए मूर्च्छित हो गये ॥ १३ ॥

तं दृष्ट्वा भगवान् कृष्णः पाञ्चजन्यं जलोद्भवम्।
दध्मावाश्वासनकरं पुत्रस्य रिपुनाशनः ॥ १४ ॥

उन्हें अचेत हुआ देख शत्रुनाशन भगवान् श्रीकृष्णने पुत्रको आश्वासन देनेके लिये समुद्रजलसे प्रकट हुए अपने पाञ्चजन्य नामक शङ्खको बजाया ॥ १४ ॥

तं पाञ्चजन्यशब्देन प्रत्याश्वस्तं महाबलम्।
दृष्ट्वा प्रमुदिता लोका विशेषेणेन्द्रकेशवौ ॥ १५ ॥

पाञ्चजन्यके शब्दसे महाबली प्रद्युम्नको आश्वस्त हुआ देख सब लोगोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। विशेषतः इन्द्र और श्रीकृष्ण बहुत प्रसन्न हुए ॥ १५ ॥

तस्य चक्रं करे यातं कृष्णच्छन्देन भारत।
क्षुरनेमिसहस्रारं दैत्यसंघकुलान्तकम् ॥ १६ ॥

भारत! श्रीकृष्णकी इच्छासे उनका चक्र प्रद्युम्नके हाथमें चला गया। उसमें सहस्रों अरे थे और उसके नेमि या प्रान्तभागमें छुरे लगे हुए थे। वह चक्र दैत्यसमूहोंके वंशका विनाश करनेवाला था ॥ १६ ॥

तन्मुमोचाच्युतसुतस्तस्य नाशाय भारत।
नमस्कृत्वा सुरेन्द्राय कृष्णाय च महात्मने ॥ १७ ॥

भारत! श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्नने देवराज इन्द्र और महात्मा श्रीकृष्णको प्रणाम करके उस दैत्यके विनाशके लिये वह चक्र चला दिया ॥ १७ ॥

वज्रनाभस्य तत्कायादुच्चकर्त शिरस्तदा।
नारायणसुतोन्मुक्तं दैत्यानामनुपश्यताम् ॥ १८ ॥

श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्नके हाथसे छोड़े गये उस चक्रने उस समय समस्त दैत्योंके देखते-देखते वज्रनाभके मस्तकको उसके धड़से काट गिराया ॥ १८ ॥

गदः सुनाभमवधीद् यतमानं रणाजिरे।
हर्म्यपृष्ठे जिघांसन्तं रणदृप्तं भयानकम् ॥ १९ ॥

महलकी छतपर खड़े हुए गदने अपनेको मार डालनेकी इच्छावाले युद्धोन्मत्त भयानक दैत्य सुनाभका, जो समराङ्गणमें विजयके लिये प्रयत्नशील था, वध कर डाला ॥ १९ ॥

साम्बः समरमध्यस्थानसुरानरिमर्दनः।
निनाय निशितैर्बाणैः प्रेताधिपपरिग्रहम् ॥ २० ॥

शत्रुमर्दन साम्बने भी समरके मध्यभागमें खड़े हुए असुरोंको अपने पैने बाणोंद्वारा यमराजके घर भेज दिया ॥

निकुम्भोऽपि हते वीरे वज्रनाभे महासुरे।
जगाम षट्पुरं वीरो नारायणभयार्दितः ॥ २१ ॥

महान् असुर वीर वज्रनाभके मारे जानेपर नारायण (श्रीकृष्ण) के भयसे पीड़ित हुआ वीर निकुम्भ भी षट्पुरको चला गया ॥ २१ ॥

निबर्हिते देवरिपौ वज्रनाभे महासुरे।
अवतीर्णौ महात्मानौ हरी वज्रपुरं तदा ॥ २२ ॥

जब देवद्रोही महान् असुर वज्रनाभका संहार हो गया, तब महात्मा श्रीकृष्ण और इन्द्र दोनों वज्रपुरमें उतरे ॥२२॥

लब्धप्रशमनं चैव चक्रतुः सुरसत्तमौ।
सान्त्वयामासतुश्चैव बालवृद्धं भयार्दितम् ॥ २३ ॥

उस समय उन दोनों श्रेष्ठ देवताओंने वहाँ प्राप्त हुए दुःख और शोकका शमन किया। वहाँ बालकोंसे लेकर बूढ़े-तक सभी भयसे पीड़ित थे। उन सबको उन्होंने सान्त्वना दी॥

इन्द्रोपेन्द्रौ महात्मानौ मन्त्रयित्वा महाबलौ।
आयत्यां च तदात्वे च बृहस्पतिमतानुगौ ॥ २४ ॥
वज्रनाभस्य तद् राज्यं चतुर्धा चक्रतुर्नृप।

नरेश्वर! उस समय महाबली महात्मा इन्द्र और उपेन्द्रने भविष्य और वर्तमानके विषयमें परस्पर सलाह करके बृहस्पति-के मतका अनुसरण करते हुए वज्रनाभके उस राज्यको चार भागोंमें बाँट दिया ॥ २४½ ॥

विजयस्य चतुर्भागं जयन्ततनयस्य वै ॥ २५ ॥
प्रद्युम्नस्य चतुर्भागं रौक्मिणेयसुतस्य च।
चन्द्रप्रभस्य ददतुश्चतुर्भागं जनेश्वर ॥ २६ ॥

जनेश्वर! उन्होंने एक चौथाई भाग तो जयन्तके पुत्र विजयको दे दिया, दूसरा प्रद्युम्नके पुत्रको, तीसरा साम्बके पुत्रको दिया और शेष चौथा भाग गदके पुत्र चन्द्रप्रभको अर्पित कर दिया ॥ २५-२६ ॥

कोट्यश्चतस्रो ग्रामाणामधिकास्ता विशाम्पते।
शाखापुरसहस्रं च स्फीतं वज्रपुरोपमम्।
चतुर्धा चक्रतुस्तत्र संहृष्टौ शक्रकेशवौ ॥ २७ ॥

प्रजानाथ! वज्रनाभके अधिकारमें चार करोड़से कुछ अधिक ग्राम थे तथा एक हजार शाखानगर थे, जो वज्रपुरके

समान ही वैभवशाली थे। हर्षमें भरे हुए इन्द्र और श्रीकृष्णने वहाँकी सभी वस्तुओंके चार भाग कर लिये थे ॥ २७ ॥

कम्बलाजिनवासांसि रत्नानि विविधानि च।
चतुर्द्धा चक्रतुर्वीरौ वीर वासवकेशवौ ॥ २८ ॥

वीर जनमेजय ! वीर इन्द्र और केशवने वहाँ प्राप्त हुए कम्बल (कालीन), मृगचर्म, वस्त्र तथा भाँति-भाँतिके रत्नोंको भी चार भागोंमें बाँट दिया ॥ २८ ॥

ततोऽभिषिक्तास्ते वीरा राजानो वासवाज्ञया।
देवदुन्दुभिवाद्येन नृप विष्णुपदीजलैः ॥ २९ ॥
स्वयं शक्रेण देवेन केशवेन च धीमता।
ऋषिवंशे महात्मानः शक्रमाधवनन्दनाः ॥ ३० ॥

नरेश्वर ! तदनन्तर इन्द्रकी आज्ञासे वे चारों वीर देव-दुन्दुभियोंकी ध्वनिके साथ गङ्गाजीके जलसे राजाके पदपर अभिषिक्त हुए। इन्द्र और श्रीकृष्णको आनन्दित करनेवाले उन चारों महात्मा राजकुमारोंको स्वयं इन्द्रदेव तथा बुद्धिमान् श्रीकृष्णने ऋषिसमुदायके निकट अभिषिक्त किया ॥२९-३०॥

विजयस्य प्रसिद्धैव गतिर्वियति धीमतः।
मातृजेन गुणेनापि माधवानां महात्मनाम् ॥ ३१ ॥

बुद्धिमान् विजयकी आकाशमें चलने-फिरनेकी शक्ति तो प्रसिद्ध ही थी; महामनस्वी यादवकुमार भी अपनी माताओंके गुणसे नियुक्त हो आकाशमें चल-फिर सकते थे ॥ ३१ ॥

अभिषिच्य जयन्तं तु वासवो भगवान् ब्रवीत्।
त्वयैते वीर संरक्ष्या राजानः समितिंजयाः ॥ ३२ ॥

ऐश्वर्यशाली इन्द्रने उन चारोंका अभिषेक करके जयन्तसे कहा—'वीर ! तुम्हें इन युद्धविजयी राजाओंकी भी रक्षा करनी चाहिये ॥ ३२ ॥

मम वंशकरोऽत्रैकः केशवस्य त्रयोऽनघ।
अवध्याः सर्वभूतानां भविष्यन्ति ममाज्ञया ॥ ३३ ॥

'अनघ ! इनमें एक तो मेरे वंशका प्रवर्तक है और तीन श्रीकृष्णके वंशका विस्तार करनेवाले हैं। ये सब मेरी आज्ञासे समस्त प्राणियोंके लिये अवध्य होंगे ॥ ३३ ॥

गमनागमनं चैव दिवि सिद्धं भविष्यति।
त्रिविष्टपं द्वारकां च रम्यां भैमाभिरक्षिताम् ॥ ३४ ॥

'इनका आकाशमें गमनागमन स्वतः सिद्ध होगा। स्वर्गमें तथा यादवोंद्वारा सुरक्षित रमणीय द्वारकापुरीमें भी ये आते-जाते रहेंगे ॥ ३४ ॥

दिशागजसुतान् नागान् हयांश्चोच्चैःश्रवोऽन्वयान्।
इच्छयैषां प्रयच्छस्व रथांस्त्वष्टृकृतानपि ॥ ३५ ॥

'दिग्गजोंके पुत्र जो हाथी हैं, उच्चैःश्रवाके कुलमें उत्पन्न जो घोड़े हैं तथा विश्वकर्माके बनाये जो रथ हैं, उन सबको इन्हें इच्छानुसार प्रदान करो ॥ ३५ ॥

गजावैरावणसुतौ शत्रुञ्जयरिपुञ्जयौ।
प्रयच्छाकाशगौ वीर साम्बस्य च गदस्य च ॥ ३६ ॥
आकाशेन पुरीं यातु द्वारकां भैमरक्षिताम्।
आयातु च सुतौ द्रष्टुं यथेष्टं भैमनन्दनौ ॥ ३७ ॥

'वीर ! ऐरावतके पुत्र जो शत्रुञ्जय और रिपुञ्जय नामक आकाशगामी हाथी हैं, उन्हें साम्ब और गदको दे दो; जिससे ये दोनों भीमकुलनन्दन वीर यादवोंद्वारा सुरक्षित रमणीय द्वारकापुरीमें आकाशमार्गसे जा सकें तथा अपने दोनों पुत्रोंको देखनेके लिये यहाँ भी, जब इच्छा हो आ सकें' ॥ ३६-३७ ॥

इति संदिश्य भगवान् देवराजः पुरन्दरः।
जगाम भगवान् स्वर्गं द्वारकामपि केशवः ॥ ३८ ॥

ऐसा संदेश देकर ऐश्वर्यशाली देवराज इन्द्र स्वर्गको तथा भगवान् केशव द्वारकापुरीको चले गये ॥ ३८ ॥

षण्मासानुषितस्तत्र गदः प्रद्युम्न एव च।
साम्बश्च द्वारकां याता रूढे राज्ये महाबलाः ॥ ३९ ॥

गद, प्रद्युम्न और साम्ब—ये तीनों महाबली वीर वहाँ छः महीने और रह गये। जब वहाँका राज्य सुदृढ़ हो गया, तब वे द्वारकाको गये ॥ ३९ ॥

अद्यापि तानि राज्यानि मेरोः पार्श्वे तथोत्तरे।
तिष्ठन्ति च जगद् यावत् स्थास्यन्त्यमरसंनिभ ॥ ४० ॥

देवोपम वीर जनमेजय ! आज भी मेरुपर्वतके उत्तर पार्श्वमें वे राज्य विद्यमान हैं और जबतक यह संसार रहेगा, तबतक वे बने रहेंगे ॥ ४० ॥

निवृत्ते मौसले युद्धे स्वर्गं यातेषु वृष्णिषु।
गदप्रद्युम्नसाम्बास्ते गता वज्रपुरं विभो ॥ ४१ ॥

विभो ! मौसलयुद्ध समाप्त होनेपर जब समस्त वृष्णिवंशी स्वर्गलोकको चले गये, तब गद, प्रद्युम्न और साम्ब वज्रपुरमें गये थे ॥ ४१ ॥

ततः प्रोष्य पुनर्यान्ति स्वर्गं स्वैः कर्मभिः शुभैः।
प्रसादेन च कृष्णस्य लोककर्तुर्जनेश्वर ॥ ४२ ॥

जनेश्वर ! वहाँ रहकर लोग लोककर्ता भगवान् श्रीकृष्णके प्रसादसे अपने शुभ कर्मोंद्वारा पुनः स्वर्गलोकमें चले जाते हैं।

प्रद्युम्नोत्तरमेतत् ते नृदेव कथितं मया।
धन्यं यशस्यमायुष्यं शत्रुनाशनमेव च ॥ ४३ ॥
पुत्रपौत्रा विवर्धन्ते आरोग्यधनसम्पदः।
यशो विपुलमाप्नोति द्वैपायनवचो यथा ॥ ४४ ॥

नरदेव ! यह मैंने तुमसे प्रद्युम्नके उत्कर्षका वर्णन किया है। यह धन, यश तथा आयु प्रदान करनेवाला है। इसके पाठसे काम, क्रोध आदि शत्रुओंका नाश भी होता है। पुत्रों और पौत्रोंकी वृद्धि होती है। आरोग्य तथा धन-सम्पत्तिकी प्राप्ति होती है एवं मनुष्य महान् यशका भागी होता है। जैसा कि द्वैपायन व्यासका कथन है ॥ ४३-४४ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि वज्रनाभवधो नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें वज्रनाभवध नामक सत्तानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९७ ॥

अष्टनवतितमोऽध्यायः

इन्द्रकी आज्ञासे विश्वकर्माद्वारा पुनः परिष्कृत की गयी द्वारकापुरीका वर्णन

वैशम्पायन उवाच

ददर्शाथ पुरीं कृष्णो द्वारकां गरुडे स्थितः।
देवसद्मप्रतीकाशां समन्तात् प्रतिनादिताम्॥ १॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! गरुड़पर बैठे हुए भगवान् श्रीकृष्णने द्वारकापुरीको देखा, जो देवलोकके समान शोभा पा रही थी। वहाँ चारों ओर समुद्र-गर्जनाकी प्रतिध्वनि व्याप्त हो रही थी॥ १॥

मणिपर्वतयन्त्राणि तथा क्रीडागृहाणि च।
उद्यानवनमुख्यानि वलभीचत्वराणि च॥ २॥

उस पुरीमें जहाँ-तहाँ मणिमय पर्वत तथा यन्त्र सुशोभित थे। बहुत-से क्रीड़ागृह बने हुए थे। अनेकानेक उद्यान, श्रेष्ठ वन, छज्जे और चबूतरे शोभा दे रहे थे। श्रीकृष्णने इन सबको देखा॥ २॥

सम्प्राप्ते तु तदा कृष्णे पुरीं देवकिनन्दने।
विश्वकर्माणमाहूय देवराजोऽब्रवीदिदम्॥ ३॥

देवकीनन्दन श्रीकृष्ण जब द्वारकापुरीके समीप पहुँचे, तब देवराज इन्द्रने विश्वकर्माको बुलाकर इस प्रकार कहा—॥ ३॥

प्रियमिच्छसि चेत् कर्तुं मह्यं शिल्पवतां वर।
कृष्णप्रियार्थं भूयस्त्वं प्रकुरुष्व मनोहराम्॥ ४॥

'शिल्पियोंमें श्रेष्ठ विश्वकर्मन्! यदि तुम मेरा प्रिय करना चाहते हो तो श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिये पुनः द्वारकापुरीको पहलेसे भी अधिक मनोहर बना दो॥ ४॥

उद्यानशतसम्बाधां द्वारकां स्वर्गसम्मिताम्।
कुरुष्व विबुधश्रेष्ठ यथा मम पुरी तथा॥ ५॥

'विबुधश्रेष्ठ! जैसी यह मेरी पुरी है, उसी प्रकार तुम द्वारकाको सैकड़ों उद्यानोंसे हरी-भरी तथा स्वर्गतुल्य मनोहारिणी बना दो॥ ५॥

यत्किंचित् त्रिषु लोकेषु रत्नभूतं प्रपश्यसि।
तेन संयुज्यतां क्षिप्रं पुरी द्वारवती त्वया॥ ६॥

'तीनों लोकोंमें जो कुछ भी तुम्हें रत्नरूप दिखायी दे, उससे द्वारकापुरीको शीघ्र ही संयुक्त कर दो॥ ६॥

कृष्णो हि सुरकार्येषु सर्वेषु सततोत्थितः।
संग्रामान् घोररूपांश्च विगाहति महाबलः॥ ७॥

'क्योंकि महाबली श्रीकृष्ण समस्त देवकार्योंके लिये सदा तैयार रहते हैं और घोर-से-घोर संग्रामोंमें भी प्रवेश कर जाते हैं'॥ ७॥

तामिन्द्रवचनाद् गत्वा विश्वकर्मा पुरीं ततः।
अलंचक्रे समन्ताद् वै यथेन्द्रस्यामरावती॥ ८॥

विश्वकर्माने इन्द्रके आदेशसे उस पुरीमें जाकर उसे सब ओरसे उसी प्रकार अलंकृत किया, जैसे देवराजकी अमरावतीपुरी सुसज्जित रहती है॥ ८॥

तां ददर्श दशार्हाणामीश्वरः पक्षिवाहनः।
विश्वकर्मकृतैर्दिव्यैरभिप्रायैरलंकृताम्॥ ९॥

यादवोंके स्वामी गरुड़वाहन श्रीकृष्णने अपनी उस पुरीको विश्वकर्माद्वारा निर्मित दिव्य भावोंसे अलंकृत देखा॥ ९॥

तां तदा द्वारकां दृष्ट्वा प्रभुर्नारायणो विभुः।
हृष्टः सर्वार्थसम्पन्नः प्रवेष्टुमुपचक्रमे॥ १०॥

उस समय उस तरह सजी हुई द्वारकाको देखकर सम्पूर्ण अर्थोंसे सम्पन्न सर्वव्यापी भगवान् नारायणने बड़ी प्रसन्नताके साथ उसमें प्रवेश आरम्भ किया॥ १०॥

सोऽपश्यद् वृक्षखण्डांश्च रम्यान् दृष्टिमनोहरान्।
द्वारकां प्रति दाशार्हश्चित्रितां विश्वकर्मणा॥ ११॥

विश्वकर्माद्वारा विचित्र शोभासे सम्पन्न की हुई द्वारकामें भगवान् श्रीकृष्णने बहुत-से रमणीय वृक्षखण्ड देखे, जो दृष्टि और मनको आकृष्ट कर लेते थे॥ ११॥

पद्मखण्डाकुलाभिश्च हंससेवितवारिभिः।
गङ्गासिन्धुप्रकाशाभिः परिखाभिर्वृतां पुरीम्॥ १२॥

वह पुरी गङ्गा और सिन्धुके समान सुशोभित होनेवाली चौड़ी खाइयोंसे घिरी हुई थी। उनमें कमलोंके समूह भरे हुए थे तथा हंस उनके जलका सेवन करते थे॥ १२॥

प्राकारेणार्कवर्णेन शातकौम्भेन राजता।
चयमूर्ध्नि निविष्टेन द्यां यथैवाभ्रमालया॥ १३॥

ऊँचे टीलेपर बने हुए सुन्दर सुवर्णमय प्राकार (परकोटे) से, जो सूर्यके सदृश प्रभापुञ्जसे परिपूर्ण था, घिरी हुई द्वारकापुरी घनमालासे घिरे हुए आकाशके समान शोभा पाती थी॥ १३॥

काननैर्नन्दनप्रख्यैस्तथा चैत्ररथोपमैः।
बभौ चारुपरिक्षिप्ता द्वारका द्यौरिवाम्बुदैः॥ १४॥

नन्दन और चैत्ररथ नामक वनोंके समान मनोहर काननोंसे भलीभाँति घिरी हुई द्वारकापुरी मेघोंसे घिरे हुए द्युलोककी भाँति सुशोभित हो रही थी॥ १४॥

बभौ रैवतकः शैलो रम्यसानुगुहाजिरः।
पूर्वस्यां दिशि लक्ष्मीवान् मणिकाञ्चनतोरणः ॥ १५ ॥

द्वारकापुरीकी पूर्व दिशामें शोभासम्पन्न रैवतक पर्वत बड़ा ही मनोहर प्रतीत होता था। उसके शिखर, गुफा और आँगन सभी रमणीय थे। उसके बाहरी फाटक मणि एवं सुवर्णके बने हुए थे ॥ १५ ॥

दक्षिणस्यां लतावेष्टः पञ्चवर्णो विराजते।
इन्द्रकेतुप्रतीकाशः पश्चिमां दिशमाश्रितः।
सुकक्षो राजतः शैलश्चित्रपुष्पमहावनः ॥ १६ ॥

पुरीके दक्षिण भागमें लतावेष्ट नामक पर्वत शोभा पा रहा था, जो पाँच रंगका होनेके कारण इन्द्रध्वज-सा प्रतीत होता था। पश्चिम दिशामें सुकक्ष नामक रजत पर्वत था, जिसके ऊपर विचित्र पुष्पोंसे अलंकृत महान् वन सुशोभित हो रहा था ॥ १६ ॥

उत्तरां दिशमत्यर्थं विभूषयति वेणुमान्।
मन्दराद्रिप्रतीकाशः पाण्डुरः पार्थिवर्षभ ॥ १७ ॥

नृपश्रेष्ठ! मन्दराचलके समान श्वेत वर्णवाला वेणुमान् पर्वत द्वारकाकी उत्तर दिशाको अत्यन्त शोभासम्पन्न बना रहा था ॥ १७ ॥

चित्रकं पञ्चवर्णं च पाञ्चजन्यं वनं महत्।
सर्वर्तुकवनं चैव भाति रैवतकं प्रति ॥ १८ ॥

रैवतक पर्वतके चारों ओर चित्रक, पञ्चवर्ण, विशाल पाञ्चजन्य तथा सर्वर्तुक नामक वन शोभा पा रहे थे ॥ १८ ॥

लतावेष्टितपर्यन्तं मेरुप्रभवनं महत्।
भाति भानुवनं चैव पुष्पकं च महद् वनम् ॥ १९ ॥

लतावेष्ट पर्वतके चारों ओर मेरुप्रभ नामक महान् वन, भानुवन तथा पुष्पक नामक विशाल वन शोभा पा रहे थे ॥ १९ ॥

अक्षकैर्बीजकैश्चैव मन्दारैश्चोपशोभितम्।
शतावर्तवनं चैव करवीराकरं तथा ॥ २० ॥
भाति चैत्ररथं चैव नन्दनं च वनं महत्।
रमणं भावनं चैवं वेणुमन्तं समन्ततः ॥ २१ ॥

सुकक्ष पर्वतके चारों ओर रुद्राक्षोंसे सुशोभित वन, बीजकवन, मन्दार वृक्षोंसे सुशोभित मन्दारवन, शतावर्तवन तथा करवीराकर नामक वन सुशोभित होते थे। वेणुमान् पर्वतके सब ओर चैत्ररथवन, नन्दन नामक महान् वन, रमणवन तथा भावन नामक वन शोभा पाते थे ॥ २०-२१ ॥

वैदूर्यपत्रैर्जलजैस्तदा मन्दाकिनी नदी।
भाति पुष्करिणी रम्या पूर्वस्यां दिशि भारत ॥ २२ ॥

भारत! वहाँ वैदूर्यमणिमय पत्रवाले कमलोंसे सुशोभित मन्दाकिनी नदी पुरीकी पूर्वदिशामें एक रमणीय पुष्करिणीके रूपमें शोभा पाती थी ॥ २२ ॥

सानवो भूषितास्तत्र केशवस्य प्रियैषिभिः।
बहुभिर्देवगन्धर्वैश्चोदितैर्विश्वकर्मणा ॥ २३ ॥

विश्वकर्मासे प्रेरित होकर भगवान् केशवका प्रिय चाहनेवाले बहुत-से देवगन्धर्व वहाँके पर्वतीय शिखरोंकी शोभा बढ़ाते थे ॥ २३ ॥

महानदी द्वारवतीं पञ्चाशद्भिर्महामुखैः।
प्रविष्टा पुण्यसलिला भावयन्ती समन्ततः ॥ २४ ॥

पुण्यसलिला महानदी मन्दाकिनी पचास बड़े-बड़े स्रोतोंद्वारा द्वारकावासियोंको प्रसन्न करती हुई सब ओरसे उस पुरीमें प्रविष्ट हुई थी ॥ २४ ॥

अप्रमेयां महोत्सेधामगाधपरिखायुताम्।
प्राकारवरसम्पन्नां सुधापाण्डुरलेपनाम् ॥ २५ ॥

द्वारकापुरी कितनी बड़ी है, इसका कोई माप नहीं था। उसकी ऊँचाई भी बहुत अधिक थी। वह अगाध खाइयोंसे घिरी हुई थी। सुन्दर परकोटे उसे शोभासम्पन्न कर रहे थे। उस पुरीकी दीवारोंको चूनेसे लीपकर श्वेत बनाया गया था ॥

तीक्ष्णयन्त्रशतघ्नीभिर्हेमजालैश्च भूषिताम्।
आयसैश्च महाचक्रैर्ददर्श द्वारकां पुरीम् ॥ २६ ॥

भगवान्ने द्वारकापुरीको तीखे यन्त्र, शतघ्नी और सोनेकी जालियोंसे विभूषित देखा। वह लोहेके बड़े-बड़े चक्रोंसे सुरक्षित थी ॥ २६ ॥

अष्टौ रथसहस्राणि नगरे किङ्किणीकिनाम्।
समुच्छ्रितपताकानि यथा देवपुरे तथा ॥ २७ ॥

देवताओंके नगरकी भाँति द्वारकापुरीमें क्षुद्रघण्टिकाओंसे युक्त आठ हजार रथ शोभा पाते थे, जिनमें ऊँची उठी हुई पताकाएँ फहरा रही थीं ॥ २७ ॥

अष्टयोजनविस्तीर्णामचलां द्वादशायताम्।
द्विगुणोपनिवेशां च ददर्श द्वारकां पुरीम् ॥ २८ ॥

द्वारकापुरीकी चौड़ाई आठ योजन थी और लंबाई बारह योजन अर्थात् उसका सम्पूर्ण विस्तार छानबे योजन था। उसका उपनिवेश (समीपस्थ प्रदेश) उससे दुगुना अर्थात् एक सौ बानबे योजन विस्तृत था। श्रीकृष्णने उस अविचल द्वारकापुरीका दर्शन किया ॥ २८ ॥

अष्टमार्गमहारथ्यां महाषोडशचत्वराम्।
एवंमार्गपरिक्षिप्तां साक्षादुशनसा कृताम् ॥ २९ ॥

उसमें जानेके लिये आठ महामार्ग थे और सोलह बड़े-बड़े चौराहे बने थे। इस प्रकार विभिन्न मार्गोंसे परिष्कृत द्वारकापुरी साक्षात् शुक्राचार्यकी नीतिके अनुसार बनायी गयी थी ॥ २९ ॥

स्त्रियोऽपि यस्यां युध्येरन् किमु वृष्णिमहारथाः ।
व्यूहानामुत्तमा मार्गाः सप्त चैव महापथाः ॥ ३० ॥

उस पुरीमें रहकर स्त्रियाँ भी युद्ध कर सकती थीं; फिर साक्षात् वृष्णिवंशी महारथियोंकी तो बात ही क्या ? उसमें व्यूहोंके उत्तम मार्ग हैं। सात बड़ी-बड़ी सड़कें हैं ॥ ३० ॥

तत्र वै विहिताः साक्षाद् विविधा विश्वकर्मणा ।
तस्मिन् पुरवरश्रेष्ठे दाशार्हाणां यशस्विनाम् ॥ ३१ ॥
वेश्मानि जहृषे दृष्ट्वा ततो देवकिनन्दनः ।
काञ्चनैर्मणिसोपानैरुपेतानि नृहर्षणैः ॥ ३२ ॥

वहाँ साक्षात् विश्वकर्माने उन विविध मार्गोंका निर्माण किया था। नगरोंमें श्रेष्ठ उस द्वारकापुरीमें यशस्वी दशार्ह-वंशियोंके महल देखकर देवकीनन्दन भगवान् कृष्णको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे महल मनुष्योंको हर्ष प्रदान करनेवाली सोने और मणियोंकी सीढ़ियोंसे अलंकृत थे ॥ ३१-३२ ॥

भीमघोषमहाघोषैः प्रासादवरचत्वरैः ।
समुच्छ्रितपताकानि पारिप्लवधनानि च ॥ ३३ ॥

महान् एवं भयंकर घोषों, महलों तथा सुन्दर आँगनोंसे शोभा पानेवाले उन महलोंके ऊपर ऊँची-ऊँची पताकाएँ फहरा रही थीं। उन महलोंके भीतर लगे हुए उद्यानोंके वृक्ष हवासे झूमते रहते थे ॥ ३३ ॥

काञ्चनाग्राणि भास्वन्ति प्रासादशिखराणि च ।
गृहाणि रमणीयानि मेरुकूटनिभानि च ॥ ३४ ॥

उन महलोंके शिखर सोनेके कंगूरों या कलशोंसे सुशोभित हो उद्भासित होते रहते थे। वे गगनचुम्बी रमणीय भवन मेरुपर्वतके शिखरोंके समान प्रतीत होते थे ॥ ३४ ॥

पाण्डुपाण्डुरशृङ्गैश्च शातकुम्भपरिष्कृतैः ।
रत्नसानुगुहाशृङ्गैर्विचित्रैरिव पर्वतैः ॥ ३५ ॥

उन महलोंके शिखर श्वेतसे भी अधिक श्वेत थे। उनमें सोने मढ़े गये थे। वे रत्नमय शिखर, गुफा और चोटियोंवाले विचित्र पर्वतोंके समान शोभा पाते थे ॥३५॥

पञ्चवर्णैः सुवर्णैश्च पुष्पवृष्टिसमप्रभैः ।
पर्जन्यतुल्यनिर्घोषैर्नानारूपैरिवाद्रिभिः ॥ ३६ ॥

वे गृह पाँच प्रकारके रंगोंसे रँगे गये थे। कितने ही सुनहरे रंगसे सुशोभित थे। कुछ गृहोंकी कान्ति ऐसी जान पड़ती थी, मानो वहाँ फूलोंकी वर्षा हो रही हो। उन महलों-से मेघोंकी गम्भीर गर्जनाके समान शब्द प्रकट होते रहते थे। वे बहुरंगे भवन अनेक रूपवाले पर्वतोंके समान जान पड़ते थे ॥ ३६ ॥

दावाग्निज्वलितप्रख्यैर्निर्मितैर्विश्वकर्मणा ।
आलिखद्भिरिवाकाशमतिचन्द्रार्कभास्वरैः ॥ ३७ ॥

विश्वकर्माके बनाये हुए वे तेजस्वी भवन दावानलकी ज्वालाके समान देदीप्यमान होते थे। उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था मानो वे आकाशमें सुनहरी रेखा खींच रहे हों। उनका प्रकाश चन्द्रमा और सूर्यसे भी बढ़कर था ॥ ३७ ॥

तैर्दाशार्हैर्महाभागैर्बभासे तद्वनद्रुमैः ।
वासुदेवेन्द्रपर्जन्यैर्गृहमेघैरलंकृता ॥ ३८ ॥
ददृशे द्वारका चारुमेघैर्द्यौरिव संवृता ।

उन चित्रक आदि वनोंके वृक्षों तथा दशार्हवंशी महाभाग वीरों एवं गृहरूपी मेघोंसे अलंकृत द्वारकापुरी अत्यन्त शोभा पाती थी और मनोहर घनमालाओंसे घिरे हुए आकाशकी भाँति दिखायी देती थी। भगवान् श्रीकृष्ण ही वहाँ इन्द्र एवं पर्जन्यके रूपमें शोभा पाते थे ॥ ३८½ ॥

साक्षाद् भगवतो वेश्म विहितं विश्वकर्मणा ॥ ३९ ॥
ददृशे वासुदेवस्य चतुर्योजनमायतम् ।
तावदेव च विस्तीर्णमप्रमेयमहाधनम् ॥ ४० ॥

विश्वकर्माका बनाया हुआ साक्षात् भगवान् वासुदेवका भवन चार योजन लंबा और उतना ही चौड़ा दिखायी देता था। उसमें कितना महान् धन लगा था, इसका अनुमान लगाना असम्भव है ॥ ३९-४० ॥

प्रासादवरसम्पन्नं युक्तं जगति पर्वतैः ।
यच्चकार महाभागस्त्वष्टा वासवनोदितः ॥ ४१ ॥

उस विशाल भवनके भीतर अनेकानेक सुन्दर महल और अट्टालिकाएँ बनी थीं। वह प्रासाद जगत्‌के सभी पर्वतीय दृश्योंसे युक्त था। अथवा उसमें जगत्‌के सुप्रसिद्ध पर्वत क्रीड़ाके लिये कृत्रिम रूपसे बनाये गये थे। महाभाग विश्वकर्मा-ने इन्द्रसे प्रेरित होकर उसका निर्माण किया था ॥ ४१ ॥

प्रासादं चैव हेमाभं सर्वभूतमनोहरम् ॥ ४२ ॥
मेरोरिव गिरेः शृङ्गमुच्छ्रितं काञ्चनं महत् ।
रुक्मिण्याः प्रवरं वासं विहितं विश्वकर्मणा ॥ ४३ ॥

वह सुवर्णमय प्रासाद समस्त प्राणियोंके लिये मनोहर था। उसके ऊँचे शिखरपर सुवर्ण मढ़ा गया था; जिससे वह मेरु पर्वतके उत्तुङ्ग शृङ्गकी शोभा धारण करता था। विश्व-कर्माने उस श्रेष्ठ प्रासादको महारानी रुक्मिणीके रहनेके लिये बनाया था ॥ ४२-४३ ॥

सत्यभामा पुनर्वेश्म यदावसत पाण्डुरम् ।
विचित्रमणिसोपानं तद् विदुर्भोगवानिति ॥ ४४ ॥
विमलादित्यवर्णाभिः पताकाभिरलंकृतम् ।

सत्यभामा जिस भवनमें निवास करती थीं, वह श्वेत वर्णका था। उसमें विचित्र मणियोंके सोपान बनाये गये थे। उसे सब प्रकारके भोगोंसे सम्पन्न समझा जाता था। निर्मल सूर्यके समान तेजस्विनी पताकाएँ उस मनोरम प्रासादकी शोभा बढ़ाती थीं ॥ ४४½ ॥

व्यक्तसंजवनोद्देशो यश्चतुर्दिङ्महाध्वजः ॥ ४५ ॥
स च प्रासादमुख्योऽथ जाम्बवत्या विभूषितः ।
प्रभयाभ्यभवत् सर्वांस्तानन्यो भास्करो यथा ॥ ४६ ॥

जिसके बाहर-भीतरका प्रदेश प्रतिक्षण अभिनव रूप-सौन्दर्यसे युक्त प्रतीत होता था और जिसमें चारों ओर बड़ी-बड़ी ध्वजाएँ फहरा रही थीं। उस मुख्य प्रासादको जाम्बवतीदेवी सुशोभित करती थीं, वह दूसरे सूर्यकी भाँति अन्य सब प्रासादोंको अपनी प्रभासे तिरस्कृत कर रहा था ॥ ४५-४६ ॥

उद्यद्भास्करवर्णाभस्तयोरन्तरमाश्रितः ।
विश्वकर्मकृतो दिव्यः कैलासशिखरोपमः ॥ ४७ ॥

उसकी कान्ति उदयकालके सूर्यकी प्रभाके समान थी। वह रुक्मिणी और सत्यभामाके प्रासादोंके बीचमें बना था। विश्वकर्माद्वारा बनाया गया वह दिव्य प्रासाद कैलास-शिखरके समान शोभा पाता था ॥ ४७ ॥

जाम्बूनद इवादीप्तः प्रदीप्तज्वलनो यथा ।
सागरप्रतिमोऽतिष्ठन्मेरुरित्यभिविश्रुतः ॥ ४८ ॥
तस्मिन् गान्धारराजस्य दुहिता कुलशालिनी ।
गान्धारी भरतश्रेष्ठ केशवेन निवेशिता ॥ ४९ ॥

भरतश्रेष्ठ ! जो जाम्बूनद सुवर्ण तथा प्रज्वलित अग्निके समान देदीप्यमान था, विशालतामें जिसकी समुद्रसे उपमा दी जाती थी, जो मेरुके नामसे विख्यात होकर खड़ा था, उस महान् प्रासादमें गान्धार-राजकी कुलीन कन्या नाग्नजिती सत्या अथवा गान्धारीको भगवान् श्रीकृष्णने ठहराया था ॥ ४८-४९ ॥

पद्मकूल इति ख्यातं पद्मवर्णं महाप्रभम् ।
सुभीमाया महाकूटं वेश्मातिरुचिरप्रभम् ॥ ५० ॥

पद्मकूल नामसे विख्यात, पद्मके समान वर्णवाला, अत्यन्त प्रकाशमान, महान् शिखरके समान ऊँचा और अत्यन्त रुचिर प्रभासे प्रकाशित जो भवन था, वह सुभीमा देवीका निवास-स्थान बना था ॥ ५० ॥

सूर्यप्रभस्तु प्रासादः सर्वकामगुणैर्युतः ।
लक्ष्मणाया नृपश्रेष्ठ निर्दिष्टः शार्ङ्गधन्वना ॥ ५१ ॥

नृपश्रेष्ठ ! जो प्रासाद समस्त मनोवाञ्छित गुणोंसे युक्त तथा सूर्यके समान प्रकाशमान था, उसे शार्ङ्गधन्वा श्रीकृष्णने लक्ष्मणाका आवास निश्चित किया था ॥ ५१ ॥

वैडूर्यमणिवर्णाभः प्रासादो हरितप्रभः ।
यं विदुः सर्वभूतानि परमित्येव भारत ॥ ५२ ॥
वासं तं मित्रविन्दाया देवर्षिगणपूजितम् ।
महिष्या वासुदेवस्य भूषणं तेषु वेश्मसु ॥ ५३ ॥

भारत ! जो हरितकान्तिसे प्रकाशित तथा वैडूर्यमणि-की-सी आभासे उद्भासित था, जिसे समस्त प्राणी सबसे उत्तम समझते थे, वह प्रासाद वासुदेवकी पटरानी मित्रविन्दाका निवास था। देवता तथा ऋषियोंके समुदाय भी उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते थे। वह उन सभी भवनोंमें भूषण-रूप था ॥ ५२-५३ ॥

यस्तु प्रासादमुख्योऽत्र विहितो विश्वकर्मणा ।
अतीव रम्यरम्योऽसौ धिष्ठितः पर्वतो यथा ॥ ५४ ॥
सुवार्ताया निवासः स प्रशस्तः सर्वदैवतैः ।
महिष्या वासुदेवस्य केतुमानिति विश्रुतः ॥ ५५ ॥

द्वारकामें विश्वकर्माद्वारा बनाया गया जो प्रमुख प्रासाद था, जो अत्यन्त रमणीयसे भी रमणीय प्रतीत होता था और पर्वतके समान खड़ा था, वह श्रीकृष्णमहिषी सुवार्ताका निवास-भवन था। सम्पूर्ण देवता उसकी प्रशंसा करते थे। वह केतुमान् नामसे विख्यात था ॥ ५४-५५ ॥

यस्तु प्रासादमुख्यो वै यं त्वष्टा विदधे स्वयम् ।
योजनायतविष्कम्भः सर्वरत्नमयः शुभः ॥ ५६ ॥
स श्रीमान् विरजा नाम व्यराजत् तत्र सुप्रभः ।
उपस्थानगृहं यत्र केशवस्य महात्मनः ॥ ५७ ॥

जो सभी प्रासादोंमें श्रेष्ठ था, जिसे साक्षात् विश्वकर्माने बनाया था, जिसकी लंबाई-चौड़ाई एक-एक योजन थी, जो सभी रत्नोंद्वारा निर्मित एवं शुभ-स्वरूप था, वह उत्तम प्रभासे युक्त कान्तिमान् प्रासाद वहाँ 'विरजा' नामसे विख्यात होकर बड़ी शोभा पा रहा था। उसीमें महात्मा केशवका उपस्थान-गृह था ॥ ५६-५७ ॥

तस्मिन् सुविहिताः सर्वे रुक्मदण्डाः पताकिनः ।
सदने वासुदेवस्य मार्गसंजवनध्वजाः ॥ ५८ ॥
रत्नजालानि दिव्यानि तत्रैव च निवेशिताः ।
आहृत्य यदुसिंहेन वैजयन्तोऽचलो महान् ॥ ५९ ॥

वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णके उस सुन्दर सदनमें जो मार्गका ज्ञान करानेवाले ध्वज लगे थे, उन सबके दण्ड सुवर्णमय बनाये गये थे तथा उनपर पताकाएँ फहराती रहती थीं। यदुसिंह श्रीकृष्णने वहाँ दिव्य रत्नोंके समूह संचित किये थे तथा वैजयन्त नामक महान् पर्वत वहाँ लाकर स्थापित किया था ॥

हंसकूटस्य यच्छृङ्गमिन्द्रद्युम्नसरः प्रति ।
षष्टितालसमुत्सेधमर्धयोजनमायतम् ॥ ६० ॥

इन्द्रद्युम्न सरोवरके पास हंसकूट पर्वतका जो शिखर था, वह साठ ताड़के बराबर ऊँचा और आधा योजन चौड़ा था ॥

सकिन्नरमहानागं तदप्यमिततेजसा ।
पश्यतां सर्वभूतानामानीतं लोकविश्रुतम् ॥ ६१ ॥

अमित तेजस्वी विश्वकर्मा समस्त प्राणियोंके देखते-देखते उस विश्वविख्यात पर्वतशिखरको किन्नर और बड़े-बड़े नागों-सहित वहाँ ले आये थे ॥ ६१ ॥

आदित्यपथगं यत् तु मेरोः शिखरमुत्तमम् ।
जाम्बूनदमयं दिव्यं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥ ६२ ॥
तदप्युत्पाट्य कृष्णार्थमानीतं विश्वकर्मणा ।
भ्राजमानमतीवाग्र्यं सर्वौषधिसमन्वितम् ॥ ६३ ॥

मेरुपर्वतका उत्तम शिखर जो सूर्यके मार्गतक पहुँचा हुआ है तथा स्वरूपसे जाम्बूनदमय, दिव्य एवं त्रिभुवन-विख्यात है, उसे भी श्रीकृष्णके लिये विश्वकर्मा उखाड़ लाये थे। वह सब प्रकारकी ओषधियोंसे अलंकृत, प्रकाशमान तथा अत्यन्त उत्तम था ॥ ६२-६३ ॥

तदिन्द्रवचनात् त्वष्टा कार्यहेतोः समानयत् ।
पारिजातश्च तत्रैव केशवेनाहृतः स्वयम् ॥ ६४ ॥

विश्वकर्मा इन्द्रके कहनेसे कार्यवश उसे वहाँ ले आये थे। वहीं साक्षात् श्रीकृष्ण पारिजातका वृक्ष भी ले आये थे ॥

नीयमाने तु तत्रासीद् युद्धमद्भुतकर्मणः ।
कृष्णस्य येऽस्यरक्षंस्तु देवाः पादपमुत्तमम् ॥ ६५ ॥

पारिजातके लाये जाते समय अद्भुतकर्मा श्रीकृष्णका उन देवताओंके साथ घोर युद्ध हुआ, जो उस उत्तम वृक्षकी रक्षा कर रहे थे ॥ ६५ ॥

पुण्डरीकशतैर्जुष्टं विमानैश्च हिरण्मयैः ।
विहिता वासुदेवार्थे रत्नपुष्पफलद्रुमाः ॥ ६६ ॥

वह वृक्ष सैकड़ों कमलोंसे पूजित तथा सुवर्णमय विमानोंसे सेवित एवं सुरक्षित था। विश्वकर्माने श्रीकृष्णके लिये रत्नमय फूल और फल देनेवाले वृक्षोंका निर्माण किया था ॥ ६६ ॥

पद्मखण्डजलोपेता रत्नसौगन्धिकोत्पलाः ।
मणिहेमप्लवाकीर्णाः पुष्करिण्यः सरांसि च ॥ ६७ ॥

उन्होंने बहुत-सी पोखरियाँ और सरोवर भी बनाये थे, जिनके जल कमलसमूहोंसे सुशोभित थे, उनमें रत्नमय सौगन्धिक कमल खिले हुए थे। मणि एवं सुवर्णसे जटित नौकाएँ उनमें सब ओर व्याप्त थीं ॥ ६७ ॥

तासां परमकूलानि शोभयन्ति महाद्रुमाः ।
शालास्तालाः कदम्बाश्च शतशाखाश्च रौहिणाः ॥६८॥
ये च हैमवता वृक्षा ये च मेरुरुहास्तथा ।
आहृत्य यदुसिंहार्थे विहिता विश्वकर्मणा ॥ ६९ ॥

उन पुष्करिणियोंके उत्तम तटोंको बड़े-बड़े वृक्ष सुशोभित करते थे। शाल, ताल, कदम्ब, सैकड़ों शाखाओंवाले वटवृक्ष तथा जो हिमालय और मेरुपर्वतपर होनेवाले वृक्ष हैं, उन सबको विश्वकर्माने वहाँसे लाकर यदुसिंह श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिये द्वारकामें स्थापित कर दिया था ॥ ६८-६९ ॥

रक्तपीतारुणश्यामाः श्वेतपुष्पाश्च पादपाः ।
सर्वर्तुफलसम्पन्नास्तेषु काननसन्धिषु ॥ ७० ॥

वे वृक्ष लाल, पीले, अरुण और श्याम रंगके थे, उनके फूल श्वेत वर्णके थे। वहाँ वन-उपवनोंकी संधियोंमें जो वृक्ष लगे थे, वे सभी ऋतुओंके फलोंसे सम्पन्न थे ॥ ७० ॥

समकूलजलोपेताः शान्तशार्करवालुकाः ।
तस्मिन् पुरवरे नद्यः प्रसन्नसलिला ह्रदाः ॥ ७१ ॥

उस श्रेष्ठ नगरमें जो नदियाँ थीं, वे समान तट और जलसे सुशोभित थीं, उनके कंकड़ और बालू नीचे बैठ गये थे, वहाँ जो ह्रद (कुण्ड या जलाशय) थे, उनका जल बहुत स्वच्छ था ॥ ७१ ॥

पुष्पाकुलजलोपेता नानाद्रुमलताकुलाः ।
अपराश्चाभवन् नद्यो हेमशार्करवालुकाः ॥ ७२ ॥

वहाँ जो दूसरी नदियाँ थीं, उनके बालू और कंकड़ सुवर्णमय थे तथा वे पुष्पवासित जलसे भरी हुई थीं। उनके तटोंपर नाना प्रकारके वृक्ष और लताएँ फैली हुई थीं ॥७२॥

मत्तबर्हिणसंघैश्च कोकिलैश्च सदामदैः ।
बभूवुः परमोपेतास्तस्यां पुर्यां च पादपाः ॥ ७३ ॥

उस पुरीमें जो जो वृक्ष थे, वे मदमत्त मयूरों तथा सदा मतवाले बने रहनेवाले कोकिलोंसे परम शोभायमान थे ॥७३॥

तत्रैव गजयूथानि पुरे गोमहिषास्तथा ।
निवासश्च कृतस्तत्र वराहमृगपक्षिभिः ॥ ७४ ॥

उस द्वारकापुरीमें ही हाथियोंके यूथ और गाय-भैंसोंके झुंड भी रहते थे। वराहों, मृगों और पक्षियोंने भी वहाँ अपना निवास बना रक्खा था ॥ ७४ ॥

पुर्यां तस्यां तु रम्यायां प्राकारो वै हिरण्मयः ।
व्यक्तः किष्कुशतोत्सेधो विहितो विश्वकर्मणा॥ ७५ ॥

उस रमणीय पुरीका परकोटा स्पष्ट ही सोनेका बना हुआ था। विश्वकर्माने उसे सौ हाथ ऊँचा बनाया था ॥ ७५ ॥

अतीव रम्यः सोऽथासीद् वेष्टितः पर्वतो यथा ।
ते च ते च महाशैलाः सरितश्च सरांसि च ।
परिक्षिप्तानि भौमेन वनान्युपवनानि च ॥ ७६ ॥

वह परकोटा बहुत ही सुन्दर एवं रमणीय था और घेरा बने हुए पर्वतके समान जान पड़ता था। विश्वकर्माने उस परकोटेके द्वारा पूर्वोक्त बड़े-बड़े पर्वतों, सरिताओं, सरोवरों, वनों और उपवनोंको भी घेर रखा था ॥ ७६ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि द्वारकाविशेषनिर्माणं नामाष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें द्वारकाका विशेषरूपसे निर्माण-विषयक अट्ठानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९८ ॥

नवनवतितमोऽध्यायः

श्रीकृष्णका द्वारका तथा अन्तःपुरमें प्रवेश और मणिपर्वत एवं पारिजातको यथोचित स्थानमें स्थापित करना

वैशम्पायन उवाच

एवमालोकयानः स द्वारकां वृषभेक्षणः।
अपश्यत् स्वगृहं कृष्णः प्रासादशतशोभितम्॥ १॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! वृषभके समान विशाल नेत्रोंवाले श्रीकृष्णने इस प्रकार द्वारकाका निरीक्षण करते हुए अपने आवास-स्थानको देखा, जो सैकड़ों प्रासादोंसे सुशोभित था॥ १॥

मणिस्तम्भसहस्राणामयुतैर्विवृतं शतैः।
तोरणैर्ज्वलनप्रख्यैर्मणिविद्रुमराजतैः॥ २॥

उसमें मणियोंके बने हुए लाखों-करोड़ों खंभे लगे थे, जिनकी प्रभासे वहाँका सब कुछ सुस्पष्ट दिखायी देता था। वहाँके बाहरी फाटक मणि-मूँगे एवं चाँदीके बने हुए थे और प्रज्वलित अग्निके समान उद्भासित होते थे॥ २॥

तत्र तत्र प्रभास्वद्भिश्चित्रकाञ्चनवेदिकैः।
प्रासादस्तत्र सुमहान् कृष्णोपस्थानिकोऽभवत्॥ ३॥

जहाँ-तहाँ प्रकाशित होनेवाले उन फाटकोंमें सोनेकी विचित्र वेदिकाएँ बनी हुई थीं। उन सबसे उद्दीप्त दिखायी देनेवाला श्रीकृष्णका वह महान् प्रासाद उनका उपस्थान-गृह था॥ ३॥

स्फाटिकस्तम्भविवृतो विस्तीर्णः सर्वकाञ्चनः।
पद्माकुलजलोपेता रक्तसौगन्धिकोत्पलाः॥ ४॥

उसमें स्फटिकमणिके खंभे लगे हुए थे, जिनसे वह प्रासाद प्रकाशित होता था। उसका विस्तार बहुत बड़ा था। वहाँकी सभी वस्तुएँ सोनेकी बनी हुई थीं, वहाँकी बावड़ियों-का जल कमलोंसे आच्छादित था, उनमें लाल रंगके सौगन्धिक कमल खिले हुए थे॥ ४॥

मणिहेमनिभाश्चित्रा रत्नसोपानभूषिताः।
मत्तबर्हिणजुष्टाश्च कोकिलैश्च सदामदैः॥ ५॥
बभूवुः परमोपेता वाप्यश्च विकचोत्पलाः।

वे बावड़ियाँ मणि और सुवर्णके समान विचित्र शोभासे सम्पन्न दिखायी देती थीं, रत्नमयी सीढ़ियोंसे अलंकृत थीं, मतवाले मोर और सदा मदमत्त रहनेवाले कोकिल उनका सेवन करते थे, विकसित कमलोंसे आच्छादित होनेके कारण वे उत्तम शोभासे सम्पन्न हो रही थीं॥ ५½॥

विश्वकर्मकृतः शैलः प्राकारस्तस्य वेश्मनः॥ ६॥
व्यक्तकिष्कुशतोत्सेधः परिखापरिवेष्टितः।
तद् गृहं वृष्णिसिंहस्य निर्मितं विश्वकर्मणा॥ ७॥

श्रीकृष्णके उस भवनका परकोटा विश्वकर्माने प्रस्तरसे बनाया था। उसकी ऊँचाई सौ हाथकी थी और वह खाइयोंसे घिरा हुआ था। वृष्णिवंशके सिंह श्रीकृष्णके उस भवनका निर्माण साक्षात् विश्वकर्माने किया था॥ ६-७॥

महेन्द्रसदृशं वेश्म समन्तादर्धयोजनम्।
ततस्तं पाण्डुरं शौरिर्मूर्ध्नि तिष्ठन् गरुत्मतः॥ ८॥
प्रीतः शङ्खमुपाध्मासीद् द्विषतां रोमहर्षणम्।
तस्य शङ्खस्य शब्देन सागरश्चुक्षुभे भृशम्।
ररास च नभः कृत्स्नं तच्चित्रमभवत् तदा॥ ९॥

सब ओरसे आधा योजन विस्तृत वह श्रीकृष्णका महल देवराज इन्द्रके भवन-सा मनोहर था। तदनन्तर गरुड़के ऊपर बैठे हुए भगवान् श्रीकृष्णने मन-ही-मन प्रसन्न होकर श्वेतवर्णवाले अपने उस पाञ्चजन्य शङ्खको बजाया, जो शत्रुओंके रोंगटे खड़े कर देनेवाला था। उस शङ्खके शब्दसे समुद्र विक्षुब्ध हो उठा तथा सम्पूर्ण आकाश-मण्डल गूँजने लगा, उस समय वहाँ यह अद्भुत बात हुई॥ ८-९॥

पाञ्चजन्यस्य निर्घोषं संश्रुत्य कुकुरान्धकाः।
विशोकाः समपद्यन्त गरुडस्य च दर्शनात्॥ १०॥

पाञ्चजन्यका गम्भीर घोष सुनकर और गरुड़का दर्शन पाकर कुकुर तथा अन्धकवंशी यादव शोकरहित हो गये॥

शङ्खचक्रगदापाणिं गरुडस्योपरि स्थितम्।
दृष्ट्वा जहृषिरे पौरा भास्करोपमतेजसम्॥ ११॥

भगवान् श्रीकृष्णके हाथोंमें शङ्ख, चक्र और गदा आदि आयुध सुशोभित थे। वे गरुड़के ऊपर बैठे थे। उनका तेज भगवान् भास्करके समान था। उन्हें देखकर समस्त पुरवासियोंको बड़ा हर्ष हुआ॥ ११॥

ततस्तूर्यप्रणादश्च भेरीणां च महास्वनाः।
जज्ञिरे सिंहनादाश्च सर्वेषां पुरवासिनाम्॥ १२॥

तदनन्तर तुरही और भेरियाँ बज उठीं, उनकी आवाज बहुत दूरतक फैल गयी, फिर समस्त पुरवासी भी सिंह-नाद कर उठे॥ १२॥

ततस्ते सर्वदाशार्हाः सर्वे च कुकुरान्धकाः।
प्रीयमाणाः समाजग्मुरालोक्य मधुसूदनम्॥ १३॥

तत्पश्चात् सभी दशार्हवंशी यादव तथा कुकुर और अन्धकवंशके सब लोग भगवान् मधुसूदनका दर्शन करके बड़े प्रसन्न हुए और सभी उनकी अगवानीके लिये आ गये॥ १३॥

वासुदेवं पुरस्कृत्य शङ्खतूर्यरवैः सह ।
उग्रसेनो ययौ राजा वसुदेवनिवेशनम् ॥ १४ ॥

राजा उग्रसेन भगवान् वासुदेवको आगे करके शङ्ख और तूर्य आदि वाद्योंकी ध्वनिके साथ वसुदेवके महलतक उन्हें पहुँचानेके लिये गये ॥ १४ ॥

आनन्दिनी पर्यचरत् स्वेषु वेश्मसु देवकी ।
रोहिणी च यशोदा च आहुकस्य च याः स्त्रियः ॥ १५ ॥

वहाँ आनन्दमें डूबी हुई देवकी, रोहिणी, यशोदा तथा उग्रसेनकी रानियोंने अपने-अपने भवनोंमें भगवान् श्रीकृष्ण-का विशेष सत्कार किया ॥ १५ ॥

ततः कृष्णः सुपर्णेन स्वं निवेशनमभ्यगात् ।
चचार च यथोद्देशमीश्वरानुचरो हरिः ॥ १६ ॥

तदनन्तर श्रीकृष्ण गरुड़के द्वारा अपने महलमें गये । इन्द्र आदि ऐश्वर्यशाली देवता जिनके अनुचर हैं, वे श्रीहरि अपने अभीष्ट स्थानपर जा पहुँचे ॥ १६ ॥

अवतीर्य गृहद्वारि कृष्णस्तु यदुनन्दनः ।
यथार्हं पूजयामास यादवान् यादवर्षभः ॥ १७ ॥

घरके मुख्य द्वारपर उतरकर यादवशिरोमणि यदुनन्दन श्रीकृष्णने उन यादवोंका यथायोग्य सत्कार किया ॥ १७ ॥

रामाहुकगदाक्रूरप्रद्युम्नादिभिरर्चितः ।
प्रविवेश गृहं शौरिरादाय मणिपर्वतम् ॥ १८ ॥
तं च शक्रस्य दयितं पारिजातं महाद्रुमम् ।
प्रवेशयामास गृहं प्रद्युम्नो रुक्मिणीसुतः ॥ १९ ॥

बलराम, उग्रसेन, गद, अक्रूर और प्रद्युम्न आदिसे सम्मानित हो श्रीकृष्णने अपने गृहमें प्रवेश किया । उस समय रुक्मिणी-नन्दन प्रद्युम्नने मणिपर्वत तथा इन्द्रके प्रिय महान् वृक्ष पारिजातको लेकर भगवान्‌के महलमें पहुँचा दिया ॥१८-१९॥

तेऽन्योन्यं ददृशुर्वीरा देहबन्धानमानुषान् ।
पारिजातप्रभावेण ततो मुमुदिरे जनाः ॥ २० ॥

द्वारकावासी वीरोंने वहाँ पारिजात वृक्षके प्रभावसे एक दूसरेके देह-सम्बन्धको अमानुष (दिव्य) देखा, इससे उन्हें बड़ा हर्ष हुआ ॥ २० ॥

तैः स्तूयमानो गोविन्दः प्रहृष्टैर्यादवर्षभैः ।
प्रविवेश गृहं श्रीमान् विहितं विश्वकर्मणा ॥ २१ ॥

हर्षमें भरे हुए वे यादवशिरोमणि वीर उन भगवान् गोविन्दकी स्तुति करने लगे । उनकी स्तुति सुनते हुए वे श्रीमान् भगवान् विश्वकर्माके बनाये हुए उस गृहमें प्रविष्ट हुए ॥ २१ ॥

ततोऽन्तःपुरमध्ये तं सश्रृङ्गमणिपर्वतम् ।
न्यवेशयदमेयात्मा वृष्णिभिः सहितोऽच्युतः ॥ २२ ॥
तं च दिव्यं द्रुमश्रेष्ठं पारिजातममित्रजित् ।
अर्च्यमर्चितमव्यग्रमिष्टे देशे न्यवेशयत् ॥ २३ ॥

तदनन्तर अमेय आत्मबलसे सम्पन्न शत्रुविजयी भगवान् अच्युतने वृष्णिवंशियोंको साथ लेकर शिखरसहित मणिपर्वत-को अन्तःपुरमें रक्खा तथा उस दिव्य, पूज्य एवं पूजित वृक्ष-प्रवर पारिजातको भी शान्तभावसे अभीष्ट स्थानमें स्थापित कर दिया ॥ २२-२३ ॥

अनुज्ञाप्य ततो ज्ञातीन् केशवः परवीरहा ।
ताः स्त्रियः पूजयामास संहृता नरकेण याः ॥ २४ ॥

तत्पश्चात् शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले केशवने समस्त भाई-बन्धुओंकी आज्ञा ले उन सब स्त्रियोंका समादर किया, जो नरकासुरद्वारा हरकर लायी गयी थीं ॥ २४ ॥

वस्त्रैराभरणैर्दिव्यैर्दासीभिर्धनसंचयैः ।
हारैश्चन्द्रांशुसंकाशैर्मणिभिश्च महाप्रभैः ॥ २५ ॥

दिव्य वस्त्र, दिव्य आभूषण, दासीगण, धनकी राशि, चन्द्रकिरणोंके समान श्वेत हीरकहार तथा महान् प्रभा-पुञ्जसे प्रकाशित मणियोंद्वारा श्रीहरिने उनका सत्कार किया ॥ २५ ॥

पूर्वमभ्यर्चिताश्चैव वसुदेवेन ताः स्त्रियः ।
देवक्या सह रोहिण्यां रेवत्या चाहुकेन च ॥ २६ ॥

उनसे भी पहले वसुदेवजी, देवकी, रोहिणी, रेवती तथा उग्रसेनने भी उन सबका समादर किया था ॥ २६ ॥

सत्यभामोत्तमा स्त्रीणां सौभाग्येनाभवत् तदा ।
कुटुम्बस्येश्वरी त्वासीद् रुक्मिणी भीष्मकात्मजा॥२७॥

उस समय सौभाग्यकी दृष्टिसे सत्यभामा सभी स्त्रियोंमें श्रेष्ठ मानी गयी; परंतु कुटुम्बकी स्वामिनी तो भीष्मक-नन्दिनी महारानी रुक्मिणी ही थीं ॥ २७ ॥

तासां यथार्हहर्म्याणि प्रासादशिखराणि च ।
आदिदेश गृहान् कृष्णः पारिबर्हांश्च पुष्कलान् ॥ २८ ॥

श्रीकृष्णने उन सब रानियोंको यथायोग्य महल, अटारी, प्रासादशिखर, गृह तथा बहुत-से उपहार अर्पित किये ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि द्वारकाप्रवेशनं नाम नवनवतितमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें द्वारकाप्रवेशविषयक निन्यानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९९ ॥

शततमोऽध्यायः

श्रीकृष्णका समस्त यादवोंसे मिलकर उन्हें सम्मानित करनेके लिये सभामें बुलाना

वैशम्पायन उवाच

ततः सम्पूज्य गरुडं वासुदेवोऽनुमान्य च।
सखिवच्चोपगृह्यैनमनुजज्ञे गृहं प्रति ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर भगवान् वासुदेवने गरुड़की पूजा और समादर करके उन्हें एक मित्रकी भाँति अपनाकर घर लौटनेकी आज्ञा दी ॥ १ ॥

सोऽनुज्ञातो हि सत्कृत्य प्रणम्य च जनार्दनम्।
ऊर्ध्वमाचक्रमे पक्षी यथेष्टं गगनेचरः ॥ २ ॥

आकाशचारी पक्षी गरुड़ सत्कारपूर्वक जानेकी आज्ञा पाकर भगवान् जनार्दनको प्रणाम करके अपनी इच्छाके अनुसार ऊपरको उड़े ॥ २ ॥

स पक्षवातसंक्षुब्धं समुद्रं मकरालयम्।
कृत्वा वेगेन महता ययौ पूर्वमहोदधिम् ॥ ३ ॥

वे अपने पंखोंकी हवासे मकरालय समुद्रको विक्षुब्ध करके बड़े वेगसे पूर्ववर्ती महासागरकी ओर चले ॥ ३ ॥

कृत्यकाले उपस्थास्य इत्युक्त्वा गरुडे गते।
कृष्णो ददर्श पितरं वृद्धमानकदुन्दुभिम् ॥ ४ ॥

'आवश्यकताके समय मैं पुनः उपस्थित हो जाऊँगा' ऐसा कहकर जब गरुड़ चले गये, तब श्रीकृष्णने अपने बूढ़े पिता आनकदुन्दुभि (वसुदेव) का दर्शन किया ॥ ४ ॥

उग्रसेनं च राजानं बलदेवं च सात्यकिम्।
काश्यं सान्दीपनिं चैव ब्रह्मगार्ग्यं तथैव च ॥ ५ ॥

तत्पश्चात् वे राजा उग्रसेन, भाई बलदेव, सात्यकि, काश्यदेशमें उत्पन्न हुए गुरु सान्दीपनि तथा ब्रह्मगार्ग्यसे भी मिले ॥ ५ ॥

अन्यांश्च वृद्धान् वृष्णीनां तांश्च भोजान्धकांस्तथा।
रत्नप्रवेकैर्दाशार्हान् वीर्यलब्धैस्तथार्चयत् ॥ ६ ॥

फिर दूसरे-दूसरे बड़े-बूढ़े वृष्णिवंशियों, भोजों और अन्धकोंसे भी उन्होंने भेंट की । तत्पश्चात् अपने पराक्रमद्वारा प्राप्त हुए रत्नसमूहोंसे उन्होंने समस्त यादवोंका सत्कार किया ॥ ६ ॥

हता ब्रह्मद्विषः सर्वे जयन्त्यन्धकवृष्णयः।
रणात् प्रतिनिवृत्तोऽयमक्षतो मधुसूदनः ॥ ७ ॥

समस्त ब्रह्मद्रोही असुर मारे गये । अन्धक और वृष्णिवंशके वीरोंकी विजय हुई तथा ये भगवान् मधुसूदन युद्धसे सकुशल लौट आये, इनके शरीरपर कहीं कोई चोट नहीं आयी है ॥ ७ ॥

इति चत्वररथ्यासु द्वारवत्यां सुपूजितः।
चाक्रिको घोषयामास पुरुषो मृष्टकुण्डलः ॥ ८ ॥

इस प्रकार विशुद्ध सोनेके कुण्डलोंसे अलंकृत तथा राजाज्ञा घोषित करनेवाला चाक्रिक पुरुष भलीभाँति सम्मानित हो द्वारकाके चौराहों और सड़कोंपर राजघोषणा सुनाने लगा ॥

ततः सान्दीपनिं पूर्वमभिगम्य जनार्दनः।
ववन्दे वृष्णिनृपतिमाहुकं विनयान्वितः ॥ ९ ॥

तत्पश्चात् विनयशील जनार्दनने पहले गुरु सान्दीपनिके पास जा उनके चरण छूकर फिर वृष्णिवंशी नरेश राजा उग्रसेनको प्रणाम किया ॥ ९ ॥

तथाश्रुपरिपूर्णाक्षमानन्दागतचेतसम् ।
ववन्दे सह रामेण पितरं वासवानुजः ॥ १० ॥

इसके बाद इन्द्रके छोटे भाई श्रीकृष्णने बलरामजीके साथ जाकर पिताके चरणोंमें प्रणाम किया । उस समय पिता वसुदेवके नेत्रोंमें प्रेमके आँसू भर आये और उनका हृदय आनन्दके समुद्रमें निमग्न हो गया ॥ १० ॥

उपगम्य तथा शेषान् सत्कृत्य च यथार्हतः।
सर्वेषां नाम जग्राह दाशार्हाणामधोक्षजः ॥ ११ ॥

फिर शेष यादवोंके पास जाकर उनका यथायोग्य सत्कार करके भगवान् श्रीकृष्णने सभी दशार्हवंशियोंके नाम लेकर उन्हें बुलाया ॥ ११ ॥

ततः सर्वाणि दिव्यानि सर्वरत्नमयानि च।
आसनाग्र्याणि विविशुरुपेन्द्रप्रमुखास्तदा ॥ १२ ॥

तब श्रीकृष्ण आदि सब यादव उस समय उन सभी सर्वरत्नमय दिव्य एवं श्रेष्ठ आसनोंपर बैठे ॥ १२ ॥

ततस्तद्धनमक्षय्यं किङ्करैर्यत्समाहृतम्।
तत्सभामानयामासुः पुरुषाः कृष्णशासनात् ॥ १३ ॥

तदनन्तर किङ्कर नामक राक्षस जिसे ले आये थे, उस अक्षय धनको श्रीकृष्णकी आज्ञासे सेवकगण सभामें ले आये ॥

ततः सम्मानयामास दाशार्हांश्च यदूत्तमः।
सर्वान् दुन्दुभिशब्देन पूजयिष्यञ्जनार्दनः ॥ १४ ॥

इसके बाद यदुकुलतिलक जनार्दनने समस्त दाशार्होंका दुन्दुभिनादके द्वारा पूजन करते हुए उन सबका सम्मान किया ॥ १४ ॥

तामासनवतीं रम्यां मणिविद्रुमतोरणाम्।
सभां सर्वदशार्हास्ते विविशुः कृष्णशासनात् ॥ १५ ॥

श्रीकृष्णकी आज्ञासे वे समस्त यादव उस रमणीय सभामें प्रविष्ट हुए, जिसमें सदस्योंके बैठनेके लिये आसन सजाये गये

थे तथा जिसके बाहरी दरवाजे मणि और मूँगोंके बने हुए थे ॥ १५ ॥

ततः पुरुषसिंहैर्या यदुभिः सर्वतो वृता ।
सर्वार्थगुणसम्पन्ना सा सभा भरतर्षभ ।
शुशुभेऽभ्यधिकं शुभ्रा सिंहैर्गिरिगुहा यथा ॥ १६ ॥

भरतभूषण ! वह शुभ सभा सब ओरसे पुरुषसिंह यादवोंद्वारा भरी हुई एवं सभी पदार्थों और गुणोंसे सम्पन्न थी। जैसे सिंहोंसे पर्वतकी गुफा सुशोभित होती है, उसी प्रकार उन यादवोंसे उस सभाकी अधिकाधिक शोभा हो रही थी ॥ १६ ॥

रामेण सह गोविन्दः काञ्चनं महदासनम् ।
उग्रसेनं पुरस्कृत्य भोजवृष्णिपुरस्कृतः ॥ १७ ॥

राजा उग्रसेन तथा भोज और वृष्णिवंशके श्रेष्ठ पुरुषोंको अपने आगे रखकर बलरामसहित भगवान् श्रीकृष्ण सुवर्णके बने हुए विशाल सिंहासनपर आसीन थे ॥ १७ ॥

तत्रोपविष्टांस्तान् वीरान् यथाप्रीति यथावयः ।
समाभाष्य यदुश्रेष्ठानुवाच पुरुषोत्तमः ॥ १८ ॥

वहाँ बैठे हुए उन यदुश्रेष्ठ वीरोंको उनकी अवस्था और प्रीतिके अनुसार सम्बोधित करके पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण उनसे इस प्रकार बोले ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि सभाप्रवेशनं नाम शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें सभाप्रवेशविषयक सौवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०० ॥

एकाधिकशततमोऽध्यायः

श्रीकृष्णद्वारा यादवोंका सत्कार तथा नारदजीका यादवोंकी सभामें श्रीकृष्णके प्रभावका वर्णन करना

श्रीकृष्ण उवाच

भवतां पुण्यकीर्तीनां तपोबलसमाधिभिः ।
अपध्यानाच्च पापात्मा भौमः स नरको हतः ॥ १ ॥

श्रीकृष्णने कहा—यादवो ! आप सब लोग पवित्र कीर्तिवाले हैं, आपकी तपस्या, बल और एकाग्रतासे तथा आपके द्वारा किये गये अनिष्टचिन्तनसे भूमिपुत्र पापात्मा नरकासुर मारा गया ॥ १ ॥

मोक्षितं बन्धनाद् गुप्तं कन्यान्तःपुरमुत्तमम् ।
मणिपर्वतमुत्पाट्य शिखरं चैतदाहृतम् ॥ २ ॥

उसके यहाँ जो सुरक्षित कन्याओंका उत्तम अन्तःपुर था, उसे मैंने बन्धनसे मुक्त किया तथा मणिपर्वतके इस शिखरको उखाड़कर भी मैं यहाँ साथ लेता आया हूँ ॥२॥

अयं धनौघः सुमहान् किङ्करैराहृतो मम ।
ईशा भवन्तो द्रव्यस्य तानुक्त्वा विरराम ह ॥ ३ ॥

किङ्कर नामक राक्षसोंने जिसे मेरे यहाँ पहुँचाया है, वही यह महान् धनराशि आपलोगोंके समक्ष है। आप सभी इस धनके स्वामी हैं। उनसे ऐसा कहकर भगवान् चुप हो गये ॥

तच्छ्रुत्वा वासुदेवस्य भोजवृष्ण्यन्धका वचः ।
जहृषुर्हृष्टरोमाणः पूजयन्तो जनार्दनम् ॥ ४ ॥
ऊचुश्चैनं नृवीरास्ते कृताञ्जलिपुटास्ततः ।

भगवान् वासुदेवका यह वचन सुनकर भोज, वृष्णि और अन्धक-वंशके लोग हर्षमें भर गये। उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया और वे नरवीर भगवान् श्रीकृष्णकी प्रशंसा करते हुए उनसे हाथ जोड़कर बोले—॥ ४½ ॥

नैतच्चित्रं महाबाहो त्वयि देवकिनन्दने ॥ ५ ॥
यत्कृत्वा दुष्करं कर्म देवैरपि दुरासदम् ।
लालयेः स्वजनान् भोगै रत्नैश्च स्वयमर्जितैः ॥ ६ ॥

'महाबाहो ! आप देवकीनन्दनमें ऐसी उदारताका होना आश्चर्यकी बात नहीं है, जो देवताओंके लिये भी दुर्लभ है ऐसा दुष्कर कर्म करके आप अपने ही द्वारा उपार्जित रत्नों और भोगोंसे हम स्वजनोंका लालन करते हैं' ॥ ५-६ ॥

ततः सर्वदशार्हाणामाहुकस्य च याः स्त्रियः ।
प्रीयमाणाः समाजग्मुर्वासुदेवदिदृक्षया ॥ ७ ॥

तदनन्तर सब दशार्हकुलकी स्त्रियाँ तथा राजा उग्रसेन-की रानियाँ बड़ी प्रसन्नताके साथ भगवान् वासुदेवको देखनेके लिये आयीं ॥ ७ ॥

देवकीसप्तमा देव्यो रोहिणी च शुभानना ।
ददृशुः कृष्णमासीनं रामं चैव महाभुजम् ॥ ८ ॥

वसुदेवकी सहदेवा आदि सात देवियाँ, जिनमें सातवीं देवकी थीं और सुन्दर मुखवाली रोहिणी देवी इन सबने वहाँ सिंहासनपर बैठे हुए श्रीकृष्ण तथा महाबाहु बलरामका दर्शन किया ॥ ८ ॥

तौ तु पूर्वमतिक्रम्य रोहिणीमभिवाद्य च ।
अभिवादयतां देवीं देवकीं रामकेशवौ ॥ ९ ॥

बलराम और श्रीकृष्ण दोनों भाइयोंने पहले औरोंको छोड़कर रोहिणीको प्रणाम करनेके अनन्तर देवी देवकीका अभिवादन किया ॥ ९ ॥

१. सहदेवा, शान्तिदेवा, श्रीदेवा, देवरक्षिता, वृकदेवी, उपदेवी और देवकी—ये सात देवककी पुत्रियाँ थीं, जो क्रमशः वसुदेवको ही विवाही गयी थीं।

सा ताभ्यामृषभाक्षाभ्यां पुत्राभ्यां शुशुभेऽम्बिका।
अदितिर्देवमातेव मित्रेण वरुणेन च ॥ १० ॥

माता देवकी वृषभके समान विशाल नेत्रोंवाले उन दोनों पुत्रोंके साथ उसी प्रकार शोभा पाने लगीं, जैसे मित्र और वरुणके साथ देवमाता अदिति सुशोभित होती हैं ॥ १० ॥

ततः प्राप्ता नराग्र्यौ तु तस्याः सा दुहिता तदा।
एकानंशेति यामाहुर्नरा वै कामरूपिणीम् ॥ ११ ॥

उसी समय उन दोनों श्रेष्ठ पुरुषोंके पास यशोदाजीकी वह पुत्री आ पहुँची, जिसे लोग इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली एकानंशा कहते हैं ॥ ११ ॥

तथा क्षणमुहूर्ताभ्यां यथा जज्ञे सुरेश्वरः।
यत्कृते सगणं कंसं जघान पुरुषोत्तमः ॥ १२ ॥

जिसके दिये हुए संकेत और मुहूर्तके अनुसार देवेश्वर श्रीहरिका प्रादुर्भाव हुआ था और जिसके ही कारण पुरुषोत्तम श्रीकृष्णने सेवकोंसहित कंसका वध कर डाला था ॥

सा कन्या ववृधे तत्र वृष्णिसद्मनि पूजिता।
पुत्रवत् पाल्यमाना वै वासुदेवाज्ञया तदा ॥ १३ ॥

वह कन्या वृष्णिवंशियोंके घरमें बड़े आदर-सत्कारके साथ पल रही थी। भगवान् वासुदेवकी आज्ञासे उस समय उसका पुत्रकी भाँति पालन किया जाता था ॥ १३ ॥

एकानंशेति यामाहुरुत्पन्नां मानवा भुवि।
योगकन्यां दुराधर्षां रक्षार्थं केशवस्य ह ॥ १४ ॥

श्रीकृष्णकी रक्षाके लिये भूतलपर उत्पन्न हुई उस दुर्धर्ष योगकन्याको मनुष्य एकानंशा कहते हैं ॥ १४ ॥

यां वै सर्वे सुमनसः पूजयन्ति स्म यादवाः।
देववद् दिव्यपुरुषः कृष्णः संरक्षितो यया ॥ १५ ॥

समस्त यादव प्रसन्न चित्तसे उस देवीकी पूजा करते हैं, जिसने देवतुल्य दिव्य पुरुष श्रीकृष्णकी रक्षा की थी ॥१५॥

तां च तत्रोपसंगम्य प्रियामिव सखीं स्वसाम्।
दक्षिणेन कराग्रेण परिजग्राह माधवः ॥ १६ ॥

वहाँ अपनी प्रिय सखीकी भाँति उस बहिनसे मिलकर श्रीकृष्णने दाहिने हाथसे उसका हाथ अपने हाथमें ले लिया ॥

तथैव रामोऽतिबलः सम्परिष्वज्य भाविनीम्।
मूर्ध्न्युपाघ्राय सव्येन प्रतिजग्राह पाणिना ॥ १७ ॥

उसी प्रकार अत्यन्त बलशाली बलरामजीने उस भामिनी बहिनको हृदयसे लगाकर उसका मस्तक सूँघा और बायें हाथसे उसका हाथ पकड़ लिया ॥ १७ ॥

ददृशुस्ताः स्त्रियो मध्ये भगिनीं रामकृष्णयोः।
रुक्मपद्मव्यग्रकरां श्रियं पद्मालयामिव ॥ १८ ॥

बलराम और श्रीकृष्णके बीचमें खड़ी हुई उनकी उस बहिनको सभी स्त्रियोंने देखा। वह सुवर्णमय कमल हाथमें लिये हुए कमलालया लक्ष्मीकी भाँति सुशोभित होती थी ॥

तथाक्षतमहावृष्ट्या पुष्पैश्च विविधैः शुभैः।
अवकीर्य च लाजैस्ताः स्त्रियो जग्मुर्यथालयम् ॥ १९ ॥

वे स्त्रियाँ अक्षतोंकी बड़ी भारी वर्षा करके नाना प्रकारके माङ्गलिक पुष्प और खील बिखेर कर अपने-अपने घरको चली गयीं ॥ १९ ॥

ततस्ते यादवाः सर्वे पूजयन्तो जनार्दनम्।
उपोपविविशुः प्रीताः प्रशंसन्तोऽद्भुतं कृतम् ॥ २० ॥

तदनन्तर वे समस्त यादव श्रीकृष्णकी पूजा तथा उनके अद्भुत कर्मकी प्रशंसा करते हुए प्रसन्नतापूर्वक उनके पास बैठ गये ॥ २० ॥

पूज्यमानो महाबाहुः पौराणां रतिवर्धनः।
विरराज महाकीर्तिर्देवैरिव स तैः सह ॥ २१ ॥

महान् कीर्तिशाली महाबाहु श्रीकृष्ण पुरवासियोंका प्रेम बढ़ाते हुए उनसे पूजित हो देवताओंके साथ इन्द्रकी भाँति उन सबके साथ विशेष शोभा पाने लगे ॥ २१ ॥

समासीनेषु सर्वेषु यादवेषु जनार्दनम्।
नियोगात् त्रिदशेन्द्रस्य नारदोऽभ्यागमत् सभाम् ॥ २२ ॥

जब समस्त यादव बैठ गये, उस समय इन्द्रकी आज्ञासे देवर्षि नारदजी उस सभामें श्रीकृष्णके पास आये ॥ २२ ॥

सोऽथ सम्पूजितः पूज्यः शूरैस्तैर्यदुपुङ्गवैः।
करं संस्पृश्य स हरेर्विवेश परमासने ॥ २३ ॥

पूज्य देवर्षि नारद उन यादवशिरोमणि शूर-वीरोंसे भलीभाँति पूजित हो भगवान् श्रीकृष्णका हाथ पकड़कर उत्तम आसनपर विराजमान हुए ॥ २३ ॥

सुखोपविष्टस्तान् वृष्णीनुपविष्टानुवाच ह।
सम्प्राप्तं शक्रवचनाज्जानीध्वं मां नरर्षभाः ॥ २४ ॥

स्वयं सुखपूर्वक बैठ जानेपर वहाँ बैठे हुए उन वृष्णिवंशियोंसे वे इस प्रकार बोले—'नरश्रेष्ठ यादवो! तुम यह समझ लो, मैं इन्द्रकी आज्ञासे यहाँ आया हूँ ॥ २४ ॥

शृणुध्वं राजशार्दूलाः कृष्णस्यास्य पराक्रमम्।
यानि कर्माणि कृतवान् बाल्यात्प्रभृति केशवः ॥ २५ ॥

'राजाओंमें सिंहके समान पराक्रमी वीरो! श्रीकृष्णने बचपनसे लेकर अबतक जो-जो कर्म किये हैं, उनके उस पराक्रमका वर्णन सुनो ॥ २५ ॥

उग्रसेनसुतः कंसः सर्वान् निर्मथ्य यादवान्।
राज्यं जग्राह दुर्बुद्धिर्बद्ध्वा पितरमाहुकम् ॥ २६ ॥

'आहुकके दुर्बुद्धि पुत्र कंसने अपने पिताको कैद करके

समस्त यादवोंको रौंदकर मथुराका राज्य अपने अधिकारमें कर लिया था ॥ २६ ॥

समाश्रित्य जरासंधं श्वशुरं कुलपांसनः ।
भोजवृष्ण्यन्धकान् सर्वानवमन्यत दुर्मतिः ॥ २७ ॥

'खोटी बुद्धिवाला वह कुलाङ्गार अपने श्वशुर जरासंधका आश्रय ले भोज, वृष्णि और अन्धक वंशके सब लोगोंका अपमान करता था ॥ २७ ॥

ज्ञातिकार्यं चिकीर्षुस्तु वसुदेवः प्रतापवान् ।
उग्रसेनस्य रक्षार्थं स्वपुत्रं पर्यरक्षत ॥ २८ ॥

'उस समय भाई-बन्धुओंका कार्य सिद्ध करनेकी इच्छासे और उग्रसेनकी रक्षा करनेके लिये प्रतापी वसुदेवने अपने पुत्र श्रीकृष्णकी कंससे रक्षा की ॥ २८ ॥

स गोपैः सह धर्मात्मा मथुरोपवने स्थितः ।
अत्यद्भुतानि कर्माणि कृतवान् मधुसूदनः ॥ २९ ॥

'वसुदेवका वह पुत्र यह धर्मात्मा मधुसूदन ही हैं, जो मथुराके निकटवर्ती वनमें गोपोंके साथ रहे हैं और वहाँ इन्होंने बड़े अद्भुत कर्म किये हैं ॥ २९ ॥

प्रत्यक्षं शूरसेनानां श्रूयते महदद्भुतम् ।
उत्तानेन शयानेन शकटान्तरचारिणा ॥ ३० ॥
राक्षसी निहता रौद्रा शकुनीवेषधारिणी ।
पूतना नाम घोरा सा महाकाया महाबला ॥ ३१ ॥

'वहाँ इनके विषयमें एक बड़ी अद्भुत बात सुनी जाती है, जिसे शूरसेनवासियोंने प्रत्यक्ष देखा है । ये बाल्यावस्थामें छकड़ेके नीचे एक खाटपर उतान सोये थे । उस समय वहाँ पक्षीका वेश धारण करके रहनेवाली एक महाबलशालिनी विशालकाया घोर एवं भयानक राक्षसी पूतना इनके द्वारा मारी गयी ॥ ३०-३१ ॥

विषदिग्धं स्तनं रौद्रं प्रयच्छन्ती जनार्दने ।
ददृशुर्निहतां तां ते राक्षसीं वनगोचराः ॥ ३२ ॥

'वह जनार्दन श्रीकृष्णको अपना विषसे लिप्त भयानक स्तन पिलाना चाहती थी । वहाँ इनके द्वारा मारी गयी उस राक्षसीको वनवासी गोपोंने प्रत्यक्ष देखा था ॥ ३२ ॥

पुनर्जातोऽयमित्याहुरुक्तस्तस्मादधोक्षजः ।
अत्यद्भुतमिदं चासीद् यच्छिशुः पुरुषोत्तमः ॥ ३३ ॥
पादाङ्गुष्ठेन शकटं क्रीडमानो व्यलोडयत् ।

'उस समय वे कहने लगे, इस बालकका पुनर्जन्म हुआ है—इसने अक्ष (गाड़ी) के अधः (नीचे) फिर जन्म पाया है । उनके ऐसा कहनेसे ये बालकृष्ण अधोक्षज नामसे प्रसिद्ध हुए । यह भी बड़ी अद्भुत बात हुई कि शैशवावस्थामें खेलते हुए इन पुरुषोत्तमने पैरके अँगूठेसे धक्का देकर छकड़ेको उलट दिया ॥ ३३½ ॥

दाम्ना चोलूखले बद्धो विप्रकुर्वन् कुमारकम् ॥ ३४ ॥
बभञ्जार्जुनवृक्षौ द्वौ ख्यातो दामोदरस्तदा ।

'कुमारावस्थाकी लीला करते हुए इन्हें एक दिन मैयाने रस्सीसे ओखलीमें बाँध दिया । उसी अवस्थामें उस ओखलीको घसीटते हुए इन्होंने दो अर्जुन वृक्षोंको तोड़ डाला, उस समय दाम (रस्सी) से उदरमें बँधनेके कारण यह दामोदर नामसे विख्यात हुए ॥ ३४½ ॥

कालियश्च महानागो दुराधर्षो महाबलः ॥ ३५ ॥
क्रीडता वासुदेवेन निर्जितो यमुनाह्रदे ।

'यमुनाजीके कुण्डमें निवास करनेवाले दुर्धर्ष एवं महाबली महानाग कालियको इन भगवान् वासुदेवने खेल-खेलमें ही पराजित कर दिया ॥ ३५½ ॥

अक्रूरस्य समक्षं च यन्नागभवने विभुः ॥ ३६ ॥
पूज्यमानं तदा नागैर्दिव्यं वपुरधारयत् ।

'इन भगवान् श्रीहरिने उस दिन अक्रूरकी आँखोंके सामने नागभवनमें नागोंद्वारा पूजित होनेवाले अपने दिव्य रूपको धारण किया था ॥ ३६½ ॥

शीतवातार्दिता गाश्च दृष्ट्वा कृष्णेन धीमता ॥ ३७ ॥
धृतो गोवर्धनः शैलः सप्तरात्रं महात्मना ।
शिशुना वासुदेवेन गवां त्राणार्थमिच्छताम् ॥ ३८ ॥

'बुद्धिमान् वसुदेवपुत्र महात्मा श्रीकृष्ण सरदी और हवासे गौओंको कष्ट पाते देख अपनी रक्षा चाहनेवाली उन गौओंके प्राण बचानेके लिये बाल्यावस्थामें ही लगातार सात रातोंतक गोवर्धन पर्वतको हाथपर उठाये रहे ॥ ३७-३८ ॥

तथोक्षदुष्टोऽतिबलो महाकायो नरान्तकृत् ।
गोपतिर्वासुदेवेन हतोऽरिष्टो महासुरः ॥ ३९ ॥

'उसी प्रकार मनुष्योंका अन्त करनेवाला एक अत्यन्त बलशाली, महाकाय, महान् असुर अरिष्ट, जो साँड़के रूपमें रहता था और साँड़ोंमें सबसे अधिक दुष्ट था, भगवान् वासुदेवके हाथसे मारा गया ॥ ३९ ॥

धेनुकः स महाकायो दानवः सुमहाबलः ।
निहतो वासुदेवेन गवां त्राणाय दुर्मतिः ॥ ४० ॥

'वह महाबली और विशालकाय दानव दुर्बुद्धि धेनुक भी गौओंकी रक्षाके लिये ही वसुदेवनन्दन बलरामके हाथसे मारा गया ॥ ४० ॥

सुनामानममित्रघ्नः सर्वसैन्यपुरस्कृतम् ।
वृकैर्विद्रावयामास ग्रहीतुं समुपस्थितम् ॥ ४१ ॥

'शत्रुओंका नाश करनेवाले श्रीकृष्णने समस्त सेनाओंके साथ आये हुए सुनामाको, जो इन्हें कैद करनेके लिये उपस्थित हुआ था, भेड़ियोंद्वारा मार भगाया ॥ ४१ ॥

रौहिणेयेन संगम्य वने विचरता पुनः ।
गोपवेषधरेणैव कंसस्य भयमाहितम् ॥ ४२ ॥

'एक समय रोहिणीनन्दन बलरामजीके साथ मिलकर वनमें विचरते हुए गोपवेशधारी श्रीकृष्णने पुनः एक महाबली दैत्यका वध करके कंसको भयभीत कर दिया ॥ ४२ ॥

तथा व्रजगतः शौरिर्दृष्ट्वा युद्धबलं हयम् ।
प्रग्रहं भोजराजस्य जघान पुरुषोत्तमः ॥ ४३ ॥

'व्रजमें रहते हुए वसुदेवनन्दन पुरुषोत्तम श्रीहरिने भोजराज कंसके परिचारक अश्वरूपधारी दैत्यको, जिसका युद्ध ही बल था, अपने सामने उपस्थित देख मार डाला ॥४३॥

प्रलम्बश्च महाकायो रौहिणेयेन धीमता ।
दानवो मुष्टिनैकेन कंसामात्यो निपातितः ॥ ४४ ॥

'बुद्धिमान् रोहिणीनन्दन बलरामने कंसके मन्त्री महाकाय दानव प्रलम्बको एक-ही मुक्केसे मार गिराया ॥४४॥

एतौ हि वसुदेवस्य पुत्रौ सुरसुतोपमौ ।
ववृधाते महावीर्यौ ब्रह्मगार्ग्येण संस्कृतौ ॥ ४५ ॥

'व्रजमें वसुदेवके ये दोनों महापराक्रमी पुत्र जो देवकुमारोंके समान तेजस्वी थे, ब्रह्मगार्ग्यके द्वारा क्षत्रियोचित संस्कारोंसे सम्पन्न हो दिनोंदिन बढ़ते रहे ॥ ४५ ॥

जन्मप्रभृति चाप्येतौ गार्ग्येण परमर्षिणा ।
याथातथ्येन विज्ञाप्य संस्कारं प्रतिपादितौ ॥ ४६ ॥

'महर्षि गार्ग्यने जन्मसे ही लेकर इन दोनोंके सभी संस्कार समय-समयपर स्वयं ही सूचित करके यथार्थरूपसे सम्पन्न किये हैं ॥ ४६ ॥

यदा त्विमौ नरश्रेष्ठौ स्थितौ यौवनसम्मुखे ।
सिंहशावाविवोदीर्णौ मत्तौ हैमवतौ यथा ॥ ४७ ॥

'जब ये नरश्रेष्ठ यौवनके सामने उपस्थित हुए, तब दो उद्धत सिंहशावकों तथा हिमालयके दो मतवाले हाथियोंके समान सुशोभित होने लगे ॥ ४७ ॥

ततो मनांसि गोपीनां हरमाणौ महाबलौ ।
आस्तां गोष्ठवरौ वीरौ देवपुत्रोपमद्युती ॥ ४८ ॥

'फिर तो देवपुत्रोंके समान कान्तिमान् ये दोनों महाबली वीर गोपियोंके चित्त चुराते हुए व्रजके प्रमुख व्यक्ति हो गये ॥ ४८ ॥

एतौ जये वा युद्धे वा क्रीडासु विविधासु च ।
नन्दगोपस्य गोपाला न शेकुः प्रसमीक्षितुम् ॥ ४९ ॥

'विजयमें, युद्धमें अथवा भाँति-भाँतिकी क्रीड़ाओंमें व्रजके दूसरे-दूसरे ग्वाले नन्दगोपके इन दोनों पुत्रोंकी ओर आँख उठाकर देख भी नहीं सकते थे (समता करना तो दूरकी बात है) ॥ ४९ ॥

व्यूढोरस्कौ महाबाहू शालस्कन्धाविवोद्गतौ ।
श्रुत्वासौ व्यथितः कंसो मन्त्रिभिः सहितोऽभवत् ॥ ५० ॥

'इनकी छाती चौड़ी है, भुजाएँ बड़ी-बड़ी हैं तथा ये साखूके तनेकी भाँति मोटे और ऊँचे कदके हैं, यह सुनकर कंस अपने मन्त्रियोंसहित व्यथित हो उठा था ॥ ५० ॥

नाशकच्च यदा कंसो ग्रहीतुं बलकेशवौ ।
निजग्राह ततः क्रोधाद् वसुदेवं सबान्धवम् ॥ ५१ ॥
सहोग्रसेनेन तदा चोरवद् गाढबन्धनम् ।
कालं महान्तमनयत् कृच्छ्रमानकदुन्दुभिः ॥ ५२ ॥

'जब बलराम और श्रीकृष्णको कंस किसी तरह पकड़ न सका, तब क्रोधमें आकर उसने उग्रसेन और बन्धु-बान्धवोंसहित वसुदेवको कैद कर लिया और चोरकी भाँति उन्हें सुदृढ़ बन्धनमें डाल दिया । उन दिनों वसुदेवजीने दीर्घकालतक बड़े भारी कष्टका सामना किया ॥ ५१-५२ ॥

कंसस्तु पितरं बद्ध्वा शूरसेनाञ्शशास ह ।
जरासंधं समाश्रित्य तथैवाहृतिभीष्मकौ ॥ ५३ ॥

'पिताको कैद करके कंस जरासंध, आहृति और भीष्मकका सहारा ले शूरसेन देशका शासन करने लगा ५३॥

कस्यचित् त्वथ कालस्य मथुरायां महोत्सवम् ।
पिनाकिनं समुद्दिश्य चक्रे कंसो नराधिपः ॥ ५४ ॥

'किसी समय मथुरामें राजा कंसने पिनाकधारी भगवान् शङ्करकी प्रसन्नताके लिये एक बड़ा भारी उत्सव किया ॥५४॥

तत्र मल्लाः समाजग्मुर्नानादेश्या विशाम्पते ।
नर्तना गायनाश्चैव कुशला नृत्यकर्मसु ॥ ५५ ॥

'प्रजानाथ उग्रसेन ! उस उत्सवमें अनेक देशोंके मल्ल तथा नृत्यकर्ममें कुशल बहुत-से नर्तक और गायक आये थे ॥५५॥

ततः कंसो महातेजा रङ्गवाटं महाधनम् ।
कुशलैः कारयामास शिल्पिभिः साधुनिष्ठितैः ॥ ५६ ॥

'उस समय महातेजस्वी कंसने शिल्पकर्ममें कुशल अच्छे-अच्छे शिल्पियोंद्वारा एक रङ्गशाला बनवायी, जिसमें बहुत धन खर्च किया गया था ॥ ५६ ॥

तत्र मञ्चसहस्राणि पौरजानपदैर्जनैः ।
समाकीर्णानि दृश्यन्ते ज्योतींषि गगने यथा ॥ ५७ ॥

'वहाँ हजारों मञ्च रखे गये थे, जो नगर और जनपदके लोगोंसे भरे-पूरे दिखायी देते थे । वे आकाशमें फैले हुए नक्षत्रोंके समान दृष्टिगोचर होते थे ॥ ५७ ॥

भोजराजः श्रिया जुष्टं रङ्गवाटं महर्द्धिमत् ।
आरुरोह ततः कंसो विमानं सुकृती यथा ॥ ५८ ॥

'तदनन्तर भोजराज कंस अनुपम शोभासे युक्त बहुमूल्य रङ्गमञ्चपर आरूढ़ हुआ, मानो कोई पुण्यात्मा पुरुष विमानपर चढ़ा हो ॥ ५८ ॥

रङ्गवाटे गजं मत्तं प्रभूतायुधकल्पितम् ।
शूरैरधिष्ठितं कंसः स्थापयामास वीर्यवान् ॥ ५९ ॥

'पराक्रमी कंसने रङ्गशालाके द्वारपर शूरवीर महावतोंसे युक्त एक मतवाले हाथीको खड़ा करा रखा था, जो बहुसंख्यक अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित था ॥ ५९ ॥

यदा हि स महातेजा रामकृष्णौ समागतौ ।
शुश्राव पुरुषव्याघ्रौ सूर्याचन्द्रमसाविव ॥ ६० ॥
तदाप्रभृति यत्तोऽभूद् रक्षां प्रति नराधिप ।
न च शिश्ये सुखं रात्रौ रामकृष्णौ विचिन्तयन् ॥ ६१ ॥

'नरेश्वर ! महातेजस्वी कंसने जब सुना कि सूर्य और चन्द्रमाके समान दोनों भाई पुरुषसिंह बलराम और श्रीकृष्ण मथुरामें आ गये हैं, तबसे वह अपनी रक्षाके लिये विशेष प्रयत्नशील हो गया । बलराम और श्रीकृष्णका ही चिन्तन करता हुआ वह रातमें सुखकी नींद सो न सका ॥ ६०-६१ ॥

श्रुत्वा तु रामः कृष्णश्च तं समाजमनुत्तमम् ।
उभौ विविशतुर्वीरौ शार्दूलौ गोव्रजं यथा ॥ ६२ ॥

'बलराम और श्रीकृष्ण दोनों वीर उस परम उत्तम समाज (उत्सव) का समाचार सुनकर उस रङ्गशालामें उसी प्रकार प्रवेश करने लगे, जैसे दो व्याघ्र गौओंके व्रजमें घुस रहे हों ॥ ६२ ॥

ततः प्रवेशे संरुद्धौ रक्षिभिः पुरुषर्षभौ ।
हत्वा कुवलयापीडं ससादिनमरिंदमौ ।
अवमृद्य दुराधर्षौ रङ्गं विविशतुस्तदा ॥ ६३ ॥

'उसमें प्रवेश करते समय रक्षकोंने उन दोनों पुरुषप्रवर बन्धुओंको रोक दिया, तब उन दोनों दुर्जय शत्रुदमन बन्धुओंने सवारोंसहित कुवलयापीड़ हाथीको मारकर मिट्टीमें मिला दिया, फिर वे रङ्गशालामें घुस गये ॥ ६३ ॥

चाणूरान्ध्रौ विनिष्पिष्य केशवेन बलेन च ।
औग्रसेनिः सुदुष्टात्मा सानुजो विनिपातितः ॥ ६४ ॥

'श्रीकृष्ण और बलरामने चाणूर तथा आन्ध्रका कचूमर निकालकर उग्रसेनके दुष्टात्मा पुत्र कंसको भाइयोंसहित मार गिराया ॥ ६४ ॥

यत् कृतं यदुसिंहेन देवैरपि सुदुष्करम् ।
कर्म तत् केशवादन्यः कर्तुमर्हति कः पुमान् ॥ ६५ ॥

'जो देवताओंके लिये भी अत्यन्त दुष्कर है, ऐसा जो-जो कर्म यदुकुलसिंह श्रीकृष्णने किया, उसे इनके सिवा दूसरा कौन पुरुष कर सकता है ॥ ६५ ॥

यद्धि नाधिगतं पूर्वैः प्रह्लादबलिशम्बरैः ।
तदिदं प्रापितं वित्तं शौरिणा भवतां कृते ॥ ६६ ॥

'पहलेके प्रह्लाद, बलि और शम्बर आदि नरेशोंने जिसे नहीं पाया था, वही यह अनन्त धन श्रीकृष्णने तुमलोगोंके लिये यहाँ ला दिया है ॥ ६६ ॥

एतेन मुरुमाक्रम्य दैत्यं पञ्चजनं तथा ।
निष्क्रम्य शैलसंघातान्निसुन्दः सगणो हतः ॥ ६७ ॥

'इन्होंने मुरु तथा पञ्चजन नामक दैत्यपर आक्रमण करके शैलसमूहोंको पारकर निसुन्द नामक दैत्यको उसके गणोंसहित मार डाला ॥ ६७ ॥

नरकश्च हतो भौमः कुण्डले चाहृते शुभे ।
प्राप्तं च दिवि देवेषु केशवेन महद्यशः ॥ ६८ ॥

'भूमिपुत्र नरकको भी मौतके घाट उतार दिया । उसके यहाँ अदितिके जो दोनों सुन्दर कुण्डल थे, उनको वापिस ले लिया । इस प्रकार केशवने देवलोक तथा देवताओंमें महान् यश प्राप्त किया ॥ ६८ ॥

वीतशोकभयाबाधाः कृष्णबाहुबलाश्रयाः ।
यजध्वं विविधैर्यज्ञैर्यादवा वीतमत्सराः ॥ ६९ ॥

'यादवो ! अब तुमलोग श्रीकृष्णके बाहुबलका आश्रय ले शोक, भय और बाधाओंसे रहित हो ईर्ष्या-द्वेषका त्याग करके नाना प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान करो ॥ ६९ ॥

देवानां सुमहत् कार्यं कृतं कृष्णेन धीमता ।
प्रियमावेदयाम्येष भवतां भद्रमस्तु वः ॥ ७० ॥

'बुद्धिमान् श्रीकृष्णने देवताओंका बहुत बड़ा कार्य सिद्ध किया है । मैं तुमलोगोंको यह प्रिय निवेदन करता हूँ, तुम सब लोगोंका भला हो ॥ ७० ॥

यदिष्टं वो यदुश्रेष्ठाः कर्तास्मि तदतन्द्रितः ।
भवतामस्मि यूयं च मम युष्मास्वहं स्थितः ॥ ७१ ॥

'यदुवरो ! तुम्हें जो अभीष्ट हो, वह कार्य मैं आलस्यरहित होकर करूँगा । मैं तुम्हारा हूँ और तुम मेरे । मैं तुममें ही स्थित हूँ ॥ ७१ ॥

इति सम्बोधयन् कृष्णमब्रवीत् पाकशासनः ।
स मां प्रैषीत् सुरश्रेष्ठः प्रीतस्तुष्टास्तथा वयम् ॥ ७२ ॥

'इस प्रकार तुम सबको श्रीकृष्णकी महिमा समझाते हुए पाकशासन इन्द्रने उपर्युक्त बातें कही हैं । उन्हीं सुरश्रेष्ठने प्रसन्न होकर मुझे यहाँ भेजा है । इससे हम भी संतुष्ट हुए हैं ॥ ७२ ॥

यत्र धीः श्रीः स्थिता तत्र यत्र श्रीस्तत्र संनतिः ।
संनतिर्धीस्तथा श्रीश्च नित्यं कृष्णे महात्मनि ॥ ७३ ॥

'जहाँ बुद्धि है, वहाँ श्री विद्यमान है । जहाँ श्री है, वहाँ संनति (विनय) है । महात्मा श्रीकृष्णमें विनय, बुद्धि और श्री—ये तीनों नित्य विद्यमान हैं' ॥ ७३ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि नारदवाक्यं नामैकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें नारदजीका वाक्यविषयक एक सौ एकवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०१ ॥

द्व्यधिकशततमोऽध्यायः

नारदजीके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णके अद्भुत कर्मोंका वर्णन

नारद उवाच

सादिता मौरवाः पाशा निसुन्दनरकौ हतौ।
कृतः क्षेम्यः पुनः पन्थाः पुरं प्राग्ज्योतिषं प्रति ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं—यादवो ! भगवान् श्रीकृष्णने मुर दैत्यके पाश काट डाले, निसुन्द और नरकासुरको मार डाला तथा प्राग्ज्योतिषपुरका मार्ग सब लोगोंके लिये क्षेममय—निष्कण्टक बना दिया ॥ १ ॥

शौरिणा पृथिवीपालास्त्रासिताः स्पर्द्धिनो रणे।
धनुषश्च निनादेन पाञ्चजन्यस्वनेन च ॥ २ ॥

शूरनन्दन श्रीकृष्णने अपने धनुषकी टंकार और पाञ्चजन्य शङ्खके हुंकारसे उन समस्त भूपालोंको आतङ्कित कर दिया, जो युद्धमें उनके साथ स्पर्धा रखते थे ॥ २ ॥

मेघप्रख्यै रथानीकैर्दाक्षिणात्यैः सुरक्षितम्।
रुक्मिणं युधि निर्जित्य महाबलपराक्रमम्।
रुक्मिणीमाजहाराशु केशवो वृष्णिपुङ्गवः ॥ ३ ॥
ततः पर्जन्यघोषेण रथेनादित्यवर्चसा।
उवाह महिषीं भोज्यां शङ्खचक्रगदासिभृत् ॥ ४ ॥

मेघोंकी घटाके समान छायी हुई दक्षिणदेशीय रथ-सेनाओंसे सुरक्षित तथा महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न रुक्मीको युद्धमें पराजित करके इन वृष्णिकुलतिलक केशवने मेघके समान गम्भीर घोष करनेवाले एवं सूर्यतुल्य तेजस्वी रथके द्वारा रुक्मिणीको शीघ्र हर लिया। इस प्रकार शङ्ख, चक्र, गदा और खड्ग धारण करनेवाले श्रीकृष्णने भोजकुल-नन्दिनी रुक्मिणीके साथ विवाह किया और उन्हें अपनी पटरानी बनाया ॥ ३-४ ॥

जारूथ्यामाहृतिः क्राथः शिशुपालश्च निर्जितः।
वक्रश्च सह सैन्येन शतधन्वाथ निर्जितः ॥ ५ ॥

जारूथी नगरीमें आहृति, क्राथ एवं शिशुपालको परास्त किया, सेनासहित दन्तवक्त्र और शतधन्वाको भी हरा दिया ॥ ५ ॥

इन्द्रद्युम्नो हतः कोपाद् यवनश्च कशेरुमान्।
हतः सौभपतिः श्रीमाञ्छाल्वश्च दृढधन्वना ॥ ६ ॥

इन्होंने इन्द्रद्युम्न, कालयवन एवं कशेरुमान्‌का भी क्रोधपूर्वक वध किया है तथा हाथमें सुदृढ़ धनुष धारण करके सौभविमानके स्वामी श्रीमान् राजा शाल्वको भी मार डाला है ॥ ६ ॥

पर्वतानां सहस्रं च चक्रेण पुरुषोत्तमः।
विकीर्य पुण्डरीकाक्षो द्युमत्सेनं व्यपोथयत् ॥ ७ ॥

इन कमलनयन पुरुषोत्तमने चक्रद्वारा सहस्रों पर्वतोंको टूक-टूक करके बिखेर दिया और द्युमत्सेनको मार गिराया ॥ ७ ॥

महेन्द्रशिखरे चैव निमेषान्तरचारिणौ।
जग्राह पुरुषव्याघ्रो वरुणस्याभितश्चरौ ॥ ८ ॥
इरावत्यां महाभोजावग्निसूर्यसमौ युधि।
गोपतिस्तालकेतुश्च निहतौ शार्ङ्गधन्वना ॥ ९ ॥

जो युद्धमें अग्नि और सूर्यके समान पराक्रमी थे और वरुण देवताके उभय-पार्श्वमें विचरण करते थे, जिनमें पलक मारते-मारते एक स्थानसे दूसरे स्थानमें पहुँच जानेकी शक्ति थी, वे गोपति और तालकेतु नामक महाभोज महेन्द्र पर्वतके शिखरपर पुरुषसिंह श्रीकृष्णद्वारा पकड़े गये और उन शार्ङ्गधन्वाके हाथसे इरावती नदीके तटपर मारे गये ॥ ८-९ ॥

अक्षप्रपतने चैव डिम्भो हंसश्च दानवौ।
उभौ तावपि कृष्णेन सानुगौ विनिपातितौ ॥ १० ॥

इन्हीं श्रीकृष्णने डिम्भ और हंस नामक दोनों दानवोंको अक्षप्रपतन नामक स्थानमें सेवकोंसहित मार गिराया ॥ १० ॥

दग्धा वाराणसी चैव केशवेन महात्मना।
सराष्ट्रः सानुबन्धश्च काशीनामधिपो हतः ॥ ११ ॥

महात्मा केशवने वाराणसी नगरी जला दी तथा राष्ट्रके लोगों और सगे-सम्बन्धियोंसहित काशिराजको कालके गालमें भेज दिया ॥ ११ ॥

विजित्य च यमं संख्ये शरैः संनतपर्वभिः।
अथैन्द्रसेनिरानीतः कृष्णेनाद्भुतकर्मणा ॥ १२ ॥

इन अद्भुतकर्मा श्रीकृष्णने युद्धमें झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा यमराजको जीतकर वहाँसे इन्द्रसेनके पुत्रको वापस लौटाया था ॥ १२ ॥

सहितः सर्वयादोभिः सागरेषु महाबलः।
प्राप्य लोहितकूटं च कृष्णेन वरुणो जितः ॥ १३ ॥

इन्हीं श्रीकृष्णने समुद्रोंमें तथा लोहित शिखरपर जाकर समस्त जलजन्तुओंसहित महाबली वरुणको भी जीता था ॥ १३ ॥

महेन्द्रभवने जातो देवैर्गुप्तो महात्मभिः।
अचिन्तयित्वा देवेन्द्रं पारिजातद्रुमो हृतः ॥ १४ ॥

जो महेन्द्रभवनमें उत्पन्न होकर सदा महामनस्वी देवताओंद्वारा सुरक्षित रखा गया था, उस पारिजात नामक वृक्षको इन श्रीकृष्णने देवराजकी परवा न करके हर लिया ॥ १४ ॥

पाण्ड्यं पौण्ड्रं कलिङ्गं च मात्स्यं चैव जनार्दनः।
जघान सहितान् सर्वान् वङ्गराजं तथैव च ॥ १५ ॥

इन जनार्दनने एक साथ आये हुए पाण्ड्य, पौण्ड्र, कलिङ्ग, मत्स्य तथा वङ्ग देशके समस्त राजाओंको युद्धमें मार डाला था ॥ १५ ॥

एष चैकशतं हत्वा रणे राज्ञां महात्मनाम्।
गान्धारीमावहद् वीरो महिषीं प्रियदर्शनाम् ॥ १६ ॥

इन वीर श्रीकृष्णने रणभूमिमें एक सौ महामना नरेशोंका वध करके अपनी परम सुन्दरी पटरानी गान्धारीसे विवाह किया था ॥ १६ ॥

तथा गाण्डीवधन्वानं क्रीडन्तं मधुसूदनः।
जिगाय भरतश्रेष्ठं कुन्त्याः प्रमुखतो विभुः ॥ १७ ॥

गाण्डीव धनुष लेकर युद्धकी क्रीडा करते हुए भरतश्रेष्ठ अर्जुनको इन भगवान् मधुसूदनने कुन्तीके सामने ही जीत लिया (अथवा सहायता देकर उन्हें विजयी बना दिया) ॥ १७ ॥

द्रोणं द्रौणिं कृपं कर्णं भीष्मं चैव सुयोधनम्।
चक्रानुयानैः प्रह्वणे जिगाय पुरुषोत्तमः ॥ १८ ॥

इन पुरुषोत्तमने (अर्जुनद्वारा) रथयुद्धमें द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कर्ण, भीष्म और दुर्योधनको परास्त कर दिया ॥ १८ ॥

बभ्रोश्च प्रियमन्विच्छञ्छङ्खचक्रगदासिभृत्।
सौवीरराजस्य सुतां प्रसह्य हृतवान् प्रभुः ॥ १९ ॥

बभ्रुका प्रिय चाहते हुए शङ्ख, चक्र, गदा और खड्ग धारण करनेवाले भगवान् केशवने सौवीरराजकी पुत्रीको बलपूर्वक हर लिया था ॥ १९ ॥

पर्यस्तां पृथिवीं कृत्स्नां साश्वां सरथकुञ्जराम्।
वैणुदारिकृते यत्नाज्जिगाय पुरुषोत्तमः ॥ २० ॥

इन पुरुषोत्तमने वैणुदारिके लिये घोड़े, रथ और हाथियोंसहित सारी पृथ्वीको, जो अस्त-व्यस्त हो गयी थी, यत्नपूर्वक जीत लिया ॥ २० ॥

अवाप्य तपसो वीर्यं बलमोजश्च माधवः।
पूर्वदेहे जहारायं बलेस्त्रिभुवनं हरिः ॥ २१ ॥

इन भगवान् माधवने पूर्व शरीरमें वामनरूप होकर तपस्याका बल, वीर्य और ओज पाकर राजा बलिसे त्रिलोकीका राज्य छीन लिया था ॥ २१ ॥

वज्राशनिगदाखड्गैस्त्रासयद्भिश्च दानवैः।
यस्य नाधिगतो मृत्युः पुरं प्राग्ज्योतिषं प्रति ॥ २२ ॥

वज्र, अशनि, गदा और खड्गके प्रहारसे त्रास देते हुए दानव प्राग्ज्योतिषपुरमें प्रयत्न करनेपर भी इन्हें मार न सके ॥ २२ ॥

अभिभूतश्च कृष्णेन सगणः सुमहाबलः।
बलेः पुत्रो महावीर्यो बाणो द्रविणवत्तरः ॥ २३ ॥

महाबली महापराक्रमी तथा अत्यन्त वैभवशाली बलिपुत्र बाणासुरको भी श्रीकृष्णने पराजित कर दिया था ॥ २३ ॥

पीठं तथा महाबाहुः कंसामात्यं जनार्दनः।
पैठिकं चासिलोमानं निजघान महाबलः ॥ २४ ॥

इन महाबली महाबाहु जनार्दनने कंसके मन्त्री पीठ, पैठिक और असिलोमाको भी मौतके घाट उतार दिया ॥ २४ ॥

जृम्भमैरावणं चापि विरूपं च महायशाः।
जघान पुरुषव्याघ्रो दैत्यं मानुषरूपिणम् ॥ २५ ॥

महायशस्वी पुरुषसिंह श्रीकृष्णने मानवरूपधारी जृम्भ, अहिरावण और विरूप नामक दैत्यको कालके गालमें भेज दिया ॥ २५ ॥

तथा नागपतिं तोये कालीयं च महौजसम्।
निर्जित्य पुण्डरीकाक्षः प्रेषयामास सागरम् ॥ २६ ॥

इसी तरह कमलनयन केशवने यमुनाजीके जलमें रहनेवाले महाबली नागराज कालियको जीतकर समुद्रमें भेज दिया ॥ २६ ॥

संजीवयामास मृतं पुत्रं सान्दीपनेस्तथा।
निर्जित्य पुरुषव्याघ्रो यमं वैवस्वतं हरिः ॥ २७ ॥

इन्हीं पुरुषसिंह श्रीहरिने वैवस्वत यमको जीतकर सान्दीपनिके मरे हुए पुत्रको पुनः जीवनदान दिया था ॥ २७ ॥

एवमेष महाबाहुः शास्ता तेषां दुरात्मनाम्।
देवांश्च ब्राह्मणांश्चैव ये द्विषन्ति सदा नृप ॥ २८ ॥

नरेश्वर ! इस प्रकार यह महाबाहु श्रीकृष्ण उन दुरात्माओंको दण्ड देनेवाले हैं, जो देवताओं और ब्राह्मणोंसे सदा द्वेष रखते हैं ॥ २८ ॥

निहत्य नरकं भौममाहृत्य मणिकुण्डले।
देवमातुर्ददौ चैव प्रीत्यर्थं वज्रपाणिनः ॥ २९ ॥

इन्होंने वज्रपाणि इन्द्रकी प्रसन्नताके लिये भूमिपुत्र नरकासुरको मारकर देवमाता अदितिको उनके दोनों मणिमय कुण्डल लाकर दे दिये ॥ २९ ॥

एवं सदैव दैत्यानां सुराणां च महायशाः।
भयाभयकरः कृष्णः सर्वलोककरो विभुः ॥ ३० ॥

इस प्रकार सम्पूर्ण लोकोंके स्रष्टा, सर्वव्यापी, महायशस्वी भगवान् श्रीकृष्ण सदा ही दुराचारी दैत्योंको भय और धर्मात्मा देवताओंको अभय प्रदान करते हैं ॥ ३० ॥

संस्थाप्य धर्मान् मर्त्येषु यज्ञैरिष्ट्वाऽऽप्तदक्षिणैः।
कृत्वा देवार्थममितं स्वस्थानं प्रतिपत्स्यते ॥ ३१ ॥

ये मनुष्योंमें धर्मकी स्थापना करके पर्याप्त दक्षिणावाले यज्ञोंका अनुष्ठान करते हुए देवताओंके असंख्य कार्य सिद्ध करनेके अनन्तर अपने परमधामको पधारेंगे ॥ ३१ ॥

कृष्णो भोगवतीं रम्यामृषिकान्तां महायशाः।
द्वारकामात्मसात्कृत्वा समुद्रं गमयिष्यति ॥ ३२ ॥

महायशस्वी श्रीकृष्ण भोग-वैभवसे सम्पन्न रमणीय तथा ऋषियोंके लिये कमनीय द्वारकापुरीको अपने अधीन करके अन्ततोगत्वा इसे समुद्रमें डुबो देंगे ॥ ३२ ॥

बहुरत्नसमाकीर्णां चैत्ययूपशताङ्किताम्।
द्वारकां वरुणावासं प्रवेक्ष्यति सकाननाम् ॥ ३३ ॥

जो बहुसंख्यक रत्नोंसे व्याप्त तथा सैकड़ों चैत्यों और यूपोंसे चिह्नित है, वन-उपवनसहित उस द्वारकापुरीको वरुणालयमें निमग्न कर देंगे ॥ ३३ ॥

तां सूर्यसदनप्रख्यां मतज्ञः शार्ङ्गधन्वनः।
विसृष्टां वासुदेवेन सागरः प्लावयिष्यति ॥ ३४ ॥

शार्ङ्गधन्वा श्रीकृष्णके मतको जाननेवाला समुद्र इन भगवान् वासुदेवके द्वारा छोड़ी हुई सूर्यलोक-तुल्य तेजस्विनी द्वारकाको अपने जलमें विलीन कर लेगा ॥ ३४ ॥

सुरासुरमनुष्येषु नासीन्न भविता क्वचित्।
य इमामावसेत् कश्चिदन्यो वै मधुसूदनात् ॥ ३५ ॥

देवताओं, असुरों और मनुष्योंमें इन भगवान् मधुसूदनके सिवा दूसरा कोई ऐसा न तो हुआ है और न कभी होगा ही, जो इनके द्वारा छोड़ी गयी इस द्वारकापुरीमें निवास कर सके ॥ ३५ ॥

एवमेष दशार्हाणां विधाय विधिमुत्तमम्।
विष्णुर्नारायणः सोमः सूर्यश्च भविता स्वयम् ॥ ३६ ॥

इस प्रकार दशार्हवंशी यादवोंके लिये उत्तम विधिका विधान करके ये सर्वव्यापी नारायण देव स्वयं ही चन्द्रमा और सूर्यरूपसे प्रकाशित होंगे ॥ ३६ ॥

अप्रमेयस्त्वचिन्त्यश्च यथा कामचरो वशी।
मोदत्येष सदा भूतैर्बालः क्रीडनकैरिव ॥ ३७ ॥

ये अप्रमेय, अचिन्त्य; इच्छानुसार विचरनेवाले और सबको वशमें रखनेवाले हैं। जैसे बालक खिलौनोंसे प्रसन्न होता है, उसी प्रकार ये समस्त प्राणियोंके साथ क्रीडा करते हुए आनन्दमग्न होते हैं ॥ ३७ ॥

न प्रमातुं महाबाहुः शक्योऽयं मधुसूदनः।
परं ह्यपरमेतस्माद् विश्वरूपान्न विद्यते ॥ ३८ ॥

इन महाबाहु मधुसूदनको सीमित प्रमाणोंद्वारा मापा नहीं जा सकता। यह पर और अपररूप जगत् इन विश्वरूप परमेश्वरसे भिन्न नहीं है ॥ ३८ ॥

श्रुतोऽयमेव शतशस्तथा शतसहस्रशः।
अन्तो हि कर्मणामस्य दृष्टपूर्वो न केनचित् ॥ ३९ ॥

ये ही सैकड़ों और लाखों बार सुने गये हैं। किसीने पहले कभी इनके कर्मोंका अन्त नहीं देखा है ॥ ३९ ॥

एवमेतानि कर्माणि शिशुमध्यगतस्तदा।
कृतवान् पुण्डरीकाक्षः संकर्षणसहायवान् ॥ ४० ॥

इस तरह बालकोंके बीचमें रहकर संकर्षणसहित कमलनयन श्रीकृष्णने ये पूर्वोक्त कर्म किये थे ॥ ४० ॥

इत्युवाच पुरा व्यासस्तपोवीर्येण चक्षुषा।
महायोगी महाबुद्धिः सर्वप्रत्यक्षदर्शिवान् ॥ ४१ ॥

पूर्वकल्पके महायोगी, महाबुद्धिमान् और सब कुछ प्रत्यक्ष देखनेवाले व्यासने अपनी तपोबलसे सम्पन्न दृष्टिद्वारा देखकर यह सब कुछ बताया था ॥ ४१ ॥

वैशम्पायन उवाच

इति संस्तूय गोविन्दं महेन्द्रवचनान्मुनिः।
यदुभिः पूजितः सर्वैर्नारदस्त्रिदिवं ययौ ॥ ४२ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! इस प्रकार देवराज इन्द्रके आदेशसे भगवान् गोविन्दकी स्तुति करके नारद मुनि समस्त यादवोंसे पूजित हो स्वर्गलोकको चले गये ॥ ४२ ॥

ततस्तद् वसु गोविन्दो दिदेशान्धकवृष्णिषु।
यथार्हं पुण्डरीकाक्षो विधिवन्मधुसूदनः ॥ ४३ ॥

तदनन्तर कमलनयन मधुसूदन भगवान् गोविन्दने समस्त अन्धक और वृष्णिवंशके लोगोंको विधिपूर्वक वह सारा धन यथोचितरूपसे बाँट दिया ॥ ४३ ॥

यादवाश्च धनं प्राप्य विधिवद् भूरिदक्षिणैः।
यज्ञैरिष्ट्वा महात्मानो द्वारकामावसन् पुरीम् ॥ ४४ ॥

उस धनको पाकर महामनस्वी यादव प्रचुर दक्षिणावाले यज्ञोंका विधिपूर्वक अनुष्ठान करते हुए द्वारकापुरीमें निवास करने लगे ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि नारदवाक्यं नाम द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें नारदजीका वाक्यविषयक एक सौ दोवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०२ ॥

त्र्यधिकशततमोऽध्यायः

श्रीकृष्णकी संततिका वर्णन तथा वृष्णिवंशका उपसंहार

जनमेजय उवाच

बहूनां स्त्रीसहस्राणामष्टौ भार्याः प्रकीर्तिताः।
तासामपत्यान्यष्टानां भगवान् प्रब्रवीतु मे ॥ १ ॥

जनमेजयने पूछा—भगवन्! भगवान् श्रीकृष्णकी कई हजार रानियोंमेंसे आठको प्रमुख बताया गया है। उन आठोंकी संतानें कौन-कौन-सी थीं? यह आप मुझे बताइये॥

वैशम्पायन उवाच

अष्टौ महिष्यः पुत्रिण्य इति प्राधान्यतः स्मृताः।
सर्वा वीरप्रजाश्चैव तास्वपत्यानि मे शृणु ॥ २ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! प्रधानतः आठों पटरानियाँ पुत्रवती थीं, ऐसा माना गया है। उनकी सभी संतानें वीर थीं। उन रानियोंके जो-जो संतानें हुईं, मैं बताता हूँ, सुनो॥ २॥

रुक्मिणी सत्यभामा च देवी नाग्नजिती तथा।
सुदत्ता च तथा शैब्या लक्ष्मणा चारुहासिनी ॥ ३ ॥
मित्रविन्दा च कालिन्दी जाम्बवत्यथ पौरवी।
सुभीमा च तथा माद्री रुक्मिणीतनयाञ्छृणु ॥ ४ ॥

रुक्मिणी, सत्यभामा, देवी नाग्नजिती (सत्या), शिबिदेशकी राजकुमारी सुदत्ता, मनोहर हासवाली लक्ष्मणा, मित्रविन्दा, कालिन्दी, जाम्बवती, पौरवी और मद्रदेशकी राजकुमारी सुभीमा—ये श्रीकृष्णकी मुख्य रानियाँ थीं। इनमेंसे रुक्मिणीके पुत्रोंका वर्णन करता हूँ, सुनो॥ ३-४॥

प्रद्युम्नः प्रथमं जज्ञे शम्बरान्तकरः शुभः।
द्वितीयश्चारुदेष्णश्च वृष्णिसिंहो महारथः ॥ ५ ॥

रुक्मिणीके गर्भसे पहले शुभलक्षणसम्पन्न प्रद्युम्नका जन्म हुआ, जिन्होंने आगे चलकर शम्बरासुरका वध किया था। उनके दूसरे पुत्र चारुदेष्ण थे, जो वृष्णिवंशमें सिंहके समान पराक्रमी और महारथी वीर थे॥ ५॥

चारुभद्रश्चारुगर्भः सुदेष्णो द्रुम एव च।
सुषेणश्चारुगुप्तश्च चारुविन्दश्च वीर्यवान् ॥ ६ ॥
चारुबाहुः कनीयांश्च कन्या चारुमती तथा।

तीसरे चारुभद्र, चौथे चारुगर्भ, पाँचवें सुदेष्ण और छठे द्रुम थे, सातवें सुषेण, आठवें चारुगुप्त, नवें पराक्रमी चारुविन्द और दसवें चारुबाहु थे। चारुबाहु सबसे छोटे थे। इनके सिवा रुक्मिणीके एक कन्या भी उत्पन्न हुई थी, जिसका नाम चारुमती था॥ ६½॥

जज्ञिरे सत्यभामायां भानुर्भीमरथः क्षुपः ॥ ७ ॥
रोहितो दीप्तिमांश्चैव ताम्रजाक्षो जलान्तकः।
भानुर्भीमलिका चैव ताम्रपर्णी जलन्धमा ॥ ८ ॥
चतस्रो जज्ञिरे तेषां स्वसारो गरुडध्वजात्।

सत्यभामाके गर्भसे भानु, भीमरथ, क्षुप, रोहित, दीप्तिमान्, ताम्रजाक्ष और जलान्तक—ये आठ पुत्र उत्पन्न हुए। भगवान् गरुड़ध्वजसे इनकी चार बहिनें उत्पन्न हुई थीं, जिनके नाम थे—भानु, भीमलिका, ताम्रपर्णी और जलन्धमा॥ ७-८½॥

जाम्बवत्याः सुतो जज्ञे साम्बः समितिशोभनः ॥ ९ ॥
मित्रवान् मित्रविन्दश्च मित्रवत्यपि चाङ्गना।
मित्रबाहुः सुनीथश्च नाग्नजित्याः प्रजाः शृणु ॥ १० ॥

जाम्बवतीके ज्येष्ठ पुत्र साम्ब उत्पन्न हुए, जो युद्धमें बड़ी शोभा पाते थे। इनके सिवा मित्रवान्, मित्रविन्द, मित्रबाहु और सुनीथ—ये चार पुत्र और थे। जाम्बवतीके मित्रवती नामवाली एक कन्या भी उत्पन्न हुई थी। अब नाग्नजितीकी संतानोंका वर्णन सुनो॥ ९-१०॥

भद्रकारो भद्रविन्दः कन्या भद्रवती तथा।
सुदत्तायां तु शैब्यायां संग्रामजिदजायत ॥ ११ ॥
सत्यजित् सेनजिच्चैव तथा शूरः सपत्नजित्।

नाग्नजितीके भद्रकार और भद्रविन्द नामक दो पुत्र हुए थे तथा भद्रवती नामवाली एक कन्या भी उत्पन्न हुई थी। शिबिदेशकी राजकुमारी सुदत्ताके गर्भसे संग्रामजित्, सत्यजित्, सेनजित् और शूरवीर सपत्नजित्—इन चार पुत्रोंका जन्म हुआ था॥ ११½॥

सुभीमायाः सुतो माद्र्या वृकाश्वो वृकनिर्वृतिः ॥ १२ ॥
कुमारो वृकदीप्तिश्च लक्ष्मणायाः प्रजाः शृणु।

माद्री सुभीमाके वृकाश्व, वृकनिर्वृति तथा कुमार वृकदीप्ति—ये तीन पुत्र थे। अब लक्ष्मणाकी संतानोंका परिचय सुनो॥ १२½॥

गात्रवान् गात्रगुप्तश्च गात्रविन्दश्च वीर्यवान् ॥ १३ ॥
जज्ञिरे गात्रवत्या च भगिन्याऽनुजया सह।

गात्रवान्, गात्रगुप्त तथा पराक्रमी गात्रविन्द—ये तीन पुत्र लक्ष्मणाके गर्भसे उत्पन्न हुए थे, साथ ही इनकी छोटी बहिन गात्रवतीका भी जन्म हुआ था॥ १३½॥

अश्रुतश्च सुतो जज्ञे कालिन्द्याः श्रुतसम्मितः ॥ १४ ॥
अश्रुतं श्रुतसेनायै प्रददौ मधुसूदनः।

कालिन्दीके दो पुत्र हुए—अश्रुत और श्रुतसम्मित। मधुसूदनने अश्रुत नामक पुत्रको श्रुतसेना नामवाली पत्नीकी गोदमें दे दिया॥ १४½॥

तं प्रदाय हृषीकेशस्तां भार्यां मुदितोऽब्रवीत् ॥ १५ ॥
एष वामुभयोरस्तु दायादः शाश्वतीः समाः ।

उसे देकर भगवान् श्रीकृष्ण बड़े प्रसन्न हुए और अपनी उस पत्नीसे बोले—'यह सदाके लिये तुम दोनोंका पुत्र रहे' ॥ १५½ ॥

बृहत्यां तु गदं प्राहुः शैब्यायामङ्गदं सुतम् ॥ १६ ॥
उत्पन्नं कुमुदं चैव श्वेतं श्वेता तथाङ्गना ।

श्रीकृष्णकी बृहती नामवाली पत्नीके गर्भसे गदकी उत्पत्ति बतायी जाती है। शैब्याके गर्भसे अङ्गद, कुमुद और श्वेत नामक पुत्रकी उत्पत्ति कही गयी है। शैब्याके श्वेता नामवाली एक कन्या भी थी ॥ १६½ ॥

अगावहः सुमित्रश्च शुचिश्चित्ररथस्तथा ॥ १७ ॥
चित्रसेनः सुदेवायाश्चित्रा चित्रवती तथा ।

सुदेवाके गर्भसे अगावह, सुमित्र, शुचि, चित्ररथ तथा चित्रसेन ये—पाँच पुत्र और चित्रा तथा चित्रवती—ये दो कन्याएँ उत्पन्न हुई थीं ॥ १७½ ॥

वनस्तम्बश्च जज्ञाते सुतः स्तम्बवनश्च ह ॥ १८ ॥
निवासनोऽवनस्तम्बः कन्या स्तम्बवती तथा ।
उपसन्नश्च शङ्कुश्च वज्रांशुः क्षिप्र एव च ॥ १९ ॥
कौशिक्यां सुतसोमायां यौधिष्ठिर्यां युधिष्ठिरः ।
कपाली गरुडश्चैव जज्ञाते चित्रयोधिनौ ॥ २० ॥

वनस्तम्ब, स्तम्बवन, निवासन तथा अवनस्तम्ब—ये चार पुत्र और स्तम्बवती नामवाली कन्या—इन सबकी उत्पत्ति कौशिकीके गर्भसे हुई थी। उपसन्न, शङ्कु, वज्रांशु और क्षिप्र—ये चार पुत्र सुतसोमाके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। यौधिष्ठिरीके गर्भसे युधिष्ठिर नामक पुत्रका जन्म हुआ था। इसके सिवा दो पुत्र और उत्पन्न हुए थे—कपाली तथा गरुड। ये दोनों ही विचित्र रीतिसे युद्ध करनेवाले थे ॥ १८–२० ॥

एवमादीनि पुत्राणां सहस्राणि निबोध मे ।
दशायुतं समाख्याता वासुदेवस्य ते सुताः ॥ २१ ॥
अयुतानि तथा चाष्टौ शूरा रणविशारदाः ।
जनार्दनस्य प्रसवः कीर्तितोऽयं तथा मया ॥ २२ ॥

ये तथा इसी तरह और भी सहस्रों पुत्र श्रीकृष्णसे उत्पन्न हुए थे। इस बातको तुम मेरे द्वारा जान लो। भगवान् वासुदेवके वे पुत्र एक लाख अस्सी हजार बताये गये हैं। वे सब-के-सब रण-कर्म-विशारद तथा शूरवीर थे। इस प्रकार मैंने तुमसे भगवान् जनार्दनकी संततिका वर्णन किया है ॥ २१-२२ ॥

प्रद्युम्नस्य सुतो जज्ञे वैदर्भ्यां राजसत्तम ।
अनिरुद्धो रणेऽरुद्धो जज्ञे स मृगकेतनः ॥ २३ ॥

नृपश्रेष्ठ ! प्रद्युम्नके विदर्भराजकुमारी रुक्मवतीके गर्भसे अनिरुद्ध नामक पुत्रका जन्म हुआ, जिसकी गतिको युद्धमें कोई रोक नहीं सकता था। अनिरुद्धकी ध्वजापर मृगका चिह्न था ॥ २३ ॥

रेवत्यां बलदेवस्य जज्ञाते निशठोल्मुकौ ।
भ्रातरौ देवसंकाशावुभौ पुरुषसत्तमौ ॥ २४ ॥

बलदेवजीके रेवतीके गर्भसे दो पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके नाम थे निशठ और उल्मुक। ये दोनों भाई देवताओंके समान तेजस्वी तथा पुरुषोंमें श्रेष्ठ थे ॥ २४ ॥

सुतनुश्च सुतारा च शौरेरास्तां परिग्रहः ।
पौण्ड्रकः कपिलश्चैव वसुदेवस्य तौ सुतौ ॥ २५ ॥

वसुदेवके दो पत्नियाँ और थीं—सुतनु तथा सुतारा। इन दोनोंके गर्भसे वसुदेवके दो पुत्र हुए—पौण्ड्रक तथा कपिल ॥ २५ ॥

तारायां कपिलो जज्ञे पौण्ड्रश्च सुतनोः सुतः ।
तयोर्नृपोऽभवत् पौण्ड्रः कपिलश्च वनं ययौ ॥ २६ ॥

इनमेंसे कपिल तो सुताराके गर्भसे उत्पन्न हुआ था और पौण्ड्रक सुतनुका पुत्र था। उन दोनों भाइयोंमेंसे पौण्ड्रक तो राजा हुआ और कपिल वनको चला गया ॥ २६ ॥

तुर्यां समभवद् वीरो वसुदेवान्महाबलः ।
जरा नाम निषादानां प्रभुः सर्वधनुष्मताम् ॥ २७ ॥

वसुदेवसे उनकी चतुर्थ वर्णवाली भार्यासे एक महाबली वीरका जन्म हुआ था, जिसका नाम था जरा। वह समस्त धनुर्धर निषादोंका स्वामी था ॥ २७ ॥

काश्या सुपार्श्वं तनयं लेभे साम्बात् तरस्विनम्।
सानुर्जज्ञेऽनिरुद्धस्य वज्रः सानोरजायत ॥ २८ ॥

काश्याने साम्बसे सुपार्श्व नामक पुत्र प्राप्त किया, जो महान् वेगशाली था। अनिरुद्धके सानु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। सानुसे वज्रका जन्म हुआ ॥ २८ ॥

वज्राज्जज्ञे प्रतिरथः सुचारुस्तस्य चात्मजः ।
अनमित्राच्छिनिर्जज्ञे कनिष्ठाद् वृष्णिनन्दनात् ॥ २९ ॥

वज्रसे प्रतिरथ उत्पन्न हुआ। प्रतिरथके पुत्रका नाम सुचारु था। वृष्णिके छोटे पुत्र अनमित्रसे शिनिका जन्म हुआ ॥ २९ ॥

शिनेस्तु सत्यवाग् जज्ञे सत्यकश्च महारथः ।
सत्यकस्यात्मजः शूरो युयुधानस्त्वजायत ॥ ३० ॥

शिनिसे महारथी सत्यवादी सत्यक उत्पन्न हुए। सत्यकके उनके शूरवीर पुत्र युयुधान (सात्यकि) का जन्म हुआ ॥ ३० ॥

असङ्गो युयुधानस्य मणिस्तस्याभवत् सुतः ।

मणेर्युगन्धरः पुत्र इति वंशः समाप्यते ॥ ३१ ॥

युयुधानका पुत्र असङ्ग और असङ्गका पुत्र मणि हुआ। मणिके पुत्रका नाम युगन्धर था। इस प्रकार यहाँ वंशका वर्णन समाप्त किया जाता है ॥ ३१ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि वृष्णिवंशानुकीर्तने त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें वृष्णिवंशका वर्णनविषयक एक सौ तीनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०३ ॥

चतुरधिकशततमोऽध्यायः

प्रद्युम्नका जन्म, शम्बरासुरद्वारा प्रद्युम्नका सूतिकागृहसे अपहरण, प्रद्युम्न-मायावती-संवाद और प्रद्युम्नका शम्बरासुरके सौ पुत्रोंके साथ युद्ध

जनमेजय उवाच

य एष भवता पूर्वं शम्बरघ्नेत्युदाहृतः ।
प्रद्युम्नः स कथं जघ्ने शम्बरं तद् ब्रवीहि मे ॥ १ ॥

जनमेजयने पूछा—मुने ! आपने पहले जो यह बताया है कि प्रद्युम्नने शम्बरासुरका वध किया था, उसके विषयमें मैं यह जानना चाहता हूँ कि प्रद्युम्नने किस प्रकार शम्बरासुरका वध किया था, यह मुझे बताइये ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच

रुक्मिण्यां वासुदेवस्य लक्ष्म्यां कामो धृतव्रतः ।
शम्बरान्तकरो जज्ञे प्रद्युम्नः कामदर्शनः ।
सनत्कुमार इति यः पुराणे परिगीयते ॥ २ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—राजन् ! भगवान् वासुदेवके लक्ष्मीस्वरूपा रुक्मिणीके गर्भसे उत्तम व्रतधारी कामदेव ही प्रद्युम्नरूपसे उत्पन्न हुए, जो कामदेवके समान ही मनोहर दिखायी देते थे। उन्होंने ही शम्बरासुरका विनाश किया था। किन्हीं-किन्हींके मतमें जो पुराणमें सनत्कुमार कहे जाते हैं, वे ही प्रद्युम्नरूपसे प्रकट हुए थे ॥ २ ॥

तं सप्तरात्रे सम्पूर्णे निशीथे सूतिकागृहात् ।
जहार कृष्णस्य सुतं शिशुं वै कालशम्बरः ॥ ३ ॥

प्रद्युम्नके जन्मके पश्चात् सात रात पूर्ण हो जानेपर कालरूपी शम्बरासुरने श्रीकृष्णके उस शिशु पुत्रको आधी रातके समय सूतिकागृहसे हर लिया ॥ ३ ॥

विदितं तस्य कृष्णस्य देवमायानुवर्तिनः ।
ततो न निगृहीतः स दानवो युद्धदुर्मदः ॥ ४ ॥

देवमायाका अनुसरण करनेवाले श्रीकृष्णको भविष्यमें होनेवाली सारी बातें विदित थीं, इसलिये उन्होंने उस रणदुर्मद दानवको उस समय बंदी नहीं बनाया ॥ ४ ॥

स मृत्युना परीतायुर्मायया संजहार तम् ।
दोर्भ्यामुत्क्षिप्य नगरं स्वं निनाय महासुरः ॥ ५ ॥

मृत्युने उसकी आयुपर अधिकार कर लिया था, इस लिये उस महान् असुरने मायासे उस बालकको हर लिया और उसे दोनों हाथोंसे ऊपर उठाये हुए वह अपने नगरमें ले गया ॥ ५ ॥

अनपत्या तु तस्यासीद् भार्या रूपगुणान्विता ।
नाम्ना मायावती नाम मायेव शुभदर्शना ॥ ६ ॥

उसकी रूप और गुणसे युक्त एक भार्या थी, जिसके कोई संतान नहीं थी। उसका नाम था मायावती, जो मायाके समान ही सुन्दर दिखायी देती थी ॥ ६ ॥

ददौ तं वासुदेवस्य पुत्रं पुत्रमिवात्मजम् ।
तस्या महिष्या मायिन्या दानवः कालचोदितः ॥ ७ ॥

उस कालप्रेरित दानवने भगवान् श्रीकृष्णके उस पुत्रको अपने पुत्रके समान मानकर अपनी उस मायावती भार्याके हाथमें दे दिया ॥ ७ ॥

मायावती तु तं दृष्ट्वा सम्प्रहृष्टतनूरुहा ।
हर्षेण महता युक्ता पुनः पुनरुदैक्षत ॥ ८ ॥

उस बालकको देखते ही मायावतीके शरीरमें हर्षजनित रोमाञ्च हो आया। वह बड़े हर्षके साथ बारंबार उसकी ओर देखने लगी ॥ ८ ॥

अथ तस्या निरीक्षन्त्याः स्मृतिः प्रादुर्बभूव ह ।
अयं स मम कान्तोऽभूत् स्मृत्वैवं चान्वचिन्तयत् ॥ ९ ॥

बालकका निरीक्षण करती हुई मायावतीके हृदयमें पूर्वकालकी स्मृति जाग उठी। 'यही तो पूर्वकालमें मेरे प्रियतम पति थे' यह स्मरण करके वह इस प्रकार सोचने लगी— ॥ ९ ॥

अयं स नाथो भर्ता मे यस्यार्थेऽहं दिवानिशम् ।
चिन्ताशोकार्णवे मग्ना न विन्दामि रतिं क्वचित् ॥ १० ॥

'ये वे ही मेरे स्वामी एवं भर्ता हैं, जिनके लिये मैं दिन-रात चिन्ता और शोकके समुद्रमें डूबी रहकर कभी कहीं भी चैन नहीं पाती हूँ ॥ १० ॥

अयं भगवता पूर्वं देवदेवेन शूलिना ।
खेदितेन कृतोऽनङ्गो दृष्टो जात्यन्तरे मया ॥ ११ ॥

'प्राचीन कालमें इनके द्वारा खेदमें डाले जानेपर देवाधिदेव त्रिशूलधारी भगवान् शङ्करने इन्हें अनङ्ग बना दिया था (इनके शरीरको जलाकर भस्म कर दिया था) । आज दूसरे जन्ममें इनका मुझे दर्शन हुआ है ॥ ११ ॥

कथमस्य स्तनं दास्ये मातृभावेन जानती ।
भर्तुर्भार्या त्वहं भूत्वा वक्ष्ये वा पुत्र इत्युत ॥ १२ ॥

'जब मैं इस रहस्यको जानती हूँ, तब मातृभावसे इनके मुखमें अपना स्तन कैसे दूँगी । ये मेरे पति हैं, मैं इनकी पत्नी होकर इन्हें पुत्र कैसे कहूँगी' ॥ १२ ॥

एवं संचिन्त्य मनसा धात्र्यास्तं सा समर्पयत् ।
रसायनप्रयोगैश्च शीघ्रमेव व्यवर्धयत् ॥ १३ ॥

मन-ही-मन ऐसा सोचकर मायावतीने बालक प्रद्युम्नको एक धायके हाथमें सौंप दिया तथा रसायनके प्रयोगोंसे उन्हें शीघ्र ही बड़ा कर दिया ॥ १३ ॥

धात्र्याः सकाशात् स च तां शृण्वन् रुक्मिणिनन्दनः ।
मायावतीमविज्ञानान्मेने स्वामेव मातरम् ॥ १४ ॥

रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्न धायसे मायावतीकी प्रशंसा सुनकर उसे अनजानमें अपनी ही माता मानने लगे ॥ १४ ॥

सा च तं वर्द्धयामास कार्ष्णिं कमललोचनम् ।
मायाश्चास्मै ददौ सर्वा दानवीः काममोहिता ॥ १५ ॥

मायावतीने कमलनयन श्रीकृष्ण-कुमारको जब बड़ा कर लिया, तब उनके प्रति कामभावसे मोहित होकर उन्हें समस्त दानवी मायाओंकी शिक्षा दे दी ॥ १५ ॥

स यदा यौवनस्थस्तु प्रद्युम्नः कामदर्शनः ।
चिकीर्षितज्ञो नारीणां सर्वास्त्रविधिपारगः ॥ १६ ॥

प्रद्युम्न जब युवावस्थामें स्थित हुए, तब साक्षात् कामदेवके समान दिखायी देने लगे । वे स्त्रियोंके मनोभावोंके ज्ञाता और सम्पूर्ण अस्त्रोंके प्रयोगमें पारंगत थे ॥ १६ ॥

तं सा मायावती कान्तं कामयामास कामिनी ।
इङ्गितैश्चापि वीक्षन्ती प्रालोभयत सस्मिता ।
प्रसज्जन्तीं तु तां देवीं बभाषे चारुहासिनीम् ॥ १७ ॥

उस समय मायावतीने कामवती नारीकी भाँति अपने उस प्रियतम पतिकी कामना की । वह मुसकराती हुई देखने और अपने हाव-भावोंसे उन्हें लुभाने लगी । उस मनोहर हासवाली देवी मायावतीको अपने प्रति आसक्त होती देख वे इस प्रकार बोले ॥ १७ ॥

प्रद्युम्न उवाच

मातृभावं व्यतिक्रम्य किमेवं वर्तसेऽन्यथा ।
अहो दुष्टस्वभावासि स्त्रीत्वे चपलमानसा ॥ १८ ॥

प्रद्युम्नने कहा—अरी ! तू मातृभावका उल्लङ्घन करके इस तरह विपरीत बर्ताव कैसे कर रही है ? अहो ! तू दुःशीला जान पड़ती है । तेरा चित्त अपने स्त्रीत्वको लेकर चञ्चल हो उठा है ॥ १८ ॥

या पुत्रभावमुत्सृज्य मयि लोभात् प्रवर्तसे ।
न तु तेऽहं सुतः सौम्ये कोऽयं शीलविपर्ययः ॥ १९ ॥

तभी तो तू मेरे प्रति पुत्रभावका परित्याग करके कामलोभसे प्रेरित हो विपरीत बर्ताव कर रही है । इससे तो जान पड़ता है, मैं तेरा पुत्र नहीं हूँ । सौम्ये ! तेरे शील-स्वभावमें यह उलट-फेर कैसा ? ॥ १९ ॥

तत्त्वमिच्छाम्यहं देवि कथितं को न्वयं विधिः ।
विद्युत्सम्पातचपलः स्वभावः खलु योषिताम् ॥ २० ॥
या नरेषु प्रसज्जन्ते नगाग्रेषु घना इव ।

देवि ! मैं यथार्थ बात जानना चाहता हूँ, तू ठीक-ठीक बता दे कि तेरा यह व्यवहार कैसा है ? निश्चय ही नारियोंका स्वभाव विद्युत्पातके समान चपल होता है । जैसे बादल पर्वत-शिखरोंसे ससक्त होते हैं, उसी तरह काममोहित स्त्रियाँ सभी पुरुषोंपर आसक्त हो जाती हैं ॥ २०½ ॥

यदि तेऽहं सुतः सौम्ये यदि वा नात्मजः शुभे ॥ २१ ॥
कथितं तत्त्वमिच्छामि किमिदं ते चिकीर्षितम् ।

सौम्ये ! शुभे ! यदि मैं तेरा पुत्र होऊँ तो वह बता दे, अथवा यदि तेरा पुत्र न भी होऊँ तो वह भी बता दे । मैं तेरे मुखसे यथार्थ बात सुनना चाहता हूँ । तू यह क्या करना चाहती है ॥ २१½ ॥

एवमुक्ता तु सा भीरुः कामेन व्यथितेन्द्रिया ॥ २२ ॥
प्रियं प्रोवाच वचनं विविक्ते केशवात्मजम् ।
न त्वं मम सुतः कान्त नापि ते शम्बरः पिता ॥ २३ ॥

उनके इस प्रकार पूछनेपर भीरुहृदया मायावती, जिसकी सारी इन्द्रियाँ कामसे व्यथित हो उठी थीं, एकान्तमें अपने प्रियतम केशवकुमारसे इस प्रकार बोली—'प्राणवल्लभ ! तुम मेरे पुत्र नहीं हो और शम्बरासुर भी तुम्हारा पिता नहीं है ॥ २२-२३ ॥

रूपवानसि विक्रान्तस्त्वं जात्या वृष्णिनन्दन ।
पुत्रस्त्वं वासुदेवस्य रुक्मिण्यानन्दवर्धनः ॥ २४ ॥

'वृष्णिकुलनन्दन ! तुम जन्मसे ही रूपवान् और पराक्रमी हो । वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णके पुत्र हो और माता रुक्मिणीका आनन्द बढ़ानेवाले उनके लाड़ले लाल हो ॥ २४ ॥

दिवसे सप्तमे बालो जातमात्रोऽपवाहितः ।
सूतिकागारमध्यात् त्वं शिशुरुत्तानशायितः ॥ २५ ॥
मम भर्त्रा हृतोऽसि त्वं बलवीर्यप्रवर्तिना ।
पितुस्ते वासुदेवस्य धर्षयित्वा गृहं महत् ॥ २६ ॥

'तुम्हारे जन्मके सातवें दिन जब कि तुम बालशिशुके रूपमें शय्यापर उतान सुलाये गये थे, मेरा भरण-पोषण करने-

वाले तथा बल और पराक्रमपूर्वक किसी कार्यमें प्रवृत्त होनेवाले शम्बरासुरने तुम्हारे पिता भगवान् वासुदेवके विशाल गृहको तिरस्कृत करके सूतिकागारके भीतरसे तुम्हारा अपहरण कर लिया ॥ २५-२६ ॥

पाकशासनकल्पस्य हृतस्त्वं शम्बरेण ह।
सा च ते करुणं माता त्वां बालमनुशोचती ॥ २७ ॥
अत्यर्थं तप्यते वीर विवत्सा सौरभी यथा।

'तुम इन्द्रके समान तेजस्वी पिताके पुत्र हो, तो भी शम्बरासुरने तुम्हें हर लिया। वीर! तुम्हारी माता रुक्मिणी भी तुम-जैसे बालकके लिये निरन्तर शोकमग्न रहकर करुण विलाप करती और अत्यन्त संतप्त होती हैं, ठीक उसी तरह जैसे अपने बछड़ेसे बिछुड़ी हुई गाय उसके लिये क्रन्दन करती रहती है ॥ २७½ ॥

सोऽपि शक्रादपि महान् पिता ते गरुडध्वजः ॥ २८ ॥
इह त्वां नाभिजानाति बालमेवापवाहितम्।

'तुम्हारे पिता भगवान् गरुडध्वज इन्द्रसे भी महान् हैं, किंतु उन्हें भी इस बातका पता नहीं है कि तुम बाल्यावस्थामें ही यहाँ हर लाये गये हो ॥ २८½ ॥

कान्त वृष्णिकुमारस्त्वं न हि त्वं शम्बरात्मजः ॥ २९ ॥
वीर नैवंविधान् पुत्रान् दानवा जनयन्ति हि।

'प्रियतम! तुम वृष्णिकुलके कुमार हो, शम्बरके पुत्र नहीं। वीर! दानव तुम-जैसे पुत्रोंको जन्म नहीं देते॥२९½॥

अतोऽहं कामयामि त्वां न हि त्वं जनितो मया ॥ ३० ॥
रूपं ते सौम्य पश्यन्ती सीदामि हृदि दुर्बला।

'सौम्य! इसीलिये मैं तुम्हें चाहती हूँ, क्योंकि मैंने तुम्हें उत्पन्न नहीं किया है। मैं दुर्बल अबला तुम्हारे मनोहर रूपका दर्शन करके मन-ही-मन कामसे संतप्त हो रही हूँ ॥३०½॥

यन्मे व्यवसितं कान्त यत् तु मे हृदि वर्तते ॥ ३१ ॥
तन्मे मनसि वार्ष्णेय प्रतिसंधातुमर्हसि।

'प्राणवल्लभ! वृष्णिनन्दन! मैंने जो कुछ करनेका निश्चय किया है, मेरे हृदयमें जो भाव है, उसे तुम मेरे मनोमन्दिरमें निवास करके पूर्ण करो ॥ ३१½ ॥

एष ते कथितः सर्वः सद्भावस्त्वयि यो मम ॥ ३२ ॥
यथा न मम पुत्रस्त्वं न पुत्रः शम्बरस्य च।

'तुम्हारे प्रति मेरे हृदयमें जो सद्भाव था, यह सब मैंने तुम्हें बता दिया, न तो तुम मेरे पुत्र हो और न शम्बरासुरके ही' ॥ ३२½ ॥

श्रुत्वैवमखिलं सर्वं मायावत्या प्रभाषितम् ॥ ३३ ॥
चक्रायुधात्मजः क्रुद्धः शम्बरं स समाह्वयत्।
सर्वमायाखभिज्ञोऽसौ नाम विश्राव्य चात्मनः ॥ ३४ ॥

मायावतीकी कही हुई यह सारी बात सुनकर भगवान् चक्रपाणिके पुत्र प्रद्युम्न कुपित हो उठे। वे समस्त मायाओंके ज्ञाता थे, उन्होंने अपना नाम सुनाकर शम्बरासुरको युद्धके लिये ललकारनेका निश्चय किया ॥३३-३४॥

अहो दानवदुष्टात्मा केशवस्यात्मजं शिशुम्।
हरते निर्भयश्चैव भयमद्य करोम्यहम् ॥ ३५ ॥

वे मन-ही-मन कहने लगे, 'अहो! इस दुष्टात्मा दानवने केशवके शिशु पुत्रका अपहरण किया है, तो भी यह निर्भय बना बैठा है और मैं आज इससे भय मान रहा हूँ ॥ ३५ ॥

कथं वै क्रोधमागच्छेद् वध्यते वा कथं मया।
प्रथमं किं करिष्यामि येन कुप्यति मन्दधीः ॥ ३६ ॥

'अब यह किस प्रकार मेरे ऊपर कुपित होगा और कैसे मेरे द्वारा इसका वध किया जायगा? मैं पहले क्या करूँ, जिससे यह मन्दबुद्धि दानव मुझपर कुपित हो? ॥ ३६ ॥

अस्ति चास्य ध्वजं चित्रं सिंहकेतुविभूषितम्।
तोरणं गृहमासाद्य उच्छ्रितं मेरुशृङ्गवत् ॥ ३७ ॥

'इसके यहाँ एक विचित्र ध्वज है, जो सिंहके चिह्नसे युक्त पताकाद्वारा विभूषित है। वह ध्वज बाहरी फाटकपर लगा है और मेरुपर्वतके शिखरके समान ऊँचा जान पड़ता है ॥ ३७ ॥

एतदुन्मथ्य पातिष्ये भल्लेन निशितेन वै।
ध्वजच्छेदं विदित्वाथ शम्बरो निष्क्रमिष्यति ॥ ३८ ॥

'आज मैं अपने तीखे भल्लसे इसको काट गिराऊँगा। अपने ध्वजको खण्डित हुआ जानकर शम्बरासुर युद्धके लिये निकलेगा ॥ ३८ ॥

ततो युद्धेन हत्वाऽऽजौ गन्तास्मि द्वारकां प्रति।
इत्युक्त्वा सज्यमाचक्रे सशरं चापमोजसा ॥ ३९ ॥

'तब मैं युद्धके द्वारा समराङ्गणमें इसका वध करके द्वारकापुरीको जाऊँगा।' मन-ही-मन ऐसा कहकर प्रद्युम्नने बलपूर्वक धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी और उसपर बाणका संधान किया ॥

चिच्छेद ध्वजरत्नं तु शम्बरस्य महाभुजः।
तच्छ्रुत्वा तु ध्वजच्छेदं प्रद्युम्नेन महात्मना ॥ ४० ॥
क्रुद्धस्त्वाज्ञापयामास पुत्रान् वै कालशम्बरः।
जिघांसध्वं महावीरा रौक्मिणेयं त्वरान्विताः ॥ ४१ ॥
नैवं वै द्रष्टुमिच्छामि मम विप्रियकारकम्।

उस बाणके द्वारा महाबाहु प्रद्युम्नने शम्बरासुरके ध्वजरत्नको काट डाला। महात्मा प्रद्युम्नके द्वारा ध्वजके खण्डित होनेका समाचार सुनकर कुपित हुए कालशम्बरने अपने पुत्रोंको आज्ञा दी, 'महावीरो! इस रुक्मिणीपुत्रको तुरंत

मार डालनेकी चेष्टा करो । इसने मेरा अप्रिय किया है, अब मैं इस तरह इसे जीवित देखना नहीं चाहता' ॥ ४०-४१½ ॥

श्रुत्वा तु शम्बराद् वाक्यं सुतास्ते शम्बरस्य ह ॥४२॥
संनद्धा निर्ययुर्हृष्टाः प्रद्युम्नवधकाङ्क्षया ।

शम्बरका यह आदेश सुनकर उसके पुत्र कवच आदिसे सुसज्जित हो प्रद्युम्नके वधकी इच्छासे हर्षपूर्वक निकले ॥४२½॥

चित्रसेनोऽतिसेनश्च विष्वक्सेनो गदस्तथा ॥ ४३ ॥
श्रुतसेनः सुषेणस्तु सोमसेनो मनस्तथा ।
सेनानी सैन्यहन्ता च सेनाहा सैनिकस्तथा ॥ ४४ ॥
सेनस्कन्धोऽतिसेनश्च सेनको जनकः सुतः ।
सकालो विकलः शान्तः स शातान्तकरोऽशुचिः ॥४५॥
कुम्भकेतुः सुदंष्ट्रश्च केशिरित्येवमादयः ।

चित्रसेन, अतिसेन, विष्वक्सेन, गद, श्रुतसेन, सुषेण, सोमसेन, मन, सेनानी, सैन्यहन्ता, सेनाहा, सैनिक, सेनस्कन्ध, अतिसेन, सेनक, जनक, सुत, सकाल, विकल, शान्त, शातान्तकर, अशुचि, कुम्भकेतु, सुदंष्ट्र और केशि आदि उनके नाम थे ॥ ४३-४५½ ॥

चक्रतोमरशूलानि पट्टिशानि परश्वधान् ॥ ४६ ॥
गृहीत्वा निर्ययुर्हृष्टा मन्युना परमाप्लुताः ।
आह्वयंस्तममित्रं वै तस्थुः संग्राममूर्धनि ॥ ४७ ॥

वे सब-के-सब हर्ष और उत्साहसे परिपूर्ण हो प्रद्युम्नके प्रति क्रोधसे भरकर चक्र, तोमर, शूल, पट्टिश और फरसे लिये निकले और अपने उस शत्रुको ललकारते हुए युद्धके मुहानेपर खड़े हो गये ॥ ४६-४७ ॥

प्रद्युम्नस्तु महाबाहू रथमारुह्य सत्वरम् ।
निर्ययौ चापमादाय संग्रामाभिमुखस्तदा ॥ ४८ ॥

उस समय महाबाहु प्रद्युम्न तुरंत ही रथपर आरूढ़ हो धनुष लेकर युद्धक्षेत्रकी ओर चल दिये ॥ ४८ ॥

ततः प्रवृत्तं युद्धं तु तुमुलं लोमहर्षणम् ।
शम्बरस्य तु पुत्राणां केशवस्य च सूनुना ॥ ४९ ॥

तदनन्तर शम्बरासुरके पुत्रोंका केशवकुमारके साथ भयंकर एवं रोमाञ्चकारी युद्ध आरम्भ हो गया ॥ ४९ ॥

ततो देवाः सगन्धर्वाः समहोरगचारणाः ।
देवराजं पुरस्कृत्य विमानाग्रेषु धिष्ठिताः ॥ ५० ॥

फिर तो सब देवता, गन्धर्व, बड़े-बड़े नाग और चारण देवराज इन्द्रको आगे करके विमानोंके अग्रभागोंमें स्थित हुए ॥

नारदस्तुम्बुरुश्चैव हाहाहूहूश्च गायनाः ।
अप्सरोभिः परिवृताः सर्वे तत्रावतस्थिरे ॥ ५१ ॥

नारद, तुम्बुरु, हाहा और हूहू—ये गान करनेवाले गन्धर्व अप्सराओंसे घिरकर सभी उन विमानोंमें स्थित थे ॥ ५१ ॥

देवराजप्रतीहारो गन्धर्वश्चित्रमद्भुतम् ।
शशंस देवराजाय वज्रिणे तद्विचेष्टितम् ॥ ५२ ॥

देवराज इन्द्रका प्रतीहार गन्धर्व वज्रधारी इन्द्रको प्रद्युम्नकी विचित्र एवं अद्‌भुत चेष्टाएँ सुनाने लगा—॥५२॥

शम्बरस्य शतं पुत्रा एकः कृष्णस्य चात्मजः ।
बहूनां युध्यतामेष कथं विजयमाप्नुयात् ॥ ५३ ॥

'एक ओर तो शम्बरासुरके सौ पुत्र हैं और दूसरी ओर श्रीकृष्णके एकमात्र पुत्र प्रद्युम्न हैं, बहुत-से योद्धाओंके सामने ये अकेले ही कैसे विजय पा सकते हैं' ॥ ५३ ॥

तच्छ्रुत्वा भाषितं तस्य प्रहस्य बलसूदनः ।
उवाच वचनं चेदं शृणु योऽस्य पराक्रमः ॥ ५४ ॥

उसका वह कथन सुनकर बलसूदन इन्द्र जोर-जोरसे हँस पड़े और बोले—'प्रद्युम्नका जो पराक्रम है, उसका वर्णन सुनो।

कामोऽयं पूर्वदेहे तु हरक्रोधाग्निना हतः ।
रत्या प्रसादितो देवः कामपत्न्या त्रिलोचनः ।
परितुष्टेन देवेन वरमस्याः प्रदीयते ॥ ५५ ॥

'ये कामदेव हैं, जो पूर्वशरीरमें रहते समय भगवान् शङ्करकी क्रोधाग्निसे भस्म हो गये थे, फिर कामपत्नी रतिने महादेवजीको प्रसन्न किया । प्रसन्न हुए महादेवजीने उ[से] वर दिया ॥ ५५ ॥

विष्णुर्मानुषदेहस्तु द्वारकायां भविष्यति ।
तस्य पुत्रत्वमस्यैव भविष्यति न संशयः ॥ ५६ ॥

'भगवान् विष्णु मानव-शरीर धारण करके जब द्वारका[में] निवास करेंगे, उस समय तुम्हारे स्वामी कामदेव उनके पु[त्र] होंगे, इसमें संशय नहीं है ॥ ५६ ॥

अनङ्ग इति विख्यातस्त्रैलोक्ये तु महायशाः ।
तत्रोत्पन्नो महातेजाः शम्बरं घातयिष्यति ॥ ५७ ॥

'इस समय ये महायशस्वी कामदेव तीनों लोकोंमें अन[ङ्ग] नामसे विख्यात होंगे और द्वारकामें उत्पन्न होनेपर मह[ान्] तेजसे सम्पन्न हो शम्बरासुरका वध करेंगे ॥ ५७ ॥

सप्ताहे जातमात्रे तु रुक्मिण्याः क्रोडसंस्थितम् ।
आस्थाय शम्बरो मायां प्रद्युम्नमपनेष्यति ॥ ५८ ॥

'उनके जन्मसे केवल सात दिनका समय व्यतीत होनेपर रुक्मिणीकी गोदमें स्थित हुए प्रद्युम्नको माया[का] आश्रय ले शम्बरासुर हर ले जायगा ॥ ५८ ॥

तद् गच्छ शम्बरगृहं भार्या मायावती भव ।
मायारूपप्रतिच्छन्ना शम्बरं मोहयिष्यसि ॥ ५९ ॥

'अतः तू शम्बरासुरके घर जा और उसकी माया[वती नामक] भार्या बन जा। [तू] अपने यथार्थ रूपको छिपाक[र] शम्बरासुरको मोहमें डाले रहेगी ॥ ५९ ॥

तत्र त्वमात्मनः कान्तं बालरूपं विवर्धय।
प्राप्तयौवनदेहस्तु शम्बरं निहनिष्यति ॥ ६० ॥

'वहीं तुम्हें अपने प्रियतम कामदेव बालरूपमें प्राप्त होंगे। धायद्वारा उनका पालन-पोषण करके तुम उन्हें बड़ा बनाना। जब वे तरुण शरीर प्राप्त कर लेंगे, उस समय शम्बरासुरका वध करेंगे ॥ ६० ॥

ततस्त्वया सहानङ्गो द्वारकां वै गमिष्यति।
रमिष्यति त्वया सार्धं शैलपुत्र्या यथा ह्यहम् ॥ ६१ ॥

'तदनन्तर कामदेव तुम्हारे साथ द्वारकामें जायँगे और जैसे पार्वतीके साथ मैं रहता हूँ, उसी प्रकार तुम्हारे साथ वे आनन्दपूर्वक रहेंगे' ॥ ६१ ॥

एवमादिश्य देवेशो जगाम पुरुषोत्तमः।
कैलासं मेरुसंकाशं सिद्धचारणसेवितम् ॥ ६२ ॥

'ऐसा आदेश देकर देवेश्वर पुरुषोत्तम शिव सिद्ध-चारण-सेवित कैलासपर्वतको, जो मेरुगिरिके समान है, चले गये ॥

कामपत्नी प्रणम्याथ देवदेवमुमापतिम्।
जगाम शम्बरगृहं कालस्यान्तं प्रतीक्षती ॥ ६३ ॥

'इसके बाद कामपत्नी रति देवाधिदेव उमापतिको प्रणाम करके कालके अन्तकी प्रतीक्षा करती हुई शम्बरासुरके घरको चली गयी ॥ ६३ ॥

एवमेष महाबाहुः शम्बरं निहनिष्यति।
सह पुत्रेण प्रद्युम्नो हन्ता तस्य दुरात्मनः ॥ ६४ ॥

'इस प्रकार ये महाबाहु प्रद्युम्न पुत्रोंसहित शम्बरासुरका संहार कर डालेंगे; क्योंकि वे ही इस दुरात्माका अन्त करनेवाले हैं' ॥ ६४ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि शम्बरवधे चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें शम्बरासुरका वधविषयक एक सौ चारवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०४ ॥

पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

प्रद्युम्नद्वारा शम्बरासुरकी सेना और मन्त्रियोंका संहार

वैशम्पायन उवाच

ततः प्रवृत्तं युद्धं तु तुमुलं लोमहर्षणम्।
शम्बरस्य तु पुत्राणां रुक्मिण्या नन्दनस्य च ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! तत्पश्चात् शम्बरासुरके पुत्रों तथा रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्नका घोर रोमाञ्चकारी युद्ध आरम्भ हुआ ॥ १ ॥

ततः क्रुद्धा महादैत्याः शरशक्तिपरश्वधान्।
चक्रतोमरकुन्तानि भुशुण्डीर्मुसलानि च ॥ २ ॥
युगपत् पातयन्ति स्म प्रद्युम्नोपरि वेगिताः।

उस समय क्रोधमें भरे हुए बड़े-बड़े वेगशाली दैत्य एक ही साथ प्रद्युम्नपर बाण, शक्ति, फरसे, चक्र, तोमर, कुन्त, भुशुण्डी और मुसलोंकी वर्षा करने लगे ॥ २½ ॥

कार्ष्णायनिस्तु संक्रुद्धः सर्वास्त्रधनुषश्च्युतैः ॥ ३ ॥
एकैकं पञ्चभिः क्रुद्धश्चिच्छेद रणमूर्धनि।

यह देख श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्न अत्यन्त कुपित हो उठे और अपने सर्वास्त्रवर्षी धनुषसे छूटे हुए पाँच-पाँच बाणोंद्वारा उन्होंने युद्धके मुहानेपर शत्रुओंके प्रत्येक अस्त्रको क्रोधपूर्वक काट डाला ॥ ३½ ॥

पुनरेवासुराः क्रुद्धाः सर्वे ते कृतनिश्चयाः ॥ ४ ॥
ववृषुः शरजालानि प्रद्युम्नवधकाङ्क्षया।

तब वे सभी असुर पुनः कुपित हो युद्धके लिये दृढ़ निश्चय करके प्रद्युम्नके वधकी इच्छासे बाणसमूहोंकी वर्षा करने लगे ॥ ४½ ॥

ततः प्रकुपितोऽनङ्गो धनुरादाय सत्वरः ॥ ५ ॥
शम्बरस्य जघानाशु दश पुत्रान् महौजसः।

इससे अनङ्गस्वरूप प्रद्युम्नका क्रोध बहुत बढ़ गया। उन्होंने तुरंत ही धनुष हाथमें लेकर अपने बाणोंद्वारा शम्बरासुरके दस महाबली पुत्रोंको तत्काल कालके गालमें भेज दिया ॥ ५½ ॥

ततोऽपरेण भल्लेन कुपितः केशवात्मजः ॥ ६ ॥
चिच्छेदाशु शिरस्तस्य चित्रसेनस्य वीर्यवान्।

तत्पश्चात् कुपित हुए पराक्रमी केशवकुमारने दूसरे भल्लसे बड़ी शीघ्रताके साथ चित्रसेनका मस्तक काट डाला ॥ ६½ ॥

ततस्ते हतशेषास्तु समेत्य समयुद्ध्यत ॥ ७ ॥
शरवर्षं विमुञ्चन्तो ह्यभ्यधावञ्जिघांसितुम्।
ततः संधाय बाणांस्ते विमुञ्चन्तो रणोत्सुकाः ॥ ८ ॥

तदनन्तर जो मरनेसे बच गये, वे सब एक साथ संगठित होकर युद्ध करने लगे। बाणोंकी वर्षा करते हुए उन्होंने प्रद्युम्नको मार डालनेकी इच्छासे उनपर धावा किया। वे बाणोंको धनुषपर रखकर युद्धके लिये उत्सुक हो उन्हें छोड़ने लगे ॥ ७-८ ॥

क्रीडन्निव महातेजाः शिरांस्येषामपातयत्।

निहत्य समरे सर्वाञ्छतमुत्तमधन्विनाम् ॥ ९ ॥
प्रद्युम्नः समराकाङ्क्षी तस्थौ संग्राममूर्धनि ।

महातेजस्वी प्रद्युम्न खेल-सा करते हुए इनके मस्तक काट-काटकर गिराने लगे । समराङ्गणमें जो सौ उत्तम धनुर्धर वीर थे, उन सबका संहार करके वे मनमें और भी युद्धकी अभिलाषा लिये संग्रामके मुहानेपर खड़े हो गये ॥ ९½ ॥

हतं पुत्रशतं श्रुत्वा शम्बरः क्रोधमादधे ॥ १० ॥
सूतं संचोदयामास रथं मे सम्प्रयोजय ।

अपने सौ पुत्रोंका वध हुआ सुनकर शम्बरासुरको बड़ा क्रोध हुआ । उसने सारथिको आदेश दिया कि मेरे रथको जोतो ॥ १०½ ॥

राज्ञो वाक्यं निशम्याथ प्रणम्य शिरसा भुवि ॥ ११ ॥
ससैन्यं नोदयामास रथं स सुसमाहितम् ।

राजाकी यह बात सुनकर सारथिने पृथ्वीपर मस्तक टेककर प्रणाम किया और सेनासहित रथको पूरी सावधानीके साथ युद्धके लिये प्रेरित किया ॥ ११½ ॥

युक्तमृष्यसहस्रेण सर्पयोक्त्रेण योजितम् ॥ १२ ॥
शार्दूलचर्मसंविष्टं किङ्किणीजालमालिनम् ।
ईहामृगगणाकीर्णं पङ्क्तिभक्तिविराजितम् ॥ १३ ॥

उस रथमें एक सहस्र मृग जुते हुए थे । वह सर्पोंकी रस्सियोंसे जोता गया था । वह रथ व्याघ्रचर्मसे ढका हुआ था, उसमें घुँघुरुओंकी माला शोभा दे रही थी, वह कृत्रिम पशु-पक्षियोंसे व्याप्त तथा दस चित्रभागोंसे विभूषित था ॥

ताराचित्रपिनद्धाङ्गं स्वर्णकूबरभूषितम् ।
सुपताकमहोच्छ्रायं मृगराजोग्रकेतनम् ॥ १४ ॥

उसके सारे अङ्ग तारिकाओंके चित्रसे व्याप्त थे । सोनेका कूबर उस रथकी शोभा बढ़ा रहा था । उसका बहुत ही ऊँचा भाग सुन्दर पताकाओंसे सुशोभित था । उसमें सिंहके चिह्नवाली उग्र ध्वजा फहरा रही थी ॥ १४ ॥

सुविभक्तवरूथं च लोहेषावज्रकूबरम् ।
मन्दरोदग्रशिखरं चारुचामरभूषितम् ॥ १५ ॥

उस रथका आवरण सुन्दर विभागपूर्वक बना हुआ था । उसमें लोहेके हरसे और वज्रमणिजटित कूबर शोभा पाते थे । उसका शिखर मन्दराचलके समान ऊँचा था । वह सुन्दर चँवरसे विभूषित था ॥ १५ ॥

नक्षत्रमालापिहितं हेमदण्डसमाहितम् ।
विराजमानं श्रीमन्तमारोहच्छम्बरो रथम् ॥ १६ ॥

नक्षत्रोंकी मालाओंसे आवृत तथा सुवर्णमय दण्डसे सुस्थिर बने हुए उस शोभाशाली कान्तिमान् रथपर शम्बरासुर आरूढ़ हुआ ॥ १६ ॥

काञ्चनं चित्रसंनाहं धनुर्गृह्य शरांस्तथा ।
प्रस्थितः समराकाङ्क्षी मृत्युना परिचोदितः ॥ १७ ॥

सोनेका विचित्र कवच, धनुष और बाण धारण करके कालसे प्रेरित हो युद्धकी इच्छासे वह प्रस्थित हुआ ॥ १७ ॥

चतुर्भिः सचिवैः सार्द्धं सैन्येन महता वृतः ।
दुर्धरः केतुमाली च शत्रुहन्ता प्रमर्दनः ॥ १८ ॥
एतैः परिवृतोऽमात्यैर्युयुत्सुः प्रस्थितो रणे ।

उसके साथ चार मन्त्री थे और वह विशाल सेनासे घिरा हुआ था । दुर्धर, केतुमाली, शत्रुहन्ता और प्रमर्दन—इन मन्त्रियोंसे घिरा हुआ वह युद्धकी इच्छासे रणभूमिकी ओर प्रस्थित हुआ ॥ १८½ ॥

दशनागसहस्राणि रथानां द्वे शते तथा ॥ १९ ॥
हयानां चाष्टसाहस्रैः प्रयुतैश्च पदातिनाम् ।
एतैः परिवृतो योधैः शम्बरः प्रययौ तदा ॥ २० ॥

दस हजार हाथी, दो सौ रथ, आठ हजार घोड़े और दस लाख पैदल इतने योद्धाओंसे घिरे हुए शम्बरासुरने उस समय युद्धके लिये प्रस्थान किया ॥ १९-२० ॥

प्रयातस्य तु संग्रामे उत्पाता बहवोऽभवन् ।
गृध्रचक्राकुलं व्योम संध्याकाराभ्रनादितम् ॥ २१ ॥

युद्धके लिये जाते समय उसके सामने बहुत-से उत्पात प्रकट हुए । आकाशमें गृध्रोंका मण्डल मँडराने लगा । संध्याकालके समान लाल रङ्गके बादल गड़गड़ाने लगे ॥ २१ ॥

गर्जन्ति परुषं मेघा निर्घातश्चाम्बरात् पतत् ।
शिवा विनेदुरशिवं सैन्यं संकालयन्महत् ॥ २२ ॥

मेघ बड़े कठोर शब्दमें गर्जना करने लगे, आकाशसे बिजली गिरने लगी, गीदड़ियाँ अमङ्गलसूचक बोली बोलने लगीं, जिससे सेनाके महान् संहारकी सूचना मिलती थी ॥

ध्वजशीर्षेऽपतद् गृध्रः काङ्क्षन् वै दानवासृजम् ।
रथाग्रे पतितश्चास्य कबन्धो भुवि दृश्यते ॥ २३ ॥

गीध दानवोंके रक्तका पान करनेकी इच्छा रखकर उसकी ध्वजाके अग्रभागपर जा बैठा । उसके रथके सामने पृथ्वीपर कबन्ध पड़ा हुआ दिखायी देने लगा ॥ २३ ॥

चीचीकूचीति वाशन्ति शम्बरस्य रथोपरि ।
स्वर्भानुग्रस्त आदित्यः परिघैः परिवेष्टितः ॥ २४ ॥

शम्बरासुरके रथके ऊपर बहुत-से पक्षी 'चीची कूची' ऐसी बोली बोलने लगे । सूर्यको राहुने ग्रस लिया और उनपर अनेक घेरे पड़ गये ॥ २४ ॥

स्फुरते नयनं चास्य सव्यं भयनिवेदनम् ।
बाहुः प्रकम्पते सव्यः प्रास्खलन् रथवाजिनः ॥ २५ ॥

उसका बायाँ नेत्र फड़कने लगा, जो भयकी सूचना दे रहा था । बायीं भुजा काँपने लगी और रथके घोड़े लड़खड़ाकर गिरने लगे ॥ २५ ॥

ध्वाङ्क्षो मूर्ध्नि निपतितः शम्बरस्य सुरारिणः।
ववर्ष रुधिरं देवः शर्कराङ्गारमिश्रितम् ॥ २६ ॥

देवद्रोही शम्बरासुरके मस्तकपर कौआ जा बैठा, पर्जन्य-देव कंकड़ और अङ्गारोंसे मिश्रित रक्तकी वर्षा करने लगे ॥

उल्कापातसहस्राणि निपेतू रणमूर्धनि।
प्रतोदो न्यपतद्धस्तात् सारथेर्हययायिनः ॥ २७ ॥

संग्रामके मुहानेपर सहस्रों उल्कापात होने लगे, घोड़े हाँकनेवाले सारथिके हाथसे चाबुक गिर पड़ा ॥ २७ ॥

एतानचिन्तयित्वा तु उत्पातान् समुपस्थितान्।
प्रययौ शम्बरः क्रुद्धः प्रद्युम्नवधकाङ्क्षया ॥ २८ ॥

इन उपस्थित हुए उत्पातोंकी कोई परवा न करके क्रोधमें भरा हुआ शम्बरासुर प्रद्युम्नको मार डालनेकी इच्छासे आगे बढ़ा ॥ २८ ॥

भेरीमृदङ्गशङ्खानां पणवानकदुन्दुभेः।
युगपद्वाद्यमानानां पृथिवी समकम्पत ॥ २९ ॥

उस समय एक ही साथ भेरी, मृदङ्ग, शङ्ख, पणव, आनक और दुन्दुभि आदि बाजे बज उठे। उनकी तुमुल ध्वनिसे यह पृथ्वी काँपने लगी ॥ २९ ॥

तेन शब्देन महता संत्रस्ता मृगपक्षिणः।
समन्ताद् दुद्रुवुस्तस्माद् भयविक्लवचेतसः ॥ ३० ॥

उस महान् शब्दसे सारे पशु-पक्षी संत्रस्त हो गये और भयसे व्याकुलचित्त होकर सब ओर भागने लगे ॥ ३० ॥

रणमध्ये स्थितः कार्ष्णिश्चिन्तयन् निधनं रिपोः।
सैन्यैः परिवृतोऽसंख्यैर्युद्धाय कृतनिश्चयः ॥ ३१ ॥

उस समय रणभूमिके मध्यभागमें शत्रुके वधका चिन्तन करते हुए श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्न असंख्य सेनाओंसे घिरे हुए युद्धके लिये दृढ़ निश्चय करके खड़े हुए थे ॥ ३१ ॥

क्रुद्धः शरसहस्रेण प्रद्युम्नं समताडयत्।
सम्प्राप्तांश्चैव तान् बाणांश्चिच्छेद कृतहस्तवत् ॥ ३२ ॥

शम्बरासुरने कुपित होकर प्रद्युम्नपर एक हजार बाणोंका प्रहार किया, उन बाणोंको अपने पास आते ही प्रद्युम्नने एक सिद्धहस्त योद्धाकी भाँति काट डाला ॥ ३२ ॥

प्रद्युम्नो धनुरादाय शरवर्षं मुमोच ह।
तस्मिन् सैन्ये न कोऽप्यस्ति यो न विद्धः शरेण वै ॥ ३३ ॥

अब प्रद्युम्न धनुष लेकर बाणोंकी वर्षा करने लगे। उस समय उस सेनामें ऐसा कोई भी सैनिक नहीं था, जो उनके बाणोंसे विद्ध न हुआ हो ॥ ३३ ॥

प्रद्युम्नशरपातेन तत् सैन्यं विमुखीकृतम्।
शम्बरस्य तथाभ्याशे स्थितं संहृत्य भीतवत् ॥ ३४ ॥

प्रद्युम्नके बाणोंके प्रहारसे वह सारी सेना युद्धसे विमुख हो गयी तथा भयभीतकी भाँति शम्बरासुरके समीप सिमटकर खड़ी हो गयी ॥ ३४ ॥

स्वबलं विद्रुतं दृष्ट्वा शम्बरः क्रोधमूर्च्छितः।
आज्ञापयामास तदा सचिवान् दानवेश्वरः ॥ ३५ ॥

अपनी सेनाको भागती देख दानवराज शम्बर क्रोधसे अचेत-सा हो गया। उस समय उसने अपने मन्त्रियोंको आज्ञा दी— ॥ ३५ ॥

गच्छध्वं मन्नियोगेन प्रहरध्वं रिपोः सुतम्।
नोपेक्षणीयः शत्रुर्वै वध्यतां क्षिप्रमेष वै ॥ ३६ ॥

'तुम सब लोग जाओ और मेरे आदेशसे शत्रुके उस पुत्र-पर प्रहार करो। तुम्हें इस शत्रुकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। इसे शीघ्र ही मार डालो ॥ ३६ ॥

उपेक्षित इव व्याधिः शरीरं नाशयेद् ध्रुवम्।
तदेष दुर्मतिः पापो वध्यतां मत्प्रियेप्सया ॥ ३७ ॥

'यदि इसकी उपेक्षा की गयी तो यह उपेक्षित रोगकी भाँति निश्चय ही शरीरका नाश कर डालेगा, अतः मेरा प्रिय करनेकी इच्छासे इस दुर्बुद्धि पापीका वध कर डालो' ॥ ३७ ॥

ततस्ते सचिवाः क्रुद्धाः शिरसा गृह्य शासनम्।
शरवर्षं विमुञ्चन्तस्त्वरिता नोदयन् रथान् ॥ ३८ ॥

तब उन मन्त्रियोंने स्वामीकी आज्ञाको शिरोधार्य करके क्रोधपूर्वक बाणवर्षा करते हुए बड़ी उतावलीके साथ रथोंको हाँका ॥ ३८ ॥

तान् दृष्ट्वा धावतः संख्ये क्रुद्धो मकरकेतनः।
चापमुद्यम्य सम्भ्रान्तस्तस्थौ प्रमुखतो बली ॥ ३९ ॥

युद्धमें उन्हें धावा करते देख बलवान् मकरध्वज प्रद्युम्न भी कुपित हो उठे और बड़े वेगसे धनुष उठाकर शत्रुओंके सामने खड़े हो गये ॥ ३९ ॥

दुर्धरं पञ्चविंशत्या शरैः संनतपर्वभिः।
बिभेद सुमहातेजाः केतुमालिं त्रिषष्टिभिः ॥ ४० ॥
सप्तत्या शत्रुहन्तारं द्व्यशीत्या तु प्रमर्दनम्।
बिभेद परमामर्षी रुक्मिण्या नन्दिवर्धनः ॥ ४१ ॥

रुक्मिणीका आनन्द बढ़ानेवाले महातेजस्वी प्रद्युम्नने अत्यन्त अमर्षमें भरकर झुकी हुई गाँठवाले पचीस बाणोंसे दुर्धरको, तिरसठ बाणोंसे केतुमालीको, सत्तर बाणोंसे शत्रुहन्ताको और बयासी बाणोंसे प्रमर्दनको घायल कर दिया ॥

ततस्ते सचिवाः क्रुद्धाः प्रद्युम्नं शरवृष्टिभिः।
एकैकशो बिभेदाजौ षष्टिभिः षष्टिभिः शरैः ॥ ४२ ॥

तदनन्तर वे कुपित हुए मन्त्री भी प्रद्युम्नको बाण-वर्षाका निशाना बनाने लगे। उनमेंसे एक-एकने प्रद्युम्नको साठ-साठ बाण मारे ॥ ४२ ॥

तानप्राप्ताञ्छरान् बाणैश्चिच्छेद मकरध्वजः।
ततोऽर्धचन्द्रमादाय दुर्धरस्य स सारथिम् ॥ ४३ ॥

जघान पश्यतां राज्ञां सर्वेषां सैनिकस्य वै ।

उन बाणोंको अपने पास आनेसे पहले ही प्रद्युम्नने तीखे सायकोंसे काट डाला । तत्पश्चात् एक अर्धचन्द्राकार बाण लेकर समस्त राजाओं और उनके सैनिकोंके देखते-देखते दुर्धरके सारथिको मार डाला ॥ ४३½ ॥

चतुर्भिरथ नाराचैः क्षुरपर्वैः कङ्कतेजितैः ॥ ४४ ॥
जघान चतुरः सोऽश्वान् दुर्धरस्य रथं प्रति ।

फिर उत्तम गाँठवाले, कङ्कपत्रयुक्त चार तीखे नाराचोंद्वारा दुर्धरके रथसम्बन्धी चार घोड़ोंको कालके गालमें भेज दिया ॥ ४४½ ॥

एकेन योक्त्रं छत्रं च ध्वजमेकेन बन्धुरम् ॥ ४५ ॥
षष्ट्या च युगचक्राक्षं चिच्छेद मकरध्वजः ।

इसके बाद एक बाणसे रथको जोड़नेवाली रस्सी, छत्र और ध्वज तथा एक बाणसे बन्धुरके टुकड़े-टुकड़े कर डाले । फिर साठ बाणोंसे प्रद्युम्नने रथके जुए, धुरे और पहियोंको भी काट डाला ॥ ४५½ ॥

अथापरं शरं गृह्य कङ्कपत्रं सुतेजितम् ॥ ४६ ॥
मुमोच हृदये तस्य दुर्द्धरस्यान्यजीविनः ।

तदनन्तर प्रद्युम्नने कङ्कपक्षीके पर लगे हुए और अत्यन्त तेज किये हुए एक बाणको लेकर दूसरेके आश्रय-पर जीनेवाले दुर्धरके हृदयपर छोड़ा ॥ ४६½ ॥

स गतासुर्गतश्रीको गतसत्त्वो गतप्रभः ॥ ४७ ॥
निपपात रथोपस्थात् क्षीणपुण्य इव ग्रहः ।

तब वह दुर्धर निष्प्राण हो शोभा और सत्त्वसे रहित हो गया । उसकी कान्ति फीकी पड़ गयी । वह रथकी बैठकमेंसे नीचे गिर पड़ा । उस समय वह, जिसका पुण्य क्षीण हो गया हो ऐसे ग्रहके समान दीखने लगा ॥ ४७½ ॥

दुर्धरे निहते शूरे दानवे दानवेश्वरः ॥ ४८ ॥
केतुमाली शरव्रातैरभिदुद्राव कृष्णजम् ।

दुर्धर शूर दानव था, उसके मारे जानेपर दानवेश्वर केतुमाली भी कृष्णकुमार प्रद्युम्नपर बाणोंके समूहोंको छोड़ता हुआ चढ़ आया ॥ ४८½ ॥

प्रद्युम्नमथ संक्रुद्धो भ्रुकुटीभीषणाननः ॥ ४९ ॥
कृत्वाभ्यधावत् सहसा तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ।

तदनन्तर क्रोधमें भरा हुआ केतुमाली भ्रुकुटी चढ़ाकर मुखको भीषण बना प्रद्युम्नपर सहसा दौड़ पड़ा और उनसे कहने लगा 'खड़ा रह ! खड़ा रह !!' ॥ ४९½ ॥

संक्रुद्धः कृष्णसूनुस्तु शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ५० ॥
पर्वतं वारिधाराभिः प्रावृषीव यथा घनः ।

यह सुनकर श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्नको बड़ा क्रोध हुआ, उन्होंने बाणोंकी वर्षा करके केतुमालीको ढक दिया; ठीक उसी तरह जैसे वर्षा ऋतुमें बादल जलकी धाराओंसे पर्वतको आच्छादित कर देता है ॥ ५०½ ॥

स विद्धो दानवामात्यः प्रद्युम्नेन धनुष्मता ॥ ५१ ॥
चक्रमादाय चिक्षेप प्रद्युम्नवधकाङ्क्षया ।

धनुर्धर प्रद्युम्नके द्वारा घायल हुए दानवमन्त्री केतुमालीने प्रद्युम्नका वध करनेकी इच्छासे चक्र लेकर उनके ऊपर चलाया ॥ ५१½ ॥

तं तु प्राप्तं सहस्रारं कृष्णचक्रसमद्युतिम् ॥ ५२ ॥
निपत्योत्पत्य सहसा सर्वेषामेव पश्यताम् ।
तेनैव तस्य चिच्छेद केतुमालेः शिरस्तदा ॥ ५३ ॥

श्रीकृष्णके चक्रके समान तेजस्वी उस सहस्रार चक्रको पास आया देख प्रद्युम्नने सहसा उछलकर उसे पकड़ लिया और सबके देखते-देखते उस समय उसी चक्रसे केतुमालीका सिर काट लिया ॥ ५२-५३ ॥

तद् दृष्ट्वा कर्म विपुलं रौक्मिणेयस्य देवराट् ।
विस्मयं परमं प्राप्तः सर्वैर्देवगणैः सह ।
गन्धर्वाप्सरसश्चैव पुष्पवर्षैरवाकिरन् ॥ ५४ ॥

रुक्मिणीकुमारका वह महान् कर्म देखकर समस्त देवताओंसहित देवराज इन्द्रको बड़ा विस्मय हुआ । उस समय गन्धर्वों और अप्सराओंने उनके ऊपर फूलोंकी वर्षा की ॥ ५४ ॥

केतुमालिं हतं दृष्ट्वा शत्रुहन्ता प्रमर्दनः ।
महाबलसमूहेन प्रद्युम्नमथ दुद्रुवे ॥ ५५ ॥

केतुमालीको मारा गया देख शत्रुहन्ता और प्रमर्दन विशाल सैन्यसमूहके साथ प्रद्युम्नपर टूट पड़े ॥ ५५ ॥

ते गदां मुसलं चक्रं प्रासतोमरसायकान् ।
भिन्दिपालान् कुठारांश्च भास्वरान् कूटमुद्गरान् ॥ ५६ ॥
युगपत् संक्षिपन्ति स्म वधार्थं कृष्णनन्दने ।

वे गदा, मुसल, चक्र, प्रास, तोमर, सायक, भिन्दिपाल, कुठार और चमकीले कूटमुद्गरोंको एक साथ ही श्रीकृष्णकुमारके वधके लिये उनके ऊपर फेंकने लगे ॥ ५६½ ॥

सोऽपि तान्यस्त्रजालानि शस्त्रजालैरनेकधा ॥ ५७ ॥
चिच्छेद बहुधा वीरो दर्शयन् पाणिलाघवम् ।

वीर प्रद्युम्नने भी अपने हाथोंकी फुर्ती दिखाते हुए शस्त्रसमूहोंद्वारा शत्रुओंके अस्त्र-जालके बारंबार बहुतसे टुकड़े कर डाले ॥ ५७½ ॥

गजान् सोऽभ्यहनत् क्रुद्धो गजारोहान् सहस्रशः ॥ ५८ ॥
रथान् सारथिभिः सार्धं हयांश्चैव ममर्द ह ।
पातयंस्ताञ्छरव्रातैर्नाविद्धः कश्चिदीक्ष्यते ॥ ५९ ॥

उन्होंने कुपित होकर सहस्रों हाथियों और हाथीसवारोंको मार डाला । सारथियोंसहित रथों और घोड़ोंको भी रौंद

कर मिट्टीमें मिला दिया। उन सबको धराशायी करते हुए प्रद्युम्नने अपने बाण-समूहोंद्वारा समस्त सैनिकोंको बींध डाला। कोई भी ऐसा नहीं दिखायी देता था, जो उनके बाणोंसे विद्ध न हुआ हो ॥ ५८-५९ ॥

एवं सर्वाणि सैन्यानि ममन्थ मकरध्वजः।
नदीं प्रावर्तयद् घोरां शोणिताम्बुतरङ्गिणीम् ॥ ६० ॥

इस प्रकार मकरध्वजने शत्रुकी सारी सेनाओंको मथ डाला और एक भयानक नदी बहा दी, जो रक्तमय जलकी तरङ्गोंसे सुशोभित होती थी ॥ ६० ॥

मुक्ताहारोर्मिबहुलां मांसमेदःसपङ्किनीम्।
छत्रद्वीपां शरावर्तां रथैः पुलिनमण्डिताम् ॥ ६१ ॥

मोतियोंके हार उसमें उठती हुई बहुसंख्यक लहरोंके समान प्रतीत होते थे। वसा और मेद कीचके समान जान पड़ते थे। छत्र द्वीप और बाण आवर्त (भँवर) के समान थे। रथ ही उस नदीके तट बनकर उसकी शोभा बढ़ाते थे ॥ ६१ ॥

केयूरकुण्डलाकूर्मां ध्वजमत्स्यविभूषिताम्।
नागग्राहवतीं रौद्रामसिनक्रविभूषिताम् ॥ ६२ ॥

केयूर और कुण्डल उसमें कछुएका भ्रम उत्पन्न करते थे। ध्वजरूपी मत्स्य उसकी शोभा बढ़ाते थे। हाथीरूपी ग्राहोंसे युक्त होनेके कारण वह बड़ी भयङ्कर जान पड़ती थी। खड्गरूपी नाकें उसके आभूषण थे ॥ ६२ ॥

केशशैवलसंछन्नां श्रोणिसूत्रमृणालिकाम्।
वराननसुपद्मां च हंसचामरवीजिताम् ॥ ६३ ॥

वह केशरूपी सेवारसे ढकी हुई थी, कटिसूत्र कमल-नालके समान प्रतीत होते थे, सुन्दर मुख ही उसमें खिले हुए मनोहर कमल थे, हिलते हुए चँवर हंसोंके पङ्ख-सञ्चालनकी भाँति प्रतीत होते थे, मानो उनके द्वारा उस नदीको हवा की जा रही थी ॥ ६३ ॥

शिरस्तिमिसमाकीर्णां शोणितौघप्रवर्तिनीम्।
नदीं दुस्तरणीं भीमामनङ्गेन प्रवर्तिताम् ॥ ६४ ॥
दुष्प्रेक्ष्यां दुर्गमां रौद्रां हीनतेजःसुदुस्तराम्।
शस्त्रग्राहवतीं घोरां यमराष्ट्रविवर्द्धनीम् ॥ ६५ ॥

(हाथी आदि पशुओंके कटे हुए) मस्तक उसमें तिमि नामक मत्स्यके समान सब ओर व्याप्त थे। वह शोणितकी वेगयुक्त धारा बहा रही थी। अनङ्गस्वरूप प्रद्युम्नके द्वारा बहायी गयी वह रक्तनदी अत्यन्त दुस्तर, दुर्लक्ष्य, दुर्गम एवं भयंकर थी। तेजोहीन पुरुषोंके लिये उसे पार करना अत्यन्त कठिन था। शस्त्ररूपी ग्राहोंसे युक्त वह घोर नदी यमराजके राज्यकी वृद्धि कर रही थी ॥ ६४-६५ ॥

तत्र रुक्मिसुतः श्रीमान् विलोडयति धन्विनः।
शत्रुहन्तारमाश्रित्य शरानभ्यकिरद् बहून् ॥ ६६ ॥

उस युद्धमें श्रीमान् रुक्मिणीकुमार प्रद्युम्नने बहुत-से धनुर्धरोंको मथ डाला और शत्रुहन्तापर अनेक बाणोंकी वर्षा की ॥ ६६ ॥

शत्रुहन्ता पुनः क्रुद्धो मुमोच शरमुत्तमम्।
प्रद्युम्नस्य समासाद्य हृदये निपपात ह ॥ ६७ ॥

तब पुनः क्रोधमें भरे हुए शत्रुहन्ताने एक उत्तम बाण छोड़ा, जो प्रद्युम्नकी छातीपर जाकर लगा ॥ ६७ ॥

स विद्धस्तेन बाणेन प्रद्युम्नो न व्यकम्पत।
शक्तिं जग्राह बलवाञ्छत्रुहन्त्रे मुमूर्षवे ॥ ६८ ॥

उस बाणसे घायल होकर बलवान् प्रद्युम्न तनिक भी विचलित नहीं हुए, उन्होंने मरणासन्न शत्रुहन्ताके लिये एक शक्ति उठायी ॥ ६८ ॥

सा क्षिप्ता रौक्मिणेयेन शक्तिर्ज्वालाकुला रणे।
पपात हृदयं भित्त्वा शक्राशनिसमस्वना ॥ ६९ ॥

रणभूमिमें रुक्मिणीकुमारने वह अग्निकी ज्वालासे युक्त शक्ति चला दी। इन्द्रके वज्रकी भाँति गड़गड़ाहट पैदा करती हुई वह शक्ति शत्रुहन्ताका हृदय विदीर्ण करके पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ ६९ ॥

स भिन्नहृच्च स्रस्ताङ्गो मुक्तमर्मास्थिबन्धनः।
पपात रुधिरोद्गारी शत्रुहन्ता महाबलः ॥ ७० ॥

हृदय विदीर्ण हो जानेसे उसके सारे अङ्ग शिथिल हो गये, मर्मस्थानों और अस्थियोंके बन्धन खुल गये, उस दशामें महाबली शत्रुहन्ता रक्त वमन करता हुआ धरतीपर गिर पड़ा ॥ ७० ॥

पतितं शत्रुहन्तारं दृष्ट्वा तस्थौ प्रमर्दनः।
जग्राह मुसलं सोऽथ वचनं चेदमाददे ॥ ७१ ॥

शत्रुहन्ताको धराशायी हुआ देख प्रमर्दन युद्धके लिये डट गया। उसने मुसल हाथमें ले लिया और यह बात कही—॥ ७१ ॥

तिष्ठ किं प्राकृतैरेभिः करिष्यसि रणप्रियः।
मां योधयस्व दुर्बुद्धे ततस्त्वं न भविष्यसि ॥ ७२ ॥

'अरे! खड़ा रह! तुझे युद्ध बड़ा प्रिय है न? इन प्राकृत सैनिकोंके मारनेसे तू क्या लाभ उठायेगा। दुर्बुद्धे! तू मेरे साथ युद्ध कर, फिर तो तू नहीं हो जायगा ॥ ७२ ॥

वृष्णिवंशकुले जातः शत्रुरस्मत्पिता तव।
पुत्रं हन्तास्म्यहं तस्य ततोऽसौ निहतो भवेत् ॥ ७३ ॥

'तू वृष्णिकुलमें उत्पन्न हुआ है, तेरा पिता हमलोगोंका शत्रु है, मैं उसके पुत्रको मार डालूँगा, फिर वह स्वयं ही मर जायगा ॥ ७३ ॥

मृतेन तेन दुर्बुद्धे सर्वदेवक्षयो भवेत्।
दैतेया दानवाः सर्वे मोदन्तां हतशत्रवः ॥ ७४ ॥

'दुर्बुद्धे ! उसके मरनेसे समस्त देवताओंका क्षय हो जायगा, इस प्रकार अपने शत्रुओंके मर जानेपर समस्त दैत्य और दानव आनन्दके भागी होंगे ॥ ७४ ॥

हते त्वयि ममास्त्रेण त्वत्समुत्थैश्च शोणितैः ।
शम्बरस्य तु पुत्राणां करोम्युदकसत्क्रियाम् ॥ ७५ ॥

'मेरे अस्त्रसे तेरा वध हो जानेपर तेरे ही रक्तसे मैं शम्बरासुरके पुत्रोंका तर्पण करूँगा ॥ ७५ ॥

अद्य सा भीष्मकसुता करुणं विलपिष्यति ।
निहतं त्वां च श्रुत्वैव यौवनस्थं गतायुषम् ॥ ७६ ॥

'आज वह भीष्मककी पुत्री रुक्मिणी तो तुझ-जैसे नौजवान बेटेको मारा गया और गतायु हुआ सुनकर निश्चय ही करुण विलाप करेगी ॥ ७६ ॥

स ते पिता चक्रधरो निष्फलाशो भविष्यति ।
हतं त्वां स विदित्वाथ प्राणांस्त्यक्ष्यति मन्दधीः॥ ७७ ॥

'तेरे उस पिता चक्रधारी कृष्णकी आशा अब निष्फल हो जायगी। तुझे मारा गया जानकर वह मन्दबुद्धि मानव अपने प्राणोंका परित्याग कर देगा' ॥ ७७ ॥

इत्युक्त्वा परिघेणाशु ताडयद् रुक्मिणीसुतम् ।
ताडितो हि महातेजा रौक्मिणेयः प्रतापवान् ॥ ७८ ॥
दोर्भ्यामुत्क्षिप्य तस्यैव रथं मह्यां व्यचूर्णयत् ।

ऐसा कहकर उसने तुरंत ही रुक्मिणीकुमार प्रद्युम्नपर परिघसे प्रहार किया । उससे ताड़ित हुए महान् तेजस्वी और प्रतापी प्रद्युम्नने अपनी दोनों भुजाओंसे उसके रथको ही ऊपरको उछाल दिया और पृथ्वीपर गिराकर चूर-चूर कर डाला ॥ ७८½ ॥

सोऽवप्लुत्य रथात् तस्मात् पदातिरवतस्थिवान् ॥ ७९ ॥
तां गदां गृह्य सहसा रौक्मिणेयमुपाद्रवत् ।
तयैव गदया कामः प्रमर्दनमपोथयत् ॥ ८० ॥

प्रमर्दन उस रथसे कूदकर पैदल ही युद्धके लिये खड़ा हो गया और अपनी उस प्रसिद्ध गदाको हाथमें लेकर उसने सहसा रुक्मिणीकुमारपर आक्रमण किया, परंतु प्रद्युम्नने उसकी फेंकी हुई उस गदासे ही प्रमर्दनको मार गिराया ॥

हते प्रमर्दने दैत्ये दृष्ट्वा सर्वे प्रदुद्रुवुः ।
न शक्ताः प्रमुखे स्थातुं सिंहत्रासाद् गजा इव ॥ ८१ ॥

दैत्य प्रमर्दनके मारे जानेपर समस्त असुर सैनिक भाग खड़े हुए । सिंहके भयसे भागे हुए हाथियोंके समान वे प्रद्युम्नके सामने ठहर न सके ॥ ८१ ॥

सारमेयं यथा दृष्ट्वाविगणो वै पलायते ।
तथा सेना विषीदन्ती प्रद्युम्नस्य भयार्दिता ॥ ८२ ॥

जैसे शिकारी कुत्तेको देखकर भेड़ोंका समूह पलायन करने लगता है, उसी प्रकार प्रद्युम्नके भयसे पीड़ित हुई दैत्यसेना विषादग्रस्त होकर भागने लगी ॥ ८२ ॥

क्षतजादिग्धवस्त्रा वै मुक्तकेशा विशोभना ।
रजस्वलेव युवतिः सेना समवगूहते ॥ ८३ ॥

उन सब सैनिकोंके वस्त्र खूनसे रँग गये थे, केश खुले हुए थे । वे शोभाहीन हो गये थे । इस अवस्थामें वह दैत्यसेना रजस्वला युवतीकी भाँति कहीं छिप जानेका प्रयत्न करने लगी ॥ ८३ ॥

मदनशरविभिन्ना सैनिकानभ्ययायाद्
युवतिसदृशवेषा साध्वसैः पीड्यमाना ।
रतिसमरमशक्ता वीक्षितुं सोच्छ्वसन्ती
स्वगृहगमनकामा नेच्छते स्थातुमत्र ॥ ८४ ॥

युवतीके समान वेष धारण करनेवाली वह दैत्यसेना कामदेव (प्रद्युम्न) के बाणोंसे घायल हो सैनिकोंकी ओर चली । उस समय वह भय आदिसे पीड़ित हो रही थी । समररूपी सुरतको तो देखनेमें भी असमर्थ थी, केवल उच्छ्वास लेती हुई अपने घरको जाना चाहने लगी, वहाँ ठहरना नहीं ॥ ८४ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि शम्बरसैन्यभङ्गो नाम पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें शम्बरासुरकी सेनाका पलायनविषयक एक सौ पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०५ ॥

षडधिकशततमोऽध्यायः

शम्बरासुर और प्रद्युम्नका मायामय युद्ध, शम्बरकी चिन्ता, देवराज इन्द्रकी आज्ञासे नारदजीका प्रद्युम्नको उनके पूर्वस्वरूपका स्मरण दिलाना और आवश्यक कर्तव्य सुझाना

वैशम्पायन उवाच

शम्बरस्तु ततः क्रुद्धः सूतमाह विशाम्पते ।
शत्रुप्रमुखतो वीर रथं मे वाहय द्रुतम् ॥ १ ॥
यावदेनं शरैर्हन्मि मम विप्रियकारकम् ।

वैशम्पायनजी कहते हैं—प्रजानाथ ! तब शम्बरासुरने कुपित होकर अपने सारथिसे कहा—'वीर ! तुम शीघ्र

ही मेरे रथको शत्रुके सामने ले चलो, जिससे अपना अप्रिय करनेवाले इस प्रद्युम्नको मैं अपने बाणोंसे मार डालूँ' ॥१½॥

ततो भर्तृवचः श्रुत्वा सूतस्तत्प्रियकारकः ॥ २ ॥
रथं संचोदयामास चामीकरविभूषितम् ।
तं दृष्ट्वा रथमायान्तं प्रद्युम्नः फुल्ललोचनः ॥ ३ ॥

तब स्वामीका यह वचन सुनकर उनका प्रिय करनेवाले सूतने उस सुवर्णभूषित रथको आगे बढ़ाया। उस रथको आते देख प्रद्युम्नके नेत्र हर्षसे खिल उठे ॥ २-३ ॥

संदधे चापमादाय शरं कनकभूषितम् ।
तेनाहनत् सुसंक्रुद्धः कोपयञ्शम्बरं रणे ॥ ४ ॥

उन्होंने अत्यन्त कुपित हो धनुष लेकर उसपर एक सुवर्णभूषित बाण रखा और उस बाणसे शम्बरासुरका क्रोध बढ़ाते हुए उसे रणभूमिमें घायल कर दिया ॥ ४ ॥

हृदये ताडितस्तेन देवशत्रुः सुविक्लवः ।
रथशक्तिं समाश्रित्य तस्थौ सोऽथ विचेतनः ॥ ५ ॥

उस बाणने उसकी छातीमें चोट पहुँचायी थी, इससे वह देवशत्रु शम्बर अत्यन्त व्याकुल हो अचेत हो गया और रथशक्तिका सहारा लेकर टिका रहा ॥ ५ ॥

स चेतनां पुनः प्राप्य धनुरादाय शम्बरः ।
विव्याध कार्ष्णिं कुपितः सप्तभिर्निशितैः शरैः ॥ ६ ॥

फिर होशमें आनेपर कुपित हुए शम्बरासुरने धनुष हाथमें ले सात पैने बाणोंद्वारा श्रीकृष्णकुमारपर प्रहार किया ॥ ६ ॥

तानप्राप्ताञ्शरान् सोऽथ सप्तभिः सप्तधाच्छिनत् ।
शम्बरं च जघानाथ सप्तत्या निशितैः शरैः ॥ ७ ॥

उन बाणोंको अपने पास पहुँचनेसे पहले ही प्रद्युम्नने सात सायकोंसे मारकर सात बार खण्डित किया, साथ ही सत्तर तीखे बाणोंसे शम्बरासुरको घायल कर दिया ॥ ७ ॥

पुनः शरसहस्रेण कङ्कबर्हिणवाससा ।
अहनच्छम्बरं क्रोधाद् धाराभिरिव पर्वतम् ॥ ८ ॥

इसके बाद गीध और मोरकी पाँख लगे हुए एक हजार बाणोंकी क्रोधपूर्वक वर्षा करके उन्होंने पुनः शम्बरासुरको आहत कर दिया, ठीक उसी तरह जैसे मेघ जलकी धाराओंसे पर्वतको आप्लावित कर देता है ॥ ८ ॥

प्रदिशो विदिशश्चैव शरधारासमावृताः ॥ ९ ॥
अन्धकारीकृतं व्योम दिनकर्ता न दृश्यते ।

समस्त दिशाएँ और विदिशाएँ बाणधारासे आवृत हो गयीं। आकाशमें अन्धकार छा गया। दिनकर सूर्यका दीखना बंद हो गया ॥ ९½ ॥

ततोऽन्धकारमुत्सार्य वैद्युतास्त्रेण शम्बरः ॥ १० ॥
प्रद्युम्नस्य रथोपस्थे शरवर्षं मुमोच ह ।

तब शम्बरासुरने वैद्युतास्त्रका प्रयोग करके अन्धकारका निवारण कर दिया और प्रद्युम्नके रथकी बैठकमें बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ १०½ ॥

तदस्त्रजालं प्रद्युम्नः शरेणानतपर्वणा ॥ ११ ॥
चिच्छेद बहुधा राजन् दर्शयन् पाणिलाघवम् ।

राजन्! प्रद्युम्नने अपने हाथोंकी फुर्ती दिखाते हुए झुकी हुई गाँठवाले बाणसे शत्रुके उस अस्त्रजालको अनेक टुकड़ोंमें छिन्न-भिन्न कर दिया ॥ ११½ ॥

हते तस्मिन् महावर्षे शराणां कार्ष्णिना तदा ॥ १२ ॥
द्रुमवर्षं मुमोचाथ मायया कालशम्बरः ।

श्रीकृष्णकुमारद्वारा जब बाणोंकी वह महावृष्टि शान्त कर दी गयी, तब कालशम्बरने मायाद्वारा वृक्षोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी ॥ १२½ ॥

द्रुमवर्षोच्छ्रितं दृष्ट्वा प्रद्युम्नः क्रोधमूर्च्छितः ॥ १३ ॥
आग्नेयास्त्रं मुमोचाथ तेन वृक्षाननाशयत् ।

वृक्षोंकी उस वर्षाको बढ़ती देख प्रद्युम्न क्रोधसे मूर्च्छित-से हो गये, फिर तो उन्होंने आग्नेयास्त्रका प्रयोग किया और उसके द्वारा समस्त वृक्षोंका नाश कर डाला ॥

भस्मीभूते वृक्षवर्षे शिलासंघातमुत्सृजत् ॥ १४ ॥
प्रद्युम्नस्तं तु वायव्यैः प्रोत्सारयत संयुगे ।

वृक्षोंकी वर्षा नष्ट हो जानेपर उसने शिलासमूह बरसाना आरम्भ किया, परंतु प्रद्युम्नने युद्धस्थलमें वायव्यास्त्रका प्रयोग करके उन शिलाओंको दूर हटा दिया ॥ १४½ ॥

ततो मायां परां चक्रे देवशत्रुः प्रतापवान् ॥ १५ ॥
सिंहान् व्याघ्रान् वराहांश्च तरक्षूनृक्षवानरान् ।
वारणान् वारिदप्रख्यान् हयानुष्ट्रान् विशाम्पते ॥ १६ ॥
मुमोच धनुरायम्य प्रद्युम्नस्य रथोपरि ।

प्रजानाथ! तब प्रतापी देवशत्रु शम्बरने दूसरी माया प्रकट की। उसने धनुष तानकर प्रद्युम्नके रथपर सिंह, व्याघ्र, वराह, तरक्षु (सेई), रीछ, वानर, मेघोंके समान काले-काले हाथी, घोड़े और ऊँटके रूपोंमें बाणोंका प्रहार किया ॥ १५-१६½ ॥

गान्धर्वास्त्रेण चिच्छेद सर्वास्तान् खण्डशस्तदा ॥ १७ ॥

प्रद्युम्नने गान्धर्वास्त्रका प्रयोग करके उन सबके टुकड़े-टुकड़े कर डाले ॥ १७ ॥

प्रद्युम्नेन तु सा माया हता तां वीक्ष्य शम्बरः ।
अन्यां मायां मुमोचाथ शम्बरः क्रोधमूर्च्छितः ॥ १८ ॥

प्रद्युम्नने वह माया नष्ट कर दी, यह देखकर क्रोधसे मूर्च्छित हुए शम्बरासुरने दूसरी मायाका प्रयोग किया ॥

गजेन्द्रान् भिन्नवदनान् षष्टिहायनयौवनान् ।
महामात्रोत्तमारूढान् कल्पितान् रणकोविदान् ॥ १९ ॥

उसने साठ वर्षोंकी अवस्थावाले नवयौवनसम्पन्न बहुत-से गजराज प्रकट किये, जिनके मस्तकसे मदकी धारा फूट रही थी। उनके ऊपर अच्छे-अच्छे महावत बैठे थे। उन्हें युद्धकी सजासे सजाया गया था। वे सब-के-सब युद्धकी कलामें चतुर जान पड़ते थे ॥ १९ ॥

तामापतन्तीं मायां तु कार्ष्णिः कमललोचनः ।
सैंहीं मायां समुत्स्रष्टुं चक्रे बुद्धिं महामनाः ॥ २० ॥

उस गजाकार मायाको अपनी ओर आती देख कमल-नयन महामना श्रीकृष्णकुमारने सिंहरूपिणी मायाके प्रयोगका विचार किया ॥ २० ॥

सा सृष्टा सिंहमाया तु रौक्मिणेयेन धीमता ।
माया नागवती नष्टा आदित्येनेव शर्वरी ॥ २१ ॥

बुद्धिमान् रुक्मिणीनन्दनके द्वारा जब वह सिंहमयी माया रची गयी, तब जैसे सूर्योदयसे रात्रिका अन्धकार नष्ट होता है, उसी प्रकार वह हाथियोंसे युक्त माया विलीन हो गयी ॥ २१ ॥

निहतां हस्तिमायां तु तां समीक्ष्य महासुरः ।
अन्यां सम्मोहिनीं मायां सोऽसृजद् दानवोत्तमः ॥ २२ ॥

उस हस्तिमयी मायाका नाश हुआ देख महान् असुर दानवराज शम्बरने दूसरी सम्मोहिनी नामक मायाका प्रयोग किया ॥ २२ ॥

तां दृष्ट्वा मोहिनीं नाम मायां मयविनिर्मिताम् ।
संज्ञास्त्रेण तु प्रद्युम्नो नाशयामास वीर्यवान् ॥ २३ ॥

मयद्वारा निर्मित उस मोहिनी मायाको देखकर पराक्रमी प्रद्युम्नने संज्ञास्त्रके द्वारा उसका नाश कर डाला ॥ २३ ॥

शम्बरस्तु ततः क्रुद्धो हतया मायया तदा ।
सैंहीं मायां महातेजाः सोऽसृजद् दानवेश्वरः ॥ २४ ॥

जब वह माया भी नष्ट हो गयी, तब कुपित हुए महा-तेजस्वी दानवराज शम्बरने सिंहमयी मायाकी सृष्टि की ॥२४॥

सिंहानापततो दृष्ट्वा रौक्मिणेयः प्रतापवान् ।
अस्त्रं गान्धर्वमादाय शरभानसृजत् तदा ॥ २५ ॥

सिंहको अपने ऊपर आते देख प्रतापी रुक्मिणीकुमारने गान्धर्वास्त्र लेकर शरभोंकी सृष्टि की ॥ २५ ॥

तेऽष्टापदा बलोदग्रा नखदंष्ट्रायुधा रणे ।
सिंहान् विद्रावयामासुर्वायुर्जलधरानिव ॥ २६ ॥

वे आठ पैरोंवाले तथा प्रचण्ड बलशाली थे। नख और दाढ़ें ही उनके आयुध थीं। जैसे वायु बादलोंको उड़ा देती है, उसी प्रकार उन शरभोंने शत्रुके उन सिंहोंको मार भगाया ॥ २६ ॥

सिंहान् विद्रवतो दृष्ट्वा माययाष्टापदेन वै ।
शम्बरश्चिन्तयामास कथमेनं निहन्मि वै ।
अहो मूर्खस्वभावोऽहं यन्मया न हतः शिशुः ॥ २७ ॥

शरभमयी मायासे सिंहोंको भागते देख शम्बरासुर इस चिन्तामें पड़ा कि मैं किस प्रकार प्रद्युम्नका वध करूँ। अहो! मैं बड़े मूर्खस्वभावका हूँ, क्योंकि मैंने बाल्यावस्थामें ही इसका वध नहीं कर डाला ॥ २७ ॥

प्राप्तयौवनदेहस्तु कृतास्त्रश्चापि दुर्मतिः ।
तत् कथं निहनिष्यामि शत्रुं रणशिरःस्थितम् ॥ २८ ॥

अब तो जवानीका शरीर पाकर यह दुर्बुद्धि शत्रु सम्पूर्ण अस्त्रोंका ज्ञाता भी हो चुका है। अतः युद्धके मुहानेपर खड़े हुए इस शत्रुका मैं किस प्रकार वध करूँगा ॥ २८ ॥

माया सा तिष्ठते तीव्रा पन्नगी नाम भीषणा ।
दत्ता मे देवदेवेन हरेणासुरघातिना ॥ २९ ॥

अच्छा, वह पन्नगी नामक अत्यन्त दुःसह एवं भीषण माया अभी मेरे पास मौजूद है, जिसे असुरघाती देवाधिदेव महादेवजीने मुझे दिया था ॥ २९ ॥

तां सृजामि महामायामाशीविषसमाकुलाम् ।
तया दह्येत दुष्टात्मा ह्येष मायामयो बली ॥ ३० ॥

विषधर सर्पोंसे युक्त उस महामायाकी मैं सृष्टि करता हूँ, उससे यह बलवान् मायामय दुष्टात्मा शत्रु अवश्य दग्ध हो जायगा ॥ ३० ॥

सा सृष्टा पन्नगी माया विषज्वालासमाकुला ।
तया पन्नगमय्या तु सरथं सहवाजिनम् ॥ ३१ ॥
ससूत स हि प्रद्युम्नं बबन्ध शरबन्धनैः ।

ऐसा सोचकर उस असुरने पन्नगी मायाकी सृष्टि की, जो विषकी ज्वालाओंसे व्याप्त थी। उस सर्पमयी मायासे शम्बरने रथ, घोड़े और सारथिसहित प्रद्युम्नको सर्पाकार बाणोंके बन्धनोंद्वारा बाँध लिया ॥ ३१½ ॥

बध्यमानं तदा दृष्ट्वा आत्मानं वृष्णिवंशजः ॥ ३२ ॥
मायां संचिन्तयामास सौपर्णीं सर्पनाशिनीम् ।

अपनेको सर्पोंसे बद्ध होते देख वृष्णिवंशी प्रद्युम्नने सर्पोंको नाश करनेवाली सौपर्णी (गरुड़सम्बन्धिनी) मायाका चिन्तन किया ॥ ३२½ ॥

सा चिन्तिता महामाया प्रद्युम्नेन महात्मना ॥ ३३ ॥
सुपर्णा विचरन्ति स्म सर्पा नष्टा महाविषाः ।

महात्मा प्रद्युम्नने ज्यों ही उस महामायाका चिन्तन किया, त्यों ही वहाँ बहुत-से गरुड़ पक्षी आकर विचरने लगे और वे महाविषधर सर्प नष्ट हो गये ॥ ३३½ ॥

भग्नायां सर्पमायायां प्रशंसन्ति सुरासुराः ॥ ३४ ॥

साधु वीर महाबाहो रुक्मिण्यानन्दवर्धन।
यत् त्वया धर्षिता माया तेन स्म परितोषिताः ॥ ३५ ॥

उस सर्पमयी मायाके नष्ट होनेपर देवता और असुर सभी प्रद्युम्नकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे, 'रुक्मिणीका आनन्द बढ़ानेवाले महाबाहु वीर! तुमने बहुत अच्छा किया। तुम्हारे द्वारा जो इस मायाकी पराजय हुई है, इससे हम बहुत संतुष्ट हैं' ॥ ३४-३५ ॥

हतायां सर्पमायायां शम्बरोऽचिन्तयत् पुनः।
अस्ति मे कालदण्डाभो मुद्गरो हेमभूषितः ॥ ३६ ॥

उस सर्पमयी मायाके नष्ट होनेपर शम्बासुरने पुनः सोचा, 'अभी मेरे पास सुवर्णभूषित मुद्गर है, जो कालदण्डके समान भयंकर है ॥ ३६ ॥

तमप्रतिहतं युद्धे देवदानवमानवैः।
पुरा यो मम पार्वत्या दत्तः परमतुष्टया ॥ ३७ ॥

'वह युद्धमें देवता, दानवों और मानवोंके द्वारा भी प्रतिहत होनेवाला नहीं है, मैं उसीका प्रयोग करूँगा। पूर्वकालमें परम संतुष्ट हुई पार्वती देवीने मुझे वह मुद्गर दिया और इस प्रकार कहा—॥ ३७ ॥

गृहाण शम्बरेमं त्वं मुद्गरं हेमभूषितम्।
मया सृष्टं स्वदेहे वै तपः परमदुश्चरम् ॥ ३८ ॥

'शम्बर! तू यह सुवर्णभूषित मुद्गर ग्रहण कर। मैंने अपने शरीरसे अत्यन्त दुष्कर तपस्या करके इसकी सृष्टि की है ॥ ३८ ॥

मायान्तकरणं नाम सर्वासुरविनाशनम्।
अनेन दानवौ रौद्रौ बलिनौ कामरूपिणौ ॥ ३९ ॥
शुम्भश्चैव निशुम्भश्च सगणौ सूदितौ मया।
प्राणसंशयमापन्ने त्वया मोक्ष्यः स शत्रवे ॥ ४० ॥

'यह मायाओंका अन्त करनेवाला तथा समस्त असुरोंका विनाशक है। इसके द्वारा मैंने इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले दो बलवान् एवं भयंकर दानव शुम्भ और निशुम्भका उनके सैनिकगणोंसहित संहार किया है। प्राणसंकटकी स्थिति आनेपर ही तुझे अपने शत्रुपर इस मुद्गरका प्रयोग करना चाहिये' ॥ ३९-४० ॥

इत्युक्त्वा पार्वती देवी तत्रैवान्तरधीयत।
तदहं मुद्गरं श्रेष्ठं मोचयिष्यामि शत्रवे ॥ ४१ ॥

'ऐसा कहकर पार्वती देवी वहीं अन्तर्धान हो गयी थीं, अतः मैं उसी श्रेष्ठ मुद्गरका अपने शत्रुपर प्रहार करूँगा' ॥

तस्य विज्ञाय चित्तं तु देवराजोऽभ्यभाषत।
गच्छ नारद शीघ्रं त्वं प्रद्युम्नस्य रथं प्रति ॥ ४२ ॥
सम्बोधय महाबाहुं पूर्वजातिं च मोक्षय।
वैष्णवास्त्रं प्रयच्छास्मै वधार्थं शम्बरस्य च ॥ ४३ ॥
अभेद्यं कवचं चास्य प्रयच्छासुरसूदने।

उस समय उसके मनोभावको जानकर देवराज इन्द्रने नारदजीसे कहा—'नारदजी! आप शीघ्र ही प्रद्युम्नके रथके पास चले जाइये और उन महाबाहु वीरको समझाइये तथा उन्हें उनके पूर्वजन्मका स्मरण दिलाइये। साथ ही शम्बरासुरके वधके लिये उन्हें वैष्णवास्त्र प्रदान कीजिये। असुरसंहारके कर्ममें लगे हुए इन्हें अभेद्य कवच भी दीजिये' ॥ ४२-४३½ ॥

एवमुक्तो मघवता नारदः प्रययौ त्वरन् ॥ ४४ ॥
आकाशेऽधिष्ठितोऽवोचन्मकरध्वजकेतनम्।

इन्द्रके ऐसा कहनेपर नारदजी बड़ी उतावलीके साथ वहाँ गये और आकाशमें खड़े होकर मकरध्वज कामसे इस प्रकार बोले—॥ ४४½ ॥

कुमार पश्य मां प्राप्तं देवगन्धर्वनारदम्।
प्रेषितं देवराजेन तव सम्बोधनाय वै ॥ ४५ ॥

'कुमार! देखो, मैं देवगन्धर्व नारद यहाँ आया हूँ। देवराज इन्द्रने मुझे तुमको समझानेके लिये यहाँ भेजा है ॥

स्मर त्वं पूर्वकं भावं कामदेवोऽसि मानद।
हरकोपानलाद् दग्धस्तेनानङ्ग इहोच्यसे ॥ ४६ ॥

'मानद! तुम अपने पूर्वजन्मका स्मरण करो। तुम साक्षात् कामदेव हो। भगवान् शङ्करकी क्रोधाग्निसे दग्ध हो गये थे, इसलिये इस जगत्में अनङ्ग कहलाते हो ॥ ४६ ॥

त्वं वृष्णिवंशजातोऽसि रुक्मिण्या गर्भसम्भवः।
जातोऽसि केशवेन त्वं प्रद्युम्न इति कीर्त्यसे ॥ ४७ ॥

'तुम्हारा वर्तमान जन्म वृष्णिवंशमें हुआ है। तुम रुक्मिणीदेवीके गर्भसे उत्पन्न हुए हो। साक्षात् भगवान् केशवने तुम्हें जन्म दिया है। तुम प्रद्युम्न नामसे पुकारे जाते हो ॥ ४७ ॥

आहृत्य शम्बरेण त्वमिहानीतोऽसि मानद।
सप्तरात्रे त्वसम्पूर्णे सूतकागारमध्यतः ॥ ४८ ॥

'मानद! तुम्हारे जन्मकी सातवीं रात अभी पूरी भी नहीं हुई थी कि शम्बरासुर तुम्हें सूतिकागारसे हरकर यहाँ उठा लाया ॥ ४८ ॥

वधार्थं शम्बरस्य त्वं ह्रियमाणो ह्युपेक्षितः।
केशवेन महाबाहो देवकार्यार्थसिद्धये ॥ ४९ ॥

'महाबाहो! देवताओंका कार्य सिद्ध करने और शम्बरासुरको मारनेके लिये ही भगवान् श्रीकृष्णने तुम्हारे अपहरणकी उपेक्षा की ॥ ४९ ॥

यैषा मायावती नाम भार्या वै शम्बरस्य तु।
रतिं तां विद्धि कल्याणीं तव भार्यां पुरातनीम् ॥ ५० ॥

'यह जो मायावती नामसे प्रसिद्ध शम्बरासुरकी भार्या बनी बैठी है, इसे तुम अपनी कल्याणमयी पुरातन पत्नी रति समझो ॥ ५० ॥

तव संरक्षणार्थाय शम्बरस्य गृहेऽवसत्।
मायां शरीरजां तस्य मोहनार्थं दुरात्मनः ॥ ५१ ॥
रतेः सम्पादनार्थाय प्रेषयत्यनिशं तदा।

'तुम्हारे शरीरकी रक्षा करनेके लिये ही इसने शम्बरासुरके घरमें निवास किया है। उस दुरात्मा दैत्यको मोहनेके लिये यह अपने शरीरसे एक मायामयी स्त्री प्रकट करके उसकी प्रसन्नताके लिये सदा भेजा करती है ॥ ५१½ ॥

एवं प्रद्युम्न बुद्ध्वा वै तत्र भार्या प्रतिष्ठिता ॥ ५२ ॥
हत्वा तं शम्बरं वीर वैष्णवास्त्रेण संयुगे।
गृह्य मायावतीं भार्यां द्वारकां गन्तुमर्हसि ॥ ५३ ॥

'प्रद्युम्न! यह सब जानकर ही तुम्हारी पत्नी वहाँ स्थिरतापूर्वक रहती है। वीर! तुम वैष्णवास्त्रके द्वारा युद्धमें शम्बरासुरका वध करके अपनी भार्या मायावतीको साथ ले द्वारकाको जानेयोग्य हो ॥ ५२-५३ ॥

गृहाण वैष्णवं चास्त्रं कवचं च महाप्रभम्।
शक्रेण तव संगृह्य प्रेषितं शत्रुसूदन ॥ ५४ ॥

'शत्रुसूदन! यह वैष्णव अस्त्र तथा अत्यन्त कान्तिमान् कवच संग्रह करके इन्द्रने तुम्हारे लिये भेजा है। तुम इन्हें ग्रहण करो ॥

शृणु मे ह्यपरं वाक्यं क्रियतामविशङ्कया।
अस्य देवरिपोस्तात मुद्गरो नित्यमूर्जितः ॥ ५५ ॥
पार्वत्यां परितुष्टायां दत्तः शत्रुनिबर्हणः।
अमोघश्चैव संग्रामे देवदानवमानवैः ॥ ५६ ॥

'अब तुम मेरी दूसरी बात सुनो और निःशङ्क होकर उसका पालन करो। तात! इस देवद्रोहीका मुद्गर नित्य शक्तिशाली है। पार्वती देवीने प्रसन्न होकर वह शत्रुनाशक मुद्गर इसे प्रदान किया था। यह संग्राममें देवताओं, दानवों और मानवोंके लिये भी अमोघ है ॥ ५५-५६ ॥

तदस्त्रप्रविघातार्थं देवीं त्वं स्मर्तुमर्हसि।
स्तव्या चैव नमस्या च महादेवी रणोत्सुकैः ॥ ५७ ॥

'उस अस्त्रका निवारण करनेके लिये तुम्हें पार्वती देवीका स्मरण करना चाहिये। युद्धके लिये उत्सुक रहनेवाले वीरोंको महादेवी पार्वतीकी स्तुति और वन्दना अवश्य करनी चाहिये।

तत्र वै क्रियतां यत्नः संग्रामे रिपुणा सह।
इत्युक्त्वा नारदो वाक्यं प्रययौ यत्र वासवः ॥ ५८ ॥

'शत्रुके साथ संग्राम करते समय तुम्हें पार्वती देवीकी स्तुतिके लिये भी अवश्य प्रयत्न करना चाहिये।' ऐसा कहकर नारदजी जहाँ इन्द्र थे, वहीं चले गये ॥ ५८ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि शम्बरवधे नारदवाक्ये षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें शम्बरवधके प्रसङ्गमें नारदजीका वाक्यविषयक एक सौ छठा अध्याय पूरा हुआ ॥ १०६ ॥

सप्ताधिकशततमोऽध्यायः

प्रद्युम्नके द्वारा शम्बरासुरका वध

वैशम्पायन उवाच

शम्बरस्तु ततः क्रुद्धो मुद्गरं तं समाददे।
मुद्गरे गृह्यमाणे तु द्वादशार्काः समुत्थिताः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तब क्रोधमें भरे हुए शम्बरासुरने वह मुद्गर हाथमें ले लिया। उसे लेते समय सहसा बारह सूर्य प्रकट हो गये ॥ १ ॥

पर्वताश्चलिताः सर्वे तथैव वसुधातलम्।
उन्मार्गाः सागरा याताः संक्षुब्धाश्चापि देवताः ॥ २ ॥

समस्त पर्वत हिलने लगे, पृथ्वी काँप उठी, सब समुद्र ऊपरको उछलने लगे, इसी प्रकार समस्त देवताओंमें भी क्षोभ फैल गया ॥ २ ॥

गृध्रचक्राकुलं व्योम उल्कापातो बभूव ह।
ववर्ष रुधिरं देवः परुषं पवनो ववौ ॥ ३ ॥

आकाशमें गीधोंके समूह मँडराने लगे, उल्कापात होने लगा, बादल रुधिर बरसाने लगे और अत्यन्त रूखी वायु चलने लगी ॥ ३ ॥

एवं दृष्ट्वा महोत्पातान् प्रद्युम्नः स त्वरान्वितः।
अवतीर्य रथाद् वीरः कृताञ्जलिपुटः स्थितः ॥ ४ ॥

वीर प्रद्युम्न इस प्रकारके महान् उत्पातोंको देखकर फुर्तीके साथ रथसे नीचे उतर दोनों हाथ जोड़कर खड़े हो गये ॥

देवीं सस्मार मनसा पार्वतीं शङ्करप्रियाम्।
प्रणम्य शिरसा देवीं स्तोतुं समुपचक्रमे ॥ ५ ॥

वे मन-ही-मन भगवान् शङ्करकी प्रिया देवी पार्वतीका स्मरण करने लगे। उन्होंने सिर झुकाकर देवीको प्रणाम करके उनकी स्तुति आरम्भ की ॥ ५ ॥

प्रद्युम्न उवाच

ॐ नमः कात्यायन्यै गिरीशायै नमो नमः।
नमस्त्रैलोक्यमायायै कात्यायन्यै नमो नमः ॥ ६ ॥

प्रद्युम्नने कहा—सच्चिदानन्दमयी कात्यायनी देवीको प्रणाम है। पर्वतोंकी स्वामिनी पार्वती देवीको बारंबार नमस्कार है। तीनों लोकोंकी मायास्वरूपा कात्यायनी देवीको मेरा बारंबार अभिवादन है ॥ ६ ॥

नमः शत्रुविनाशिन्यै नमो गौर्यै शिवप्रिये।
नमस्ये शुम्भमथनीं निशुम्भमथनीमपि॥ ७॥

शत्रुओंको नष्ट करनेवाली गौरीदेवीको बारंबार प्रणाम है। शिवप्रिये! शुम्भ दैत्यको मथ डालनेवाली और निशुम्भको भी रौंदनेवाली आपको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ७॥

कालरात्रि नमस्तुभ्यं कौमार्यै च नमो नमः।
कान्तारवासिनीं देवीं नमस्यामि कृताञ्जलिः॥ ८॥

कालरात्रि! आपको प्रणाम है। कौमारी शक्तिरूपा आपको बारंबार नमस्कार है। मैं कान्तारवासिनी देवीको हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ॥ ८॥

विन्ध्यवासिनीं दुर्गघ्नां रणदुर्गां रणप्रियाम्।
नमस्यामि महादेवीं जयां च विजयां तथा॥ ९॥

मैं विन्ध्याचलमें निवास करनेवाली, विपत्तियोंको नष्ट करनेवाली, रणचण्डी, रणप्रिया, जया और विजया नामवाली महादेवीको प्रणाम करता हूँ॥ ९॥

अपराजितां नमस्येऽहमजितां शत्रुनाशिनीम्।
घण्टाहस्तां नमस्यामि घण्टामालाकुलां तथा॥ १०॥

मैं किसीसे पराजित न होनेवाली, शत्रुओंकी विनाशकारिणी अपराजिता देवीको प्रणाम करता हूँ। घण्टाओंकी मालाओंसे व्याप्त और हाथमें घण्टा धारण करनेवाली देवीको मैं प्रणाम करता हूँ॥ १०॥

त्रिशूलिनीं नमस्यामि महिषासुरघातिनीम्।
सिंहवाहां नमस्यामि सिंहप्रवरकेतनाम्॥ ११॥

मैं महिषासुरका संहार करनेवाली त्रिशूलधारिणी देवीको नमस्कार करता हूँ। सिंहपर सवार होनेवाली और सिंहके चिह्नसे अलंकृत श्रेष्ठ ध्वजावाली देवीको मैं प्रणाम करता हूँ॥

एकानंशां नमस्यामि गायत्रीं यज्ञसत्कृताम्।
सावित्रीं चापि विप्राणां नमस्येऽहं कृताञ्जलिः॥ १२॥
रक्ष मां देवि सततं संग्रामे विजयं कुरु।

मैं एकानंशा देवीको प्रणाम करता हूँ, यज्ञोंमें पूजित गायत्री देवीको नमस्कार करता हूँ और विप्रोंकी सावित्री (रूपसे उपास्य) देवीको भी मैं हाथ जोड़कर अभिवादन करता हूँ। देवि! आप सर्वदा मेरी रक्षा कीजिये और संग्राममें मुझे विजय प्रदान कीजिये॥ १२½॥

इति कामवचस्तुष्टा दुर्गा सम्प्रीतमानसा॥ १३॥
उवाच वचनं देवी सुप्रीतेनान्तरात्मना।

कामस्वरूप प्रद्युम्नके ऐसे प्रार्थनापूर्ण वचनोंसे दुर्गा देवी संतुष्ट हो गयीं। उनका मन प्रसन्न हो गया। तदनन्तर दुर्गादेवी हृदयमें अत्यन्त आह्लादित हो यह वचन कहने लगीं—॥

पश्य पश्य महाबाहो रुक्मिण्यानन्दवर्द्धन॥ १४॥
वरं वरय वत्स त्वममोघं दर्शनं मम।

'रुक्मिणीके आनन्दको बढ़ानेवाले महाबाहु प्रद्युम्न! (मेरी ओर) देख! देख!! मेरा दर्शन अमोघ है, अतः वत्स! तू मनोवाञ्छित वर माँग ले'॥ १४½॥

देव्यास्तु वचनं श्रुत्वा रोमाञ्चोद्गतमानसः॥ १५॥
प्रणम्य शिरसा देवीं विज्ञप्तुमुपचक्रमे।
यदि त्वं देवि तुष्टासि दीयतां मे यदीप्सितम्॥ १६॥

देवीके इस वचनको सुनकर प्रद्युम्न रोमाञ्चित हो गये, हर्षसे उनका हृदय उछलने लगा। तब उन्होंने सिर झुकाकर देवीको प्रणाम करके उनसे इस प्रकार निवेदन किया—'देवि! यदि आप प्रसन्न हैं तो मैं जो चाहता हूँ, वह मुझे दीजिये॥ १५-१६॥

वरं च वरदे याचे सर्वामित्रेषु मे जयः।
यस्त्वया मुद्गरो दत्तः शम्बरस्यात्मसम्भवः॥ १७॥
एष मे गात्रमासाद्य माला पद्मवती भवेत्।
तथास्त्विति च साप्युक्त्वा तत्रैवान्तरधीयत॥ १८॥

'वरदे! मैं यह वर माँगता हूँ कि सब शत्रुओंपर मुझे विजय प्राप्त हो और अपने शरीरसे प्रकट किया हुआ जो मुद्गर आपने शम्बरासुरको दिया है, वह मेरे शरीरपर प्राप्त होकर कमलोंकी माला बन जाय।' तब वे देवी 'ऐसा ही होगा' यह कहकर वहाँ ही अन्तर्धान हो गयीं॥ १७-१८॥

प्रद्युम्नस्तु महातेजास्तुष्टो रथमथारुहत्।
मुद्गरं तं गृहीत्वा च शम्बरः क्रोधमूर्च्छितः॥ १९॥
भ्रामयित्वा स चिक्षेप प्रद्युम्नोरसि वीर्यवान्।

तब महातेजस्वी प्रद्युम्न संतुष्ट होकर रथपर आरूढ़ हुए। उधर क्रोधसे अचेत हुए पराक्रमी शम्बरने उस मुद्गरको हाथमें लेकर घुमाया और प्रद्युम्नकी छातीपर दे मारा॥

स गत्वा मदनाभ्याशं माला भूत्वा तु पौष्करी॥ २०॥
प्रद्युम्नस्य च कण्ठे तु समासक्ता व्यराजत।
नक्षत्राणां तु मालायां यथा परिवृतो विधुः॥ २१॥

प्रद्युम्नके निकट जाकर वह मुद्गर कमल-पुष्पोंकी माला बन गया। वह माला प्रद्युम्नके कण्ठमें आसक्त होकर अतिशय शोभा पाने लगी। उस समय वे नक्षत्रोंकी मालासे घिरे हुए चन्द्रमाकी भाँति सुशोभित हुए॥ २०-२१॥

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः।
साधु साध्विति वाचोचुः पूजयन् केशवात्मजम्॥ २२॥
मुद्गरं पुष्पभूतं तु दृष्ट्वा प्रद्युम्नसंनिधौ।
वैष्णवं परमास्त्रं तु नारदेन यथाहृतम्॥ २३॥
संदधे चापमानम्य इदं वचनमब्रवीत्।

तत्पश्चात् देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षि 'साधु! साधु!' कहकर केशवकुमारकी प्रशंसा करने लगे। प्रद्युम्नके निकट जब वह मुद्गर कमलपुष्प बन गया, तब प्रद्युम्नने

नारदजीके दिये हुए वैष्णव नामक दिव्यास्त्रका संधान किया और अपने धनुषको झुकाकर इस प्रकार कहा—॥ २२-२३½ ॥

यद्यहं रुक्मिणीपुत्रः केशवस्यात्मजो ह्यहम् ॥ २४ ॥
तेन सत्येन बाणेन जहि त्वं शम्बरं रणे ।

'वैष्णवास्त्र ! यदि मैं रुक्मिणीदेवी और भगवान् श्रीकृष्णका पुत्र हूँ, तो इस सत्यके प्रभावसे तुम अपने बाणद्वारा रणभूमिमें शम्बरासुरको मार डालो' ॥ २४½ ॥

इत्युक्त्वा चापमाकृष्य संधाय च महामनाः ॥ २५ ॥
चिक्षेप शम्बरस्याथ दहँल्लोकत्रयं यथा ।

ऐसा कहकर महामनस्वी प्रद्युम्नने धनुष खींचकर उसपर बाण रखा और तीनों लोकोंको जलाते हुए उसको शम्बरासुरके ऊपर छोड़ दिया ॥ २५½ ॥

स क्षिप्तो वृष्णिसिंहेन शरः क्रव्यादमोहनः ॥ २६ ॥
हृदयं शम्बरस्याथ भित्त्वा धरणिमागतः ।
न चास्य मांसं न स्नायुर्नास्थि न त्वङ् न शोणितम् ॥ २७ ॥
सर्वं तद् भस्मसाद्भूतं वैष्णवास्त्रस्य तेजसा ।

वृष्णिवंशके सिंह प्रद्युम्नके द्वारा चलाया गया वह बाण राक्षसोंको मोहमें डालनेवाला था। वह शम्बरासुरके हृदयको विदीर्ण करके पृथ्वीपर आ गया, इससे उस दैत्यका न तो मांस, न स्नायुजाल, न हड्डी, न त्वचा और न रक्त ही शेष बचा। वैष्णवास्त्रके तेजसे वह सब कुछ भस्म हो गया ॥ २६-२७½ ॥

हते दैत्ये महाकाये दानवे शम्बरेऽधमे ॥ २८ ॥
जहृषुर्देवगन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।
उर्वशी मेनका रम्भा विप्रचित्तिस्तिलोत्तमा ॥ २९ ॥

उस महाकाय अधम दानव शम्बर दैत्यके मारे जानेपर देवता और गन्धर्व हर्षसे खिल उठे तथा उर्वशी, मेनका, रम्भा, विप्रचित्ति और तिलोत्तमा आदि अप्सराएँ नृत्य करने लगीं ॥

ननृतुर्हृष्टमनसो जगत् स्थावरजङ्गमम् ।
देवराजस्तु सुप्रीतः सर्वदेवगणैः सह ।
प्रद्युम्नं पुष्पवर्षेण तमभ्यर्च्य प्रहृष्टवत् ॥ ३० ॥

उपर्युक्त अप्सराएँ जब प्रसन्नचित्त होकर नाचने लगीं, उस समय यह चराचर जगत् भी हर्षसे झूम उठा। समस्त देवताओंसहित देवराज इन्द्र अत्यन्त प्रसन्न हो फूलोंकी वर्षा से प्रद्युम्नका सत्कार करके हर्ष-विभोर हो गये ॥ ३० ॥

अथ समरहते तु दैत्यराजे
मधुमथनस्य सुतेन वैष्णवास्त्रैः ।
विगतरिपुभयाः सुराश्च जग्मु-
र्मकरविभूषणकेतनं स्तुवन्तः ॥ ३१ ॥

मधुसूदन श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्नद्वारा समरभूमिमें वैष्णवास्त्रसे दैत्यराज शम्बरके मारे जानेपर समस्त देवताओंका शत्रुसम्बन्धी भय दूर हो गया और वे मकरध्वज प्रद्युम्नकी स्तुति करते हुए अपने स्थानको चले गये ॥ ३१ ॥

स च समरपरिश्रमं वहन् वै
नगरमुखं प्रविवेश रौक्मिणेयः ।
प्रियतम इव कान्तया प्रहृष्ट-
स्त्वरितपदं रतिदर्शनं चकार ॥ ३२ ॥

अपने शरीरद्वारा युद्धजनित थकावटका भार वहन करते हुए रुक्मिणीकुमार प्रद्युम्नने नगरद्वारमें प्रवेश किया। जैसे प्रेयसीसे मिलकर प्रियतमको प्रसन्नता होती है, उसी प्रकार अत्यन्त हर्षमें भरे हुए प्रद्युम्नने तुरंत ही अपनी पत्नी रतिका साक्षात्कार किया ॥ ३२ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि शम्बरवधे सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें शम्बरासुरका वधविषयक एक सौ सातवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०७ ॥

अष्टाधिकशततमोऽध्यायः

मायावतीसहित प्रद्युम्नका द्वारकामें आगमन और रुक्मिणीके भवनमें प्रवेश

वैशम्पायन उवाच

समाप्तमायो मायाज्ञो विक्रान्तः समरेऽव्ययः ।
अष्टम्यां निहतो युद्धे मायावी कालशम्बरः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! शम्बरासुर मायाओंका ज्ञाता था, किंतु उसकी सारी माया समाप्त हो गयी। मायावी कालशम्बर रणभूमिमें पराक्रम प्रकट करनेवाला और अविनाशी था, तो भी अष्टमीको युद्धमें प्रद्युम्नद्वारा मार डाला गया ॥ १ ॥

तमृक्षवन्ते नगरे निहत्यासुरसत्तमम् ।
गृह्य मायावतीं देवीमागच्छन्नगरं पितुः ॥ २ ॥

ऋक्षवन्त नामक नगरमें असुरशिरोमणि शम्बरका वध करके देवी मायावतीको साथ ले प्रद्युम्न अपने पिताके नगरमें आये ॥ २ ॥

सोऽन्तरिक्षगतो भूत्वा मायावी शीघ्रविक्रमः ।
आजगाम पुरीं रम्यां रक्षितां तेजसा पितुः ॥ ३ ॥

शीघ्रतापूर्वक पराक्रम प्रकट करनेवाले मायावी प्रद्युम्न

आकाशमें स्थित हो अपने पिताके तेजसे सुरक्षित रमणीय पुरी द्वारकामें आये ॥ ३ ॥

सोऽन्तरिक्षान्निपतितः केशवान्तःपुरे शिशुः ।
मायावत्या सह तया रूपवानिव मन्मथः ॥ ४ ॥

वे आकाशसे भगवान् श्रीकृष्णके अन्तःपुरमें उतर पड़े । उस समय उस मायावती (रति) के साथ मूर्तिमान् कामदेवके समान प्रतीत होते थे ॥ ४ ॥

तस्मिंस्तत्रावपतिते महिष्यः केशवस्य याः ।
विस्मिताश्चैव हृष्टाश्च भीताश्चैवाभवंस्ततः ॥ ५ ॥

उस समय वहाँ उनके उतरनेपर भगवान् श्रीकृष्णकी जो रानियाँ थीं, उनमेंसे कुछ तो आश्चर्यसे चकित हो उठीं, कितनी स्त्रियोंको महान् हर्ष हुआ और बहुत-सी भयभीत हो गयीं ॥ ५ ॥

ततस्तं कामसंकाशं कान्तया सह सङ्गतम् ।
प्रेक्षन्त्यो हृष्टवदनाः पिबन्त्यो नयनोत्सवम् ॥ ६ ॥

प्रद्युम्न अपनी प्रियतमाके साथ मिलकर कामदेवके समान शोभा पा रहे थे । उनकी ओर निहारती हुई रानियोंके मुखपर हर्ष छा रहा था । वे नेत्रोंसे उनकी रूपमाधुरीका पान कर रही थीं, प्रद्युम्न उनके नयनोंके लिये उत्सवरूप हो गये थे ॥ ६ ॥

तं विनीतमुखं दृष्ट्वा लज्जमानं पदे पदे ।
अभवन् स्निग्धसंकल्पाः सर्वास्ताः कृष्णयोषितः ॥७॥

उनका मुख विनयसे झुका हुआ था । वे पग-पगपर संकोचका अनुभव कर रहे थे । उन्हें देखकर श्रीकृष्णकी सभी रानियोंके हृदयमें वात्सल्य-स्नेहका संचार हो आया था ॥ ७ ॥

रुक्मिणी चैव तं दृष्ट्वा शोकार्ता पुत्रगर्द्धिनी ।
सपत्नीशतसंकीर्णा सबाष्पा वाक्यमब्रवीत् ॥ ८ ॥

पुत्रकी इच्छा रखनेवाली रुक्मिणी उन्हें देखकर शोकसे कातर हो उठीं । वे सैकड़ों सौतोंसे घिरकर आँसू बहाती हुई इस प्रकार बोलीं—॥ ८ ॥

यादृक् स्वप्नो मया दृष्टो निशायां यौवने गते ।
कंसारिणा ममानीय दत्तं साहारपल्लवम् ॥ ९ ॥

'मैंने रातमें निशाकालकी युवावस्था बीत जानेपर अर्थात् पिछले पहरमें जैसा स्वप्न देखा है, (वह इस प्रकार है—) 'मेरे प्राणनाथ कंसनिषूदनने मेरे हाथमें फलयुक्त आम्रपल्लव लाकर दिया है ॥ ९ ॥

शशिरश्मिप्रतीकाशां मुक्तादाम च शोभनम् ।
केशवेनाङ्कमारोप्य मम कण्ठे न्यबध्यत ॥ १० ॥

'फिर श्रीकेशवने मुझे अपने अङ्कमें बिठाकर मोतियोंकी एक बहुत सुन्दर माला मेरे कण्ठमें बाँध दी । वह माला चन्द्रमाकी किरणोंके समान प्रकाशमान थी ॥ १० ॥

श्यामा सुचारुकेशा स्त्री शुक्लाम्बरविभूषिता ।
पद्महस्ता निरीक्षन्ती प्रविष्टा मम वेश्मनि ॥ ११ ॥

'फिर एक श्यामा (सोलह वर्षकी अवस्थावाली अथवा श्यामवर्णा) स्त्री मेरे महलमें प्रविष्ट हुई, जिसके केश बड़े ही मनोहर थे । श्वेत वस्त्र उसके अङ्गोंकी शोभा बढ़ा रहे थे । उसके हाथमें कमल था । वह मेरी ओर देखती हुई घरके भीतर घुसी थी ॥ ११ ॥

तया पुनरहं गृह्य स्नापिता रुचिराम्बुना ।
कुशेशयमयीं मालां स्त्री संगृह्याथ पाणिना ॥ १२ ॥
मम मूर्धन्युपाघ्राय दत्ता स्वच्छा तया मम ।

'वह स्त्री मेरा हाथ पकड़कर मुझे स्नानागारमें ले गयी और स्वच्छ जलसे उसने मुझे नहलाया । तत्पश्चात् मेरा मस्तक सूँघकर उसने अपने हाथसे एक निर्मल कमलपुष्पोंकी माला लेकर मुझे पहना दी' ॥ १२½ ॥

एवं स्वप्नान् कीर्तयन्ती रुक्मिणी हृष्टमानसा ॥ १३ ॥
सखीजनवृता देवी कुमारं वीक्ष्य तं मुहुः ।

इस प्रकार स्वप्नोंका वर्णन करती हुई रुक्मिणीका हृदय हर्षसे खिल उठा । सखियोंसे घिरी हुई उन महारानीने कुमार प्रद्युम्नकी ओर बारंबार देखकर कहा—॥ १३½ ॥

धन्यायाः खल्वयं पुत्रो दीर्घायुः प्रियदर्शनः ॥ १४ ॥
ईदृशः कामसंकाशो यौवने प्रथमे स्थितः ।

'निश्चय ही यह किसी बड़भागिनी माताका दीर्घायु पुत्र है, जो देखनेमें बहुत ही प्रिय है । इस तरह कामदेव जैसा सुन्दर यह बालक अभी पहले-पहल युवावस्थामें प्रविष्ट हुआ है' ॥ १४½ ॥

जीवपुत्रा त्वया पुत्र कासौ भाग्यसमन्विता ॥ १५ ॥
किमर्थं चाम्बुदश्यामः सभार्यस्त्वमिहागतः ।

(फिर वे प्रद्युम्नसे बोलीं—) 'बेटा ! वह कौन-सी सौभाग्यशालिनी माता है, जो तुम-जैसे चिरंजीवी पुत्रसे पुत्रवती हुई है ? मेघके समान श्यामसुन्दर शरीरवाले तुम अपनी पत्नीके साथ किसलिये यहाँ पधारे हो ? ॥ १५½ ॥

अस्मिन् वयसि सुव्यक्तं प्रद्युम्नो मम पुत्रकः ॥ १६ ॥
भवेद् यदि न नीतः स्यात् कृतान्तेन बलीयसा ।

'यदि बलवान् काल न उठा ले गया होता तो मेरा बेटा प्रद्युम्न भी अवश्य ही इसी (तरुण) अवस्थामें स्थित होता ॥ १६½ ॥

व्यक्तं कृष्णकुमारस्त्वं न मिथ्या मम तर्कितम् ॥ १७ ॥
विज्ञातोऽसि मया चिह्नैर्विना चक्रं जनार्दनः ।

'अथवा मेरा तर्क करना—सोचना व्यर्थ नहीं है । तुम अवश्य ही श्रीकृष्णके पुत्र हो । मैंने लक्षणोंसे तुम्हें पहचान लिया । तुम बिना चक्रके जनार्दन हो (यदि तुम्हारे हाथमें

चक्र हो तो तुममें और श्रीकृष्णमें कोई अन्तर नहीं रह जायगा) ॥ १७½ ॥

मुखं नारायणस्येव केशाः केशान्त एव च ॥ १८ ॥
ऊरू वक्षो भुजौ तुल्यौ हलिनः श्वशुरस्य मे ।

'तुम्हारा मुख नारायण (श्रीकृष्ण) के समान है। तुम्हारे केश और केशान्तभाग उन्हींके सदृश हैं। तुम्हारी दोनों जाँघें, वक्षःस्थल और दोनों भुजाएँ मेरे श्वशुर हलधरके सदृश हैं ॥ १८½ ॥

कस्त्वं वृष्णिकुलं सर्वं द्योतयन् वपुषा स्थितः ॥ १९ ॥
अहो नारायणस्येव दिव्या ते परमा तनुः ।

'तुम कौन हो, जो यहाँ अपने शरीरकी कान्तिसे समस्त वृष्णिकुलको प्रकाशित करते हुए खड़े हो ? अहो ! भगवान् नारायणके समान तुम्हारा शरीर परम दिव्य है' ॥ १९½ ॥

एतस्मिन्नन्तरे कृष्णः सहसा प्रविवेश ह ।
नारदस्य वचः श्रुत्वा शम्बरस्य वधं प्रति ॥ २० ॥

इसी बीचमें शम्बर-वधके विषयमें नारदजीका वचन सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण सहसा अन्तःपुरमें आये ॥ २० ॥

सोऽपश्यत् तं सुतं ज्येष्ठं सिद्धं मन्मथलक्षणैः ।
स्नुषां मायावतीं चैव हृष्टचेता जनार्दनः ॥ २१ ॥

उन्होंने कामदेवके लक्षणोंसे सम्पन्न अपने ज्येष्ठ पुत्र प्रद्युम्नको तथा पुत्रवधू मायावतीको भी देखा। इससे जनार्दनके चित्तमें बड़ा हर्ष हुआ ॥ २१ ॥

सोऽब्रवीत् सहसा देवीं रुक्मिणीं देवतामिव ।
अयं स देवि सम्प्राप्तः सुतश्चापधरस्तव ॥ २२ ॥

वे सहसा देवताके समान दीप्तिमती देवी रुक्मिणीसे बोले—'देवि ! यह वही तुम्हारा पुत्र है, जो इस समय धनुष धारण करके तुम्हारे पास आया है ॥ २२ ॥

अनेन शम्बरं हत्वा मायायुद्धविशारदम् ।
हृता मायाश्च ताः सर्वा याभिर्देवानबाधयत् ॥ २३ ॥

'इसने मायायुद्धविशारद शम्बरासुरका वध करके उसकी ये सारी मायाएँ भी हर ली हैं, जिनके बलपर वह देवताओंको सताया करता था ॥ २३ ॥

सती चेयं शुभा साध्वी भार्या वै तनयस्य ते ।
मायावतीति विख्याता शम्बरस्य गृहोषिता ॥ २४ ॥

'यह तुम्हारे पुत्रकी सती साध्वी शुभलक्षणा पत्नी है। इसका नाम मायावती है। यह शम्बरासुरके घरमें चिरकाल-तक रही है ॥ २४ ॥

मा च ते शम्बरस्येयं पत्नीति भवतु व्यथा ।
मन्मथे तु गते नाशं गते चानङ्गतां पुरा ॥ २५ ॥
कामपत्नी न कदाचैषा शम्बरस्य रतिः प्रिया ।

'यह कहीं शम्बरासुरकी स्त्री न हो, ऐसी बात सोचकर तुम मनमें व्यथित न होना। पूर्वकालमें जब कामदेवका शरीर नष्ट हो गया और वे अनङ्ग हो गये, उस समय उनकी प्यारी पत्नी जो रति थी, वही यह मायावती है। यह शम्बरासुरकी वल्लभा कभी नहीं रही है ॥ २५½ ॥

मायारूपेण तं दैत्यं मोहयत्यसकृच्छुभा ॥ २६ ॥
न चैषा तस्य कौमारे वशे तिष्ठति शोभना ।
आत्ममायामयं कृत्वा रूपं शम्बरमाविशत् ॥ २७ ॥

'यह शुभलक्षणा सुन्दरी सदा मायामयरूपसे ही उस दैत्यको मोहमें डाले रखती थी। यह कुमारावस्थामें कभी उसके वशमें नहीं हुई। अपनी मायासे ही एक मनोहर नारीका रूप रचकर उसीको शम्बरासुरके शयनागारमें प्रविष्ट करती थी ॥ २६-२७ ॥

पत्न्येषा मम पुत्रस्य स्नुषा तव वराङ्गना ।
लोककान्तस्य साहाय्यं करिष्यति मनोमयम् ॥ २८ ॥

'यह सुन्दरी मेरे पुत्रकी पत्नी तथा तुम्हारी बहू है। यह लोककमनीय रूपवाले प्रद्युम्नकी मनोमय (संकल्पमय) सहायता करेगी ॥ २८ ॥

प्रवेशयैनां भवनं पूज्यां ज्येष्ठां स्नुषां मम ।
चिरं प्रणष्टं च सुतं भजस्व पुनरागतम् ॥ २९ ॥

'यह मेरी आदरणीया ज्येष्ठ बहू है, इसे घरके भीतर ले चलो। चिरकालसे नष्ट हुआ तुम्हारा पुत्र फिर आ गया। इसे अपनाओ' ॥ २९ ॥

वैशम्पायन उवाच

श्रुत्वा तु वचनं देवी कृष्णेनोदाहृतं तदा ।
प्रहर्षमतुलं लब्ध्वा रुक्मिणी वाक्यमब्रवीत् ॥ ३० ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! श्रीकृष्णका यह कथन सुनकर उस समय देवी रुक्मिणीको अनुपम हर्ष प्राप्त हुआ। वे बोलीं—॥ ३० ॥

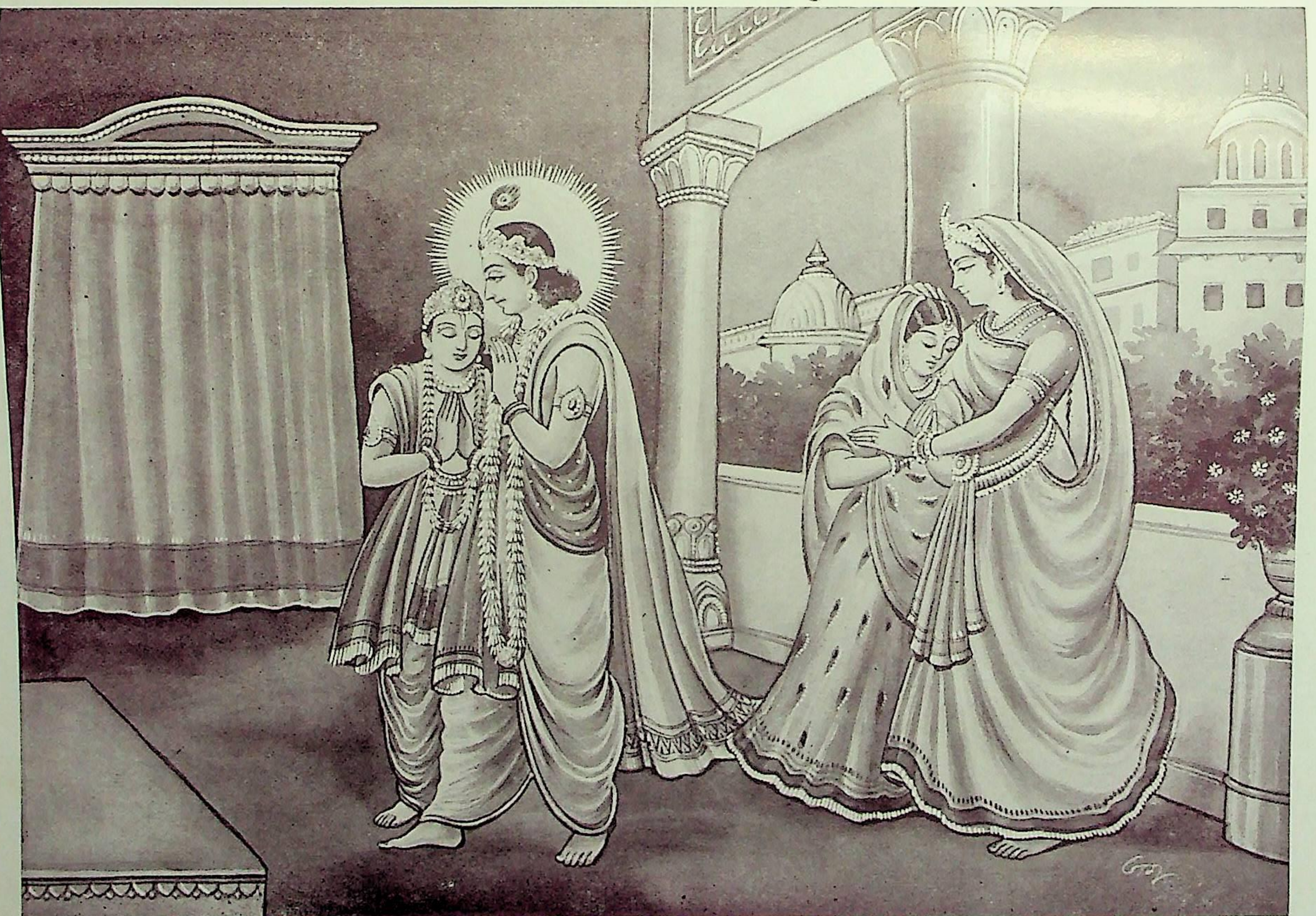
अहो धन्यतरास्मीति वीरपुत्रसमागमात् ।
अद्य मे सफलः कामः पूर्णो मेऽद्य मनोरथः ॥ ३१ ॥

'अहो ! आज अपने वीर पुत्रके मिल जानेसे मैं परम धन्य हो गयी। अब मेरी कामना सफल हो गयी। सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण हो गया ॥ ३१ ॥

चिरप्रणष्टपुत्रस्य दर्शनं प्रियया सह ।
आगच्छ पुत्र भवनं सभार्यः प्रविशेह च ॥ ३२ ॥

'चिरकालसे खोये हुए पुत्रका आज मुझे उसकी पत्नीके साथ दर्शन हुआ। बेटा ! आओ, अपनी पत्नीके साथ इस घरके भीतर प्रवेश करो' ॥ ३२ ॥

ततोऽभिवाद्य चरणौ गोविन्दं मातरं च ताम् ।
प्रद्युम्नः पूजयामास हलिनं च महाबलम् ॥ ३३ ॥



श्रीकृष्ण-रुक्मिणी प्रद्युम्न-रतिसे मिल रहे हैं

तदनन्तर प्रद्युम्नने अपने पिता श्रीकृष्ण और माता रुक्मिणीके चरणोंमें प्रणाम करके अपने ताऊ महाबली हलधरका भी पूजन किया ॥ ३३ ॥

उत्थाप्य तं परिष्वज्य मूर्ध्न्युपाघ्राय वीर्यवान्।
प्रद्युम्नं बलिनां श्रेष्ठं केशवः परवीरहा ॥ ३४ ॥

शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले पराक्रमी भगवान् श्रीकृष्णने बलवानोंमें श्रेष्ठ प्रद्युम्नको उठाकर हृदयसे लगाया और मस्तक सूँघकर अपना स्नेह प्रदान किया ॥ ३४ ॥

स्नुषां चोत्थाप्य तां देवी रुक्मिणी रुक्मभूषणा।
परिष्वज्योपसंगृह्य स्नेहाद् गद्गदभाषिणी ॥ ३५ ॥

सोनेके आभूषणोंसे विभूषित हुई देवी रुक्मिणीने अपनी उस पुत्रवधूको उठाकर हृदयसे लगा लिया और उसे सर्वतोभावेन अपनाकर स्नेहसे गद्गद वाणीद्वारा उसका स्वागत किया ॥ ३५ ॥

समेत्य भवनं पत्न्या शचीन्द्रमदितिर्यथा।
प्रवेशयामास तदा रुक्मिणी सुतमागतम् ॥ ३६ ॥

जैसे देवमाता अदितिने शची और इन्द्रको देवभवनमें प्रविष्ट किया था, उसी प्रकार रुक्मिणीने पत्नीके साथ आये हुए पुत्रसे मिलकर उसका भवनके भीतर प्रवेश कराया ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि प्रद्युम्नागमने अष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें प्रद्युम्नका आगमनविषयक एक सौ आठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०८ ॥

नवाधिकशततमोऽध्यायः

बलदेवजीके द्वारा प्रद्युम्नको आह्निकस्तोत्रका उपदेश

वैशम्पायन उवाच

अत्राश्चर्यात्मकं स्तोत्रमाह्निकं जयतां वर।
प्रद्युम्ने द्वारकां प्राप्ते हत्वा तं कालशम्बरम् ॥ १ ॥
बलदेवेन रक्षार्थं प्रोक्तमाह्निकमुच्यते।
यज्जप्त्वा तु नृपश्रेष्ठ सायं पूतात्मतां व्रजेत् ॥ २ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ जनमेजय ! जब प्रद्युम्न कालशम्बरका वध करके द्वारकापुरीमें आये, उस समय बलदेवजीने उनकी रक्षाके लिये उन्हें एक स्तोत्रका उपदेश दिया; जिसे आह्निक कहते हैं। नृपश्रेष्ठ ! उसी आश्चर्यमय आह्निक स्तोत्रका यहाँ वर्णन किया जाता है, जिसका सायंकालमें जप करनेसे मनुष्य पूतात्मा (पवित्र अन्तःकरणवाला) हो जाता है ॥ १-२ ॥

कीर्तितं बलदेवेन विष्णुना चैव कीर्तितम्।
धर्मकामैश्च मुनिभिर्ऋषिभिश्चापि कीर्तितम् ॥ ३ ॥

इस स्तोत्रका बलदेवजीने, भगवान् विष्णुने तथा धर्माभिलाषी ऋषि-मुनियोंने भी कीर्तन किया है ॥ ३ ॥

कर्हिचिद् रुक्मिणीपुत्रो हलिना संयुतो गृहे।
उपविष्टः प्रणम्याथ तमुवाच कृताञ्जलिः ॥ ४ ॥

एक समयकी बात है, रुक्मिणीपुत्र प्रद्युम्न घरमें बलरामजीके साथ बैठे हुए थे। उन्होंने हाथ जोड़कर बलरामजीको प्रणाम किया और इस प्रकार पूछा ॥ ४ ॥

प्रद्युम्न उवाच

कृष्णानुज महाभाग रोहिणीतनय प्रभो।
किंचित् स्तोत्रं मम ब्रूहि यज्जप्त्वा निर्भयोऽभवम् ॥ ५ ॥

प्रद्युम्न बोले—भगवान् श्रीकृष्णके बड़े भाई महाभाग रोहिणीनन्दन ! प्रभो ! मुझे किसी ऐसे स्तोत्रका उपदेश दीजिये, जिसका जप करके मैं निर्भय हो जाऊँ ॥ ५ ॥

श्रीबलदेव उवाच

सुरासुरगुरुर्ब्रह्मा पातु मां जगतः पतिः।
अथोङ्कारवषट्कारौ सावित्री विधयस्त्रयः ॥ ६ ॥
ऋचो यजूंषि सामानि छन्दांस्याथर्वणानि च।
चत्वारस्त्वखिला वेदाः सरहस्याः सविस्तराः ॥ ७ ॥
पुराणमितिहासश्चाखिलान्युपखिलानि च।
अङ्गान्युपाङ्गानि तथा व्याख्यातानि च पान्तु माम् ॥ ८ ॥

श्रीबलदेवजीने कहा—देवताओं और असुरोंके गुरु जगत्पति ब्रह्माजी मेरी रक्षा करें। ओङ्कार, वषट्कार, सावित्री, तीन प्रकारकी[1] विधियाँ, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, रहस्य और विस्तारसहित सम्पूर्णरूपसे चारों वेद, इतिहास, पुराण, खिल, उपखिल, अङ्ग, उपाङ्ग तथा व्याख्याग्रन्थ—इन सबके अभिमानी देवता मेरी रक्षा करें ॥

पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम्।
इन्द्रियाणि मनो बुद्धिस्तथा सत्त्वं रजस्तमः ॥ ९ ॥
व्यानोदानौ समानश्च प्राणोऽपानश्च पञ्चमः।
वायवः सप्त चैवान्ये येष्वायत्तमिदं जगत् ॥ १० ॥
मरीचिरङ्गिरात्रिश्च पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः।
भृगुर्वसिष्ठो भगवान् पान्तु ते मां महर्षयः ॥ ११ ॥

पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, पाँचवाँ तेज, इन्द्रियाँ,

१. अपूर्वविधि, नियमविधि और परिसंख्याविधि।

मन, बुद्धि, सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण, व्यान, उदान, समान, प्राण और पाँचवाँ अपान, जिनके अधीन यह सारा जगत् है, वे प्रवह आदि अन्य सात वायु, मरीचि, अङ्गिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु और भगवान् वसिष्ठ—ये महर्षि तथा पूर्वोक्त पृथ्वी आदिके अभिमानी देवता मेरी रक्षा करें ॥ ९–११ ॥

कश्यपाद्याश्च मुनयश्चतुर्दश दिशो दश।
नरनारायणौ देवौ सगणौ पान्तु मां सदा ॥ १२ ॥

कश्यप आदि चौदह मुनि, दस दिशाएँ तथा अपने गणोंसहित देव नर और नारायण—ये सदा मेरा संरक्षण करें ॥ १२ ॥

रुद्राश्चैकादश प्रोक्ता आदित्या द्वादशैव तु।
अष्टौ च वसवो देवा अश्विनौ द्वौ प्रकीर्तितौ ॥ १३ ॥

ग्यारह रुद्र कहे गये हैं और बारह आदित्य, आठ वसुदेवता बताये गये हैं और दो अश्विनीकुमार—ये सब मेरी रक्षा करें ॥ १३ ॥

ह्रीः श्रीर्लक्ष्मीः स्वधा पुष्टिर्मेधा तुष्टिः स्मृतिर्धृतिः।
अदितिर्दितिर्दनुश्चैव सिंहिका दैत्यमातरः ॥ १४ ॥

ह्री, श्री, लक्ष्मी, स्वधा, पुष्टि, मेधा, तुष्टि, स्मृति, धृति, देवमाता अदिति तथा दैत्योंकी माताएँ दिति, दनु और सिंहिका आदि मेरी रक्षा करें ॥ १४ ॥

हिमवान् हेमकूटश्च निषधः श्वेतपर्वतः।
ऋषभः पारियात्रश्च विन्ध्यो वैडूर्यपर्वतः ॥ १५ ॥
सह्योदयश्च मलयो मेरुमन्दरदर्दुराः।
क्रौञ्चकैलासमैनाकाः पान्तु मां धरणीधराः ॥ १६ ॥

हिमवान्, हेमकूट, निषध, श्वेतपर्वत, ऋषभ, पारियात्र, विन्ध्य, वैदूर्यपर्वत, सह्य, उदयगिरि, मलय, मेरु, मन्दर, दर्दुर, क्रौञ्च, कैलास और मैनाक आदि पर्वत मेरी रक्षा करें॥

शेषश्च वासुकिश्चैव विशालाक्षश्च तक्षकः।
एलापत्रः शुक्लवर्णः कम्बलाश्वतरावुभौ ॥ १७ ॥
हस्तिभद्रः पिठरकः कर्कोटकधनंजयौ।
तथा पूरणकश्चैव नागश्च करवीरकः ॥ १८ ॥
सुमनास्यो दधिमुखस्तथा शृङ्गारपिण्डकः।
मणिनागश्च भगवांस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥ १९ ॥
नागराडधिकर्णश्च तथा हारिद्रकोऽपरः।
एते चान्ये च बहवो ये चान्ये नानुकीर्तिताः ॥ २० ॥
भूधराः सत्यधर्माणः पान्तु मां भुजगेश्वराः।

शेष, वासुकि, विशालाक्ष और तक्षक, एलापत्र, शुक्लवर्ण, कम्बल, अश्वतर, हस्तिभद्र, पिठरक, कर्कोटक, धनंजय, पूरणक, करवीरक नाग, सुमनास्य, दधिमुख, शृङ्गारपिण्डक, तीनों लोकोंमें विख्यात भगवान् मणिनाग, नागराज अधिकर्ण तथा हारिद्रक—ये तथा दूसरे भी बहुत-से नाग, जिनके नाम यहाँ नहीं लिये गये हैं, वे सभी सत्यधर्मा एवं पृथ्वीका भार धारण करनेवाले नागराज मेरी रक्षा करें ॥ १७–२०½ ॥

समुद्राः पान्तु चत्वारो गङ्गा च सरितां वरा ॥ २१ ॥
सरस्वती चन्द्रभागा शतद्रुर्देविका शिवा।
द्वारावती विपाशा च सरयूर्यमुना तथा ॥ २२ ॥
कल्माषी च रथोष्मा च बाहुदा च हिरण्यदा।
प्लक्षा चेक्षुमती चैव स्रवन्ती च बृहद्रथा ॥ २३ ॥
ख्याता चर्मण्वती चैव पुण्या चैव वधूसरा।
एताश्चान्याश्च सरितो याश्चान्या नानुकीर्तिताः॥ २४ ॥
उत्तरापथगामिन्यः सलिलैः स्नपयन्तु माम्।

चारों समुद्र मेरी रक्षा करें। सरिताओंमें श्रेष्ठ गङ्गा, सरस्वती, चन्द्रभागा, शतद्रु, देविका, शिवा, द्वारावती, विपाशा, सरयू, यमुना, कल्माषी, रथोष्मा, बाहुदा, हिरण्यदा, प्लक्षा, इक्षुमती, स्रवन्ती, बृहद्रथा, सुविख्यात चर्मण्वती तथा पुण्यसलिला वधूसरा—ये और दूसरी बहुत-सी नदियाँ जिनके नाम यहाँ नहीं लिये गये हैं तथा जो उत्तरभारतमें बहनेवाली हैं, वे सब-की-सब अपने जलसे मुझे नहलायें ॥ २१–२४½ ॥

वेणी गोदावरी सीता कावेरी कौङ्कणावती ॥ २५ ॥
कृष्णा वेणा शुक्तिमती तमसा पुष्पवाहिनी।
ताम्रपर्णी ज्योतिरथा उत्फलोदुम्बरावती ॥ २६ ॥
नदी वैतरणी पुण्या विदर्भा नर्मदा शुभा।
वितस्ता भीमरथ्या च ऐला चैव महानदी ॥ २७ ॥
कालिन्दी गोमती पुण्या नदः शोणश्च विश्रुतः।
एताश्चान्याश्च वै नद्यो याश्चान्या न तु कीर्तिताः॥ २८ ॥
दक्षिणापथवाहिन्यः सलिलैः स्नपयन्तु माम्।

वेणी, गोदावरी, सीता, कावेरी, कौङ्कणावती, कृष्णा, वेणा, शुक्तिमती, तमसा, पुष्पवाहिनी, ताम्रपर्णी, ज्योतिरथा, उत्फला, उदुम्बरावती, वैतरणी नदी, पुण्यसलिला विदर्भा, शुभस्वरूपा नर्मदा, वितस्ता, भीमरथ्या, महानदी ऐला, कालिन्दी, पुण्यसलिला गोमती, सुविख्यात नद शोणभद्र—ये तथा दूसरी नदियाँ जिनके नाम यहाँ नहीं लिये गये हैं और जो दक्षिण भारतमें बहनेवाली हैं, वे सब-की-सब अपने जलसे मुझे नहलायें ॥ २५–२८½ ॥

क्षिप्रा चर्मण्वती पुण्या मही शुभ्रवती तथा ॥ २९ ॥
सिन्धुर्वेत्रवती चैव भोजान्ता वनमालिका।
पूर्वभद्रा पराभद्रा ऊर्मिला च परद्रुमा ॥ ३० ॥
ख्याता वेत्रवती चैव चापदासीति विश्रुता।
प्रस्थावती कुण्डनदी नदी पुण्या सरस्वती ॥ ३१ ॥
चित्रघ्नी चन्द्रमाला च तथा मधुमती नदी।
उमा गुरुनदी चैव तापी च विमलोदका ॥ ३२ ॥
विमला विमलोदा च मत्तगङ्गा पयस्विनी।

एताश्चान्याश्च वै नद्यो याश्चान्या नानुकीर्तिताः ॥ ३३ ॥
ता मां समभिषिञ्चन्तु पश्चिमामाश्रिता दिशम् ।

क्षिप्रा, चर्मण्वती, पुण्यसलिला मही, शुभ्रवती, सिन्धु, वेत्रवती, भोजान्ता, वनमालिका, पूर्वभद्रा, पराभद्रा, ऊर्मिला, परद्रुमा, विख्यात वेत्रवती, चापदासी, प्रस्थावती, कुण्डनदी, पुण्यसलिला सरस्वती, चित्रघ्नी, इन्दुमाला, मधुमती नदी, उमा, गुरुनदी, तापी, विमलोदका, विमला, विमलोदा, मत्तगङ्गा, पयस्विनी—ये तथा दूसरी नदियाँ जिनके नाम यहाँ नहीं लिये गये हैं तथा जो पश्चिम दिशाका आश्रय लेकर बहती हैं, वे सब नदियाँ अपने जलसे मेरा अभिषेक करें ॥

भागीरथी पुण्यजला प्राच्यां दिशि समाश्रिता ॥ ३४ ॥
सा तु दहतु मे पापं कीर्तिता शम्भुना धृता ।

पुण्यसलिला भागीरथी जो पूर्वदिशाका आश्रय लेकर बहती हैं और जिन्हें भगवान् शङ्करने अपने मस्तकपर धारण कर रखा है, वे अपना नाम कीर्तन करनेपर मेरे पापको दग्ध कर दें ॥ ३४½ ॥

प्रभासं च प्रयागं च नैमिषं पुष्कराणि च ॥ ३५ ॥
गङ्गातीर्थं कुरुक्षेत्रं श्रीकण्ठं गौतमाश्रमम् ।
रामह्रदं विनशनं रामतीर्थं तथैव च ॥ ३६ ॥
गङ्गाद्वारं कनखलं सोमो वै यत्र चोत्थितः ।
कपालमोचनं तीर्थं जम्बूमार्गं च विश्रुतम् ॥ ३७ ॥
सुवर्णबिन्दुं विख्यातं तथा कनकपिङ्गलम् ।
दशाश्वमेधिकं चैव पुण्याश्रमविभूषितम् ॥ ३८ ॥
बदरी चैव विख्याता नरनारायणाश्रमः ।
विख्यातं फल्गुतीर्थं च तीर्थं चन्द्रवटं तथा ॥ ३९ ॥
कोकामुखं पुण्यतमं गङ्गासागरमेव च ।
मगधेषु तपोदश्च गङ्गोद्भेदश्च विश्रुतः ॥ ४० ॥
तीर्थान्येतानि पुण्यानि सेवितानि महर्षिभिः ।
मां प्लावयन्तु सलिलैः यानि मे कीर्तितानि वै ॥ ४१ ॥

प्रभास, प्रयाग, नैमिष, पुष्कर, गङ्गातीर्थ, कुरुक्षेत्र श्रीकण्ठ, गौतमाश्रम, परशुरामकुण्ड, विनशनतीर्थ, रामतीर्थ, गङ्गाद्वार, कनखलतीर्थ, जहाँ सोमका उत्थान हुआ था, वह सोमोत्थानतीर्थ, कपालमोचनतीर्थ, सुविख्यात जम्बूमार्ग, सुवर्णबिन्दु नामसे विख्यात तीर्थ, कनकपिङ्गलतीर्थ, पवित्र आश्रमोंसे विभूषित दशाश्वमेधिक तीर्थ, सुविख्यात बदरीतीर्थ, नर-नारायणका आश्रम, फल्गुतीर्थ, चन्द्रवटतीर्थ, परम पवित्र कोकामुखतीर्थ, गङ्गासागर, मगधदेशीय तपोद तथा गङ्गोद्भेद नामसे विख्यात तीर्थ—ये महर्षियोंद्वारा सेवित सभी पुण्यतीर्थ, जिनका मैंने यहाँ कीर्तन किया है, निश्चय ही मुझे अपने जलसे आप्लावित करें ॥ ३५-४१ ॥

सूकरं योगमार्गं च श्वेतद्वीपं तथैव च ।
ब्रह्मतीर्थं रामतीर्थं वाजिमेधशतोपमम् ॥ ४२ ॥
धारासम्पातसंयुक्ता गङ्गा किल्बिषनाशिनी ।
गङ्गा वैकुण्ठकेदारं सूकरोद्भेदनं परम् ।
तच्छापमोचनं तीर्थं पुनन्त्वेतानि किल्बिषात् ॥ ४३ ॥

सूकरतीर्थ, योगमार्ग, श्वेतद्वीप, ब्रह्मतीर्थ, सौ अश्वमेध यज्ञोंके समान फल देनेवाला रामतीर्थ, धाराके रूपमें गिरती हुई गङ्गा, पापनाशिनी गङ्गा, वैकुण्ठकेदार, उत्तम सूकरोद्भेदनतीर्थ तथा सुप्रसिद्ध शापमोचनतीर्थ—ये सारे तीर्थ मुझे पापसे रहित एवं पवित्र करें ॥ ४२-४३ ॥

धर्मार्थकामविषयो यशःप्राप्तिः शमो दमः ।
वरुणेशोऽथ धनदो यमो नियम एव च ॥ ४४ ॥
कालो नयः संततिश्च क्रोधो मोहः क्षमा धृतिः ।
विद्युतोऽभ्राण्यथौषध्यः प्रमादोन्मादविग्रहाः ॥ ४५ ॥
यक्षाः पिशाचा गन्धर्वाः किन्नराः सिद्धचारणाः ।
नक्तंचराः खेचरिणो दंष्ट्रिणः प्रियविग्रहाः ॥ ४६ ॥
लम्बोदराश्च बलिनः पिङ्गाक्षा विश्वरूपिणः ।
मरुतः सहपर्जन्याः कलात्रुटिलवाः क्षणाः ॥ ४७ ॥
नक्षत्राणि ग्रहाश्चैव ऋतवः शिशिरादयः ।
मासाहोरात्रयश्चैव सूर्याचन्द्रमसौ तथा ॥ ४८ ॥
आमोदश्च प्रमोदश्च प्रहर्षः शोक एव च ।
रजस्तमस्तपः सत्यं शुद्धिर्बुद्धिर्धृतिः श्रुतिः ॥ ४९ ॥
रुद्राणी भद्रकाली च भद्रा ज्येष्ठा तु वारुणी ।
भासी च कालिका चैव शाण्डिली चेति विश्रुताः ॥ ५० ॥
आर्या कुहूः सिनीवाली भीमा चित्ररथी रतिः ।
एकानंशा च कूष्माण्डी देवी कात्यायनी च या ॥ ५१ ॥
लोहित्या जनमाता च देवकन्यास्तु याः स्मृताः ।
गोनन्दा देवपत्नी च मां रक्षन्तु सबान्धवम् ॥ ५२ ॥

धर्म, अर्थ और कामविषयक शास्त्र, यशकी प्राप्ति, शम, दम, वरुण, ईश, धनद, यम, नियम, काल, नय, संतति, क्रोध, मोह, क्षमा, धृति, विद्युत्, मेघ, ओषधियाँ, प्रमाद, उन्माद, विग्रह, यक्ष, पिशाच, गन्धर्व, किन्नर, सिद्ध, चारण, निशाचर, खेचर, बड़ी-बड़ी दाढ़ोंवाले हिंसक जीव, जिन्हें विग्रह प्रिय है, बलवान्, लम्बोदर, पीले नेत्रवाले तथा विश्वरूपधारी गण, मरुद्गण, मेघ, कला, त्रुटि, लव, क्षण, नक्षत्र, ग्रह, शिशिर आदि ऋतु, मास, दिन, रात, सूर्य, चन्द्रमा, आमोद, प्रमोद, हर्ष, शोक, रज, तम, तप, सत्य, शुद्धि, बुद्धि, धृति, श्रुति, रुद्राणी, भद्रकाली, भद्रा, ज्येष्ठा, वारुणी, भासी, कालिका, शाण्डिली, आर्या, कुहू, सिनीवाली, भीमा, चित्ररथी, रति, एकानंशा, कूष्माण्डी, कात्यायनी देवी, लोहित्या, जनमाता, देवकन्याएँ, गोनन्दा तथा देवपत्नी—ये बन्धु-बान्धवोंसहित मेरी रक्षा करें ॥

नानाभरणवेशाश्च नानारूपाङ्कितानना: ।
नानादेशविचारिण्यो नानाशास्त्रोपशोभिताः ॥ ५३ ॥

मेदोमज्जाप्रियाश्चैव मद्यमांसवसाप्रियाः ।
मार्जारद्वीपिवक्त्राश्च गजसिंहनिभाननाः ॥ ५४ ॥
कङ्कवायसगृध्राणां क्रौञ्चतुल्याननास्तथा ।
व्यालयज्ञोपवीताश्च चर्मप्रावरणास्तथा ॥ ५५ ॥
क्षतजोक्षितवक्त्राश्च खरभेरीसमस्वनाः ।
मत्सराः क्रोधनाश्चैव प्रासादा रुचिरालयाः ॥ ५६ ॥
मत्तोन्मत्तप्रमत्ताश्च प्रहरन्त्यश्च धिष्ठिताः ।
पिङ्गाक्षाः पिङ्गकेशाश्च ततोऽन्या लूनमूर्धजाः ॥ ५७ ॥
ऊर्ध्वकेश्यः कृष्णकेश्यः श्वेतकेश्यस्तथावराः ।
नागायुतबलाश्चैव वायुवेगास्तथापराः ॥ ५८ ॥
एकहस्ता एकपादा एकाक्षाः पिङ्गला मताः ।
बहुपुत्राल्पपुत्राश्च द्विपुत्राः पुत्रमण्डिकाः ॥ ५९ ॥
मुखमण्डी बिडाली च पूतना गन्धपूतना ।
शीतवातोष्णवेताली रेवती ग्रहसंज्ञिताः ॥ ६० ॥
प्रियहास्याः प्रियक्रोधाः प्रियवासाः प्रियंवदाः ।
सुखप्रदाश्चासुखदाः सदा द्विजजनप्रियाः ॥ ६१ ॥
नक्तंचराः सुखोदर्काः सदा पर्वणि दारुणाः ।
मातरो मातृवत्पुत्रं रक्षन्तु मम नित्यशः ॥ ६२ ॥

जो नाना प्रकारके आभूषण और वेष धारण करती हैं, जिनके मुखपर अनेक प्रकारके चित्र अङ्कित होते हैं, जो विभिन्न देशोंमें विचरनेवाली तथा अनेक शस्त्रोंसे सुशोभित हैं, जिन्हें मेदा, मज्जा, मद्य, मांस और वसा प्रिय है, जिनके मुख बिल्ली, बाघ, हाथी, सिंह, कंक, कौआ, गीध अथवा क्रौञ्चके समान हैं, जो सर्पमय यज्ञोपवीत धारण करनेवाली तथा चर्ममय वस्त्रसे अपने अङ्गोंको ढकनेवाली हैं, जिनके मुख रक्तसे अभिषिक्त हैं तथा जिनकी वाणी नगाड़ोंकी प्रखर ध्वनिकी भाँति गम्भीर है, जो ईर्ष्यालु और क्रोधी हैं, महल जिनके सुन्दर निवास हैं, जो मत्त, उन्मत्त और प्रमत्त रहकर प्रहार करती हुई घरोंमें स्थित रहती हैं, जिनके नेत्र और केश पिङ्गलवर्णके दिखायी देते हैं, इनके अतिरिक्त जिनके केश कटे हुए हैं, जिनके सिरके बाल ऊपरकी ओर उठे हैं, जो काले अथवा सफेद केश धारण करती हैं, जो छोटे कदकी हैं, जिनमें दस हजार हाथियोंके समान बल है तथा जो वायुके तुल्य वेगवाली हैं, जिनके एक पैर, एक हाथ और एक आँख है, जो देखनेमें पिङ्गल वर्णकी प्रतीत होती हैं, जो अधिक या थोड़े पुत्रवाली हैं, जिनके दो ही पुत्र हैं, जो पुत्रोंका शृङ्गार करनेवाली हैं, मुखमण्डी, विड़ाली, पूतना, गन्धपूतना, शीतवातोष्णवेताली तथा रेवती आदि नामोंसे जिनकी प्रसिद्धि है, जिन्हें बालग्रह कहते हैं, जिन्हें हास्य और क्रोध प्रिय है, जो वस्त्र एवं वासस्थानसे प्रेम करती हैं, सदा प्रिय वचन बोलती हैं, जो सुख और दुःख भी देती हैं तथा जो द्विजातियोंको सदा प्रिय हैं, जो रातमें विचरनेवाली तथा उपासकको भविष्यमें सुख देनेवाली हैं तथा जो पर्वकालमें सदा अपने दारुण स्वभावका परिचय देती हैं, वे मातृकाएँ मेरी प्रतिदिन रक्षा करें, जैसे माता अपने पुत्रकी रक्षा करती है।

पितामहमुखोद्भूता रौद्रा रुद्राङ्गसम्भवाः ।
कुमारस्वेदजाश्चैव ज्वरा वै वैष्णवादयः ॥ ६३ ॥
महाभीमा महावीर्या दर्पोद्भूता महाबलाः ।
क्रोधनाक्रोधनाः क्रूराः सुरविग्रहकारिणः ॥ ६४ ॥
नक्तंचराः केसरिणो दंष्ट्रिणः प्रियविग्रहाः ।
लम्बोदरा जघनिनः पिङ्गाक्षा विश्वरूपिणः ॥ ६५ ॥
शक्त्यृष्टिशूलपरिघप्रासचर्मासिपाणयः ।
पिनाकवज्रमुसलब्रह्मदण्डायुधप्रियाः ॥ ६६ ॥
दण्डिनः कुण्डिनः शूरा जटामुकुटधारिणः ।
वेदवेदाङ्गकुशला नित्ययज्ञोपवीतिनः ॥ ६७ ॥
व्यालापीडाः कुण्डलिनो वीराः केयूरधारिणः ।
नानावसनसंवीताश्चित्रमाल्यानुलेपनाः ॥ ६८ ॥
गजाश्वोष्ट्रर्क्षमार्जारसिंहव्याघ्रनिभाननाः ।
वराहोलूकगोमायुमृगाखुमहिषाननाः ॥ ६९ ॥
वामना विकटाः कुब्जाः कराला लूनमूर्धजाः ।
सहस्रशतशश्चान्ये सहस्रजटधारिणः ॥ ७० ॥
श्वेताः कैलाससंकाशाः केचिद् दिनकरप्रभाः ।
केचिज्जलदवर्णाभा नीलाञ्जनचयोपमाः ॥ ७१ ॥
एकपादा द्विपादाश्च तथा द्विशिरसोऽपरे ।
निर्मांसाः स्थूलजंघाश्च व्यादितास्या भयङ्कराः ॥ ७२ ॥
वापीतडागकूपेषु समुद्रेषु सरित्सु च ।
श्मशानशैलवृक्षेषु शून्यागारनिवासिनः ॥ ७३ ॥
एते ग्रहाश्च सततं रक्षन्तु मम सर्वतः ।

जो पितामह ब्रह्माजीके मुखसे प्रकट हुए हैं, रौद्र हैं, रुद्रदेवके अङ्गोंसे उत्पन्न हुए हैं, कुमार कार्तिकेयके स्वेदसे प्रकट हुए हैं तथा जो वैष्णव आदि ज्वर हैं, जो महाभयंकर, महापराक्रमी, दर्पयुक्त तथा महाबली हैं, क्रोधयुक्त अथवा क्रोधरहित हैं, जिनका स्वभाव क्रूर है, जो देवताओंके समान स्वरूप धारण करनेवाले हैं, जिनके गलेमें अयाल हैं, जो रात्रिमें विचरनेवाले हैं, जिनकी बड़ी-बड़ी दाढ़ें हैं, जिन्हें विग्रह प्रिय है, जिनके पेट लंबे, कूल्हे मोटे और आँखें पिङ्गलवर्णकी हैं, जो विश्वरूपधारी हैं, जिनके हाथोंमें शक्ति, ऋष्टि, शूल, परिघ, प्रास, ढाल और तलवार आदि अस्त्र-शस्त्र शोभा पाते हैं, पिनाक, वज्र, मुसल और ब्रह्मदण्डनामक आयुध जिन्हें प्रिय हैं, जो दण्ड और कुण्ड धारण करते हैं, शूरवीर हैं, मस्तकपर जटा और मुकुट धारण किये रहते हैं, वेद और वेदाङ्गमें कुशल हैं, नित्य यज्ञोपवीतधारी हैं, माथेपर सर्पके मुकुट धारण करते हैं, जिनके कानोंमें कुण्डल और भुजाओंमें भुजबन्द शोभा पाते हैं, जो वीर हैं, नाना प्रकारके वस्त्र पहने, विचित्र माला और अनुलेप धारण करते हैं, जिनके मुख हाथी, घोड़े, ऊँट, रीछ, बिलाव, सिंह, व्याघ्र, सूअर, उल्लू

गीदड़, मृग, चूहों और भैंसोंके समान हैं, जो बौने, विकट आकारवाले, कुबड़े, विकराल तथा कटे हुए केशवाले हैं, इनके सिवा जो लाखोंकी संख्यामें सहस्रों जटाएँ धारण करनेवाले हैं, जिनमेंसे कोई कैलास पर्वतके समान श्वेत, कोई दिनकरके समान दीप्तिमान्, कोई मेघोंके समान काले तथा कोई अञ्जनराशिके समान नील हैं, जो एक अथवा दो पैरोंसे युक्त हैं, जिनके दो-दो सिर हैं, जो मांसरहित कङ्काल-से दिखायी देते हैं, जिनकी पिण्डलियाँ बहुत मोटी हैं, जो मुँह बाये रहनेके कारण बड़े भयङ्कर प्रतीत होते हैं, बावड़ी, पोखरे, कुएँ, समुद्र, नदी, श्मशानभूमि, पर्वत, वृक्ष तथा सूने घरोंमें निवास करनेवाले हैं, ये ग्रह सदा सब ओरसे मेरी रक्षा करें ॥

महागणपतिर्नन्दी महाकालो महाबलः ।
माहेश्वरो वैष्णवश्च ज्वरौ लोकभयावहौ ॥ ७४ ॥
ग्रामणीश्चैव गोपालो भृङ्गरीटिर्गणेश्वरः ।
देवश्च वामदेवश्च घण्टाकर्णः करंधमः ॥ ७५ ॥
श्वेतमोदः कपाली च जम्भकः शत्रुतापनः ।
मज्जनोन्मज्जनौ चोभौ संतापनविलापनौ ॥ ७६ ॥
निजघासोऽघसश्चैव स्थूणाकर्णः प्रशोषणः ।
उल्कामाली धमधमो ज्वालामाली प्रमर्दनः ॥ ७७ ॥
संघट्टनः संकुटनः काष्ठभूतः शिवंकरः ।
कूष्माण्डः कुम्भमूर्धा च रोचनो वैकृतो ग्रहः ॥ ७८ ॥
अनिकेतः सुरारिघ्नः शिवश्चाशिव एव च ।
क्षेमकः पिशिताशी च सुरारिर्हरिलोचनः ॥ ७९ ॥
भीमको ग्राहकश्चैव तथैवाग्रमयो ग्रहः ।
उपग्रहोऽर्यकश्चैव तथा स्कन्दग्रहोऽपरः ॥ ८० ॥
चपलोऽसमवेतालस्तामसः सुमहाकपिः ।
हृदयोद्वर्तनश्चैडः कुण्डाशी कङ्कणप्रियः ॥ ८१ ॥
हरिश्मश्रुर्गरुत्मन्तो मनोमारुतरंहसः ।
पार्वत्या रोषसम्भूताः सहस्राणि शतानि च ॥ ८२ ॥
शक्तिमन्तो धृतिमन्तो ब्रह्मण्याः सत्यसङ्गराः ।
सर्वकामापहन्तारो द्विषतां च मृधेमृधे ॥ ८३ ॥
रात्रावहनि दुर्गेषु कीर्तिताः सकलैर्गुणैः ।
तेषां गणानां पतयः सगणाः पान्तु मां सदा ॥ ८४ ॥

महागणपति, नन्दी, महाबली महाकाल, लोकभयङ्कर माहेश्वर तथा वैष्णव ज्वर, ग्रामणी, गोपाल, भृङ्गरिटि, गणेश्वर, देव, वामदेव, घण्टाकर्ण, करंधम, श्वेतमोद, कपाली, जम्भक, शत्रुतापन, मज्जन, उन्मज्जन, संतापन, विलापन, निजघास, अघस, स्थूणाकर्ण, प्रशोषण, उल्कामाली, धमधम, ज्वालामाली, प्रमर्दन, संघट्टन, संकुटन, काष्ठभूत, शिवङ्कर, कूष्माण्ड, कुम्भमूर्धा, रोचन, वैकृत ग्रह, अनिकेत, सुरारिघ्न, शिव, अशिव, क्षेमक, पिशिताशी, सुरारि, हरिलोचन, भीमक, ग्राहक, अग्रमय ग्रह, उपग्रह, अर्यक, स्कन्द-ग्रह, चपल, असमवेताल, तामस, सुमहाकपि, हृदयोद्वर्तन, ऐड, कुण्डाशी, कङ्कणप्रिय, हरिश्मश्रु तथा मन और वायुके समान वेगशाली गरुत्मान्, पार्वतीके रोषसे उत्पन्न हुए सैकड़ों और हजारों गण, जो शक्तिमान्, धैर्यवान्, ब्राह्मणभक्त और सत्यप्रतिज्ञ हैं तथा प्रत्येक युद्धमें शत्रुओंकी सम्पूर्ण कामनाओंका विनाश करनेवाले हैं; इन सबका रात और दिनमें दुर्गम संकटके अवसरोंपर जब-जब कीर्तन किया जाय, तब-तब वे समस्त गणपति अपने सारे गुणों और सम्पूर्ण गणोंके साथ सदा मेरी रक्षा करें ॥ ७४–८४ ॥

नारदः पर्वतश्चैव गन्धर्वाप्सरसां गणाः ।
पितरः कारणं कार्यमाधयो व्याधयस्तथा ॥ ८५ ॥
अगस्त्यो गालवो गार्ग्यः शक्तिर्धौम्यः पराशरः ।
कृष्णात्रेयश्च भगवानसितो देवलो बलः ॥ ८६ ॥
बृहस्पतिरुतथ्यश्च मार्कण्डेयः श्रुतश्रवाः ।
द्वैपायनो विदर्भश्च जैमिनिर्माठरः कठः ॥ ८७ ॥
विश्वामित्रो वसिष्ठश्च लोमशश्च महामुनिः ।
उत्तङ्कश्चैव रैभ्यश्च पौलोमश्च द्वितस्त्रितः ॥ ८८ ॥
ऋषिर्वै कालवृक्षीयो मुनिर्मेधातिथिस्तथा ।
सारस्वतो यवक्रीतिः कुशिको गौतमस्तथा ॥ ८९ ॥
संवर्त ऋष्यशृङ्गश्च स्वस्त्यात्रेयो विभाण्डकः ।
ऋचीको जमदग्निश्च तथौर्वस्तपसां निधिः ॥ ९० ॥
भरद्वाजः स्थूलशिराः कश्यपः पुलहः क्रतुः ।
बृहदग्निर्हरिश्मश्रुर्विजयः कण्व एव च ॥ ९१ ॥
वैतण्डी दीर्घतापश्च वेदगाथोंऽशुमाञ्छिवः ।
अष्टावक्रो दधीचिश्च श्वेतकेतुस्तथैव च ॥ ९२ ॥
उद्दालकः क्षीरपाणिः शृङ्गी गौरमुखस्तथा ।
अग्निवेश्यः शमीकश्च प्रमुचुर्मुमुचुस्तथा ॥ ९३ ॥
एते चान्ये च ऋषयो बहवः शंसितव्रताः ।
मुनयः शंसितात्मानो ये चान्ये नानुकीर्तिताः ॥ ९४ ॥
क्रतवः श्लाघिनः शान्ताः शान्तिं कुर्वन्तु मे सदा ।

नारद, पर्वत, गन्धर्वों और अप्सराओंके समुदाय, पितर, कारण, कार्य, आधि-व्याधि, अगस्त्य, गालव, गार्ग्य, शक्ति, धौम्य, पराशर, कृष्णात्रेय, ऐश्वर्यशाली असित-देवल, बल, बृहस्पति, उतथ्य, मार्कण्डेय, श्रुतश्रवा, द्वैपायन, विदर्भ, जैमिनि, माठर, कठ, विश्वामित्र, वसिष्ठ, महामुनि लोमश, उत्तङ्क, रैभ्य, पौलोम, द्वित, त्रित, कालकवृक्षीय ऋषि, मुनि मेधातिथि, सारस्वत, यवक्रीति, कुशिक, गौतम, संवर्त, ऋष्यशृङ्ग, स्वस्त्यात्रेय, विभाण्डक, ऋचीक, जमदग्नि, तपोनिधि और्व, भरद्वाज, स्थूलशिरा, कश्यप, पुलह, क्रतु, बृहदग्नि, हरिश्मश्रु, विजय, कण्व, वैतण्डी, दीर्घताप, वेदगाथ, अंशुमान्, शिव, अष्टावक्र, दधीचि, श्वेतकेतु, उद्दालक, क्षीरपाणि, शृङ्गी, गौरमुख, अग्निवेश्य, शमीक, प्रमुचु तथा मुमुचु और दूसरे बहुत-से उत्तम व्रतका पालन करनेवाले ऋषि

एवं शुद्धात्मा मुनि तथा दूसरे यज्ञपरायण स्पृहणीय तथा शान्त महर्षि जिनका यहाँ कीर्तन नहीं किया गया है, सदा मेरे लिये शान्ति प्रदान करें ॥ ८५—९४½ ॥

त्रयोऽग्नयस्त्रयो वेदास्त्रैविद्याः कौस्तुभो मणिः ॥९५॥
उच्चैःश्रवा हयः श्रीमान् वैद्यो धन्वन्तरिर्हरिः ।
अमृतं गौः सुपर्णश्च दधि गौराश्च सर्षपाः ॥ ९६ ॥
शुक्लाः सुमनसः कन्याः श्वेतच्छत्रं यवाक्षताः ।
दूर्वा हिरण्यं गन्धाश्च वालव्यजनमेव च ॥ ९७ ॥
तथाप्रतिहतं चक्रं महोक्षश्चन्दनं विषम् ।
श्वेतो वृषः करी मत्तः सिंहो व्याघ्रो हयो गिरिः॥९८॥
पृथिवी चोद्धृता लाजा ब्राह्मणा मधु पायसम् ।
स्वस्तिको वर्द्धमानश्च नन्द्यावर्तः प्रियङ्गवः ॥ ९९ ॥
श्रीफलं गोमयं मत्स्यो दुन्दुभिः पटहस्वनः ।
ऋषिपत्न्यश्च कन्याश्च श्रीमद् भद्रासनं धनुः ।
रोचना रुचकश्चैव नदीनां संगमोदकम् ॥१००॥
सुपर्णाः शतपत्राश्च चकोरा जीवजीवकाः ।
नन्दीमुखो मयूरश्च बद्धमुक्तामणिध्वजाः ॥१०१॥
आयुधानि प्रशस्तानि कार्यसिद्धिकराणि च ।

तीन अग्नि, तीन वेद, तीनों विद्याओंके ज्ञाता, कौस्तुभ-मणि, उच्चैःश्रवा अश्व, श्रीमान् धन्वन्तरि वैद्य, हरि; अमृत, गौ, सुपर्ण (गरुड़), दही, श्वेत सरसों, सफेद फूल, कुमारी कन्या, श्वेत छत्र, जौ, अक्षत, दूर्वादल, सुवर्ण, गन्ध, बालव्यजन (चँवर), कहीं भी प्रतिहत न होनेवाला सुदर्शनचक्र, साँड, चन्दन, विष, श्वेत वृषभ, मदमत्त हाथी, सिंह, व्याघ्र, घोड़ा, पर्वत खोदकर निकाली हुई मिट्टी, लाजा, ब्राह्मण, मधु, खीर, स्वस्तिक, वर्धमान, नन्द्यावर्त, प्रियङ्गु, श्रीफल, गोमय, मत्स्य, दुन्दुभि और पटहकी ध्वनि, ऋषिपत्नियाँ, कन्याएँ, शोभाशाली भद्रासन, धनुष, गोरोचन, रुचक, नदियोंके सङ्गमका जल, सुपर्ण, शतपत्र, चकोर, जीवजीवक, नन्दीमुख, मयूर, जिनमें मोती और मणि बँधे हुए हों ऐसे ध्वज, कार्य-सिद्धि करनेवाले उत्तम आयुध—ये सब सदा ही मेरी रक्षा करें ॥ ९५—१०१½ ॥

पुण्यं वै विगतक्लेशं श्रीमद् वै मङ्गलान्वितम् ॥१०२॥
रामेणोदाहृतं पूर्वमायुःश्रीजयकाङ्क्षिणा ।

पूर्वकालमें आयु, लक्ष्मी तथा विजयकी अभिलाषा रखनेवाले बलरामजीने इस पवित्र क्लेशहारी और उनकी प्राप्ति करानेवाले मङ्गलयुक्त स्तोत्रका वर्णन किया था ॥ १०२½ ॥

य इदं श्रावयेद् विद्वांस्तथैव शृणुयान्नरः ॥१०३॥
मङ्गलाष्टशतं स्नातो जपन् पर्वणि पर्वणि ।
वधबन्धपरिक्लेशं व्याधिशोकपराभवम् ॥१०४॥
न च प्राप्नोति वैकल्यं परत्रेह च शर्मदम् ।

जो विद्वान् मनुष्य प्रत्येक पर्वमें स्नान करके जपपरायण हो, इस आठ सौ माङ्गलिक नामोंसे युक्त स्तोत्रका श्रवण करता अथवा कराता है, वह वध और बन्धनके क्लेश, व्याधि एवं शोकसे प्राप्त होनेवाले पराभव और व्याकुलताको नहीं पाता है । यह स्तोत्र इहलोक और परलोकमें भी कल्याण प्रदान करनेवाला है ॥ १०३-१०४½ ॥

धन्यं यशस्यमायुष्यं पवित्रं वेदसम्मितम् ॥१०५॥
श्रीमत्स्वर्ग्यं सदा पुण्यमपत्यजननं शिवम् ।
शुभं क्षेमकरं नृणां मेधाजननमुत्तमम् ।
सर्वरोगप्रशमनं स्वकीर्तिकुलवर्धनम् ॥१०६॥

इससे धन, यश और आयुकी प्राप्ति होती है । यह पवित्र तथा वेदके तुल्य आदरणीय है । यह श्रीसम्पन्न, स्वर्गदायक, सदा पुण्यकारक, कल्याणमय तथा संतानकी प्राप्ति करानेवाला है; इस शुभ, उत्तम एवं बुद्धिवर्धक स्तोत्रके सेवनसे मनुष्योंके क्षेमकी प्राप्ति होती है । इतना ही नहीं, यह समस्त रोगोंको शान्त करनेवाला तथा अपनी कीर्ति और कुलको बढ़ानेवाला है ॥ १०५-१०६ ॥

श्रद्दधानो दयोपेतो यः पठेदात्मवान्नरः ।
सर्वपापविशुद्धात्मा लभते च शुभां गतिम् ॥१०७॥

जो श्रद्धालु, दयालु और आत्मसंयमी मनुष्य इसका पाठ करता है, वह सब पापोंसे शुद्धचित्त हो शुभ गतिका भागी होता है ॥ १०७ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि बलदेवाह्निकं नाम नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें बलदेवाह्निक नामक एक सौ नावाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०९ ॥

दशाधिकशततमोऽध्यायः

साम्बकी उत्पत्ति और अस्त्रशिक्षा तथा द्वारकामें पधारे हुए राजाओंके बीच नारदजीके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी परम धन्यताका प्रतिपादन

वैशम्पायन उवाच

हतो यदैव प्रद्युम्नः शम्बरेणात्मघातिना ।
मासेऽस्मिन्नेव साम्बस्तु जाम्बवत्यामजायत ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! आत्मघाती शम्बरासुरने जब प्रद्युम्नका अपहरण किया था, उसी महीनेमें जाम्बवतीके गर्भसे साम्बका जन्म हुआ ॥ १ ॥

बाल्यात्प्रभृति रामेण शस्त्रेषु विनियोजितः।
रामादनन्तरश्चैव मानितः सर्ववृष्णिभिः ॥ २ ॥

बलरामजीने साम्बको बचपनसे ही अस्त्र-शस्त्रोंके अभ्यासमें लगा रखा था। बलरामजीके बाद साम्ब ही उनके-जैसे अस्त्र-शस्त्रोंके ज्ञाता थे, इसलिये समस्त वृष्णिवंशी वीर उनका बड़ा सम्मान करते थे ॥ २ ॥

जातमात्रे ततः कृष्णः शुभां तामवसत् पुरीम्।
निहतामित्रसामन्तः शक्रोद्यानं यथामरः ॥ ३ ॥

साम्बके जन्म लेनेके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण अपने शत्रुभूत सामन्तोंका संहार करके शुभस्वरूपा द्वारकापुरीमें रहने लगे; जैसे कोई देवता इन्द्रके उद्यान नन्दनवनमें निवास करता हो ॥ ३ ॥

यादवीं च श्रियं दृष्ट्वा स्वां श्रियं द्वेष्टि वासवः।
जनार्दनभयाच्चैव न शान्तिं लेभिरे नृपाः ॥ ४ ॥

यदुवंशियोंकी सम्पत्ति देखकर देवराज इन्द्र अपनी राज्यलक्ष्मीसे द्वेष करने लगे थे। भगवान् श्रीकृष्णके भयसे राजाओंको कभी शान्ति नहीं मिलती थी ॥ ४ ॥

कस्यचित् त्वथ कालस्य पुरे वारणसाह्वये।
दुर्योधनस्य यज्ञे वै समीयुः सर्वपार्थिवाः ॥ ५ ॥

किसी समय हस्तिनापुरमें दुर्योधनके यज्ञमें भूमण्डलके समस्त राजा एकत्र हुए ॥ ५ ॥

तां श्रुत्वा माधवीं लक्ष्मीं सपुत्रं च जनार्दनम्।
पुरीं द्वारावतीं चैव निविष्टां सागरान्तरे ॥ ६ ॥
दूतैस्तैः कृतसंधानाः पृथिव्यां सर्वपार्थिवाः।
श्रियं द्रष्टुं हृषीकेशमाजग्मुः कृष्णमन्दिरम् ॥ ७ ॥

वहाँ यदुवंशियोंकी राज्यलक्ष्मी, पुत्रसहित भगवान् श्रीकृष्ण तथा समुद्रके भीतर बसी हुई द्वारकापुरीकी विशेष चर्चा सुनकर अपने दूतोंद्वारा भगवान् श्रीकृष्णके साथ संधि स्थापित करके, पृथ्वीके समस्त भूपाल यादवोंकी राजलक्ष्मीका दर्शन करनेके लिये द्वारकामें भगवान् हृषीकेशके पास उनके निवास-मन्दिरमें आये ॥ ६-७ ॥

दुर्योधनमुखाः सर्वे धृतराष्ट्रवशानुगाः।
पाण्डवप्रमुखाश्चैव धृष्टद्युम्नादयो नृपाः ॥ ८ ॥
पाण्ड्यश्चोलकलिङ्गेशा बाह्लीका द्राविडाः खशाः।
अक्षौहिणीः प्रकर्षन्तो दश चाष्टौ च भूमिपाः ॥ ९ ॥
आजग्मुर्यादवपुरीं गोविन्दभुजपालिताम्।

धृतराष्ट्रकी आज्ञाके अधीन रहनेवाले दुर्योधन आदि सब भाई, पाण्डवोंको अगुआ बनाकर चलनेवाले धृष्टद्युम्न आदि नरेश, पाण्ड्य, चोल और कलिङ्ग देशके भूपाल, बाह्लीक, द्राविड और खश देशोंके राजा अठारह अक्षौहिणी सेनाएँ साथ लिये श्रीकृष्णकी भुजाओंसे सुरक्षित यादव-पुरीमें आये ॥ ८-९½ ॥

ते पर्वतं रैवतकं परिवार्यावनीश्वराः ॥ १० ॥
विविशुर्योजनाख्यासु स्वासु स्वासु च भूमिषु।

वे भूमिपाल रैवतक पर्वतको चारों ओरसे घेरकर अपने-अपने लिये निश्चित की हुई एक-एक योजनकी भूमिमें डेरा डालकर बस गये ॥ १०½ ॥

ततः श्रीमान् हृषीकेशः सह यादवपुङ्गवैः ॥ ११ ॥
समीपं मानवेन्द्राणां निर्ययौ कमलेक्षणः।

तदनन्तर कमलनयन श्रीमान् हृषीकेश यादव-शिरोमणियों-के साथ पुरीसे निकलकर उन नरेन्द्रोंके समीप गये ॥ ११½ ॥

स तेषां नरदेवानां मध्यस्थो मधुसूदनः ॥ १२ ॥
व्यराजत यदुश्रेष्ठः शरदीव दिवाकरः।

उन नरदेवोंके बीचमें बैठे हुए यदुश्रेष्ठ मधुसूदन शरत्कालके सूर्यकी भाँति शोभा पाने लगे ॥ १२½ ॥

स तत्र समुदाचारं यथास्थानं यथावयः ॥ १३ ॥
कृत्वा सिंहासने कृष्णः काञ्चने निषसाद ह।

वहाँ स्थान और अवस्थाके अनुसार शिष्टाचारका निर्वाह करके भगवान् श्रीकृष्ण सोनेके सिंहासनपर विराजमान हुए ॥

राजानोऽपि यथास्थानं निषेदुर्विविधेष्वथ ॥ १४ ॥
सिंहासनेषु चित्रेषु पीठेषु च नराधिपाः।

फिर वे नरेश भी नाना प्रकारके सिंहासनों और विचित्र पीठोंपर यथास्थान बैठे ॥ १४½ ॥

स यादवनरेन्द्राणां समाजः शुशुभे तदा ॥ १५ ॥
सुराणामसुराणां च सदसि ब्रह्मणो यथा।

वहाँ उस समय यादव नरेशोंका समाज ब्रह्माजीकी सभामें एकत्र हुए देवताओं और असुरोंके समाजकी भाँति शोभा पाने लगा ॥ १५½ ॥

तेषां चित्राः कथास्तत्र प्रवृत्तास्तत्समागमे।
यदूनां पार्थिवानां च केशवस्योपशृण्वतः ॥ १६ ॥

उस राजसमाजमें वहाँ भगवान् श्रीकृष्णके सुनते हुए उन यादवों और भूपालोंमें विचित्र बातें होने लगीं ॥ १६ ॥

एतस्मिन्नन्तरे वायुर्ववौ मेघरवोपमः।
तुमुलं दुर्दिनं चासीत् सविद्युत्स्तनयित्नुमत् ॥ १७ ॥

इसी बीचमें मेघोंकी गर्जनाके समान सनसनाहट पैदा करती हुई प्रचण्ड वायु चलने लगी। घोर दुर्दिन छा गया। बिजली चमकने और गड़गड़ाहट पैदा करने लगी ॥ १७ ॥

तद् दुर्दिनतलं भित्त्वा नारदः प्रत्यदृश्यत।
संवेष्टितजटाभारो वीणासक्तेन बाहुना ॥ १८ ॥

उस दुर्दिनतल अर्थात् मेघोंके आवरणको भेदकर नारदजी दिखायी दिये, उन्होंने अपने सिरपर बढ़े हुए जटा-भारको लपेट रखा था, उनकी एक भुजामें वीणा थी ॥ १८ ॥

स पपात नरेन्द्राणां मध्ये सागरसंनिभः।
नारदोऽग्निशिखाकारः श्रीमाञ्छक्रसखो मुनिः॥ १९॥

वे समुद्रके समान गम्भीर और अग्नि-शिखाके समान तेजस्वी नारद मुनि जो देवराज इन्द्रके मित्र हैं, उन नरेशोंके बीचमें उतरे॥ १९॥

तस्मिन् निपतिते भूमौ नारदे मुनिपुङ्गवे।
तदद्भुतं महामेघं व्यपाकृष्यत दुर्दिनम्॥ २०॥

मुनिवर नारदजीके भूमिपर उतर आनेपर महान् मेघोंकी घटासे छाया हुआ वह अद्भुत दुर्दिन तत्काल दूर हो गया॥

सोऽवगाह्य नरेन्द्राणां मध्ये सागरसंनिभः।
आसनस्थं यदुश्रेष्ठमुवाच मुनिरव्ययम्॥ २१॥

सागरसदृश गम्भीर स्वभाववाले नारद मुनिने उन नरेशोंके मध्यभागमें प्रवेश करके सिंहासनपर बैठे हुए अविनाशी यदुश्रेष्ठ श्रीकृष्णसे इस प्रकार कहा—॥ २१॥

आश्चर्यं खलु देवानामेकस्त्वं पुरुषोत्तमः।
धन्यश्चासि महाबाहो लोके नान्योऽस्ति कश्चन॥ २२॥

'महाबाहो! बड़े आश्चर्यकी बात है, अवश्य ही देवताओंमें एकमात्र आप ही पुरुषोत्तम हैं और आप ही धन्य हैं, संसारमें दूसरा कोई ऐसा नहीं है'॥ २२॥

एवमुक्तः स्मितं कृत्वा प्रत्युवाच मुनिं प्रभुः।
आश्चर्यश्चैव धन्यश्च दक्षिणाभिः सहेत्यहम्॥ २३॥

उनके ऐसा कहनेपर भगवान् श्रीकृष्ण मुसकराकर नारद मुनिसे बोले—'मैं दक्षिणाओंके साथ आश्चर्य एवं धन्य हूँ'॥

एवमुक्तो मुनिश्रेष्ठः प्राह मध्ये महीभृताम्।
कृष्ण पर्याप्तवाक्योऽस्मि गमिष्यामि यथागतम्॥ २४॥

भगवान्‌के ऐसा कहनेपर मुनिश्रेष्ठ नारद उन राजाओंके बीचमें इस प्रकार बोले—'श्रीकृष्ण! मुझे अपनी बातका पूरा उत्तर मिल गया, अब मैं जैसे आया था वैसे ही लौट जाऊँगा'॥ २४॥

तं प्रस्थितमभिप्रेक्ष्य पार्थिवाः प्राहुरीश्वरम्।
गुह्यं मन्त्रमजानन्तो वचनं नारदेरितम्॥ २५॥

उन्हें जाते देख उन नारदजीके कहे हुए गूढ़ मन्त्ररूपी वाक्यका तात्पर्य न जाननेवाले भूपालोंने भगवान्‌से कहा—॥

आश्चर्यमित्यभिहितं धन्योऽसीति च माधव।
दक्षिणाभिः सहेत्येवं प्रत्युक्तेऽपि च नारदे॥ २६॥
किमेतन्नाभिजानीमो दिव्यं मन्त्रपदं महत्।
यदि श्राव्यमिदं कृष्ण श्रोतुमिच्छाम तत्त्वतः॥ २७॥

'माधव! नारदजीने आपके विषयमें आश्चर्य और धन्य कहा है और आपने 'दक्षिणाओंके साथ' ऐसा कहकर नारदजीको उनकी बातका उत्तर दे दिया है; यह सब हो जानेपर भी हम यह नहीं समझ सके कि 'यह क्या है?' इस दिव्य एवं महान् मन्त्रपदका तात्पर्य क्या है? श्रीकृष्ण! यदि यह सुनानेयोग्य हो तो हमलोग यथार्थरूपसे इसका रहस्य सुनना चाहते हैं'॥ २६-२७॥

तानुवाच ततः कृष्णः सर्वान् पार्थिवपुङ्गवान्।
श्रोतव्यं नारदस्त्वेष द्विजो वः कथयिष्यति॥ २८॥

तब भगवान् श्रीकृष्णने उन समस्त भूपाल-शिरोमणियोंसे कहा—'राजाओ! यदि तुम्हें इसका तात्पर्य सुनना है तो विप्रवर नारदजी ही आपके समक्ष पूर्वोक्त वचनोंकी व्याख्या करेंगे'॥ २८॥

ब्रूहि नारद तत्त्वार्थं श्रोतुकामा महीभुजः।
यत् त्वयाभिहितं वाक्यं मया नु प्रतिभाषितम्॥ २९॥

ऐसा कहकर वे नारदजीसे बोले—'नारदजी! तुमने जो बात कही और मैंने जो उसका उत्तर दिया, उसका यथार्थ रहस्य ये राजालोग सुनना चाहते हैं; अतः आप इन्हें बताइये'॥

स पीठे काञ्चने शुभ्रे सूपविष्टः स्वलंकृतः।
प्रभावं तस्य वन्द्यस्य प्रवक्तुमुपचक्रमे॥ ३०॥

तब वे सुन्दर सुवर्णमय पीठपर जमकर बैठ गये। वे सुन्दर अलंकारोंसे अलंकृत भी थे, उन्होंने उन वन्दनीय प्रभुके प्रभावका वर्णन इस प्रकार आरम्भ किया॥ ३०॥

नारद उवाच

श्रूयतां भो नृपश्रेष्ठा यावन्तः स्थ समागताः।
अस्य कृष्णस्य महतो यथा पारमहं गतः॥ ३१॥

नारदजी बोले—नृपवरो! आपलोग जितनी संख्यामें यहाँ पधारे हैं, वे सुनें; मैं इन परम महान् श्रीकृष्णकी महिमाके पार कैसे पहुँचा, यह बता रहा हूँ॥ ३१॥

अहं कदाचिद् गङ्गायास्तीरे त्रिषवणातिथिः।
चराम्येकः क्षपापाये दृश्यमाने दिवाकरे॥ ३२॥
अपश्यं गिरिकूटाभं कपालद्वयदेहिनम्।
क्रोशमण्डलविस्तारं तावद् द्विगुणमायतम्॥ ३३॥
चतुश्चरणसुश्लिष्टं क्लिन्नं चैव सपङ्किलम्।
मम वीणाकृतिं कूर्मं गजचर्मचयोपमम्॥ ३४॥

किसी समय मैं गङ्गाजीके तटपर तीनों समय स्नान करनेवाले अतिथिके रूपमें अकेला ही विचरता था। एक दिन जब रात बीत चुकी थी और सूर्यदेव दिखायी देने लगे थे, मैंने एक कछुआ देखा, जो पर्वतके शिखरके समान प्रतीत होता था। उसका शरीर दो कपालोंके संयोगसे बना था। उसका मण्डलाकार विस्तार एक कोसका था, लंबाई इससे दूनी थी। उसके चार पैर थे। वह पानीसे भीगा और कीचड़में सना हुआ था। उसकी आकृति मेरी वीणाके समान थी। उसे देखकर ऐसा जान पड़ता था, मानो हाथीके चमड़ेका ढेर लगा हो॥ ३२–३४॥

सोऽहं तं पाणिना स्पृष्ट्वा प्रोक्तवाञ्जलचारिणम्।
त्वमाश्चर्यशरीरोऽसि कूर्म धन्योऽसि मे मतः ॥ ३५ ॥

मैंने उस जलचर जन्तुको हाथसे छूकर उससे कहा—'कूर्म ! तुम्हारा शरीर आश्चर्यजनक है । मेरे मतमें तुम धन्य हो ॥ ३५ ॥

यस्त्वमेवमभेद्याभ्यां कपालाभ्यां समावृतः।
तोये चरसि निःशङ्कः कंचिदन्यमचिन्तयन् ॥ ३६ ॥

'क्योंकि तुम दो अभेद्य कपालोंसे आवृत रहकर दूसरे किसीकी परवा न रखते हुए पानीमें निःशङ्क विचरते हो'॥३६॥

स मामुवाचाम्बुचरः कूर्मो मानुषवत्स्वयम्।
किमाश्चर्यं मयि मुने धन्यश्चाहं कथं विभो ॥ ३७ ॥

तब उस जलचर कछुएने स्वयं ही मनुष्यकी-सी बोलीमें मुझसे कहा—'मुने ! मुझमें क्या आश्चर्य है ? प्रभो ! मैं कैसे धन्य हूँ ? ॥ ३७ ॥

गङ्गेयं निम्नगा धन्या किमाश्चर्यमतः परम्।
यत्राहमिव सत्त्वानि चरन्त्ययुतशो द्विज ॥ ३८ ॥

ब्रह्मन् ! धन्य तो ये गङ्गा नदी हैं। इनसे बढ़कर आश्चर्यकी वस्तु और क्या है ? जिनके भीतर मुझ-जैसे हजारों जलजन्तु विचरते हैं' ॥ ३८ ॥

सोऽहं कुतूहलाविष्टो नदीं गङ्गामुपस्थितः।
धन्यासि त्वं सरिच्छ्रेष्ठे नित्यमाश्चर्यभूषिता ॥ ३९ ॥
या त्वमेवं महादेहैः श्वापदैरुपशोभिता।
ह्रदिनी सागरं यासि रक्षन्ती तापसालयान् ॥ ४० ॥

तब मैं कौतूहलवश गङ्गा नदीके निकट गया और बोला—'सरिताओंमें श्रेष्ठ गङ्गे ! तुम धन्य हो और सदा आश्चर्यसे विभूषित रहती हो, क्योंकि ऐसे-ऐसे विशालकाय हिंसक जन्तु तुम्हारी शोभा बढ़ाते हैं; तुम अनेकानेक कुण्डोंसे युक्त हो और कितने ही तापसोंके आश्रमोंकी रक्षा करती हुई समुद्रतक जाती हो' ॥ ३९-४० ॥

एवमुक्ता ततो गङ्गा रूपिणी प्रत्यभाषत।
नारदं देवगन्धर्वं शक्रस्य दयितं द्विजम् ॥ ४१ ॥

मेरे इस तरह कहनेपर गङ्गाजी अपने दिव्यरूपसे प्रकट होकर मुझ देवगन्धर्वजातीय तथा इन्द्रके प्रिय मित्र नारद नामक ब्राह्मणसे यों बोलीं—॥ ४१ ॥

मा मैवं देवगन्धर्व संग्रामकलहप्रिय।
नाहं धन्या द्विजश्रेष्ठ नैवाश्चर्योपशोभिता ॥ ४२ ॥

'देवगन्धर्व ! ऐसा न कहो, न कहो। युद्ध और कलहके प्रेमी द्विजश्रेष्ठ ! मैं न तो धन्य हूँ और न आश्चर्यजनक जन्तुओंसे सुशोभित ही ॥ ४२ ॥

तव सत्ये निविष्टस्य वाक्यं मां प्रतिबाधते।
सर्वाश्चर्यकरो लोके धन्यश्चैवार्णवो द्विज ॥ ४३ ॥
यत्राहमिव विस्तीर्णाः शतशो यान्ति निम्नगाः।

'आप सत्यपरायण महर्षिका यह वचन मेरे प्रति बाधित हो रहा है । ब्रह्मन् ! संसारमें पूर्णतः आश्चर्यकारक और धन्य तो एकमात्र समुद्र ही है, जिसमें मुझ-जैसी सैकड़ों विस्तृत नदियाँ जाकर मिलती हैं' ॥ ४३½ ॥

सोऽहं त्रिपथगावाक्यं श्रुत्वार्णवमुपस्थितः ॥ ४४ ॥
आश्चर्यं खलु लोकानां धन्यश्चासि महार्णव।
येन खल्वसि योनिस्त्वमम्भसां सलिलेश्वरः ॥ ४५ ॥

गङ्गाजीका उक्त वचन सुनकर मैं महासागरके तटपर गया और बोला—'महार्णव ! तुम समस्त लोकोंमें आश्चर्यमय और धन्य हो, क्योंकि तुम जलकी योनि और स्वामी हो।४४-४५।

स्थाने त्वां वारिवाहिन्यः सरितो लोकपावनाः।
इमाः समभिगच्छन्ति पत्न्यो लोकनमस्कृताः ॥ ४६ ॥

'जल बहानेवाली जो ये लोकपावन और विश्ववन्दित नदियाँ पत्नीभावसे तुम्हारे समीप जाती हैं, यह सब उचित ही है' ॥ ४६ ॥

समुद्रस्त्वेवमुक्तस्तु ततो मामवदद् वचः।
स्वं जलौघतलं भित्त्वा व्युत्थितः पवनेरितः ॥ ४७ ॥

मेरे ऐसा कहनेपर पवनप्रेरित समुद्र अपनी अगाध जलराशिका भेदन करके उठ खड़ा हुआ और मुझसे इस प्रकार बोला—॥ ४७ ॥

मा मैवं देवगन्धर्व नास्म्याश्चर्यो द्विजर्षभ।
वसुधेयं मुने धन्या यत्राहमुपरि स्थितः ॥ ४८ ॥
ऋते तु पृथिवीं लोके किमाश्चर्यमतः परम्।

'देवगन्धर्व ! आप ऐसा न कहें ! न कहें !! द्विजश्रेष्ठ ! मैं ऐसा आश्चर्यरूप नहीं हूँ। मुने ! धन्य तो यह वसुधा है, जिसके ऊपर मैं स्थित हूँ। संसारमें पृथ्वीके सिवा उससे बढ़कर आश्चर्यकी वस्तु दूसरी कौन है ?' ॥ ४८½ ॥

सोऽहं सागरवाक्येन क्षितिं क्षितितले स्थितः ॥ ४९ ॥
कौतूहलसमाविष्टो ह्यब्रुवं जगतो गतिम्।

समुद्रके कहनेसे मैं पृथ्वीपर खड़ा हुआ और कौतूहल-युक्त होकर जगत्‌की आधारस्वरूपा पृथ्वीसे बोला—॥४९½॥

धरित्रि देहिनां योने धन्या खल्वसि शोभने ॥ ५० ॥
आश्चर्यं चापि भूतेषु महत्या क्षमया युते।

'धरित्रि ! तू समस्त देहधारियोंकी योनि है, अतः शोभने ! तू निश्चय ही धन्य है। महती क्षमासे संयुक्त होनेके कारण तू सम्पूर्ण भूतोंमें आश्चर्यरूप है ॥ ५०½ ॥

तेन खल्वसि भूतानां धरणी मनुजारणिः ॥ ५१ ॥
क्षमा त्वत्तः प्रभूता च कर्म चाम्बरगामिनाम्।

'अतः निश्चय ही तू समस्त प्राणियोंको धारण करनेवाली और मनुष्योंका उत्पत्ति-स्थान है । तुझसे ही क्षमाभाव प्रकट हुआ है । आकाशचारियोंका कर्म भी तुझसे ही सिद्ध होता है' ॥ ५१½ ॥

ततो भूः स्तुतिवाक्येन सा मयोक्तेन तेजिता ॥ ५२ ॥
विहाय सहजं धैर्यं प्रत्यक्षा मामभाषत ।

मेरे द्वारा कहे गये प्रशंसासूचक वचनसे पृथ्वी उत्तेजित-सी हो उठी। उसने अपनी सहज धीरता छोड़ दी और प्रत्यक्ष होकर मुझसे कहा—॥ ५२½ ॥

देवगन्धर्व मा मैवं संग्रामकलहप्रिय ॥ ५३ ॥
नास्मि धन्या न चाश्चर्यं पारक्येयं धृतिर्मम ।

'युद्ध और कलहसे प्रेम रखनेवाले देवगन्धर्व ! ऐसी बात न कहो ! न कहो !! न तो मैं धन्य हूँ और न आश्चर्यरूप ही हूँ । मुझमें जो धीरता दिखायी देती है, यह मेरी नहीं दूसरोंकी है ॥ ५३½ ॥

एते धन्या द्विजश्रेष्ठ पर्वता धारयन्ति माम् ॥ ५४ ॥
आश्चर्याणि च दृश्यन्ते एते लोकस्य हेतवः ।

'द्विजश्रेष्ठ ! ये पर्वत धन्य हैं, जो मुझे धारण करते हैं। ये ही आश्चर्यरूप देखे जाते हैं तथा ये ही इस जगत्की स्थिति के हेतु हैं' ॥ ५४½ ॥

सोऽहं धरणिवाक्येन पर्वतान् समुपस्थितः ॥ ५५ ॥
धन्या भवन्तो दृश्यन्ते बह्वाश्चर्याश्च भूधराः ।

पृथ्वीके इस कथनसे प्रभावित होकर मैं पर्वतोंके यहाँ उपस्थित हुआ और बोला--'भूधरो ! तुम धन्य हो । तुममें बहुत-सी आश्चर्यकी बातें दिखायी देती हैं ॥ ५५½ ॥

काञ्चनस्याग्ररत्नस्य धातूनां च विशेषतः ॥ ५६ ॥
तेन खल्वाकराः सर्वे भवन्तो भुवि शाश्वताः ।

'सुवर्ण, श्रेष्ठ रत्न और विशेषतः धातुओंके उत्पत्तिस्थान होनेके कारण तुम सब लोग आकर कहलाते हो । इस भूतल-पर तुम सब ही सदा बने रहते हो' ॥ ५६½ ॥

ते ममैतद् वचः श्रुत्वा पर्वतास्तस्थुषां वराः ॥ ५७ ॥
ऊचुर्मां सान्त्वयुक्तानि वचांसि वनशोभिताः ।

मेरी यह बात सुनकर स्थावर पदार्थोंमें श्रेष्ठ पर्वत, जो वनोंसे सुशोभित होते हैं, मुझसे सान्त्वनायुक्त वचन बोले-।५७½।

ब्रह्मर्षे न वयं धन्या नाप्याश्चर्याणि सन्ति नः ।
ब्रह्मा प्रजापतिर्धन्यः सर्वाश्चर्यः सुरेष्वपि ॥ ५८ ॥

'ब्रह्मर्षे ! न तो हम धन्य हैं और न हमारे पास आश्चर्यजनक वस्तुएँ ही हैं । प्रजापति ब्रह्माजी धन्य हैं, देवताओंमें भी वे ही सम्पूर्ण आश्चर्योंसे युक्त हैं' ॥ ५८ ॥

सोऽहं प्रजापतिं गत्वा सर्वप्रभवमव्ययम् ।
तस्य वाक्यस्य पर्यायपर्याप्तमिव लक्षये ॥ ५९ ॥

तब मैंने सबके उत्पत्तिस्थान अविनाशी प्रजापतिके पास जाकर उनमें पर्वतोंके कहे हुए वचनोंकी पर्याप्त सार्थकता देखी ॥ ५९ ॥

सोऽहं पितामहं देवं लोकयोनिं चतुर्मुखम् ।
स्तोतुं पश्चादुपगतः प्रणतोऽवनताननः ॥ ६० ॥

इसके बाद मैंने सम्पूर्ण लोकोंकी उत्पत्तिके स्थानभू चार मुखवाले पितामह देवको नतमस्तक होकर प्रणा किया और फिर स्तवन करनेके लिये मैं उनके पास ख हुआ ॥ ६० ॥

सोऽहं वाक्यसमाप्त्यर्थं श्रावये पद्मयोनिजम् ।
आश्चर्यं भगवानेको धन्योऽसि जगतो गुरुः ॥ ६१ ॥

स्तुतिके बाद अपनी बात समाप्त करनेके लिये मैं पद्मयोनि ब्रह्माजीको सुनाते हुए कहा--'भगवन् ! एकमा आप ही आश्चर्यमय हैं, आप ही सम्पूर्ण जगत्के गुरु ए धन्य हैं ॥ ६१ ॥

न किंचिदन्यत् पश्यामि भूतं यद् भवता समम् ।
त्वत्तः सर्वमिदं जातं जगत् स्थावरजङ्गमम् ॥ ६२ ॥

'मैं दूसरे किसी भूतको ऐसा नहीं देखता, जो आपके समान हो । यह सम्पूर्ण चराचर जगत् आपसे ही उत्पन हुआ है ॥ ६२ ॥

सदेवदानवा मर्त्या लोके भूतेन्द्रियात्मकाः ।
भवन्ति सर्वदेवेश दृष्ट्वा सर्वमिदं जगत् ॥ ६३ ॥

'सर्वदेवेश्वर ! संसारमें भूत और इन्द्रियमय जो देवता दानव और मनुष्य आदि प्राणी देखे जाते हैं, वे सब आप ही उत्पन्न होते हैं, इस सम्पूर्ण जगत्को देखकर यही निश्च होता है ॥ ६३ ॥

तेन खल्वसि देवानां देवदेवः सनातनः ।
तेषामेवासि यत्स्रष्टा लोकानामादिसम्भवः ॥ ६४ ॥

'इसलिये आप अवश्य ही देवताओंके सनातन देवाधि देव हैं; क्योंकि आप ही उनके स्रष्टा हैं और आप ही समस्त लोकोंके आदिकारण हैं' ॥ ६४ ॥

ततो मां प्राह भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः ।
धन्याश्चर्याश्रितैर्वाक्यैः किं मां नारद भाषसे ॥ ६५ ॥

तब लोकपितामह भगवान् ब्रह्माने मुझसे कहा—'नारद ! धन्य और आश्चर्यके विवेचनसे सम्बन्ध रखनेवाले वचनोंद्वारा मेरे विषयमें क्या कहते हो ? ॥ ६५ ॥

आश्चर्यं परमं वेदा धन्या वेदाश्च नारद ।
ये लोकान् धारयन्ति स्म वेदास्तत्त्वार्थदर्शिनः ॥ ६६ ॥

'नारद ! सबसे महान् आश्चर्य तो वेद हैं, वे ही धन्य भी हैं; क्योंकि वे तत्त्वार्थदर्शी वेद सम्पूर्ण लोकोंको धारण करते हैं ॥ ६६ ॥

ऋक्सामयजुषां सत्यमथर्वणि च यन्मतम् ।
तन्मयं विद्धि मां विप्र धृतोऽहं तैर्मया च ते ॥ ६७ ॥

'विप्रवर ! ऋक्, साम और यजुर्वेदका जो सत्य है तथा अथर्ववेदमें जो सत्य माना गया है, उसीको मेरा स्वरूप समझो। वेदोंने मुझे धारण कर रखा है और मैंने वेदोंको' ॥

पारमेष्ठ्येन वाक्येन नोदितोऽहं स्वयम्भुवा।
वेदोपस्थानिकां चक्रे मतिं संस्थानविस्तरात् ॥ ६८ ॥

तब स्वयम्भू ब्रह्माजीके कहे हुए उनके स्वरूपके अनुरूप वचनसे प्रेरित हो मैंने लक्षणविस्तारके अनुसार वेदोंके उपस्थानका विचार किया ॥ ६८ ॥

सोऽहं स्वयम्भूवचनाद् वेदान् वै समुपस्थितः।
अवोचं तांश्च चतुरो मन्त्रप्रवचनान्वितान् ॥ ६९ ॥

स्वयम्भू ब्रह्माजीके वचनसे मैंने मन्त्र और व्याख्यासे युक्त पूर्वोक्त चारों वेदोंकी सेवामें उपस्थित हो उनसे कहा—॥

धन्या भवन्तः पुण्याश्च नित्यमाश्चर्यभूषिताः।
आधाराश्चैव विप्राणामेवमाह प्रजापतिः ॥ ७० ॥

'आपलोग धन्य हैं, पवित्र हैं और सदा आश्चर्यसे विभूषित रहते हैं। ब्राह्मणोंके आधार भी आप ही हैं, ऐसा प्रजापतिका कथन है ॥ ७० ॥

स्वयम्भुवोऽपीह परं भवत्सु प्रश्नमागतम्।
युष्मत्परतरं नास्ति श्रुत्या वा तपसापि वा ॥ ७१ ॥

'आपलोगोंके विषयमें स्वयम्भू ब्रह्माजीका भी यही निर्णय है कि आपलोग सबसे श्रेष्ठ हैं। श्रुति अथवा तपस्याके द्वारा भी आपलोगोंसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है' ॥ ७१ ॥

प्रत्यूचुस्ते ततो वाक्यं वेदा मामभितः स्थिताः।
आश्चर्याश्चैव धन्याश्च यज्ञाश्चात्मपरायणाः ॥ ७२ ॥

तब चारों वेदोंने मेरे सब ओर खड़े होकर इस प्रकार उत्तर दिया—'नारद ! परमात्माके उद्देश्यसे किये जानेवाले यज्ञ ही आश्चर्य और धन्य हैं ॥ ७२ ॥

यज्ञार्थे च वयं सृष्टा धात्रा येन स नारद।
तदस्माकं परो यज्ञो न वयं स्ववशे स्थिताः ॥ ७३ ॥
स्वयम्भुवः परा वेदा वेदानां क्रतवः पराः।

'नारद ! परमात्माने यज्ञके लिये ही हमें प्रकट किया है, अतः यज्ञ ही हमसे उत्कृष्ट है। हम अपने वशमें नहीं हैं, स्वयम्भू ब्रह्मासे उत्कृष्ट वेद हैं और वेदोंसे उत्कृष्ट यज्ञ हैं ॥'

ततोऽहमब्रवं यज्ञान् बृहद्वाग्भिः पुरस्कृतान् ॥ ७४ ॥
भो यज्ञाः परमं तेजो युष्मासु खलु लक्ष्यते।

तब मैंने वेदोंकी वाणीसे पुरस्कृत हुए यज्ञोंसे कहा—'यज्ञो ! तुमलोगोंमें सबसे उत्कृष्ट तेज दिखायी देता है ॥ ७४½ ॥

ब्रह्मणाभिहितं वाक्यं यच्च वेदैरुदीरितम् ॥ ७५ ॥
आश्चर्यमन्यल्लोकेऽस्मिन् भवद्भ्यो नाभिगम्यते।

'ब्रह्माजीने जो बात कही है और वेदोंने जिस प्रकार प्रतिपादन किया है, उसके अनुसार इस जगत्‌में आपलोगोंके सिवा दूसरी कोई आश्चर्यकी वस्तु नहीं ज्ञात होती है ॥ ७५½ ॥

धन्याः खलु भवन्तो ये द्विजातीनां स्ववंशजाः ॥ ७६ ॥
तेऽपि खल्वग्नयस्तृप्तिं युष्माभिर्यान्ति तर्पिताः।
भागैश्च त्रिदशाः सर्वे मन्त्रैश्चैव महर्षयः ॥ ७७ ॥

'आपलोग धन्य हैं, जो द्विजातियोंके वंशज हैं। आपलोगोंसे तर्पित होनेपर त्रिविध अग्नियोंको तृप्ति प्राप्त होती है। यज्ञोंमें ही सब देवता अपने भागोंसे और महर्षिगण मन्त्रोंसे तृप्त होते हैं' ॥ ७६-७७ ॥

अग्निष्टोमादयो यज्ञा मम वाक्यादनन्तरम्।
प्रत्यूचुर्मां ततो वाक्यं सर्वे यूपध्वजाः स्थिताः ॥ ७८ ॥

मेरे ऐसा कहनेके बाद यूपरूपी ध्वजसे सुशोभित समस्त अग्निष्टोम आदि यज्ञ खड़े होकर मुझसे बोले—॥ ७८ ॥

आश्चर्यशब्दो नास्मासु धन्यशब्दोऽपि वा मुने।
आश्चर्यं परमं विष्णुः स ह्यस्माकं परा गतिः ॥ ७९ ॥

'मुने ! यह आश्चर्य अथवा धन्य शब्द हमलोगोंके लिये उपयुक्त नहीं है। भगवान् विष्णु ही परम आश्चर्यरूप हैं; क्योंकि वे ही हमारी परम गति हैं ॥ ७९ ॥

यदाज्यं वयमश्नीमो हुतमग्निषु पावनम्।
तत् सर्वं पुण्डरीकाक्षो लोकमूर्तिः प्रयच्छति ॥ ८० ॥

'अग्निमें होमे गये जिस पावन आज्य-भागका हमलोग आस्वादन करते हैं, वह सब विश्वरूप कमलनयन भगवान् विष्णु हमें प्रदान करते हैं' ॥ ८० ॥

सोऽहं विष्णोर्गतिं प्रेप्सुरिह सम्पतितो भुवि।
दृष्टश्चायं मया कृष्णो भवद्भिरिह संवृतः ॥ ८१ ॥

वेदोंके इस कथनके अनुसार मैं भगवान् विष्णुकी गति प्राप्त करनेके लिये यहाँ इस पृथ्वीपर आया हूँ। यहाँ आप राजाओंसे घिरे हुए भगवान् श्रीकृष्णका मैंने दर्शन किया है ॥

यन्मयाभिहितो ह्येष त्वमाश्चर्यं जनार्दन।
धन्यश्चासीति भवतां मध्यस्थो ह्यत्र पार्थिवाः ॥ ८२ ॥

राजाओ ! मैंने जो श्रीकृष्णके विषयमें यह कहा है कि 'जनार्दन ! तुम आश्चर्यरूप और धन्य हो,' वे ही यहाँ आपलोगोंके बीचमें विराजमान हैं ॥ ८२ ॥

प्रत्युक्तोऽहमनेनाद्य वाक्यस्यास्य यदुत्तरम्।
दक्षिणाभिः सहेत्येवं पर्याप्तं वचनं मम ॥ ८३ ॥

इन्होंने आज मेरी इस बातका जो उत्तर दिया है कि 'दक्षिणाओंके सहित (मैं धन्य हूँ),' यह मेरे प्रश्नका पर्याप्त उत्तर प्राप्त हो गया ॥ ८३ ॥

यज्ञानां हि गतिर्विष्णुः सर्वेषां सहदक्षिणः।
दक्षिणाभिः सहेत्येवं प्रश्नो मम समाप्तवान् ॥ ८४ ॥

क्योंकि दक्षिणाओंसहित विष्णु ही सब यज्ञोंके आश्रय हैं, इसलिये 'दक्षिणाओंसहित' इतना कह देनेपर मेरा प्रश्न समाप्त हो गया ॥ ८४ ॥

कूर्मेणाभिहितं पूर्वं पारम्पर्यादिहागतम् ।
सदक्षिणेऽस्मिन् पुरुषे तद्वाक्यं प्रतिपादितम् ॥ ८५ ॥

पहले कच्छपने धन्यताका प्रतिपादन आरम्भ किया था, फिर परम्परासे यहाँ इन दक्षिणासहित परमपुरुष श्रीकृष्णमें उसका उपसंहार हुआ है; अतः कौन धन्य है ? इस बातका उत्तर प्राप्त हो गया ॥ ८५ ॥

यन्मां भवन्तः पृच्छन्ति वाक्यस्यास्य विनिर्णयम् ।
तदेतत् सर्वमाख्यातं साधयामि यथागतम् ॥ ८६ ॥

आपलोग जो मेरे पूर्वोक्त कथनका निश्चित तात्पर्य पूछ रहे थे, उसके विषयमें यह सब कुछ मैंने बता दिया । अब मैं जैसे आया था, वैसे जा रहा हूँ ॥ ८६ ॥

नारदे तु गते स्वर्गं सर्वे ते पृथिवीभुजः ।
विस्मिताः स्वानि राष्ट्राणि जग्मुः सबलवाहनाः ॥ ८७ ॥

नारदजीके स्वर्गलोकको चले जानेपर वे समस्त भूपाल विस्मित होकर सेना और सवारियोंसहित अपने राष्ट्रोंको चले गये ॥ ८७ ॥

जनार्दनोऽपि सहितो यदुभिः पावकोपमैः ।
स्वमेव भवनं वीरो विवेश यदुनन्दनः ॥ ८८ ॥

तत्पश्चात् यदुकुलको आनन्दित करनेवाले वीर जनार्दन भी अग्निके समान तेजस्वी यदुवंशी वीरोंके साथ अपने ही भवनमें पधारे ॥ ८८ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि धन्योपाख्यानं नाम दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें धन्योपाख्यानविषयक एक सौ दसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥११०॥

एकादशाधिकशततमोऽध्यायः

श्रीकृष्णकी महिमा—अर्जुनका श्रीकृष्णसे आज्ञा लेकर ब्राह्मण-बालककी रक्षाके लिये जाना

जनमेजय उवाच

भूय एव महाबाहो कृष्णस्य जगतां पतेः ।
माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामि परमं द्विजसत्तम ॥ १ ॥

जनमेजयने कहा—महाबाहो ! द्विजश्रेष्ठ ! मैं पुनः जगदीश्वर श्रीकृष्णका उत्तम माहात्म्य सुनना चाहता हूँ॥१॥

न हि मे तृप्तिरस्तीह शृण्वतस्तस्य धीमतः ।
कर्मणामनुसंतानं पुराणस्य महात्मनः ॥ २ ॥

उन परम बुद्धिमान् महात्मा पुराणपुरुष श्रीकृष्णके कर्मोंकी परम्पराका श्रवण करनेसे मुझे यहाँ तृप्ति नहीं हो रही है ॥ २ ॥

वैशम्पायन उवाच

नान्तः शक्यः प्रभावस्य वक्तुं वर्षशतैरपि ।
गोविन्दस्य महाराज श्रूयतामिदमद्भुतम् ॥ ३ ॥

वैशम्पायनजी बोले—महाराज जनमेजय ! भगवान् गोविन्दके प्रभावका पूरा-पूरा वर्णन करना—उसका अन्त बता देना तो सैकड़ों वर्षोंमें भी सम्भव नहीं है । अतः उनके इस अद्भुत माहात्म्यका वर्णन सुनो ॥ ३ ॥

शरतल्पे शयानेन भीष्मेण परिचोदितः ।
गाण्डीवधन्वा बीभत्सुर्माहात्म्यं केशवस्य यत् ॥ ४ ॥
राज्ञां मध्ये महाराज ज्येष्ठं भ्रातरमब्रवीत् ।
युधिष्ठिरं जितामित्रमिति तच्छृणु कौरव ॥ ५ ॥

महाराज कुरुनन्दन ! बाणशय्यापर सोये हुए पितामह भीष्मकी आज्ञा पाकर गाण्डीवधन्वा अर्जुनने समस्त राजाओंके बीच अपने शत्रुविजयी ज्येष्ठ भ्राता युधिष्ठिरसे भगवान् केशवका जो माहात्म्य बताया था, उसीका वर्णन करता हूँ, सुनो ॥ ४-५ ॥

अर्जुन उवाच

पुराहं द्वारकां यातः सम्बन्धीनवलोककः ।
न्यवसं पूजितस्तत्र भोजवृष्ण्यन्धकोत्तमैः ॥ ६ ॥

अर्जुन बोले—पहलेकी बात है, मैं अपने सगे-सम्बन्धियोंसे मिलने-जुलनेके लिये द्वारकापुरीमें गया था। वहाँ उत्तम भोज, वृष्णि और अन्धक वीरोंसे सम्मानित हो कई दिनोंतक रहा ॥ ६ ॥

ततः कदाचिद् धर्मात्मा दीक्षितो मधुसूदनः ।
एकाहेन महाबाहुः शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥ ७ ॥

एक दिन धर्मात्मा महाबाहु मधुसूदनने शास्त्रोक्त-विधिसे एकाह सोमयागकी दीक्षा ली ॥ ७ ॥

ततो दीक्षितमासीनमभिगम्य द्विजोत्तमः ।
कृष्णं विज्ञापयामास त्राहि त्राहीति चाब्रवीत् ॥ ८ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण ज्यों ही दीक्षा लेकर बैठे त्यों ही एक श्रेष्ठ ब्राह्मणने उनके पास पहुँचकर अपना संकट निवेदन किया और कहा—'प्रभो ! रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये'॥८॥

ब्राह्मण उवाच

रक्षाधिकारो भवतः परित्रायस्व मां विभो ।
चतुर्थांशो हि धर्मस्य रक्षिता लभते फलम् ॥ ९ ॥

ब्राह्मणने फिर कहा—प्रभो ! रक्षा करना आपके अधिकारकी बात है, आप मेरी रक्षा कीजिये; क्योंकि जो रक्षा करता है, वह रक्षित पुरुषके धर्मका चतुर्थांश फल प्राप्त कर लेता है ॥ ९ ॥

वासुदेव उवाच

न भेतव्यं द्विजश्रेष्ठ रक्षामि त्वां कुतो भयम् ।
ब्रूहि तत्त्वेन भद्रं ते यद्यपि स्यात् सुदुष्करम् ॥ १० ॥

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—द्विजश्रेष्ठ ! तुम्हें डरना नहीं चाहिये । मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा । तुम्हारा भला हो, ठीक-ठीक बताओ तुम्हें किससे भय है ? यदि अत्यन्त दुष्कर कार्य हो तो भी उसे कहनेमें संकोच न करो ॥ १० ॥

ब्राह्मण उवाच

जातो जातो महाबाहो पुत्रो मे ह्रियतेऽनघ ।
त्रयो हृताश्चतुर्थं त्वं कृष्ण रक्षितुमर्हसि ॥ ११ ॥

ब्राह्मणने कहा— महाबाहो ! निष्पाप श्रीकृष्ण ! जब मेरे पुत्र पैदा होता है, तब-तब काल उसे हर ले जाता है । इस प्रकार मेरे तीन पुत्र हर लिये गये । अब चौथा पुत्र होनेवाला है; अतः आप ही उसकी रक्षा करनेयोग्य हैं ॥ ११ ॥

ब्राह्मण्याः सूतिकालोऽद्य तत्र रक्षा विधीयताम् ।
यथा ध्रियेदपत्यं मे तथा कुरु जनार्दन ॥ १२ ॥

जनार्दन ! आज ब्राह्मणी (मेरी पत्नी) के प्रसवका समय है, अतः वहाँ रक्षा कीजिये । यह मेरी संतान जिस तरह भी जीवित बच जाय, वह उपाय कीजिये ॥ १२ ॥

अर्जुन उवाच

ततो मामाह गोविन्दो दीक्षितोऽहं क्रताविति ।
रक्षा च ब्राह्मणे कार्या सर्वावस्थागतैरपि ॥ १३ ॥

अर्जुन कहते हैं—तब भगवान् गोविन्दने मुझसे कहा—'पार्थ ! मैं तो यज्ञकी दीक्षा ले चुका, परंतु सभी अवस्थाओंमें भी ब्राह्मणकी रक्षा तो करनी ही चाहिये' ॥ १३ ॥

श्रुत्वाहमेवं कृष्णस्य वचोऽवोचं नराधिप ।
मां नियोजय गोविन्द रक्षिष्येऽहं द्विजं भयात् ॥ १४ ॥

नरेश्वर ! श्रीकृष्णका ऐसा वचन सुनकर मैंने उनसे कहा—'गोविन्द ! आप मुझे इस कार्यमें नियुक्त कीजिये । मैं इस ब्राह्मणकी भयसे रक्षा करूँगा' ॥ १४ ॥

इत्युक्तः स स्मितं कृत्वा मामुवाच जनार्दनः ।
रक्षसीत्येवमुक्तस्तु व्रीडितोऽस्मि नराधिप ॥ १५ ॥

नरेश्वर ! मेरे ऐसा कहनेपर जनार्दन मुसकराकर मुझसे बोले—'क्या तुम रक्षा कर लोगे ?' उनकी यह बात सुनकर मैं लज्जित हो गया ॥ १५ ॥

ततो मां व्रीडितं मत्वा पुनराह जनार्दनः ।
गम्यतां कौरवश्रेष्ठ शक्यते यदि रक्षितुम् ॥ १६ ॥

तब मुझे लज्जित जानकर जनार्दनने फिर कहा—'कौरव-श्रेष्ठ ! यदि तुम रक्षा कर सको तो जाओ ॥ १६ ॥

त्वत्पुरोगाश्च रक्षन्तु वृष्ण्यन्धकमहारथाः ।
ऋते रामं महाबाहुं प्रद्युम्नं च महाबलम् ॥ १७ ॥

'महाबाहु बलराम तथा महाबली प्रद्युम्नको छोड़कर अन्य वृष्णि और अन्धकवंशी महारथी तुम्हें अगुआ बनाकर जायँ और इस ब्राह्मणकी रक्षा करें' ॥ १७ ॥

ततोऽहं वृष्णिसैन्येन महता परिवारितः ।
तमग्रतो द्विजं कृत्वा प्रयातः सह सेनया ॥ १८ ॥

तब मैं वृष्णिवीरोंकी विशाल सेनासे घिरकर उस ब्राह्मण-को आगे करके सेनाके साथ आगे बढ़ा ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि वासुदेवमाहात्म्ये एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें वासुदेवका माहात्म्यविषयक एक सौ ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १११ ॥

द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः

ब्राह्मणबालककी रक्षा न होनेपर ब्राह्मणद्वारा अर्जुनका तिरस्कार और श्रीकृष्णके साथ उनका उत्तर दिशाको गमन

अर्जुन उवाच

मुहूर्तेन वयं ग्रामं तं प्राप्य भरतर्षभ ।
विश्रान्तवाहनाः सर्वे निवासायोपसंस्थिताः ॥ १ ॥

अर्जुन कहते हैं—भरतश्रेष्ठ ! तदनन्तर दो ही घड़ीमें हम सब लोग उस ब्राह्मणके गाँवमें पहुँचकर वहाँ ठहरनेकी व्यवस्थामें लग गये और हमारे वाहन विश्राम करने लगे ॥ १ ॥

ततो ग्रामस्य मध्येऽहं निविष्टः कुरुनन्दन ।
समन्ताद् वृष्णिसैन्येन महता परिवारितः ॥ २ ॥

कुरुनन्दन ! इसके बाद चारों ओरसे विशाल वृष्णिसेना-से घिरा हुआ मैं उस गाँवके भीतर प्रविष्ट हुआ ॥ २ ॥

ततः शकुनयो दीप्ता मृगाश्च क्रूरभाषिणः ।
दीप्तायां दिशि वाशन्तो भयमावेदयन्ति मे ॥ ३ ॥

उस समय मुखसे आग उगलनेवाले बहुत-से पक्षी तथा क्रूरतापूर्ण बोली बोलनेवाले मृग सामने आ गये और दाहयुक्त दिशामें अव्यक्त शब्द करते हुए मुझे भयकी सूचना देने लगे ॥

संध्यारागो जपावर्णो भानुमांश्चैव निष्प्रभः।
पपात महती चोल्का पृथिवी चाप्यकम्पत ॥ ४ ॥

संध्याका रंग जपा-कुसुमके समान दिखायी दिया। सूर्यदेव प्रभाहीन प्रतीत हुए। आकाशसे उल्कापात हुआ और पृथ्वी काँपने लगी ॥ ४ ॥

तान् समीक्ष्य महोत्पातान् दारुणाँल्लोमहर्षणान्।
योगमाज्ञापयंस्तत्र जनस्योत्सुकचेतसः ॥ ५ ॥
युयुधानपुरोगाश्च वृष्ण्यन्धकमहारथाः।
सर्वे युक्तरथाः सज्जाः स्वयं चाहं तथाभवम् ॥ ६ ॥

उन भयंकर एवं रोमाञ्चकारी बड़े-बड़े दारुण उत्पातोंको देखकर सात्यकि आदि वृष्णि और अन्धकवंशके महारथियोंने उत्सुक चित्तवाले लोगोंको तैयार हो जानेकी आज्ञा दे दी। सबके रथ जोत दिये गये; सभी सुसज्जित हो गये। स्वयं मैं भी सब प्रकारसे तैयार हो गया ॥ ५–६ ॥

गतेऽर्धरात्रसमये ब्राह्मणो भयविक्लवः।
उपागम्य भयादस्मानिदं वचनमब्रवीत् ॥ ७ ॥

जब आधी रातका समय बीत गया, तब ब्राह्मण भयसे व्याकुल होकर हमलोगोंके पास आया और भयभीत होकर इस प्रकार बोला—॥ ७ ॥

कालोऽयं समनुप्राप्तो ब्राह्मण्याः प्रसवस्य मे।
तथा भवन्तस्तिष्ठन्तु न भवेद् वञ्चनं यथा ॥ ८ ॥

'मेरी ब्राह्मणीके प्रसवका यह समय आ पहुँचा है, अब आपलोग इस तरह तैयार रहें, जिससे फिर धोखा न हो' ॥

मुहूर्तादेव चाश्रौषं कृपणं रुदितस्वनम्।
तस्य विप्रस्य भवने ह्रियतेऽह्रियतेति च ॥ ९ ॥

फिर तो दो ही घड़ीमें ब्राह्मणके घरके भीतर दीनतापूर्वक रोदनकी ध्वनि मुझे सुनायी दी। लोग कह रहे थे—'हाय! बालकको हर ले जाता है, हर ले गया' ॥ ९ ॥

अथाकाशे पुनर्वाचमश्रौषं बालकस्य वै।
ऊँहेति ह्रियमाणस्य न च पश्यामि राक्षसम् ॥ १० ॥

फिर आकाशमें मैंने अपहृत बालकका 'ऊँह' यह शब्द सुना; परंतु उसका अपहरण करनेवाले राक्षसको मैं नहीं देख पाता था ॥ १० ॥

ततोऽस्माभिस्तदा तात शरवर्षैः समन्ततः।
विष्टम्भिता दिशः सर्वा हृत एव स बालकः ॥ ११ ॥

तात! तब हमलोगोंने बाण-वर्षा करके चारों ओरसे सम्पूर्ण दिशाओंको रूँध डाला, तो भी उस बालकका अपहरण तो हो ही गया ॥ ११ ॥

ब्राह्मणोऽऽर्तस्वरं कृत्वा हृते तस्मिन् कुमारके।
वाचः स परुषास्तीव्राः श्रावयामास मां तदा ॥ १२ ॥

उस कुमारका अपहरण हो जानेपर ब्राह्मणने आर्तनाद करके उस समय मुझे अत्यन्त कड़वी खरी-खोटी बातें सुनानी आरम्भ कीं ॥ १२ ॥

वृष्णयो हतसंकल्पास्तथाहं नष्टचेतनः।
मामेवं हि विशेषेण ब्राह्मणः प्रत्यभाषत ॥ १३ ॥

वृष्णिवंशी वीरोंका सारा मनसूबा चौपट हो गया, मेरी तो चेतना ही नष्ट-सी हो गयी। वह ब्राह्मण विशेषतः मुझसे इस प्रकार कहने लगा—॥ १३ ॥

रक्षिष्यामीति चोक्तं ते न च रक्षितवानसि।
शृणु वाक्यमिदं शेषं यत् त्वमर्हसि दुर्मते ॥ १४ ॥

'दुर्मते! तूने कहा था कि रक्षा करूँगा, किंतु रक्षा नहीं की। अतः अन्तमें मेरी यह बात सुन, तू इसीका पात्र है! ॥ १४ ॥

वृथा त्वं स्पर्धसे नित्यं कृष्णेनामितबुद्धिना।
यदि स्यादिह गोविन्दो नैतदत्याहितं भवेत् ॥ १५ ॥

'तू अमित बुद्धिमान् भगवान् श्रीकृष्णके साथ सदा व्यर्थ ही स्पर्धा रखता है। यदि वे भगवान् गोविन्द स्वयं यहाँ होते तो यह दुर्घटना नहीं होने पाती ॥ १५ ॥

यथा चतुर्थं धर्मस्य रक्षिता लभते फलम्।
पापस्यापि तथा मूढ भागं प्राप्नोत्यरक्षिता ॥ १६ ॥

'मूढ़! जैसे रक्षा करनेवाला क्षत्रिय रक्षित पुरुषके धर्मका चतुर्थांश फल पाता है, उसी प्रकार रक्षा न करनेवाला पुरुष उस अरक्षितके पापका भी भागी होता है ॥ १६ ॥

रक्षिष्यामीति चोक्तं ते न च शक्तोऽसि रक्षितुम्।
मोघं गाण्डीवमेतत्ते मोघं वीर्यं यशश्च ते ॥ १७ ॥

'तूने घोषणा तो की थी कि 'मैं रक्षा करूँगा,' परंतु तू रक्षा करनेमें समर्थ नहीं है। तेरा यह गाण्डीव धनुष व्यर्थ है! तेरा पराक्रम और यश भी व्यर्थ ही है' ॥ १७ ॥

अकिञ्चिदुक्त्वा तं विप्रं ततोऽहं प्रस्थितस्तथा।
सह वृष्ण्यन्धकसुतैर्यत्र कृष्णो महाद्युतिः ॥ १८ ॥

उस ब्राह्मणसे कुछ न कहकर मैं वृष्णि और अन्धकवंशके उन राजकुमारोंके साथ प्रस्थित हो उस स्थानपर आया, जहाँ महातेजस्वी श्रीकृष्ण विराजमान थे ॥ १८ ॥

ततो द्वारवतीं गत्वा दृष्ट्वा मधुनिघातिनम्।
व्रीडितः शोकसंतप्तो गोविन्देनोपलक्षितः ॥ १९ ॥

द्वारकामें पहुँचकर मधुसूदनका दर्शन करके मैं लज्जित एवं शोकसे संतप्त हो उठा। गोविन्दने मेरी इस अवस्थाको लक्ष्य किया ॥ १९ ॥

स तु मां व्रीडितं दृष्ट्वा विनिन्दन् कृष्णसंनिधौ।
मौढ्यं पश्यत मे योऽहं श्रद्दधे क्लीबकत्थनम् ॥ २० ॥

इसी बीचमें उस ब्राह्मणने आकर मुझे लज्जित देख भगवान् श्रीकृष्णके समीप ही इस तरह निन्दित वचन कहना आरम्भ किया—'अहो ! मेरी मूर्खता तो देखो । मैंने इस कायर या नपुंसककी बातपर विश्वास कर लिया ॥ २० ॥

न प्रद्युम्नो नानिरुद्धो न रामो न च केशवः।
यत्र शक्ताः परित्रातुं कोऽन्यस्तदवनेश्वरः ॥ २१ ॥

'जहाँ प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, बलराम और श्रीकृष्ण भी रक्षा करनेमें असमर्थ हों, वहाँ दूसरा कौन रक्षा कर सकता है ? ॥ २१ ॥

धिगर्जुनं वृथावादं धिगात्मश्लाघिनो धनुः।
दैवोपसृष्टो यो मौर्ख्यादागच्छति च दुर्मतिः ॥ २२ ॥

'व्यर्थ बातें बनानेवाले इस अर्जुनको धिक्कार है ! झूठी आत्मप्रशंसा करनेवाले इस अर्जुनके धनुषको भी धिक्कार है ! क्योंकि यह खोटी बुद्धिवाला पुरुष स्वयं ही दैवका मारा हुआ है तो भी मूर्खतावश मेरी रक्षा करने आया था' ॥ २२ ॥

एवं शपति विप्रर्षौ विद्यामास्थाय वैष्णवीम्।
ययौ संयमिनीं वीरो यत्रास्ते भगवान् यमः ॥ २३ ॥

(वैशम्पायनजी कहते हैं—) वे ब्रह्मर्षि जब इस प्रकार आक्षेप करने लगे, तब वीर अर्जुन वैष्णवी विद्याका आश्रय ले संयमनी पुरीमें गये, जहाँ भगवान् यम विराजमान हैं ॥ २३ ॥

विप्रापत्यमचक्षाणस्तत ऐन्द्रीमगात् पुरीम्।
आग्नेयीं नैर्ऋतीं सौम्यामुदीचीं वारुणीं तथा ॥ २४ ॥

वहाँ ब्राह्मणके बालकको न देखकर ये क्रमशः इन्द्र, अग्नि, निर्ऋति, सोमकी उदीची तथा वरुण—इन सबकी पुरीमें गये ॥ २४ ॥

रसातलं नाकपृष्ठं धिष्ण्यान्यन्यान्युदायुधः।
ततोऽलब्ध्वा द्विजसुतमनिस्तीर्णप्रतिश्रवः ॥ २५ ॥
अग्निं विविक्षुः कृष्णेन प्रद्युम्नेन निषेधितः।
दर्शये द्विजसूनुं ते मावज्ञात्मानमात्मना ॥ २६ ॥
कीर्तिं त एते विपुलां स्थापयिष्यन्ति मानवाः।

फिर वे अपना अस्त्र-शस्त्र लिये रसातल तथा स्वर्गमें भी गये । इतनेपर भी ब्राह्मण-बालकको न पाकर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण न कर सके; अतः उन्होंने जलती आगमें प्रवेश करनेका विचार किया । उस समय श्रीकृष्ण और प्रद्युम्नने आकर उन्हें ऐसा करनेसे रोका और कहा—'मैं उन ब्राह्मण-बालकोंको तुम्हें दिखा दूँगा, तुम स्वयं ही अपनी अवज्ञा न करो । ये संसारके मनुष्य तुम्हारी सुविस्तृत कीर्तिकी स्थापना करेंगे' ॥ २५—२६½ ॥

इति सम्भाष्य मां स्नेहात् समाश्वास्य च माधवः ॥ २७ ॥
सान्त्वयित्वा तु तं विप्रमिदं वचनमब्रवीत्।

(अर्जुन कहते हैं—) इस प्रकार स्नेहपूर्वक बात करके माधवने मुझे आश्वासन दिया और उन ब्राह्मणको सान्त्वना देकर सारथिसे यह बात कही—॥ २७½ ॥

सुग्रीवं चैव शैब्यं च मेघपुष्पबलाहकौ ॥ २८ ॥
योजयाश्वानिति तदा दारुकं प्रत्यभाषत।

'दारुक ! तुम सुग्रीव, शैब्य, मेघपुष्प और बलाहक नामक घोड़ोंको रथमें जोतो ।' इस प्रकार उस समय उन्होंने दारुकसे कहा ॥ २८½ ॥

आरोप्य ब्राह्मणं कृष्णो ह्यवरोप्य च दारुकम् ॥ २९ ॥
मामुवाच ततः शौरिः सारथ्यं क्रियतामिति।

तदनन्तर रथ जुत जानेपर शूरनन्दन श्रीकृष्णने ब्राह्मण-को रथपर चढ़ा लिया और दारुकको उतारकर मुझसे कहा—'तुम सारथिका काम करो' ॥ २९½ ॥

ततः समास्थाय रथं कृष्णोऽहं ब्राह्मणः स च।
प्रायाताः स्म दिशं सौम्यामुदीचीं कौरवर्षभ ॥ ३० ॥

कौरवश्रेष्ठ ! तत्पश्चात् श्रीकृष्ण, मैं और वह ब्राह्मण तीनों उस रथपर बैठकर सोमपालित उत्तर दिशाकी ओर चल दिये ॥ ३० ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि वासुदेवमाहात्म्ये श्रीकृष्णस्योदीचीगमने द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें वासुदेव-माहात्म्यके प्रसंगमें श्रीकृष्णका उत्तर दिशाको गमनविषयक एक सौ बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११२ ॥

त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः

श्रीकृष्णद्वारा ब्राह्मणपुत्रोंका आनयन

अर्जुन उवाच

ततः पर्वतजालानि सरितश्च वनानि च।
अपश्यं समतिक्रम्य सागरं वरुणालयम् ॥ १ ॥

अर्जुन कहते हैं—तदनन्तर बहुत-से पर्वत-समूहों, सरिताओं और वनोंको लाँघकर मैंने वरुणालय समुद्रको देखा ॥ १ ॥

ततोऽर्घ्यमुदधिः साक्षादुपनीय जनार्दनम्।
स प्राञ्जलिः समुत्थाय किंकरोमीति चाब्रवीत्॥ २॥

उस समय साक्षात् समुद्रने भगवान् जनार्दनको अर्घ्य निवेदन किया और हाथ जोड़ खड़ा होकर कहा, 'प्रभो! मैं आपकी क्या सेवा करूँ?' ॥ २॥

प्रतिगृह्य स तां पूजां तमुवाच जनार्दनः।
रथपन्थानमिच्छामि त्वया दत्तं नदीपते॥ ३॥

समुद्रद्वारा अर्पित की हुई पूजाको ग्रहण करके भगवान् जनार्दनने कहा—'नदीपते! मैं चाहता हूँ कि तुम मुझे मेरे रथके लिये मार्ग दे दो'॥ ३॥

अथाब्रवीत् समुद्रस्तु प्राञ्जलिर्गरुडध्वजम्।
प्रसीद भगवन् नैवमन्योऽप्येवं गमिष्यति॥ ४॥

तब समुद्रने हाथ जोड़कर गरुड़ध्वज श्रीकृष्णसे कहा—'भगवन्! प्रसन्न होइये। इस तरह मेरे भीतर मार्ग न बनाइये, नहीं तो दूसरे लोग भी इसी तरह आया-जाया करेंगे॥ ४॥

त्वयैव स्थापितः पूर्वमगाधोऽस्मि जनार्दन।
त्वया प्रवर्तिते मार्गे यास्यामि गमनायताम्॥ ५॥

'जनार्दन! पहले आपने ही मुझे इस रूपमें प्रतिष्ठित किया है। मैं अगाध हूँ। जब आप मेरे भीतर मार्ग बना देंगे, तब मैं सबके लिये गमनीय (लाँघ जानेके योग्य) हो जाऊँगा॥ ५॥

अन्येऽप्येवं गमिष्यन्ति राजानो दर्पमोहिताः।
एवं संचिन्त्य गोविन्द यत् क्षमं तत् समाचर॥ ६॥

फिर तो अभिमानसे मोहित हुए दूसरे राजा भी मुझे इसी तरह लाँघ जाया करेंगे। गोविन्द! इस बातका विचार करके जो उचित हो वह कीजिये'॥ ६॥

वासुदेव उवाच

ब्राह्मणार्थं मदर्थं च कुरु सागर मद्वचः।
मद्दते न पुमान् कश्चिदन्यस्त्वां धर्षयिष्यति॥ ७॥

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—सागर! तुम इस ब्राह्मणके लिये और मेरे लिये भी मेरी इस बातको मान लो, मेरे सिवा दूसरा कोई पुरुष तुम्हें नहीं लाँघ सकेगा॥ ७॥

अथाब्रवीत् समुद्रस्तु पुनरेव जनार्दनम्।
अभिशापभयाद् भीतो बाढमेवं भविष्यति॥ ८॥

तब शापके भयसे डरे हुए समुद्रने पुनः जनार्दनसे कहा—'बहुत अच्छा ऐसा ही होगा'॥ ८॥

शोषयाम्येष मार्गं ते येन त्वं कृष्ण यास्यसि।
रथेन सह सूतेन सध्वजेन तु केशव॥ ९॥

'श्रीकृष्ण! केशव! यह लीजिये, मैं आपके मार्गको सुखाये देता हूँ, जिससे कि आप सारथि और ध्वजसहित रथके द्वारा यात्रा करेंगे'॥ ९॥

वासुदेव उवाच

मया दत्तो वरः पूर्वं न शोषं यास्यसीति ह।
मानुषास्ते न जानीयुर्विविधान् रत्नसंचयान्॥ १०॥
जलं स्तम्भय साधो त्वं ततो यास्याम्यहं रथी।
न च कश्चित् प्रमाणं ते रत्नानां वेत्स्यते नरः॥ ११॥

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—सरित्पते! मैंने पूर्वकालमें तुम्हें वर दिया है कि तुम कभी सूखोगे नहीं। मनुष्य तुम्हारे भीतर रखे हुए नाना प्रकारके रत्नोंके ढेरोंको न जान सकें, इसके लिये तुम केवल अपने जलको स्तम्भित कर लो। साधो! ऐसा करनेसे मैं रथपर बैठा हुआ तुम्हारे ऊपरसे चला जाऊँगा और कोई मनुष्य तुम्हारे रत्नोंका प्रमाण नहीं जान सकेगा॥ १०-११॥

सागरेण तथेत्युक्ते प्रस्थिताः स्मो जलेन वै।
स्तम्भितेन पथा भूमौ मणिवर्णेन भास्वता॥ १२॥

तब समुद्रने 'तथास्तु' कहकर उनकी बात स्वीकार कर ली। फिर हम सब लोग स्तम्भित हुए जलके मार्गसे चले। वह मार्ग भूमिपर स्थित प्रकाशमान मणियोंकी प्रभासे उद्भासित हो रहा था॥ १२॥

ततोऽर्णवं समुत्तीर्य कुरूनप्युत्तरान् वयम्।
क्षणेन समतिक्रान्ता गन्धमादनमेव च॥ १३॥

तत्पश्चात् समुद्रको पार करके हम उत्तर कुरुमें जा पहुँचे। फिर एक ही क्षणमें गन्धमादन पर्वतको भी लाँघ गये॥ १३॥

ततस्तु पर्वताः सप्त केशवं समुपस्थिताः।
जयन्तो वैजयन्तश्च नीलो रजतपर्वतः॥ १४॥
महामेरुः सकैलास इन्द्रकूटश्च नामतः।
बिभ्राणा वर्णरूपाणि विविधान्यद्भुतानि च॥ १५॥

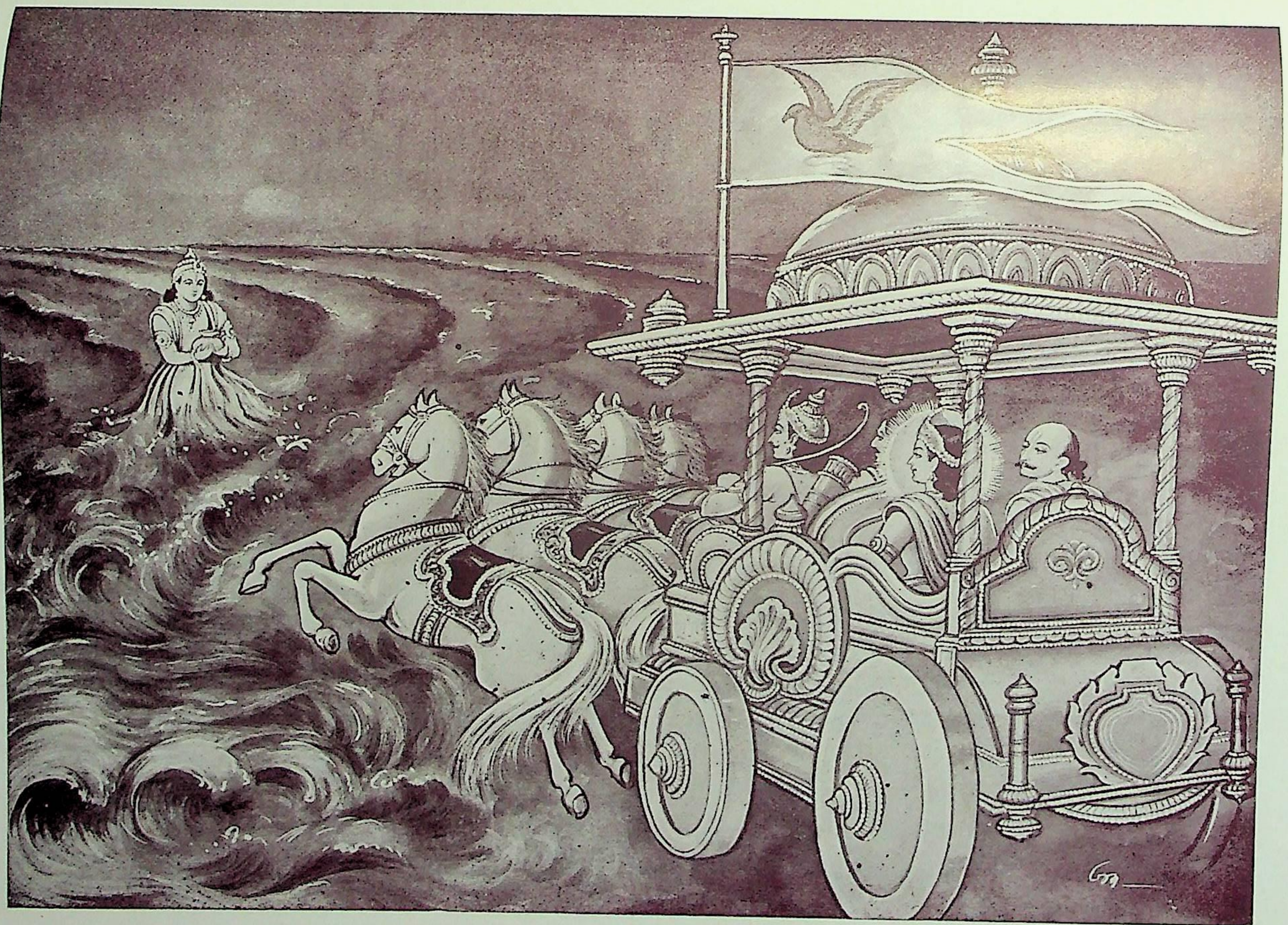
तदनन्तर जयन्त, वैजयन्त, नील, रजतपर्वत, महामेरु, कैलास और इन्द्रकूट नामवाले सात पर्वत भगवान् श्रीकृष्णकी सेवामें उपस्थित हुए। उन्होंने नाना प्रकारके अद्भुत रूप-रङ्ग धारण किये थे॥ १४-१५॥

उपस्थाय च गोविन्दं किं कुर्मेत्यब्रुवंस्तदा।
तांश्चैव प्रतिजग्राह विधिवन्मधुसूदनः॥ १६॥

उस समय गोविन्दकी सेवामें उपस्थित हो वे सब-के-सब कहने लगे—'भगवन्! हम आपकी क्या सेवा करें?' तब मधुसूदनने विधिपूर्वक उन सबका सत्कार ग्रहण किया॥ १६॥

तानुवाच हृषीकेशः प्रणामावनतान् स्थितान्।
विवरं गच्छतो मेऽद्य रथमार्गः प्रदीयताम्॥ १७॥

प्रणाम करके विनीत भावसे खड़े हुए उन पर्वतोंसे हृषीकेशने इस प्रकार कहा—'पर्वतो! मैं एक गूढ़-स्थानमें



मृत ब्राह्मण-बालककी खोजमें निकले हुए श्रीकृष्णकी समुद्रद्वारा पूजा

जा रहा हूँ। वहाँ जानेके लिये आज मेरे रथको मार्ग प्रदान करो' ॥ १७ ॥

ते कृष्णस्य वचः श्रुत्वा प्रतिगृह्य च पर्वताः।
प्रददुः कामतो मार्गं गच्छतो भरतर्षभ ॥ १८ ॥

भरतश्रेष्ठ ! भगवान् श्रीकृष्णका यह वचन सुनकर उनकी आज्ञा शिरोधार्य करके उन पर्वतोंने जाते समय उन्हें इच्छानुसार मार्ग दे दिया ॥ १८ ॥

तत्रैवान्तर्हिताः सर्वे तदाश्चर्यतरं मम।
असक्तं च रथो याति मेघजालेष्विवांशुमान् ॥ १९ ॥

फिर वे सब-के-सब वहीं अन्तर्धान हो गये। वह मेरे लिये परम आश्चर्यकी बात थी। रथ बिना किसी अटक या रुकावटके आगे बढ़ता जा रहा था, मानो अंशुमाली सूर्य मेघोंकी घटाओंमें अनासक्त भावसे चले जा रहे हों ॥ १९ ॥

सप्त द्वीपान् ससिन्धुंश्च सप्त सप्त गिरीनथ।
लोकालोकं तथातीत्य विवेश सुमहत्तमः ॥ २० ॥

सात द्वीपों, सातों समुद्रों तथा प्रत्येक द्वीपके सात-सात कुलपर्वतोंको लाँघकर लोकालोक पर्वतको भी पार करके वह रथ बड़े भारी अन्धकारमें प्रविष्ट हुआ ॥ २० ॥

ततः कदाचिद् दुःखेन रथमूहुस्तुरङ्गमाः।
पङ्कभूतं हि तिमिरं स्पर्शाद् विज्ञायते नृप ॥ २१ ॥

तब घोड़े कभी-कभी बड़े कष्टसे रथ खींचते थे। नरेश्वर ! वह अन्धकार कीचड़के रूपमें उपलब्ध हुआ, जो स्पर्श करनेसे ज्ञात होता था ॥ २१ ॥

अथ पर्वतभूतं तत् तिमिरं समपद्यत।
तदासाद्य महाराज निष्प्रयत्ना हयाः स्थिताः ॥ २२ ॥

तत्पश्चात् वह अन्धकार पर्वतके रूपमें प्राप्त हुआ। महाराज ! उसके पास पहुँचकर रथके घोड़े निश्चेष्ट होकर खड़े हो गये ॥ २२ ॥

ततश्चक्रेण गोविन्दः पाटयित्वा तमस्तदा।
आकाशं दर्शयामास रथपन्थानमुत्तमम् ॥ २३ ॥

तब गोविन्दने अपने चक्रसे उस अन्धकारको विदीर्ण करके अवकाश दिखाया, जो रथके लिये उत्तम मार्ग था ॥ २३ ॥

निष्क्रम्य तमसस्तस्मादाकाशे दर्शिते तदा।
भविष्यामीति संज्ञा मे भयं च विगतं मम ॥ २४ ॥

उस अन्धकारसे निकलकर आकाशका दर्शन करनेपर मुझे यह ज्ञान हुआ कि अब मैं जी जाऊँगा, फिर तो मेरा सारा भय दूर हो गया ॥ २४ ॥

ततस्तेजः प्रज्वलितमपश्यं तत् तदाम्बरे।
सर्वलोकं समाविश्य स्थितं पुरुषविग्रहम् ॥ २५ ॥

इसके बाद मैंने आकाशमें एक प्रज्वलित तेजका दर्शन किया, जो पुरुषके आकारमें स्थित था। वह सम्पूर्ण लोकोंमें व्याप्त जान पड़ता था ॥ २५ ॥

तं प्रविष्टो हृषीकेशो दीप्तं तेजोनिधिं तदा।
रथ एव स्थितश्चाहं स च ब्राह्मणसत्तमः ॥ २६ ॥

उस समय भगवान् हृषीकेश उस प्रज्वलित तेजकी राशिमें समा गये, किंतु मैं और वह श्रेष्ठ ब्राह्मण रथपर ही बैठे रहे ॥ २६ ॥

स मुहूर्तात् ततः कृष्णो निश्चक्राम तदा प्रभुः।
चतुरो बालकान् गृह्य ब्राह्मणस्यात्मजांस्तदा ॥ २७ ॥

फिर दो ही घड़ीमें भगवान् श्रीकृष्ण ब्राह्मणके चारों बालकोंको साथमें लेकर वहाँसे निकले ॥ २७ ॥

प्रददौ ब्राह्मणायाथ पुत्रान् सर्वाञ्जनार्दनः।
त्रयः पूर्वं हृता ये च सद्योजातश्च बालकः ॥ २८ ॥

तीन तो वे बालक थे, जिनका पहले अपहरण हुआ था और चौथा वह नवजात बालक था। भगवान् जनार्दनने वे सब पुत्र ब्राह्मणको दे दिये ॥ २८ ॥

प्रहृष्टो ब्राह्मणस्तत्र पुत्रान् दृष्ट्वा पुनः प्रभो।
अहं च परमप्रीतो विस्मितश्चाभवं तदा ॥ २९ ॥

प्रभो ! वहाँ अपने पुत्रोंको पुनः देखकर ब्राह्मणको बड़ा हर्ष हुआ। मुझे भी बड़ी प्रसन्नता हुई। मैं तो उस समय आश्चर्यचकित हो गया था ॥ २९ ॥

ततो वयं पुनः सर्वे ब्राह्मणस्य च ते सुताः।
यथा गता निवृत्ताः स्म तथैव भरतर्षभ ॥ ३० ॥

भरतश्रेष्ठ ! तदनन्तर हम सब लोग और वे ब्राह्मण-बालक पुनः जैसे गये थे, वैसे ही लौट आये ॥ ३० ॥

ततः स्म द्वारकां प्राप्ताः क्षणेन नृपसत्तम।
असम्प्राप्तेऽर्धदिवसे विस्मितोऽहं पुनः पुनः ॥ ३१ ॥

नृपश्रेष्ठ ! अभी दोपहरी भी नहीं हुई थी तभी हम-लोग एक ही क्षणमें द्वारका आ पहुँचे। मैं तो बारंबार विस्मित हो रहा था ॥ ३१ ॥

सपुत्रं भोजयित्वा तु द्विजं कृष्णो महायशाः।
धनेन वर्षयित्वा च गृहं प्रास्थापयत् तदा ॥ ३२ ॥

इसके बाद महायशस्वी श्रीकृष्णने पुत्रोंसहित ब्राह्मणको भोजन कराकर उसके लिये धनकी वर्षा करके उसे तत्काल घर भेज दिया ॥ ३२ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि वासुदेवमाहात्म्ये ब्राह्मणपुत्रानयने त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें वासुदेवमाहात्म्यके प्रसङ्गमें ब्राह्मणपुत्रोंका आनयनविषयक एक सौ तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११३ ॥

चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः

भगवान् श्रीकृष्णका अर्जुनको अपने यथार्थ स्वरूपका परिचय देना

अर्जुन उवाच

ततः कृष्णो भोजयित्वा शतानि सुबहूनि च।
विप्राणामृषिकल्पानां कृतकृत्योऽभवत् तदा ॥ १ ॥

अर्जुन कहते हैं—राजन्! तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण कई सौ ऋषितुल्य ब्राह्मणोंको भोजन कराकर कृतकृत्य हुए॥

ततः सह मया भुक्त्वा वृष्णिभोजैश्च सर्वशः।
विचित्राश्च कथा दिव्याः कथयामास भारत ॥ २ ॥

भारत! तत्पश्चात् मेरे और वृष्णि तथा भोजवंशी वीरोंके साथ स्वयं भी भोजन करके वे सर्वथा दिव्य एवं विचित्र कथाएँ सुनाने लगे॥ २॥

ततः कथान्ते तत्राहमभिगम्य जनार्दनम्।
अपृच्छं तद् यथावृत्तं कृष्णं यद् दृष्टवानहम् ॥ ३ ॥

फिर कथाके अन्तमें जनार्दन श्रीकृष्णके पास जाकर मैंने जो कुछ देखा था, उसका यथावत् वृत्तान्त पूछा—॥३॥

कथं समुद्रः स्तब्धोदः कृतस्तु कमलेक्षण।
पर्वतानां च विवरं कृतं तत् कथमच्युत ॥ ४ ॥

'कमलनयन अच्युत! आपने समुद्रके जलको स्तम्भित कैसे कर दिया? तथा पर्वतोंमें छेद या अवकाश किस तरह बना दिया?॥ ४॥

तमस्तच्च कथं घोरं घनं चक्रेण पाटितम्।
तच्च यत् परमं तेजः प्रविष्टोऽसि कथं च तत् ॥ ५ ॥

'उस घोर एवं घने अन्धकारको किस प्रकार चक्रसे विदीर्ण किया और वह जो परम उत्कृष्ट तेज था, उसमें आप किस प्रकार प्रविष्ट हुए?॥ ५॥

किमर्थं तेन ते बालास्तदा चापहृताः प्रभो।
यच्च ते दीर्घमध्वानं संक्षिप्तं तत् कथं पुनः ॥ ६ ॥

'प्रभो! उस परम तेजःस्वरूप पुरुषने उस समय ब्राह्मण-बालकोंका अपहरण किस लिये किया था? और वह जो विशाल मार्ग था, उसे आपने इतना संक्षिप्त कैसे कर दिया?॥

कथं चाल्पेन कालेन नस्तद्गतागतम्।
एतत् सर्वं यथावृत्तमाचक्ष्व मम केशव ॥ ७ ॥

'केशव! इतने थोड़े समयमें हमलोगोंका वहाँतक जाना-आना कैसे सम्भव हुआ? यह सब वृत्तान्त मुझे यथार्थ-रूपसे बताइये'॥ ७॥

वासुदेव उवाच

मद्दर्शनार्थं ते बाला हृतास्तेन महात्मना।
विप्रार्थमेष्यते कृष्णो नागच्छेदन्यथेति ह ॥ ८ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—अर्जुन! उन महात्मा तेजस्वी पुरुषने मुझे देखनेके लिये ही उन बालकोंका अपहरण किया था। वे जानते थे कि ब्राह्मणके कार्यके लिये ही श्रीकृष्ण आयेंगे, अन्यथा नहीं॥ ८॥

ब्रह्म तेजोमयं दिव्यं महद् यद् दृष्टवानसि।
अहं स भरतश्रेष्ठ मत्तेजस्तत् सनातनम् ॥ ९ ॥

भरतश्रेष्ठ! तुमने जिस दिव्य तेजोमय महद्-ब्रह्मका दर्शन किया था, वह मैं ही हूँ। वह मेरा सनातन तेज है॥९॥

प्रकृतिः सा मम परा व्यक्ताव्यक्ता सनातनी।
यां प्रविश्य भवन्तीह मुक्ता योगविदुत्तमाः ॥ १० ॥

वह मेरी व्यक्ताव्यक्तस्वरूपा सनातन परा प्रकृति है, जिसमें प्रवेश करके योगवेत्ताओंमें उत्तम पुरुष मुक्त हो जाते हैं॥ १०॥

सा सांख्यानां गतिः पार्थ योगिनां च तपस्विनाम्।
तत् पदं परमं ब्रह्म सर्वं विभजते जगत् ॥ ११ ॥

पार्थ! वही सांख्ययोगियों, कर्मयोगियों तथा तपस्वी पुरुषोंकी गति है। वही परब्रह्मपद है, जो सम्पूर्ण जगत्का विभाजन करता है—चेतनसे जडको पृथक् करता है॥११॥

मामेव तद् घनं तेजो ज्ञातुमर्हसि भारत।
समुद्रः स्तब्धतोयोऽहमहं स्तम्भयिता जलम् ॥ १२ ॥

भारत! वह जो घनीभूत तेज था, उसे मेरा ही स्वरूप समझो। जिसके जलका स्तम्भन किया गया था, वह समुद्र मैं ही हूँ और जलका स्तम्भन करनेवाला भी मैं ही हूँ॥ १२॥

अहं ते पर्वताः सप्त ये दृष्टा विविधास्त्वया।
पङ्कभूतं हि तिमिरं दृष्टवानसि यद्धि तत् ॥ १३ ॥

वे सात पर्वत जिन्हें तुमने नाना रूपोंमें देखा था, मैं ही हूँ और कीचड़के रूपमें जो अन्धकार दृष्टिगोचर हुआ था, वह भी मैं ही हूँ॥ १३॥

अहं तमो घनीभूतमहमेव च पाटकः।
अहं च कालो भूतानां धर्मश्चाहं सनातनः ॥ १४ ॥

मैं ही घनीभूत अन्धकार और मैं ही उसे विदीर्ण करनेवाला हूँ। मैं ही समस्त भूतोंका काल और मैं ही उनका सनातन धर्म हूँ॥ १४॥

चन्द्रादित्यौ महाशैलाः सरितश्च सरांसि च।
चतस्रश्च दिशः सर्वा ममैवात्मा चतुर्विधः ॥ १५ ॥

चन्द्रमा, सूर्य, बड़े-बड़े पर्वत, सरिताएँ और सरोवर भी मैं ही हूँ। ये जो चारों दिशाएँ हैं, वे सब-की-सब मेरा ही चतुर्विध रूप है॥ १५॥

चातुर्वर्ण्यं मत्प्रसूतं चातुराश्रम्यमेव च।
चातुर्विध्यस्य कर्ताहमिति बुध्यस्व भारत॥ १६॥

भारत! चारों वर्ण तथा चारों आश्रम मुझसे ही प्रकट हुए हैं। जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज—इन चार प्रकारके प्राणियोंकी सृष्टि करनेवाला मैं ही हूँ; इस बातको तुम अच्छी तरह जान लो॥ १६॥

अर्जुन उवाच

भगवन् सर्वभूतेश वेत्तुमिच्छामि ते प्रभो।
पृच्छामि त्वां प्रपन्नोऽहं नमस्ते पुरुषोत्तम॥ १७॥

तब मैं (अर्जुन) ने कहा—भगवन्! सर्वभूतेश्वर! प्रभो! पुरुषोत्तम! आपको नमस्कार है। मैं आपके स्वरूपोंको भली-भाँति जानना चाहता हूँ; इसीलिये उसके विषयमें आपसे जिज्ञासा करता हूँ और आपकी शरणमें आया हूँ॥ १७॥

वासुदेव उवाच

ब्रह्म च ब्राह्मणाश्चैव तपः सत्यं च भारत।
उग्रं बृहत्तमं चैव मत्तस्तद् विद्धि पाण्डव॥ १८॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—पाण्डुनन्दन भारत! ब्रह्म, ब्राह्मण, तप, सत्य, उग्र (संसारबन्धन) और बृहत्तम (कैवल्य)—ये सब मुझसे ही प्रकट होते हैं, ऐसा समझो॥ १८॥

प्रियस्तेऽहं महाबाहो प्रियो मेऽसि धनंजय।
तेन ते कथयिष्यामि नान्यथा वक्तुमुत्सहे॥ १९॥

महाबाहु धनंजय! मैं तुम्हें प्रिय हूँ और तुम मुझे। इसीलिये मैं तुमसे इस रहस्यका वर्णन करता हूँ, अन्यथा कदापि नहीं कह सकता॥ १९॥

अहं यजूंषि सामानि ऋचश्चाथर्वणानि च।
ऋषयो देवता यज्ञा मत्तेजो भरतर्षभ॥ २०॥

भरतश्रेष्ठ! मैं ही यजुर्वेद, सामवेद, ऋग्वेद और अथर्ववेद हूँ। ऋषि, देवता और यज्ञ मेरे ही तेज हैं॥ २०॥

पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम्।
चन्द्रादित्यावहोरात्रं पक्षा मासास्तथर्तवः।
मुहूर्ताश्च कलाश्चैव क्षणाः संवत्सरास्तथा॥ २१॥

मन्त्राश्च विविधाः पार्थ यानि शास्त्राणि कानिचित्।
विद्याश्च वेदितव्यं च मत्तः प्रादुर्भवन्ति हि॥ २२॥

पार्थ! पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, तेज, चन्द्रमा, सूर्य, दिन, रात, पक्ष, मास, ऋतु, मुहूर्त, कला, क्षण, संवत्सर, नाना प्रकारके मन्त्र, जो कोई भी शास्त्र, विद्या और वेदितव्य—ये सब मुझसे ही प्रकट होते हैं॥ २१-२२॥

मन्मयं विद्धि कौन्तेय क्षयं सृष्टिं च भारत।
सच्चासच्च ममैवात्मा सदसच्चैव यत्परम्॥ २३॥

कुन्तीनन्दन भारत! सृष्टि और संहारको भी मेरा ही स्वरूप समझो। सत्, असत्, सदसत् तथा उससे भी विलक्षण जो तत्त्व है, वह सब मेरा ही आत्मा है॥ २३॥

अर्जुन उवाच

एवमुक्तोऽस्मि कृष्णेन प्रीयमाणेन वै तदा।
तथैव च मनो नित्यमभवन्मे जनार्दने॥ २४॥
एतच्छ्रुतं च दृष्टं च माहात्म्यं केशवस्य मे।
यन्मां पृच्छसि राजेन्द्र भूयांश्चातो जनार्दनः॥ २५॥

अर्जुन कहते हैं—राजेन्द्र! उस समय प्रसन्न हुए श्रीकृष्णने जब मुझे इस प्रकार उपदेश दिया, तबसे मेरा मन सदा उन्हीं जनार्दनमें संलग्न रहने लगा। इस प्रकार मैंने केशवका माहात्म्य प्रत्यक्ष देखा और सुना है, जिसके विषयमें आप मुझसे पूछ रहे थे। मैंने जो कुछ देखा और जाना है, भगवान् जनार्दन उससे भी महान् हैं॥ २४-२५॥

वैशम्पायन उवाच

एतच्छ्रुत्वा कुरुश्रेष्ठो धर्मराजो युधिष्ठिरः।
पूजयामास धर्मात्मा गोविन्दं पुरुषोत्तमम्॥ २६॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! यह सुनकर धर्मात्मा कुरुश्रेष्ठ धर्मराज युधिष्ठिरने पुरुषोत्तम भगवान् गोविन्दका पूजन किया॥ २६॥

विस्मितश्चाभवद् राजा सह सर्वैः सहोदरैः।
राजभिश्च समासीनैर्ये तत्रासन् समागताः॥ २७॥

उस समय जो-जो राजा वहाँ पधारे और बैठे हुए थे, उनके तथा अपने समस्त भाइयोंके साथ राजा युधिष्ठिरको बड़ा आश्चर्य हुआ था॥ २७॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि वासुदेवमाहात्म्ये कृष्णार्जुनभाषणे चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः॥ ११४॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें वासुदेव-माहात्यके प्रसङ्गमें श्रीकृष्ण और अर्जुनका संवादविषयक एक सौ चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ११४॥

पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः

भगवान् श्रीकृष्णके पराक्रमोंका संक्षेपसे वर्णन

जनमेजय उवाच

भूय एव द्विजश्रेष्ठ यदुसिंहस्य धीमतः।
कर्माण्यपरिमेयाणि श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः॥ १ ॥

जनमेजयने कहा—द्विजश्रेष्ठ! मैं परम बुद्धिमान् यदुसिंह श्रीकृष्णके अपरिमेय कर्मोंका तात्त्विक वर्णन पुनः सुनना चाहता हूँ॥ १॥

श्रूयन्ते विविधानि स्म अद्भुतानि महाद्युतेः।
असंख्येयानि दिव्यानि प्रकृतान्यपि सर्वशः॥ २ ॥

महातेजस्वी भगवान् श्रीकृष्णके अनेक प्रकारके अद्भुत, असंख्य एवं दिव्य चरित्र सुने जाते हैं, जो सर्वथा उनके द्वारा उत्कृष्ट रूपसे किये गये हैं॥ २॥

यान्यहं विविधान्यस्य श्रुत्वा प्रीये महामुने।
प्रब्रूयाः सर्वशस्तात तानि मे शृण्वतोऽनघ॥ ३ ॥

निष्पाप महामुने! तात! मैं भगवान्‌के जिन-जिन विविध चरित्रोंको सुनकर प्रसन्न होता हूँ, उनका सम्पूर्ण रूपसे वर्णन कीजिये। मैं उन्हें ध्यानसे सुनूँगा॥ ३॥

वैशम्पायन उवाच

बह्वन्याश्चर्यभूतानि केशवस्य महात्मनः।
कथितानि महाबाहो नान्तं शक्यं हि कर्मणाम्॥ ४ ॥
गन्तुं हि भरतश्रेष्ठ विस्तरेण समन्ततः।
अवश्यं हि मया वाच्यं लेशमात्रेण भारत॥ ५ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—भरतश्रेष्ठ! महाबाहो! महात्मा केशवके बहुत-से आश्चर्यजनक चरित्र बताये गये। सब ओरसे विस्तारके साथ वर्णन करनेपर उनके कर्मोंका पार पाना असम्भव है। अतः भारत! मैं संक्षेपसे ही उनके उन कर्मोंका अवश्य वर्णन करूँगा॥ ४-५॥

विष्णोरमितवीर्यस्य प्रथितोदारकर्मणः।
आनुपूर्व्या प्रवक्ष्यामि शृणुष्वैकमना नृप॥ ६ ॥

नरेश्वर! अपरिमित पराक्रमी तथा सुविख्यात उदार कर्मवाले भगवान् विष्णुके चरित्रोंका मैं क्रमशः वर्णन करूँगा, एकाग्रचित्त होकर सुनो॥ ६॥

द्वारवत्यां निवसता यदुसिंहेन धीमता।
राष्ट्राणि नृपमुख्यानां क्षोभितानि महात्मनाम्॥ ७ ॥

द्वारकामें निवास करते हुए यदुकुलसिंह बुद्धिमान् श्रीकृष्णने मुख्य-मुख्य महामनस्वी नरेशोंके राष्ट्रोंमें हलचल मचा दिया था॥ ७॥

यदूनामन्तरप्रेप्सुर्विचक्रो दानवो हतः।
पुरं प्राग्ज्योतिषं गत्वा पुनस्तेन महात्मना॥ ८ ॥
समुद्रमध्ये दुष्टात्मा नरको दानवो हतः।

उन दिनों एक विचक्र नामक दानव था, जो यादवोंके छिद्र ही ढूँढ़ा करता था। श्रीकृष्णने उसका वध कर डाला। फिर उन महात्माने प्राग्ज्योतिषपुरमें जाकर समुद्रके भीतर रहनेवाले दुष्टात्मा नरक नामक दानवका संहार किया॥ ८½॥

वासवं च रणे जित्वा पारिजातो हृतो बलात्॥ ९ ॥
वरुणश्चैव भगवान् निर्जितो लोहिते ह्रदे।

एक बार श्रीकृष्णने इन्द्रको भी युद्धमें हराकर बलपूर्वक पारिजात वृक्षका अपहरण कर लिया था। इसी प्रकार लोहितह्रदमें भगवान् वरुणको पराजित किया था॥ ९½॥

दन्तवक्त्रश्च कारूषो निहतो दक्षिणापथे॥ १० ॥
शिशुपालश्च सम्पूर्णे किल्बिषैकशते हतः।

करूषदेशका राजा दन्तवक्त्र दक्षिणापथमें उनके द्वारा मारा गया। एक सौ अपराध पूर्ण होनेपर शिशुपालको भी उन्होंने कालके गालमें भेज दिया॥ १०½॥

गत्वा च शोणितपुरं शंकरेणाभिरक्षितः॥ ११ ॥
बलेः सुतो महावीर्यो बाणो बाहुसहस्रभृत्।
महामृधे महाराज जित्वा जीवन् विसर्जितः॥ १२ ॥

महाराज! बलिका महापराक्रमी पुत्र बाण एक सहस्र भुजाएँ धारण करता था और भगवान् शङ्करके द्वारा वह सर्वथा सुरक्षित था; किंतु भगवान् श्रीकृष्णने शोणितपुरमें जाकर महासमरमें उसे पराजित किया और जीवित छोड़ दिया॥

निर्जितः पावकश्चैव गिरिमध्ये महात्मना।
शाल्वश्च विजितः संख्ये सौभश्च विनिपातितः॥ १३ ॥

उन महात्माने मेरु गिरिमें अग्निदेवपर विजय पायी तथा युद्धमें सौभ विमानके अधिपति राजा शाल्वको जीता और मार गिराया॥ १३॥

विक्षोभ्य सागरं चैव पाञ्चजन्यो वशीकृतः।
हयग्रीवश्च निहतो नृपाश्चान्ये महाबलाः॥ १४ ॥

फिर सागरमें क्षोभ पैदा करके पञ्चजनको मारकर पाञ्चजन्य शङ्खपर अधिकार किया। हयग्रीवका वध किया और अन्य महाबली नरेशोंको भी कालके गालमें डाल दिया॥

जरासंधस्य निधने मोक्षिताः सर्वपार्थिवाः।
रथेन जित्वा नृपतीन् गान्धारतनया हृता॥ १५ ॥

जरासंधकी मृत्यु करवाकर सब राजाओंको उसके बन्धनसे मुक्त किया। एकमात्र रथके द्वारा राजाओंको जीतकर गान्धार-राजकुमारीका अपहरण किया ॥ १५ ॥

भ्रष्टराज्याश्च शोकार्ताः पाण्डवाः परिरक्षिताः ।
दाहितं च वनं घोरं पुरुहूतस्य खाण्डवम् ॥ १६ ॥

पाण्डव अपने राज्यसे भ्रष्ट हो चुके थे और शोकसे आतुर थे, उस अवस्थामें भगवान् श्रीकृष्णने उन सबकी रक्षा की। इन्द्रके घोर खाण्डववनको अर्जुनद्वारा दग्ध करा दिया ॥

गाण्डीवं चाग्निना दत्तमर्जुनायोपपादितम् ।
दौत्यं च तत्कृतं घोरे विग्रहे जनमेजय ॥ १७ ॥

जनमेजय ! फिर अग्निका दिया हुआ गाण्डीव धनुष अर्जुनको अर्पित किया तथा कौरव-पाण्डवके घोर विग्रहके समय पाण्डवोंका दूतत्व किया ॥ १७ ॥

अनेन यदुमुख्येन यदुवंशो विवर्धितः ।
कुन्त्याश्च प्रमुखे प्रोक्ता प्रतिज्ञा पाण्डवान् प्रति॥ १८ ॥
निवृत्ते भारते युद्धे प्रतिदास्यामि तत्सुतान् ।

इन्हीं यादव-शिरोमणिने यदुवंशकी वृद्धि की और कुन्तीके सामने पाण्डवोंके विषयमें यह प्रतिज्ञा की कि 'महाभारत युद्ध समाप्त होनेपर मैं तुम्हें तुम्हारे पुत्रोंको वापस दे दूँगा' ॥

मोक्षितश्च महातेजा नृगः शापात् सुदारुणात् ॥ १९ ॥
यवनश्च हतः संख्ये काल इत्यभिविश्रुतः ।

इन्होंने महातेजस्वी राजा नृगको अत्यन्त भयंकर शापसे मुक्त किया। कालयवनको युद्धमें मारा (मुचुकुन्दद्वारा उसका नाश करा दिया) ॥ १९½ ॥

वानरौ च महावीर्यौ मैन्दो द्विविद एव च ॥ २० ॥
विजितौ युधि दुर्धर्षौ जाम्बवांश्च पराजितः ।

दो महापराक्रमी दुर्धर्ष वानर मैन्द और द्विविदको तथा ऋक्षराज जाम्बवान्‌को भी युद्धमें पराजित किया ॥ २०½ ॥

सान्दीपनेस्तथा पुत्रस्तव चैव पिता तथा ॥ २१ ॥
गतौ वैवस्वतवशं जीवितौ तस्य तेजसा ।

सान्दीपनिका पुत्र तथा तुम्हारे पिता परीक्षित्—ये दोनों यमराजके वशमें हो गये थे; परंतु उन श्रीकृष्णके तेजसे जीवित हो गये ॥ २१½ ॥

संग्रामा बहवः प्राप्ता घोरा नरवरक्षयाः ॥ २२ ॥
निहताश्च नृपाः सर्वे कृत्वा तज्जयमद्भुतम् ।
जनमेजयास्य युद्धेषु यथा ते वर्णिता मया ॥ २३ ॥

जनमेजय ! बड़े-बड़े राजाओंका विनाश करनेवाले बहुत-से घोर संग्राम प्राप्त हुए, परंतु उन युद्धोंमें अद्भुत विजय पाकर भगवान् श्रीकृष्णने जिस प्रकार समस्त नरेशोंको मार गिराया, उसका वर्णन मैं कर चुका हूँ ॥ २२–२३ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि वासुदेवमाहात्म्ये पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें वासुदेव-माहात्म्यविषयक एक सौ पंद्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११५ ॥

षोडशाधिकशततमोऽध्यायः

भगवान् शङ्करका बाणासुरको अपने और देवी पार्वतीके पुत्रके रूपमें स्वीकार करना, बाणासुरका उनसे युद्धके लिये वर माँगना और पाना तथा इससे बाण-मन्त्री कुम्भाण्डका चिन्तित होना

जनमेजय उवाच

भूय एव महाबाहोर्यदुसिंहस्य धीमतः ।
कर्माण्यपरिमेयाणि श्रुतानि द्विजसत्तम ॥ १ ॥
त्वत्तः श्रुतवतां श्रेष्ठ वासुदेवस्य धीमतः ।

जनमेजयने कहा—विद्वानोंमें उत्तम द्विजश्रेष्ठ ! मैंने आपके मुखसे बुद्धिमान् महाबाहु यदुकुलसिंह वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णके अपरिमेय कर्मोंको फिरसे सुना ॥ १½ ॥

यत् त्वया कथितं पूर्वं बाणं प्रति महासुरम् ॥ २ ॥
तदहं श्रोतुमिच्छामि विस्तरेण तपोधन ।

तपोधन ! आपने पहले महान् असुर बाणके विषयमें जो चर्चा की है, उसको मैं विस्तारसे सुनना चाहता हूँ ॥ २½ ॥

कथं च देवदेवस्य पुत्रत्वमसुरो गतः ॥ ३ ॥
योऽभिगुप्तः स्वयं ब्रह्मञ्छङ्करेण महात्मना ।
सहवासं गतेनैव सगणेन गुहेन तु ॥ ४ ॥

ब्रह्मन् ! वह असुर देवाधिदेव महादेवजीके पुत्रभावको कैसे प्राप्त हुआ ? जिससे महात्मा भगवान् शङ्करने स्वयं उसकी रक्षा की तथा उसके सहवासमें रहनेवाले गणोंसहित भगवान् स्कन्दने भी उसका संरक्षण किया ॥ ३-४ ॥

बलेर्बलवतः पुत्रो ज्येष्ठो भ्रातृशतस्य यः ।
वृतो बाहुसहस्रेण दिव्यास्त्रशतधारिणा ॥ ५ ॥

बलवान् बलिका पुत्र अपने सौ भाइयोंमें ज्येष्ठ था। वह सैकड़ों दिव्यास्त्र धारण करनेवाली सहस्र भुजाओंसे युक्त था ॥ ५ ॥

असंख्यैश्च महाकायैर्महाबलशतैर्वृतः ।
वासुदेवेन स कथं बाणः संख्ये पराजितः ॥ ६ ॥
संरब्धश्चैव युद्धार्थी जीवन्मुक्तः कथं च सः ।

वह असंख्य विशालकाय तथा सैकड़ों महाबली असुरोंसे घिरा रहता था तो भी जब वह युद्धकी इच्छासे रोष और आवेशमें भरकर आया, तब भगवान् वासुदेवने युद्धमें उसे पराजित कैसे कर दिया ? तथा किस प्रकार उन्होंने उसे जीवित छोड़ा था ? ॥ ६½ ॥

वैशम्पायन उवाच

शृणुष्वावहितो राजन् कृष्णस्यामिततेजसः ॥ ७ ॥
मनुष्यलोके बाणेन यथाभूद् विग्रहो महान् ।

वैशम्पायनजी बोले—राजन् ! मानवलोकमें अमित-तेजस्वी भगवान् श्रीकृष्णका बाणासुरके साथ जिस तरह महान् संग्राम हुआ था, उसे ध्यान देकर सुनो ॥ ७½ ॥

वासुदेवेन यत्रासौ रुद्रस्कन्दसहायवान् ॥ ८ ॥
बलिपुत्रो रणश्लाघी जित्वा जीवन् विसर्जितः ।

जहाँ रुद्र और स्कन्दकी सहायतासे सम्पन्न हुए युद्ध-श्लाघी बलिपुत्र बाणासुरको भगवान् श्रीकृष्णने जीतकर भी जीवित छोड़ दिया ॥ ८½ ॥

यथा चास्य वरो दत्तः शंकरेण महात्मना ॥ ९ ॥
नित्यं सांनिध्यतां चैव गाणपत्यं तथाक्षयम् ।
यथा बाणस्य तद् युद्धं जीवन्मुक्तो यथा च सः ॥ १० ॥
यथा च देवदेवस्य पुत्रत्वं सोऽसुरो गतः ।
यदर्थं च महद् युद्धं तत् सर्वमखिलं शृणु ॥ ११ ॥

महात्मा शङ्करने जिस प्रकार बाणासुरको सदा अपने समीप रहने और अक्षयभावसे गणपति-पदपर प्रतिष्ठित होनेका वरदान दिया था । जिस प्रकार बाणासुरका वह युद्ध हुआ, जिस प्रकार श्रीकृष्णने उसे जीवित छोड़ा, जिस तरह वह असुर देवाधिदेव महादेवजीके पुत्रभावको प्राप्त हुआ तथा जिस निमित्तसे उस महान् युद्धकी घटना घटित हुई, वह सारा वृत्तान्त सम्पूर्ण रूपसे सुनो ॥ ९–११ ॥

दृष्ट्वा वपुः कुमारस्य क्रीडतश्च महात्मनः ।
बलिपुत्रो महावीर्यो विस्मयं परमं गतः ॥ १२ ॥

एक समय क्रीड़ामें लगे हुए महामनस्वी कुमार स्कन्दके सुन्दर शरीरको देखकर महापराक्रमी बलिपुत्र बाणासुरको बड़ा विस्मय हुआ ॥ १२ ॥

तस्य बुद्धिः समुत्पन्ना तपश्चर्तुं सुदुष्करम् ।
रुद्रस्याराधनार्थाय देवस्य स्यां यथा सुतः ॥ १३ ॥

उस समय उसके मनमें रुद्रदेवकी आराधनाके लिये अत्यन्त दुष्कर तपस्या करनेका विचार उत्पन्न हुआ । उस तपका उद्देश्य यही था कि मैं किसी प्रकार महादेवजीका पुत्र हो जाऊँ ॥ १३ ॥

ततोऽग्लपयदात्मानं तपसा श्लाघते च सः ।
देवश्च परमं तोषं जगाम च सहोमया ॥ १४ ॥

तदनन्तर उसने तपस्याके द्वारा अपने शरीरको गलाना आरम्भ किया । उसे अपनी तपस्यापर गर्व भी होता था अर्थात् वह यह समझता था कि मैं ही महान् तपस्वी हूँ तथा पार्वतीसहित महादेवजी उसपर बहुत संतुष्ट हुए ॥ १४ ॥

नीलकण्ठः परां प्रीतिं गत्वा चासुरमब्रवीत् ।
वरं वरय भद्रं ते यत् ते मनसि वर्तते ॥ १५ ॥

परम प्रसन्नताको प्राप्त होकर भगवान् नीलकण्ठने उस असुरसे कहा—'बाण ! तुम्हारा कल्याण हो । तुम्हारे मनमें जो इच्छा हो, उसके अनुसार वर माँगो' ॥ १५ ॥

अथ बाणोऽब्रवीद् वाक्यं देवदेवं महेश्वरम् ।
देव्याः पुत्रत्वमिच्छामि त्वया दत्तं त्रिलोचन ॥ १६ ॥

तब बाणने देवाधिदेव महेश्वरसे कहा—'त्रिलोचन ! मैं आपका दिया हुआ देवी पार्वतीका पुत्रत्व चाहता हूँ' ॥ १६ ॥

शंकरस्तु तथेत्युक्त्वा रुद्राणीमिदमब्रवीत् ।
कनीयान् कार्तिकेयस्य पुत्रोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥ १७ ॥

तब भगवान् शङ्करने 'तथास्तु' कहकर देवी रुद्राणीसे इस प्रकार कहा—'देवि ! तुम इसे पुत्रके रूपमें स्वीकार करो । यह कार्तिकेयका छोटा भाई होगा ॥ १७ ॥

यत्रोत्थितो महासेनः सोऽग्निजो रुधिरे पुरे ।
तत्रोद्देशे पुरं चास्य भविष्यति न संशयः ॥ १८ ॥

'जहाँ रुधिरपुरमें अग्निकुमार महासेनका प्रादुर्भाव हुआ था, उस स्थानपर इसकी राजधानी होगी । इसमें संशय नहीं है ॥ १८ ॥

नाम्ना तच्छोणितपुरं भविष्यति पुरोत्तमम् ।
मयाभिगुप्तं श्रीमन्तं न कश्चित् प्रसहिष्यति ॥ १९ ॥

'वह उत्तम नगर शोणितपुरके नामसे विख्यात होगा । मेरे द्वारा सुरक्षित हुए इस तेजस्वी बाणासुरका वेग कोई नहीं सह सकेगा' ॥ १९ ॥

ततः स निवसन् बाणः पुरे शोणितसाह्वये ।
राज्यं प्रशास्ते नित्यं क्षोभयन् सर्वदेवताः ॥ २० ॥

तदनन्तर शोणितपुरमें निवास करता हुआ बाण सदा अपने राज्यका शासन करने लगा । वह सम्पूर्ण देवताओंको क्षोभमें डाले रहता था ॥ २० ॥

अथ वीर्यमदोत्सिक्तो बाणो बाहुसहस्रवान् ।
अचिन्तयन् देवगणान् युद्धमाकाङ्क्षते सदा ॥ २१ ॥

इसके बाद सहस्रबाहु बाणासुर अपने बल-पराक्रमके मदसे उन्मत्त हो देवताओंको कुछ भी न समझकर सदा सबके साथ युद्धकी आकाङ्क्षा रखने लगा ॥ २१ ॥

ध्वजं चास्य ददौ प्रीतः कुमारो ह्यग्नितेजसम्।
वाहनं चैव बाणस्य मयूरं दीप्ततेजसम्॥ २२॥

बाणासुरपर प्रसन्न हुए कुमार कार्तिकेयने उसे अग्निके तुल्य तेजस्वी ध्वज तथा तेजसे प्रकाशित मयूर वाहनरूपमें प्रदान किया॥ २२॥

न देवा न च गन्धर्वा न यक्षा नापि पन्नगाः।
तस्य युद्धे व्यतिष्ठन्त देवदेवस्य तेजसा॥ २३॥

देवाधिदेव महादेवजीके तेजसे सुरक्षित हुए बाणासुरके सामने युद्धमें न तो देवता ठहर पाते थे, न गन्धर्व, न यक्ष टिक पाते थे, न नाग॥ २३॥

त्र्यम्बकेणाभिगुप्तश्च दर्पोत्सिक्तो महासुरः।
भूयो मृगयते युद्धं शूलिनं सोऽभ्यगच्छत॥ २४॥

त्रिनेत्रधारी शिवके द्वारा सुरक्षित हुआ वह महान् असुर बलके घमंडमें भर गया और बारंबार युद्धका ही अवसर ढूँढ़ने लगा। एक दिन वह त्रिशूलधारी भगवान् शङ्करके पास गया॥ २४॥

स रुद्रमभिगम्याथ प्रणिपत्याभिवाद्य च।
बलिसूनुरिदं वाक्यं पप्रच्छ वृषभध्वजम्॥ २५॥

वृषभध्वज रुद्रदेवके पास जाकर उन्हें प्रणाम और अभिवादन करनेके पश्चात् बलिपुत्र बाणने उनसे यह बात पूछी—॥ २५॥

असकृन्निर्जिता देवाः ससाध्याः समरुद्गणाः।
मया मदबलोत्सेकात् ससैन्येन तवाश्रयात्॥ २६॥

'प्रभो! आपका सहारा पाकर सेनासहित मैंने बलके मद और अभिमानपूर्वक साध्यों और मरुद्गणोंसहित देवताओंको अनेक बार परास्त किया है॥ २६॥

इमं देशं समागम्य वसन्ति स्म पुरे सुखम्।
ते पराजयसंत्रस्ता निराशा मत्पराजये॥ २७॥

'वे मुझे पराजित करनेकी ओरसे तो निराश हैं; परंतु मेरे द्वारा पुनः पराजित होनेके भयसे डरे हुए हैं, अतः इस देशमें आकर इसी नगरमें सुखपूर्वक निवास करते हैं॥२७॥

नाकपृष्ठमुपागम्य निवसन्ति यथासुखम्।
सोऽहं निराशो युद्धस्य जीवितं नाद्य कामये॥ २८॥

'साथ ही मेरी आज्ञा ले स्वर्गमें भी जाकर वहाँ सुखपूर्वक रहते हैं, अतः मैं युद्धसे निराश हो गया हूँ। अब युद्ध न मिलनेसे मुझे जीवित रहनेकी इच्छा नहीं होती॥२८॥

अयुध्यतो वृथा ह्येषां बाहूनां धारणं मम।
तद् ब्रूहि मम युद्धस्य कच्चिदागमनं भवेत्।
न मे युद्धं विना देव रतिरस्ति प्रसीद मे॥ २९॥

'यदि युद्धका सुयोग न मिला तो मेरे लिये इन सहस्र भुजाओंका बोझ ढोना व्यर्थ है; अतः बताइये, क्या मुझे युद्धका अवसर प्राप्त हो सकता है? देव! युद्धके बिना मेरा मन कहीं नहीं लग रहा है। अतः इसके लिये मुझपर कृपा कीजिये'॥ २९॥

ततः प्रहस्य भगवानब्रवीद् वृषभध्वजः।
भविता बाण युद्धं वै यथा तच्छृणु दानव॥ ३०॥

यह सुनकर भगवान् वृषभध्वज ठठाकर हँस पड़े और इस प्रकार बोले—'बाणासुर! जिस प्रकार तुम्हें युद्धका अवसर प्राप्त होगा, वह सुनो॥ ३०॥

ध्वजस्यास्य यदा भङ्गस्तव तात भविष्यति।
स्वस्थाने स्थापितस्याथ तदा युद्धं भविष्यति॥ ३१॥

'तात! अपने स्थानपर स्थापित हुआ तुम्हारा यह ध्वज जब खण्डित होकर गिर जायगा, तब तुम्हें युद्ध प्राप्त होगा'॥ ३१॥

इत्येवमुक्तः प्रहसन् बाणस्तु बहुशो मुदा।
प्रसन्नवदनो भूत्वा पादयोः पतितोऽब्रवीत्॥ ३२॥

उनके ऐसा कहनेपर बाणासुरका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। वह आनन्दमें मग्न हो बारंबार जोर-जोरसे हँसने लगा और भगवान् शिवके चरणोंमें गिरकर इस प्रकार बोला—॥

दिष्ट्या बाहुसहस्रस्य न वृथा धारणं मम।
दिष्ट्या सहस्राक्षमहं विजेता पुनराहवे॥ ३३॥

'प्रभो! बड़े सौभाग्यकी बात है कि मेरे लिये इन सहस्र भुजाओंको धारण करना व्यर्थ नहीं होगा। सौभाग्यसे मैं पुनः युद्धमें सहस्रलोचन इन्द्रको परास्त करूँगा'॥ ३३॥

आनन्देनाश्रुपूर्णाभ्यां नेत्राभ्यामरिमर्दनः।
पञ्चाञ्जलिशतैर्देवं पूजयन् पतितो भुवि॥ ३४॥

ऐसा कहकर शत्रुमर्दन बाण आनन्दाश्रुओंसे परिपूर्ण नेत्रों तथा पाँच सौ अञ्जलियोंद्वारा महादेवजीकी पूजा करता हुआ पुनः पृथ्वीपर उनके चरणोंमें पड़ गया॥ ३४॥

ईश्वर उवाच

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ बाहूनामात्मनः स्वकुलस्य तु।
सदृशं प्राप्स्यसे वीर युद्धमप्रतिमं महत्॥ ३५॥

तब महादेवजी बोले—वीर! उठो, उठो! तुम अपनी इन भुजाओं तथा कुलके अनुरूप ऐसा महान् युद्ध प्राप्त करोगे, जिसकी कहीं तुलना नहीं है॥ ३५॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तस्ततो बाणस्त्र्यम्बकेण महात्मना।
हर्षेणात्युच्छ्रितः शीघ्रं ननाम वृषभध्वजम्॥ ३६॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! महात्मा त्र्यम्बकके ऐसा कहनेपर हर्षसे उत्फुल्ल हुए बाणासुरने भगवान् वृषभध्वजको शीघ्र नमस्कार किया॥ ३६॥

शितिकण्ठविसृष्टस्तु बाणः परपुरंजयः ।
ययौ स्वभवनं तत्र यत्र ध्वजगृहं महत् ॥ ३७ ॥

तदनन्तर भगवान् नीलकण्ठसे विदा लेकर शत्रुनगरीपर विजय पानेवाला बाणासुर अपने घरको गया, जहाँ विशाल ध्वजगृह बना हुआ था ॥ ३७ ॥

तत्रोपविष्टः प्रहसन् कुम्भाण्डमिदमब्रवीत् ।
प्रियमावेदयिष्यामि भवतो यन्मनोगतम् ॥ ३८ ॥

वहाँ बैठकर हँसते हुए बाणने अपने मन्त्री कुम्भाण्डसे इस प्रकार कहा—'मन्त्रिप्रवर ! मैं तुम्हें प्रिय समाचार निवेदन करूँगा, जो तुम्हारे मनको अभीष्ट है' ॥ ३८ ॥

इत्येवमुक्तः प्रहसन् बाणमप्रतिमं रणे ।
प्रोवाच राजन् किं त्वेतद् वक्तुकामोऽसि मत्प्रियम् ॥ ३९ ॥

उसका ऐसा कथन सुनकर हँसते हुए कुम्भाण्डने युद्धमें अनुपम वीरता प्रकट करनेवाले बाणासुरसे कहा—'राजन् ! यह क्या बात है ? आप मेरे किस प्रिय समाचारको बताना चाहते हैं ? ॥ ३९ ॥

विस्मयोत्फुल्लनयनः प्रहर्षादिव भाषसे ।
त्वत्तः श्रोतुमिहेच्छामि वरं किं लब्धवानसि ॥ ४० ॥
देवदेवप्रसादेन स्कन्दस्य च महात्मनः ।

'आपके नेत्र आश्चर्यसे खिल उठे हैं। आप अत्यन्त हर्षसे प्रेरित होकर बोल रहे हैं। मैं यहाँ आपके मुखसे सुनना चाहता हूँ कि आपने देवाधिदेव महादेवजीकी कृपा और महात्मा स्कन्दके प्रसादसे कौन-सा वर प्राप्त किया है ? ॥ ४०½ ॥

ईप्सितं किं त्वया प्राप्तं तन्मे ब्रूहि महासुर ॥ ४१ ॥
शितिकण्ठप्रसादेन स्कन्दगोपायनेन च ।

'महान् असुर ! आपने भगवान् नीलकण्ठके कृपा-प्रसाद और स्वामी स्कन्दके संरक्षणद्वारा कौन-सा अभीष्ट वर प्राप्त किया है, यह मुझे बताइये ॥ ४१½ ॥

कच्चित्त्रैलोक्यराज्यं ते व्यादिष्टं शूलपाणिना ॥ ४२ ॥
कच्चिदिन्द्रस्तव भयात् पातालमुपयास्यति ।

'क्या भगवान् शूलपाणिने आपको तीनों लोकोंका राज्य दे दिया ? क्या देवराज इन्द्र आपके भयसे पाताललोकको चले जायँगे ? ॥ ४२½ ॥

कच्चिद् विष्णुपरित्रासं विमोक्ष्यन्ति दितेः सुताः ॥ ४३ ॥
पातालवासमुत्सृज्य कच्चित् तव बलाश्रयात् ।
विबुधावासनिरता भविष्यन्ति महासुराः ॥ ४४ ॥

'क्या दितिके पुत्र अब भगवान् विष्णुका भय त्याग देंगे ? क्या आपके बलका सहारा लेकर बड़े-बड़े असुर पातालका निवास छोड़कर स्वर्गलोकमें वास करेंगे ॥ ४३-४४ ॥

बलिर्विष्णुपराक्रान्तो बद्धस्तव पिता नृप ।
सलिलौघाद् विनिष्क्रम्य कच्चिद् राज्यमवाप्स्यति ॥ ४५ ॥

'राजन् ! क्या आपके पिता राजा बलि, जो विष्णुके पराक्रमसे अभिभूत हो पातालमें बँधे हुए हैं, समुद्रकी जलराशिसे बाहर निकलकर पुनः त्रिलोकीका राज्य प्राप्त करेंगे ॥

दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यस्रग्गन्धलेपनम् ।
कच्चिद् वैरोचनिं तात द्रक्ष्यामः पितरं तव ॥ ४६ ॥

'तात ! क्या हमलोग तुम्हारे पिता विरोचनकुमार बलिको पुनः दिव्यमाला, दिव्यवस्त्र, दिव्यपुष्पोंके हार, दिव्य गन्ध तथा दिव्य अनुलेपन धारण किये देखेंगे ? ॥ ४६ ॥

कच्चित् त्रिभिः क्रमैः पूर्वं हृताँल्लोकानिमान् प्रभो ।
पुनः प्रत्यानयिष्यामो जित्वा सर्वान् दिवौकसः ॥ ४७ ॥

'प्रभो ! पहले विष्णुके तीन पगोंद्वारा जो हर लिये गये थे, उन्हीं इन तीनों लोकोंको क्या हम पुनः समस्त देवताओंको पराजित करके लौटा लायँगे ? ॥ ४७ ॥

स्निग्धगम्भीरनिर्घोषं शङ्खस्वनपुरोजवम् ।
कच्चिन्नारायणं देवं जेष्यामः समितिंजयम् ॥ ४८ ॥

'जिनकी वाणीका घोष मेघगर्जनाके समान स्निग्ध एवं गम्भीर है तथा जिनके आगे उनका शङ्खनाद वेगपूर्वक चलता है, उन युद्धविजयी नारायणदेवको क्या हमलोग जीत सकेंगे ? ॥ ४८ ॥

कच्चिद् वृषध्वजस्तात प्रसादसुमुखस्तव ।
यथा ते हृदयोत्कम्पः साश्रुबिन्दुः प्रवर्तते ॥ ४९ ॥

'तात ! क्या भगवान् वृषभध्वज आपके प्रति कृपा करनेके लिये प्रसन्नमुख हुए हैं ? आपके हृदयमें जैसा कम्प हो रहा है और नेत्रोंसे जिस प्रकार आनन्दके आँसू झर रहे हैं, उनको देखते हुए पूर्वोक्त बातोंका ही अनुमान होता है ॥

कच्चिदीश्वरतोषेण कार्तिकेयमतेन च ।
प्राप्तवानसि सर्वेषामस्माकं राज्यसम्पदम् ॥ ५० ॥

'क्या भगवान् शिवके संतोष और कार्तिकेयकी सम्मतिसे आपने हम सब लोगोंके लिये राज्य-सम्पत्ति प्राप्त की है ?' ॥

इति कुम्भाण्डवचनैश्चोदितः सोऽसुरोत्तमः ।
बाणो वाणीमसंसक्तां प्रोवाच वदतां वरः ॥ ५१ ॥

तब कुम्भाण्डकी ऐसी बातोंसे प्रेरित होकर वक्ताओंमें श्रेष्ठ असुरप्रवर बाणने अस्खलित वाणीमें कहा ॥ ५१ ॥

बाण उवाच

चिरात्प्रभृति कुम्भाण्ड न युद्धं प्राप्यते मया ।
ततो मया मुदा पृष्टः शितिकण्ठः प्रतापवान् ॥ ५२ ॥

बाणासुर बोला— कुम्भाण्ड ! चिरकालसे मुझे युद्ध नहीं प्राप्त हो रहा था, इसलिये मैंने प्रतापी भगवान् नीलकण्ठसे प्रसन्नतापूर्वक पूछा—॥ ५२ ॥

युद्धाभिलाषः सुमहान् देव संजायते मम ।
अभिप्राप्स्याम्यहं युद्धं मनसस्तुष्टिवर्धनम् ॥ ५३ ॥

'देव ! मेरे मनमें युद्धकी बड़ी अभिलाषा हो रही है। क्या मैं कभी ऐसा युद्ध प्राप्त करूँगा, जो मेरे मानसिक संतोषको बढ़ानेवाला हो' ॥ ५३ ॥

ततोऽहं देवदेवेन हरेणामित्रघातिना।
प्रहस्य सुचिरं कालमुक्तोऽस्मि वचनं प्रियम्।
प्राप्स्यसे सुमहद् युद्धं त्वं बाणाप्रतिमं महत् ॥ ५४ ॥

मेरी यह बात सुनकर शत्रुघाती देवाधिदेव महादेवने देरतक हँसकर मुझसे यह प्रिय वचन कहा—'बाणासुर ! तुम्हें ऐसा महान् युद्ध प्राप्त होगा, जिसकी कहीं तुलना नहीं है ॥

मयूरध्वजभङ्गस्ते भविष्यति यदासुर।
तदा त्वं प्राप्स्यसे युद्धं सुमहद् दितिनन्दन ॥ ५५ ॥

'दितिनन्दन असुर ! जब तुम्हारा मयूरध्वज टूटकर गिर जायगा, तब तुम्हें महान् युद्धका अवसर प्राप्त होगा' ॥५५॥

ततोऽहं परमप्रीतो भगवन्तं वृषध्वजम्।
प्रणम्य शिरसा देवं त्वदन्तिकमुपागतः ॥ ५६ ॥

तब मैं अत्यन्त प्रसन्न हो भगवान् वृषभध्वज देवको सिर झुकाकर प्रणाम करके तुम्हारे पास आया हूँ ॥ ५६ ॥

इत्येवमुक्तः कुम्भाण्डः प्रोवाच नृपतिं तदा।
अहो न शोभनं राजन् यदेवं भाषसे वचः ॥ ५७ ॥

बाणासुरके ऐसा कहनेपर कुम्भाण्डने उस असुरराजसे कहा—'अहो राजन् ! आप जो ऐसी बात कह रहे हैं, इसका परिणाम अच्छा नहीं है' ॥ ५७ ॥

एवं कथयतोस्तत्र तयोरन्योन्यमुच्छ्रितः।
ध्वजः पपात वेगेन शक्राशनिसमाहतः ॥ ५८ ॥

वे दोनों वहाँ आपसमें ऐसी बातें कर रहे थे कि इतनेमेंही बाणासुरका ऊँचा ध्वज इन्द्रके वज्रसे आहत हो बड़े वेगसे गिर पड़ा ॥ ५८ ॥

तं तथा पतितं दृष्ट्वा सोऽसुरो ध्वजमुत्तमम्।
प्रहर्षमतुलं लेभे मेने चाहवमागतम् ॥ ५९ ॥

अपने उस उत्तम ध्वजको टूटकर गिरा हुआ देख बाणासुरको अनुपम हर्ष प्राप्त हुआ और उसे यह विश्वास हो गया कि अब युद्धका अवसर आना ही चाहता है ॥ ५९ ॥

ततश्चकम्पे वसुधा शक्राशनिसमाहता।
ननादान्तर्हितो भूमौ वृषदंशो जगर्ज च ॥ ६० ॥

तदनन्तर इन्द्रके वज्रके आघातसे पीड़ित हो पृथ्वी काँपने लगी। भूमिमें छिपा हुआ बिलाव आर्तनाद एवं गर्जना करने लगा ॥ ६० ॥

देवानामपि यो देवः सोऽप्यवर्षत वासवः।
शोणितं शोणितपुरे सर्वतः परमं ततः ॥ ६१ ॥

जो देवताओंके भी देवता हैं, वे इन्द्र शोणितपुरमें सब ओर बहुत रक्तकी वर्षा करने लगे ॥ ६१ ॥

सूर्यं भित्त्वा महोल्का च पपात धरणीतले।
स्वपक्षे चोदितः सूर्यो भरणीं समपीडयत् ॥ ६२ ॥

आकाशसे सूर्यमण्डलका मर्दन करके बहुत बड़ी उल्का धरतीपर गिरी। अपने पक्षके देवताओंसे प्रेरित हुए सूर्यदेव भरणी नामक नक्षत्रको पीडा देने लगे ॥ ६२ ॥

चैत्यवृक्षेषु सहसा धाराः शतसहस्रशः।
शोणितस्य स्रवन् घोरा निपेतुस्तारका भृशम् ॥ ६३ ॥

चैत्य-वृक्षोंपर सहसा शोणितकी सैकड़ों-हजारों धाराएँ गिरने लगीं, जो बड़ी भयंकर प्रतीत होती थीं। आकाशसे बारंबार तारे टूटकर गिरने लगे ॥ ६३ ॥

राहुरग्रसदादित्यमपर्वणि विशाम्पते।
लोकक्षयकरे काले निर्घातश्चापतन्महान् ॥ ६४ ॥

प्रजानाथ ! राहुने बिना पर्वके ही सूर्यको ग्रस लिया। वह लोकविनाशक समय प्राप्त होनेपर भारी गड़गड़ाहटके साथ वज्रपात होने लगा ॥ ६४ ॥

दक्षिणां दिशमास्थाय धूमकेतुः स्थितोऽभवत्।
अनिशं चाप्यविच्छिन्ना ववुर्वाताः सुदारुणाः ॥ ६५ ॥

धूमकेतु दक्षिण दिशामें आकर स्थित हो गया। निरन्तर अविच्छिन्नभावसे अत्यन्त दारुण वायु चलने लगी ॥६५॥

श्वेतलोहितपर्यन्तः कृष्णग्रीवस्तडिद्द्युतिः।
त्रिवर्णपरिघो भानुः संध्यारागमथावृणोत् ॥ ६६ ॥

सूर्यपर तीन रंगके घेरे पड़ गये। किनारे-किनारे तो सफेद और लाल रंगके घेरे थे; किंतु कण्ठभागमें काले रंगका घेरा था। उसमें सूर्यकी कान्ति विद्युतके समान प्रतीत होती थी। उन्होंने अपनी उस दीप्तिसे संध्याकालकी लालीको ढक दिया ॥ ६६ ॥

वक्रमङ्गारकश्चक्रे कृत्तिकासु भयंकरः।
बाणस्य जन्मनक्षत्रं भर्त्सयन्निव सर्वशः ॥ ६७ ॥

मङ्गल वक्रगतिसे कृत्तिकामें आकर स्थित हो गये, जो भयकी सूचना दे रहे थे। वे सब प्रकारसे बाणासुरके जन्मनक्षत्र रोहिणीकी भर्त्सना-सी कर रहे थे ॥ ६७ ॥

अनेकशाखश्चैत्यश्च निपपात महीतले।
अर्चितः सर्वकन्याभिर्दानवानां महात्मनाम् ॥ ६८ ॥

बहुत-सी शाखाओंसे युक्त चैत्यवृक्ष, जो महामनस्वी दानवोंकी समस्त कन्याओंद्वारा पूजित होता था, सहसा पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ६८ ॥

एवं विविधरूपाणि निमित्तानि निशामयन्।
बाणो बलमदोन्मत्तो निश्चयं नाधिगच्छति ॥ ६९ ॥

इस प्रकार भाँति-भाँतिके उत्पातोंको देखता हुआ बलके मदसे उन्मत्त बाणासुर किसी निश्चयपर नहीं पहुँच सका था ॥ ६९ ॥

विचेतास्त्वभवत् प्राज्ञः कुम्भाण्डस्तत्त्वदर्शिवान्।
बाणस्य सचिवस्तत्र कीर्तयन् बहु किल्बिषम् ॥ ७० ॥

परंतु बाणासुरके विद्वान् मन्त्री तत्त्वदर्शी कुम्भाण्ड नाना प्रकारके दुष्परिणामोंका वर्णन करते हुए अचेत-से हो गये ॥ ७० ॥

उत्पाता ह्यत्र दृश्यन्ते कथयन्तो न शोभनम्।
तव राज्यविनाशाय भविष्यन्ति न संशयः ॥ ७१ ॥

वे बोले—'असुरराज ! यहाँ बहुत-से उत्पात दिखायी देते हैं, जो शुभ परिणामके सूचक नहीं हैं। वे आपके राज्यका विनाश करनेमें सहायक होंगे, इसमें संदेह नहीं है ॥ ७१ ॥

वयं चान्ये च सचिवा भृत्यास्ते च तवानुगाः।
क्षयं यास्यन्ति नचिरात् सर्वे पार्थिव दुर्नयात ॥ ७२ ॥

'पृथ्वीनाथ ! आपकी दुर्नीतिसे हम तथा दूसरे मन्त्री और आपके अनुगामी सेवक—ये सब-के-सब शीघ्र ही नष्ट हो जायँगे ॥ ७२ ॥

यथा शक्रध्वजतरोः स्वदर्पात् पतनं भवेत्।
बलमाकाङ्क्षतो मोहात् तथा बाणस्य नर्दतः ॥ ७३ ॥

'आपके अपने ही दर्पसे जिस तरह पूर्वोक्त चैत्यवृक्षका जो अपनी ऊँचाईसे इन्द्रध्वजको छू लेता था, पतन हो गया, उसी प्रकार बलकी आकाङ्क्षा रखकर गर्जना करनेवाले आप बाणासुरका भी अपने ही मोहवश अभिमानसे पतन हो जायगा ॥ ७३ ॥

देवदेवप्रसादात् तु त्रैलोक्यविजयं गतः।
उत्सेकाद् दृश्यते नाशो युद्धाकाङ्क्षी ननर्द ह ॥ ७४ ॥

'देवाधिदेव महादेवजीके प्रसादसे जिन्होंने तीनों लोकोंपर विजय प्राप्त कर ली, उन्हीं असुरराजका अब अभिमानवश विनाश दिखायी देता है, तभी तो आप युद्धकी अभिलाषा लेकर गर्जना करने लगे हैं' ॥ ७४ ॥

बाणः प्रीतमनास्त्वेवं पपौ पानमनुत्तमम्।
दैत्यदानवनारीभिः सार्धमुत्तमविक्रमः ॥ ७५ ॥

परंतु बाणासुरको इसकी परवा नहीं थी, वह उत्तम पराक्रमी असुर प्रसन्नचित्त होकर दैत्यों और दानवोंकी स्त्रियोंके साथ उत्तम मधुपान करने लगा ॥ ७५ ॥

कुम्भाण्डश्चिन्तयाविष्टो राजवेश्माभ्ययात् तदा।
अचिन्तयच्च तत्त्वार्थं तैस्तैरुत्पातदर्शनैः ॥ ७६ ॥

मन्त्री कुम्भाण्ड उस समय चिन्तित होकर राजभवनको चले गये तथा भिन्न-भिन्न उत्पातोंको देखकर तात्त्विक अर्थका चिन्तन करने लगे ॥ ७६ ॥

राजा प्रमादी दुर्बुद्धिर्जितकाशी महासुरः।
युद्धमेवाभिलषते न दोषान्मन्यते मदात् ॥ ७७ ॥

वे मन-ही-मन सोचने लगे, यह असुरोंका राजा महान् असुर बाण प्रमादी हो गया है। इसकी बुद्धि बिगड़ गयी है। यह विजयश्रीसे उल्लसित हो बारंबार युद्धकी ही अभिलाषा रखने लगा है। बलके मदसे उन्मत्त होकर इसमें दोष नहीं मान रहा है ॥ ७७ ॥

महोत्पातभयं चैव न तन्मिथ्या भविष्यति।
अपीदानीं भवेन्मिथ्या सर्वमुत्पातदर्शनम् ॥ ७८ ॥

महान् उत्पातोंसे जिस भयकी सूचना मिल रही है। वह मिथ्या नहीं होगा। क्या कोई ऐसा उपाय है, जिससे इस समय यह सारा उत्पात-दर्शन मिथ्या हो जाय ? ॥ ७८ ॥

इह त्वास्ते त्रिनयनः कार्तिकेयश्च वीर्यवान्।
तेनोत्पन्नोऽपि दोषो नः कच्चिद् गच्छेत् पराभवम् ॥ ७९ ॥

यहाँ साक्षात् त्रिनेत्रधारी भगवान् शिव रहते हैं। पराक्रमी कार्तिकेय भी यहीं विराजमान हैं, इससे हमारे लिये उत्पन्न हुआ यह दोष भी क्या शान्त हो जायगा ? ॥ ७९ ॥

उत्पन्नदोषप्रभवः क्षयोऽयं भविता महान्।
दोषाणां न भवेन्नाश इति मे धीयते मतिः ॥ ८० ॥

इन उत्पन्न हुए उत्पातरूपी दोषोंसे यह सूचित होता है कि यहाँ महान् संहार होनेवाला है। मेरा तो यही निश्चय है कि अब इन दोषोंका नाश नहीं हो सकता ॥ ८० ॥

नियतो दोष एवायं भविष्यति न संशयः।
दौरात्म्यान्नृपतेरस्य दोषभूता हि दानवाः ॥ ८१ ॥

इस राजाका जो यह दुरात्मभाव है, यही हमारे लिये नियत दोष होगा, इसमें संशय नहीं है; क्योंकि समस्त दानव ही इस दोषसे युक्त हैं ॥ ८१ ॥

देवदानवसंघानां यः कर्ता भुवनप्रभुः।
भगवान् कार्तिकेयश्च कृतवाँल्लोहिते पुरे ॥ ८२ ॥

जो देवताओं और दानवोंके समुदायोंकी सृष्टि करनेवाले तथा समस्त भुवनोंके प्रभु हैं, उन भगवान् शिव तथा कार्तिकेयने बाणासुरको शोणितपुरमें बसा दिया था ॥ ८२ ॥

प्राणैः प्रियतरो नित्यं भविष्यति गुहः सदा।
तद्विशिष्टश्च बाणोऽपि शिवस्य सततं प्रियः ॥ ८३ ॥

स्कन्द तो सदा भगवान् शिवके लिये प्राणोंसे भी अधिक प्रिय होंगे और उनके साथ रहकर बाणासुर भी निरन्तर उनका प्रिय बना रहेगा ॥ ८३ ॥

दर्पोत्सेकात् तु नाशाय वरं याचितवान् भवम्।
युद्धहेतोः स लुब्धस्तु सर्वथा न भविष्यति ॥ ८४ ॥

परंतु इसने बलके घमंडमें आकर अपने ही विनाशके लिये भगवान् शङ्करसे युद्धके लिये वर माँग लिया। युद्धलोलुप होनेके कारण यह सर्वथा अपना अस्तित्व खो देगा ॥ ८४ ॥

यदि विष्णुपुरोगानामिन्द्रादीनां दिवौकसाम् ।
भवित्री घनवत् प्राप्तिर्भवहस्तात् कृता भवेत् ॥ ८५ ॥

यदि भगवान् विष्णुको आगे करके इन्द्र आदि देवता मेघोंकी घटाके समान यहाँ छा जायँ तो भी भगवान् शङ्करके हाथसे उनके उस आक्रमणका प्रतीकार हो सकता है ॥८५॥

एतयोश्च हि को युद्धं कुमारभवयोरिह ।
शक्तो दातुं समागम्य बाणसाहाय्यकाङ्क्षिणोः ॥ ८६ ॥

बाणासुरकी सहायताकी इच्छा रखनेवाले इन भगवान् शङ्कर और कुमार कार्तिकेयके सामने आकर कौन इन्हें युद्धका अवसर दे सकता है ? ॥ ८६ ॥

न च देववचो मिथ्या भविष्यति कदाचन ।
भविष्यति महद् युद्धं सर्वदैत्यविनाशनम् ॥

परंतु महादेवजीका वचन कभी मिथ्या नहीं होगा । (जब उन्होंने महान् युद्ध होनेकी बात कही है, तब) समस्त दैत्योंका विनाश करनेवाला महायुद्ध होकर ही रहेगा ॥ ८७ ॥

स एवं चिन्तयाविष्टः कुम्भाण्डस्तत्त्वदर्शिवान् ।
स्वस्तिप्रणिहितां बुद्धिं चकार स महासुरः ॥ ८८ ॥

इस प्रकार चिन्तामग्न होकर महान् असुर तत्त्वदर्शी कुम्भाण्डने अपनी बुद्धिको कल्याणचिन्तनमें लगाया ॥८८॥

ये हि देवैर्विरुध्यन्ते पुण्यकर्मभिराहवे ।
यथा बलिर्नियमितस्तथा ते यान्ति संक्षयम् ॥ ८९ ॥

जो युद्धमें पुण्यकर्मा देवताओंके साथ विरोध रखते हैं अथवा वे देवता ही जिनके विरोधमें खड़े हो जाते हैं, वे जिस प्रकार राजा बलि बाँधे गये थे, उसी प्रकार बन्धनमें पड़कर नष्ट हो जाते हैं ॥ ८९ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि बाणयुद्धे षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें बाणासुरका युद्धविषयक एक सौ सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११६ ॥

सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः

शिव-पार्वतीका क्रीड़ाविहार, पार्वतीका उषाको पतिसमागमके लिये वर देना तथा उषाकी विरह-व्यथाका वर्णन

वैशम्पायन उवाच

क्रीडाविहारोपगतः कदाचिदभवद् भवः ।
देव्या सह नदीतीरे रम्ये श्रीमति स प्रभुः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं---जनमेजय ! किसी समय प्रभावशाली भगवान् शङ्कर गङ्गा नदीके शोभासम्पन्न रमणीय तटपर देवी पार्वतीके साथ क्रीड़ा-विहारके लिये गये ॥ १ ॥

शतानि तत्राप्सरसां चिक्रीडुश्च समन्ततः ।
सर्वर्तुकवने रम्ये गन्धर्वपतयस्तथा ॥ २ ॥

वहाँ सभी ऋतुओंकी शोभासे सुशोभित सर्वर्तुक वनमें सब ओर सैकड़ों अप्सराएँ तथा गन्धर्वराज क्रीडा कर रहे थे ॥ २ ॥

कुसुमैः पारिजातस्य पुष्पैः संतानकस्य च ।
गन्धोद्दाममिवाकाशं नदीतीरं तु सर्वशः ॥ ३ ॥

पारिजात और संतानक नामक कल्पवृक्षके पुष्पोंद्वारा उस नदी-तटका सारा आकाश उद्दाम सुगन्धसे व्याप्त हो रहा था ॥ ३ ॥

वेणुवीणामृदङ्गैश्च पणवैश्च सहस्रशः ।
वाद्यमानैः स शुश्राव गीतमप्सरसां तदा ॥ ४ ॥

वेणु, वीणा, मृदङ्ग और पणव आदि सहस्रों वाद्योंकी मधुर ध्वनिके साथ अप्सराओंका मनोहर गीत उन्होंने सुना ॥ ४ ॥

सूतमागधकल्पैश्चास्तुवन्नप्सरसां गणाः ।
देवदेवं सुवपुषं स्रग्विणं रक्तवाससम् ॥ ५ ॥
श्रीमहेशं देवदेवमर्चयन्ति मनोरमम् ।

अप्सराओंके समुदाय सूत और मागधोंके-से वचनोंद्वारा भगवान् शिवकी स्तुति करते थे । सुन्दर शरीरधारी देवाधिदेव महादेव फूलोंके हार धारण किये लाल रङ्गके वस्त्रसे सुशोभित थे । उन श्रीमहेश्वरका रूप बड़ा ही मनोरम था । सब अप्सराएँ वहाँ उन देवाधिदेवकी पूजा करती थीं ॥५½॥

ततस्तु देव्या रूपेण चित्रलेखा वराप्सराः ॥ ६ ॥
भवं प्रसादयामास देवी च प्राहसत् तदा ।
प्रसादयन्तीमीशानं प्रहसन्त्यप्सरोगणाः ॥ ७ ॥

इसी समय चित्रलेखा नामवाली श्रेष्ठ अप्सरा देवी पार्वतीका रूप धारण करके महादेवजीको रिझाने लगी । यह देख देवी पार्वती उस समय जोर-जोरसे हँसने लगीं । महादेवजीको रिझानेमें लगी हुई उस चित्रलेखाको लक्ष्य करके दूसरी अप्सराएँ भी हँसने लगीं ॥ ६-७ ॥

भवस्य पार्षदा दिव्या नानारूपा महौजसः ।
देव्या ह्यनुज्ञया सर्वे क्रीडन्ते तत्र तत्र ह ॥ ८ ॥

भगवान् शङ्करके जो नाना रूपधारी दिव्य एवं महाबली पार्षद थे, वे सब देवी पार्वतीकी आज्ञासे विभिन्न स्थानोंमें क्रीडा कर रहे थे ॥ ८ ॥

अथ ते पार्षदास्तत्र रहस्ये सुविपश्चितः।
महादेवस्य रूपेण तच्चिह्नं रूपमास्थिताः ॥ ९ ॥
ततो देव्याः सुरूपेण लीलया वदनेन च।

तदनन्तर वे विद्वान् पार्षद एकान्तमें जाकर महादेवजीके रूपसे उन्हींके समान ध्वज आदि चिह्न तथा आकार धारण करके खड़े हो गये। फिर तो अप्सराएँ भी महादेवीके समान सुन्दर रूप, लीला और मुख एवं वार्तालापसे युक्त हो उनके साथ क्रीडा करने लगीं ॥ ९½ ॥

देवी प्रहासं मुमुचे ताश्चैवाप्सरसस्तदा।
ततः किलकिलाशब्दः प्रादुर्भूतः समन्ततः ॥ १० ॥

यह देख उस समय देवी पार्वती तथा वे अप्सराएँ जोर-जोरसे ठहाका मारकर हँसने लगीं। इससे वहाँ चारों ओर किलकिलाहटका शब्द गूँज उठा ॥ १० ॥

प्रहर्षमतुलं लेभे भवः प्रीतमनास्तदा।
बाणस्य दुहिता कन्या तत्रोषा नाम भामिनी ॥ ११ ॥

उस समय भगवान् शङ्करको अनुपम हर्ष प्राप्त हुआ। उनका मन प्रसन्न हो गया। उस अवसरपर बाणासुरकी पुत्री भामिनी उषा भी वहीं थी ॥ ११ ॥

देवं संक्रीडितं दृष्ट्वा देव्या सह नदीगतम्।
दीप्यमानं महादेवं द्वादशादित्यतेजसम् ॥ १२ ॥

उसने देखा, बारह सूर्योंके समान तेजस्वी महादेवजी अपनी दीप्तिसे देदीप्यमान हैं और नदीके तटपर देवी पार्वतीके साथ मधुर क्रीडामें आसक्त हो रहे हैं ॥ १२ ॥

नानारूपं वपुः कृत्वा देव्याः प्रियचिकीर्षया।
उषा मनोरथं चक्रे पार्वत्याः संनिधौ तथा ॥ १३ ॥

वे देवीका प्रिय करनेकी इच्छासे नाना रूप धारण करके क्रीड़ा कर रहे हैं। यह देख उषाने देवी पार्वतीके समीप ही मनमें यह संकल्प किया ॥ १३ ॥

धन्या हि भर्तृसहिता रमत्येवं समागता।
मनसा त्वथ संकल्पमुषया भाषितं तथा ॥ १४ ॥

'वह नारी धन्य है, जो पतिके साथ इस तरह मिलकर रमण करती है।' अपने इस मानसिक संकल्पको उषाने मन-ही मन दुहराया ॥ १४ ॥

विज्ञाय तमभिप्रायमुषायाः पर्वतात्मजा।
प्राह देवी ततो वाक्यमुषां हर्षयती शनैः ॥ १५ ॥

उषाके उस अभिप्रायको जानकर पार्वती देवी उसे हर्ष प्रदान करती हुई धीरेसे बोलीं—॥ १५ ॥

उषे त्वं शीघ्रमप्येवं भर्त्रा सह रमिष्यसि।
यथा देवो मया सार्धं शङ्करः शत्रुनाशनः ॥ १६ ॥

'उषे! तुम भी शीघ्र ही पतिके साथ इसी तरह रमण करोगी, जैसे शत्रुनाशन भगवान् शङ्कर मेरे साथ रमण करते हैं' ॥ १६ ॥

एवमुक्ते तदा देव्या वाक्ये चिन्ताविलेक्षणा।
उषा भावं तदा चक्रे भर्त्रा रंस्ये कदा सह ॥ १७ ॥

देवीके ऐसा कहनेपर उषाकी आँखें इस चिन्तासे मुँद गयीं कि पता नहीं, यह सौभाग्य कब प्राप्त होगा? उस समय उसने मन-ही-मन यह अभिलाषा की कि मैं पतिके साथ कब रमण करूँगी ॥ १७ ॥

तदा हैमवती वाक्यं सम्प्रहस्येदमब्रवीत्।
उषे शृणुष्व वाक्यं मे यदा संयोगमेष्यसि ॥ १८ ॥

तब हिमवान्-कुमारीने हँसकर उससे यह बात कही—'उषे! मेरी बात सुनो, तुम्हें पतिका संयोग कब प्राप्त होगा, यह बताती हूँ ॥ १८ ॥

वैशाखे मासि हर्म्यस्थां द्वादश्यां त्वां दिनक्षये।
रमयिष्यति यः स्वप्ने स ते भर्ता भविष्यति ॥ १९ ॥

'वैशाख मासकी द्वादशी तिथिको प्रदोषकालमें अट्टालिकापर सोयी हुई तुम्हारे साथ जो पुरुष स्वप्नमें आकर रमण करेगा, वही तुम्हारा पति होगा' ॥ १९ ॥

एवमुक्ता दैत्यसुता कन्यागणसमावृता।
अपाक्रामत हर्षेण रममाणा यथासुखम् ॥ २० ॥

देवीने जब ऐसी बात कही, तब कन्याओंके समुदायसे घिरी हुई दैत्यराजकुमारी उषा बड़े हर्षमें भरकर वहाँसे हट गयी और सुखपूर्वक इधर-उधर विचरने लगी ॥ २० ॥

ततः सखीभिर्हास्यन्ती हर्षेणोत्फुल्ललोचना।
तालिकासंनिपातैश्च ह्यन्योन्यं जघ्नुरूर्जिताः ॥ २१ ॥

फिर तो सखियाँ उसके साथ परिहास करने लगीं। उषाके नेत्र हर्षसे खिल उठे। वे सब उत्साहमें भरकर एक दूसरीके हाथपर तालियाँ देने लगीं ॥ २१ ॥

किन्नर्यो यक्षकन्याश्च नानादैतेयकन्यकाः।
अप्सरोगणकन्याश्च उषायाः सखितां गताः ॥ २२ ॥

किन्नरियाँ, यक्षकन्याएँ, अनेकानेक दैत्योंकी कुमारियाँ तथा अप्सराओंकी पुत्रियाँ भी उषाकी सखी हो गयी थीं ॥ २२ ॥

उक्ता च तत्र ताभिश्च भर्ता तव वरानने।
भविष्यत्यचिरेणैव देव्या वचनकल्पितः ॥ २३ ॥

उन सबने उषासे कहा—'सुमुखि! अब तो पार्वती देवीके कथनानुसार शीघ्र ही तुम्हें पतिकी प्राप्ति होगी ॥ २३ ॥

न हि देव्या वचो मिथ्या भविष्यति कदाचन।
रूपाभिजनसम्पन्नः पतिस्ते कल्पितस्तया ॥ २४ ॥

'देवीका वचन कभी मिथ्या नहीं होगा। उन्होंने तुम्हारे लिये मनोहर रूप और उत्तम कुलसे सम्पन्न पतिका निर्माण किया है' ॥ २४ ॥

उषा सखीनां तद् वाक्यं प्रतिपूज्य यथाविधि।
दत्तं मनोरथं देव्या भावयन्ती व्यवस्थिता ॥ २५ ॥

उषा सखियोंके उस कथनका विधिवत् आदर करके देवीके दिये हुए मनोरथका चिन्तन करती हुई खड़ी रही ॥ २५ ॥

ततः क्रीडाविहारं तमनुभूय सहोमया।
गतेऽहनि ततः सर्वा नार्यस्ताः परमाद्भुताः ॥ २६ ॥
ययुः स्वानालयान् सर्वा देवी चादर्शनं गता।

तत्पश्चात् पार्वतीजीके साथ उस क्रीडाविहारके सुखका अनुभव करके दिन व्यतीत होनेपर वे सब परम अद्भुत रूपवाली नारियाँ अपने-अपने घरोंको चली गयीं तथा देवी पार्वती भी अदृश्य हो गयीं ॥ २६½ ॥

काश्चिदश्वैस्तथा यानैर्गजैरन्यास्तथा रथैः ॥ २७ ॥
पुरं प्रविविशुर्हृष्टाः काश्चिदाकाशमास्थिताः।

उनमेंसे कुछ तो घोड़ोंपर, कुछ पालकियोंपर, कुछ हाथियोंपर और कुछ नारियाँ रथोंपर आरूढ़ होकर बड़े हर्षके साथ नगरमें प्रविष्ट हुईं। कुछ अप्सराकोटिकी स्त्रियाँ आकाशमार्गसे अभीष्ट स्थानको चली गयीं ॥ २७½ ॥

ततः प्रभृति सा देवी काममोहं गता विभो ॥ २८ ॥
देव्यास्तु वचनं स्मृत्वा संस्मरन्ती पतिं तदा।
निद्रां न भजते रात्रौ न दिवा भोजनं तथा ॥ २९ ॥

विभो! तभीसे वह देवी उषा कामजनित मोहके वशीभूत हो गयी। पार्वतीजीके वचनको याद करके पतिका चिन्तन करती हुई उषा उन दिनों न तो रातमें नींद लेती और न दिनमें भोजन करती थी ॥ २८-२९ ॥

स्मरन्ती पतिभावं सा विललाप नृपात्मजा।
निन्दन्ती शशिनं नाके सेवती न च चन्दनम् ॥ ३० ॥

वह राजकुमारी पतिभावका स्मरण करती हुई एकान्तमें विलाप किया करती थी। आकाशमें उदित हुए चन्द्रमाकी निन्दा करती और चन्दनका भी सेवन नहीं करती थी (विरहाग्नि बढ़ जानेके कारण उसे चन्द्रमा और चन्दन भी तापदायक प्रतीत होते थे।) ॥ ३० ॥

सा बाला मोहिता राजन् कामेन परिपीडिता।
उपचर्यन्ति तां सख्यो विज्वरामपि सज्वराम् ॥ ३१ ॥

राजन्! कामसे अत्यन्त पीड़ित हुई वह बाला अपनी सुध-बुध खो चुकी थी। यद्यपि उसे ज्वर आदि रोग नहीं लगे थे, तो भी उसे ज्वरग्रस्त मानकर सखियाँ उसके लिये तदनुरूप उपचार करती थीं ॥ ३१ ॥

तप्यते हृदयं तस्या लेपितं चन्दनेन च।
कपोले पाण्डिमाचिह्नं नेत्रे जलसमन्विते ॥ ३२ ॥

चन्दनसे लिप्त होनेपर भी उसका हृदय तप्त होता रहता था। उसके गुलाबी गालमें सफेदी और पीलेपनका चिह्न प्रकट होने लगा तथा दोनों नेत्र आँसुओंसे भरे रहते थे ॥ ३२ ॥

जृम्भणं च तथा स्वापो देहे तस्या व्यवर्धत।
पद्मिनीकन्दचूर्णानि शीतलानि मुहुर्मुहुः ॥ ३३ ॥
क्षिपन्ति सख्यो हृदये पीडिते मन्मथाग्निना।
व्यजनानि प्रकुर्वन्ति पृच्छन्ति च पुनः पुनः ॥ ३४ ॥

उसके शरीरमें अँगड़ाई और तन्द्राकी वृद्धि होने लगी। सखियाँ कामाग्निसे पीड़ित हुए उसके वक्षःस्थलपर बारंबार कमलिनीकन्दके शीतल चूर्ण बिखेरा करती थीं। वे बारंबार व्यजन डुलातीं और इस प्रकार पूछती थीं—॥ ३३-३४ ॥

का व्यथा किं शरीरं ते किमिदं तव भामिनि।
किं तुभ्यं रोचते देवि तदाख्याहि वरानने ॥ ३५ ॥

'भामिनि! तुम्हें कौन-सी व्यथा है? तुम्हारा शरीर कैसा हो गया? यह तुम्हें क्या हुआ है? देवि! वरानने! तुम्हें क्या अच्छा लगता है? यह सब बताओ ॥ ३५ ॥

कस्मादिदं समुत्पन्नं दुःखसाध्यं मनोरमे।
त्वन्मनोऽनुगतं वाक्यं वदन्त्येतास्तु सारिकाः ॥ ३६ ॥
शुका नीलतमाः सुभ्रु पठन्ति हि पुमानिव।
प्रह्लादजननं वाक्यं किमर्थं नाद्य भाषसे ॥ ३७ ॥

'मनोरमे! यह दुःसाध्य रोग तुम्हें कहाँसे उत्पन्न हुआ है? देखो! ये सारिकाएँ तुम्हारे मनके अनुकूल बोली बोलती हैं। सुभ्रु! ये अत्यन्त नीले तोते पुरुषके समान पढ़ रहे हैं। आज तुम इनके प्रति आह्लादजनक वचन क्यों नहीं बोल रही हो ॥ ३६-३७ ॥

तव तातो महावीरो देवानामपि दुर्जयः।
तस्याग्रे तिष्ठते कोऽपि न भूमौ वरवर्णिनि ॥ ३८ ॥

'वरवर्णिनि! तुम्हारे पिता महान् वीर हैं, देवताओंके लिये भी दुर्जय हैं। इस पृथ्वीपर उनके सामने कोई ठहर नहीं सकता ॥ ३८ ॥

बलेः पुत्रो महावीरो बाणो हि दुरतिक्रमः।
जितामरावतीकं च नगरं शोणिताह्वयम्।
यत्र संतिष्ठते देवः शूलहस्तो महेश्वरः ॥ ३९ ॥

'बलिके पुत्र महावीर बाण सर्वथा दुर्जय हैं। यह शोणितपुर नगर अपने वैभवसे अमरावतीको भी पराजित

कर चुका है, जहाँ साक्षात् भगवान् महेश्वर हाथमें त्रिशूल धारण किये नित्य निवास करते हैं ॥ ३९ ॥

पुत्रोऽयमिति जानीहि गिरिजां योऽब्रवीद्धरः।
बाणं प्रति महादेवस्तव तातमुषे शृणु ॥ ४० ॥

'उषे! सुनो। तुम्हारे पिता बाणासुरके लिये महान् देवता भगवान् हरने पार्वती देवीसे कहा था कि 'तुम इसे अपना पुत्र जानो' ॥ ४० ॥

का व्यथा ते मुखे स्वेदो नासाग्रे च विराजते।
नीहारबिन्दवः पद्मे राजन्ते शरदागमे ॥ ४१ ॥

'तुम्हें क्या पीड़ा है? तुम्हारे मुख और नासाग्र-भागमें पसीनेकी बूँदें सुशोभित हो रही हैं, ठीक उसी तरह जैसे शरत्काल आनेपर कमलके ऊपर ओसके कण शोभा पाते हैं ॥ ४१ ॥

सम्पूर्णचन्द्रप्रतिमं मुखं चन्द्रो यथा घने।
न शोभते तु विच्छायं किमर्थं कारणं वद ॥ ४२ ॥

'पूर्ण चन्द्रमाके समान तुम्हारा मुख आज बादलमें छिपे हुए चन्द्रमाकी भाँति कान्तिहीन दिखायी देनेके कारण शोभा नहीं पा रहा है। ऐसा किस लिये हो रहा है, कारण बताओ ?॥ ४२ ॥

श्वासान् मुञ्चसि बाले त्वं न रतिं यासि भावतः।
गृहाण भोजनं दिव्यं यत् ते मनसि वर्तते ॥ ४३ ॥

'बाले! तुम लंबी साँस छोड़ रही हो, मनसे प्रसन्न नहीं हो रही हो, इसका क्या कारण है? तुम्हारे मनमें जैसी रुचि हो, उसके अनुकूल दिव्य भोजन ग्रहण करो ॥ ४३ ॥

ताम्बूलं रोचते पूर्वं तत् किमर्थं न गृह्यते।
मिष्टानि यानि वस्तूनि दुर्लभानीतरैर्जनैः ॥ ४४ ॥
गृहाण देवि उत्तिष्ठ वद पीडां शरीरजाम्।

'पहले तो तुम्हें पान बहुत अच्छा लगता था, अब उसे ग्रहण क्यों नहीं करती हो? देवि! उठो और जो दूसरे लोगोंके लिये दुर्लभ हैं ऐसी मीठी वस्तुएँ ग्रहण करो। बताओ, कैसी पीड़ा हो रही है' ॥ ४४½ ॥

इति कोलाहलं श्रुत्वा उषावेश्मसमुद्भवम् ॥ ४५ ॥
दासीभिः कीर्तितं तत्र मातुरग्रे पृथक् पृथक्।

उषाके महलमें होनेवाले इस कोलाहलको सुनकर दासियोंने उसकी माताके आगे पृथक्-पृथक् इस प्रकार कहना आरम्भ किया—॥ ४५½ ॥

राजपुत्री यदा देवि समायाता गृहे सती ॥ ४६ ॥
जलक्रीडाविहाराच्च मूकेव परिलक्ष्यते।

'देवि! सती-साध्वी राजकुमारी उषा जलक्रीड़ा और विहारसे जब घर लौटी हैं, तभीसे मौन-सी दिखायी देती हैं ॥

अतो दासीजना देवि वदामस्त्वां वयं जनाः ॥ ४७ ॥
को मोहः किमिदं मौनं कः स्वापो म्लानता कथम्।
विचार्य भिषजो देवि दिश्यन्तां कष्टशान्तये ॥ ४८ ॥

'अतः महारानी! हम दासियाँ आपको यह बात बता रही हैं—राजकुमारीपर यह कैसा मोह छा रहा है? उनका यह मौन किसलिये है? क्या कारण है कि वे निरन्तर सोयी पड़ी रहती हैं? उनमें मलिनता कैसे आ गयी है? देवि! इन सब बातोंपर विचार करके उनके इस कष्टकी शान्तिके लिये वैद्योंको नियुक्त कीजिये ॥ ४७-४८ ॥

शिरीषपुष्पसदृशं यच्छरीरं सुकोमलम्।
तत् कथं सहते देवि व्याधिभारं वरानने ॥ ४९ ॥

'देवि! वरानने! जो शरीर शिरीषपुष्पके समान अत्यन्त कोमल है, वह रोगका भार कैसे सहन करता है'? ॥

इति श्रुत्वा तदा देवी सत्वरा हंसगामिनी।
प्राप्य देशमुषा यत्र किमिदं कष्टलक्षणम् ॥ ५० ॥

यह सुनकर वे हंसगामिनी देवी उस समय बड़ी उतावलीके साथ उठीं और जहाँ उषा सोयी थी, उस स्थानमें पहुँचकर पूछने लगीं कि 'यह कैसा कष्टदायक लक्षण प्रकट हुआ है'? ॥

पल्लवाकृतिहस्तेन कोमलं तत्करं तदा।
स्पृष्ट्वाङ्गुलीरनायासं स्फोटयामास भाविनी ॥ ५१ ॥

उस साध्वी महारानीने अपने पल्लवाकार हाथसे उषाके कोमल हाथका स्पर्श करके अनायास ही उसकी अङ्गुलियोंको चटकाया ५१ ॥

किमस्ति तव कल्याणि का व्यथा तव वर्तते।
एते वैद्याः समागत्य पृच्छन्ति भवतीं हि तत् ॥ ५२ ॥

फिर उन्होंने पूछा—'कल्याणि! तुम्हें कैसा कष्ट है? ये वैद्यलोग आकर तुमसे इस विषयमें जिज्ञासा करते हैं ॥५२॥

वैद्या ऊचुः

जलक्रीडां गता तत्र राजपुत्री सखीगणैः।
पार्वत्याः क्रीडितं तत्र जानीमः श्रमसम्भवम् ॥ ५३ ॥

वैद्य बोले—महारानी! हम जानते हैं, राजकुमारी अपनी सखियोंके साथ जलक्रीड़ाके लिये उस स्थानपर गयी थी, जहाँ पार्वतीदेवीका क्रीडा-विहार चल रहा था। वहाँ जो परिश्रम हुआ, उसीसे यह कष्ट बढ़ गया ॥ ५३ ॥

श्रमाद् ग्लानिः समुत्पन्ना जृम्भणं च पुनः पुनः।
स्वापश्च जायते तेन मा भयं कर्तुमर्हसि ॥ ५४ ॥

श्रमसे ग्लानि उत्पन्न हुई है, उसीसे बारंबार अँगड़ाई आ रही है तथा परिश्रमके ही कारण सारे अङ्गोंमें शिथिलता आ गयी है, जिससे यह सो रही हैं, अतः आपको इसके लिये भय नहीं करना चाहिये ॥ ५४ ॥

देव्युवाच

हृदये निहितं वैद्याश्चन्दनं हिमसंयुतम्।
अमात्याः किमिदं शीघ्रं किमिदं बुद्बुदायते ॥ ५५ ॥

महारानीने कहा—वैद्यो और मन्त्रियो! राजकुमारीके वक्षःस्थलपर बरफमिला चन्दन रखा गया है, किंतु शीघ्र ही इसमें इस प्रकार बुद-बुद होने लगा है, मानो यह खौल रहा हो, यह क्या बात है? ऐसा क्यों हुआ? ॥ ५५ ॥

अतिदाहो महान् स्वेदः पिपासा न बुभुक्षते।
प्रलाप एव किं तस्यां शास्त्रतो ब्रूत निश्चितम् ॥ ५६ ॥

इसके शरीरमें अत्यन्त दाह हो रहा है, बहुत अधिक पसीने निकलने लगे हैं। इसे प्यास भी बहुत लगती है, परंतु कुछ खानेकी रुचि नहीं होती। यह अधिकाधिक प्रलाप ही कर रही है, ये सब लक्षण इसमें क्यों प्रकट हुए हैं? आपलोग शास्त्रके अनुसार निश्चित करके बताइये ॥ ५६ ॥

वैद्या ऊचुः

क्रीडाविहारे मिलिताः स्त्रीजना देवसंनिधौ।
रूपेणाप्रतिमा देवी राजपुत्री च भाविनी ॥ ५७ ॥
दृष्टिपातः कृतस्ताभिस्तेन पुत्र्यां व्यथाभवत्।
रक्षामन्त्रैस्तथा पीतैः सर्षपैस्तां कुमारिकाम् ॥ ५८ ॥
पानीयैरभिषेकेण परा शान्तिर्भविष्यति।

वैद्य बोले—क्रीडा-विहारमें महादेवजीके समीप बहुत-सी स्त्रियाँ एकत्र हुई थीं। हमारी सती-साध्वी राजकुमारी उषादेवी अनुपम रूपवती हैं। अतः उन सब स्त्रियोंने इनपर दृष्टिपात किया है, जिससे इन्हें नजर लग गयी है। इसीसे आपकी पुत्रीको यह पीड़ा हुई है। अतः रक्षासम्बन्धी मन्त्रों और पीली सरसोंसे राजकुमारीकी रक्षा की जाय (इन्हें झाड़ा-फूँका जाय), अभिमन्त्रित जलसे अभिषेक करनेपर इन्हें बड़ी शान्ति मिलेगी ॥ ५७-५८½ ॥

इत्युक्त्वा भिषजः सर्वे निवृत्ता नृपवेश्मतः ॥ ५९ ॥
सूचयन्तः पुनः सर्वे कामाभिप्रायजां व्यथाम्।

ऐसा कहकर सभी वैद्यराज महलसे लौट गये। जाते-जाते उन सबने यह भी सूचना दे दी कि सम्भव है यह कामजनित वेदना हो ॥ ५९½ ॥

मातृपृष्टा वरारोहा चिरकालमुवाच सा ॥ ६० ॥
लज्जावती महाभागा मातरं रुदती भृशम्।
मातर्न रोचते नित्यं भाषणं न च भोजनम् ॥ ६१ ॥
न चाप्युत्सवकं मातः सदाहं हृदयं शृणु।
इत्युक्त्वा विररामाथ ह्युषा नारी वरानना ॥ ६२ ॥

तदनन्तर माताने जब बारंबार पूछा; तब सुन्दर अङ्गवाली उस लज्जाशीला महाभागा उषाने बहुत देरके बाद मातासे जोर-जोरसे रोते हुए कहा—'माँ! सुनो! न तो मुझे कभी बोलना अच्छा लगता है और न भोजन करना, कोई उत्सव भी नहीं सुहाता है। हृदयमें निरन्तर जलन होती रहती है।' ऐसा कहकर सुन्दरी नारी उषा चुप हो गयी ॥ ६०–६२ ॥

सर्वाभिः स्त्रीभिरारब्धमन्योन्यं मुखवीक्षणम्।
लज्जानुकारि नारीणां यौवनं हि भवेदिति ॥ ६३ ॥
इयं च राजकन्या हि भर्तृयोग्या किमुच्यते।
पितुः प्रसादान्मातुश्च प्राप्नुयात् सदृशं वरम् ॥ ६४ ॥

उस समय सभी स्त्रियाँ एक दूसरीका मुख देखने लगीं और आपसमें कहने लगीं कि युवावस्था नारियोंके लिये प्रायः लज्जाजनक हुआ करती है। यह राजकन्या भी पतिसमागमके योग्य हो गयी है, अतः इसके लिये और क्या कहा जाय? यह माता और पिताके प्रसादसे अपने अनुरूप पति प्राप्त करे' ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि बाणयुद्धे उषाविरहो नाम सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें बाणासुरके युद्धके प्रसङ्गमें उषाविरहविषयक एक सौ सत्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११७ ॥

अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः

उषाका स्वप्नमें प्रियतमके साथ समागम, इससे उषाकी चिन्ता, सखियोंका उसे समझाना, कुम्भाण्डकुमारीके कहनेसे उषाका चित्रलेखाको बुलाकर उसे अपना कष्ट बताना, चित्रलेखाके बनाये हुए चित्रोंसे उषाका अनिरुद्धको पहचानना और उन्हें लानेके लिये चित्रलेखाका द्वारकाको जाना

वैशम्पायन उवाच

तत्रस्थाः परमा नार्यश्चित्रेण परमाद्भुताः।
ततो हर्म्ये शयानां तु वैशाखे मासि भामिनीम् ॥ १ ॥
द्वादश्यां शुक्लपक्षस्य सखीगणवृतां तदा।
स्योकः पुरुषः स्वप्ने रमयामास तां शुभाम् ॥ २ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! शोणितपुरमें निवास करनेवाली परम सुन्दरी स्त्रियाँ चित्र-निर्माण-कलाकी दृष्टिसे बड़ी अद्भुत योग्यतावाली थीं। तदनन्तर वैशाखमासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिको; जब सखियोंसे घिरी हुई मानिनी उषा अपनी अट्टालिकामें सो रही थी, उसी समय

स्वप्नावस्थामें पार्वतीजीके बताये अनुसार एक पुरुषने आकर उस शुभलक्षणा असुरराजकुमारीके साथ रमण किया ॥ १-२॥

विचेष्टमाना रुदती देव्या वचनचोदिता।
सा स्वप्ने रमिता तेन स्त्रीभावं चापि लम्भिता॥ ३ ॥

यद्यपि वह रो-रोकर उस पुरुषके स्पर्शसे बचनेकी विशेष चेष्टा करती रही, परंतु पार्वती देवीके वचनसे प्रेरित थी, इस कारण उसके साथ स्वप्नमें उस पुरुषने बलपूर्वक रमण किया और उसे अपनी स्त्री बना लिया ॥ ३ ॥

शोणिताक्ता प्ररुदती सहसैवोत्थिता निशि।
तां तथा रुदतीं दृष्ट्वा सखी भयसमन्विता॥ ४ ॥
चित्रलेखा वचः स्निग्धमुवाच परमाद्भुतम्।

उस समय उस राजकन्याकी योनि रक्तसे भीग गयी। वह रातमें सहसा रोती हुई उठ बैठी। उसे इस प्रकार रोती देख उसकी सखी चित्रलेखा भयभीत हो परम अद्भुत स्निग्ध वाणीमें बोली—॥ ४½ ॥

उषे मा भैः किमेवं त्वं रुदती परितप्यसे।
बलेः सुतसुता च त्वं प्रख्याता किं भयान्विता॥ ५ ॥

'उषे ! भयभीत न होओ। तुम क्यों इस प्रकार रोती और संतप्त होती हो ? तुम तो महाराज बलिके पुत्रकी पुत्री हो, अपनी निर्भीकताके लिये विख्यात हो, फिर भी क्यों भयभीत होती हो ? ॥ ५ ॥

न भयं विद्यते लोके तव सुभ्रु विशेषतः।
अभयं तव वामोरु पिता देवान्तको रणे॥ ६ ॥

'सुभ्रु ! हम सबके लिये विशेषतः तुम्हारे लिये तो संसारमें भय है ही नहीं। वामोरु ! तुम्हें किसीसे भय नहीं है। तुम्हारे पिता बाण समराङ्गणमें देवताओंके भी काल हैं॥

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते विषादं मा कृथाः शुभे।
नैवंविधेषु वासेषु भयमस्ति वरानने॥ ७ ॥

'शुभे ! उठो, उठो, तुम्हारा कल्याण हो, तुम विषाद न करो। वरानने ! ऐसे निवासस्थानोंमें भय नहीं होता है॥

असकृद् देवसहितः शचीभर्ता सुरेश्वरः।
अप्राप्त एव नगरं पित्रा ते मृदितो रणे॥ ८ ॥

'देवताओंके स्वामी शचीपति इन्द्रने देवताओंकी सेना साथ लेकर अनेक बार आक्रमण किया, परंतु इस नगरतक वे पहुँचने भी नहीं पाये कि तुम्हारे पिताने रणभूमिमें उन्हें रौंद डाला ॥ ८ ॥

अयं देवसमूहस्य भयदश्च पिता तव।
महासुरवरः श्रीमान् बलेः पुत्रो महाबलः॥ ९ ॥

'तुम्हारे ये पिता देवसमुदायको भय देनेवाले हैं, महान् असुरोंमें श्रेष्ठ हैं तथा राजा बलिके महाबली एवं कान्तिमान् पुत्र हैं' ॥ ९ ॥

एवं साभिहिता सख्या बाणपुत्री यशस्विनी।
स्वप्ने रूपं यथा दृष्टं न्यवेदयदनिन्दिता॥ १०॥

सखीके ऐसा कहनेपर निन्दारहित यशस्विनी बाणपुत्री उषाने स्वप्नमें जैसा रूप देखा था, वह सब उससे निवेदन किया॥

उषोवाच

एवं संधर्षिता साध्वी कथं जीवितुमुत्सहे।
पितरं किं नु वक्ष्यामि देवशत्रुमरिंदमम्॥ ११॥

फिर उषा बोली—मैं सती-साध्वी कुमारी थी, जब इस प्रकार मेरा सतीत्व नष्ट कर दिया गया, तब मैं कैसे जीवित रह सकती हूँ। शत्रुओंका दमन करनेवाले अपने देववैरी पितासे क्या कहूँगी ? ॥ ११ ॥

एवं संदूषणकरी वंशस्यास्य महौजसः।
श्रेयो हि मरणं मह्यं न मे श्रेयोऽद्य जीवितम्॥ १२॥

इस महातेजस्वी कुलको मैं इस तरह कलङ्कित करनेवाली हूँ। मेरा मर जाना ही अच्छा है। अब जीवित रहना मेरे लिये श्रेयस्कर नहीं है ॥ १२ ॥

ईप्सितो वा यथा कोऽपि पुरुषोऽधिगतो हि मे।
जाग्रतीव यथा चाहमवस्थैवं कृता मम॥ १३॥

मुझे स्वप्नमें ऐसा कोई पुरुष प्राप्त हुआ था, जिसे मानो मैं बहुत चाहती थी—वह मुझे अभीष्ट था। उसने स्वप्नमें भी जाग्रत्-अवस्थाकी भाँति मेरी ऐसी दशा कर डाली है ॥ १३ ॥

निशायां जाग्रतीवाहं नीता केन दशामिमाम्।
कथमेवं कृता नाम कन्या जीवितुमुत्सहे॥ १४॥

रातमें जागती हुई-सी मुझे किसने इस अवस्थाको पहुँचा दिया ? जब कन्या होकर भी मेरी ऐसी दशा कर दी गयी, तब मैं कैसे जीवित रह सकती हूँ ? ॥ १४ ॥

कुलोपक्रोशनकरी कुलाङ्गारी निराश्रया।
जीवितुं न स्पृहेन्नारी साध्वीनामग्रतः स्थिता॥ १५॥

जो नारी कभी सती-साध्वी स्त्रियोंमें आगे रही हो, वह यदि कुलकलङ्किनी, कुलाङ्गारी और निराश्रया हो जाय तो उसे जीवनकी इच्छा नहीं रखनी चाहिये ॥ १५ ॥

इत्येवं बाष्पपूर्णाक्षी सखीजनवृता तदा।
विललाप चिरं कालमुषा कमललोचना॥ १६॥

इस प्रकार सखियोंसे घिरी हुई कमललोचना उषा उस समय नेत्रोंमें आँसू भरकर बहुत देरतक विलाप करती रही॥

अनाथवत् तां रुदतीं सख्यः सर्वा विचेतसः।
ऊचुरश्रुपरीताक्षीमुषां सर्वाः समागताः॥ १७॥

उसे अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे अनाथकी भाँति रोती देख सारी सखियाँ घबरायी हुई-सी वहाँ आ गयीं और इस प्रकार कहने लगीं—॥ १७ ॥

दुष्टेन मनसा देवि शुभं वा यदि वाशुभम्।
क्रियते न च ते सुभ्रु किंचिद् दुष्टं मनः शुभे ॥ १८ ॥

'देवि ! दुष्ट हृदयसे यदि शुभ या अशुभ कर्म किया जाता है तो उसका कोई अनिष्टकारी फल होता है, परंतु सुभ्रु ! शुभे ! तुम्हारे मनमें तो कभी कोई दोष आया नहीं है ॥ १८ ॥

प्रसभं दैवसंयोगाद् यदि भुक्तासि भामिनि।
स्वप्नयोगेन कल्याणि व्रतलोपो न विद्यते ॥ १९ ॥

'भामिनि ! कल्याणि ! यदि दैव-संयोगसे स्वप्नमें किसी पुरुषने बलात्कारपूर्वक तुम्हारा उपभोग कर लिया है तो इससे तुम्हारे कौमार-व्रतका लोप नहीं हुआ है ॥ १९ ॥

व्यभिचारेण ते देवि नास्ति कश्चिद् व्यतिक्रमः।
न च स्वप्नकृतो दोषो मर्त्यलोकेऽस्ति सुन्दरि ॥ २० ॥

'देवि ! तुम्हारे इस व्यभिचारसे कोई अपराध नहीं बना है। सुन्दरि ! मर्त्यलोकमें स्वप्नावस्थामें किये गये किसी अशुभ कर्मका दोष नहीं लगता है ॥ २० ॥

एवं विप्रर्षयो देवि धर्मज्ञाः कथयन्ति वै।
मनसा चैव वाचा च कर्मणा च विशेषतः।
दुष्टा या त्रिभिरेतैस्तु पापा सा प्रोच्यते बुधैः ॥ २१ ॥

'देवि ! धर्मज्ञ ब्रह्मर्षि प्रायः ऐसा ही कहते हैं। जो नारी मन, वाणी तथा विशेषतः क्रिया---इन तीनोंसे दूषित है, उसीको विद्वान् पुरुष 'पापिनी' कहते हैं ॥ २१ ॥

न च ते दृश्यते भीरु मनः प्रचलितं सदा।
कथं त्वं दोषसंदुष्टा नियता ब्रह्मचारिणी ॥ २२ ॥

'भीरु ! तुम्हारा मन तो सदा ही स्थिर है, वह कभी चञ्चल होता नहीं देखा जाता है। तुम नियमपूर्वक ब्रह्मचर्य-पालनमें तत्पर रहकर भी दोषोंसे दूषित कैसे हो सकती हो ॥

यदि सुप्ता सती साध्वी शुद्धभावा मनस्विनी।
इमामवस्थां प्राप्ता त्वं नैव धर्मो विलुप्यते ॥ २३ ॥

'तुम्हारा भाव शुद्ध है, तुम मनको वशमें रखनेवाली हो, सती-साध्वी हो। फिर भी यदि सुप्तावस्थामें तुम इस दशाको पहुँच गयी तो इससे तुम्हारे धर्मका लोप नहीं होता है ॥ २३ ॥

यस्या दुष्टं मनः पूर्वं कर्मणा चोपपादितम्।
तामाहुरसती नाम सती त्वमसि भामिनि ॥ २४ ॥

'जिस स्त्रीका पहले मन दूषित होता है; फिर वह क्रिया-द्वारा दोषका सम्पादन करती है, उसीको असती (कुलटा) कहते हैं; भामिनि ! तुम तो सती हो ॥ २४ ॥

कुलजा रूपसम्पन्ना नियता ब्रह्मचारिणी।
इमामवस्थां नीतासि कालो हि दुरतिक्रमः ॥ २५ ॥

'तुम उत्तम कुलमें उत्पन्न, मनोहर रूपसे सम्पन्न, संतोष आदि नियमोंका पालन करनेवाली तथा ब्रह्मचारिणी होकर भी इस दशाको पहुँचा दी गयीं; यह देखकर यही कहना पड़ता है कि काल दुर्लङ्घ्य है (वह जिसको जिस अवस्थामें चाहे डाल सकता है)' ॥ २५ ॥

इत्येवमुक्तां रुदतीं बाष्पेणावृतलोचनाम्।
कुम्भाण्डदुहिता वाक्यं परमं त्विदमब्रवीत् ॥ २६ ॥

सखियोंके ऐसा कहनेपर भी उषा रोती ही रही। उसके नेत्र आँसुओंसे भरे ही रहे। तब कुम्भाण्डकी पुत्री चित्रलेखा-ने यह उत्तम बात कही—॥ २६ ॥

त्यज शोकं विशालाक्षि अपापा त्वं वरानने।
श्रुतं मे यदिदं वाक्यं याथातथ्येन तच्छृणु ॥ २७ ॥

'विशाललोचने ! यह शोक छोड़ो। वरानने ! तुम सर्वथा पापरहित हो। मैंने जो यह बात सुन रखी है, उसे यथार्थ-रूपसे बताती हूँ, सुनो ॥ २७ ॥

उषे यदुक्ता देव्यासि भर्तारं ध्यायती तदा।
समीपे देवदेवस्य स्मर भामिनि तद् वचः ॥ २८ ॥

'उषे ! भामिनि ! देवाधिदेव महादेवजीके समीप उस दिन जब तुम पतिका चिन्तन कर रही थीं, उस समय देवी पार्वतीने तुमसे जो बात कही थी, उसे याद करो ॥ २८ ॥

द्वादश्यां शुक्लपक्षस्य वैशाखे मासि यो निशि।
हर्म्ये शयानां रुदतीं स्त्रीत्वं समुपनेष्यति ॥ २९ ॥
भविता स हि ते भर्ता शूरः शत्रुनिबर्हणः।

'वैशाख मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशी तिथिको रात्रिके समय अट्टालिकापर सोयी हुई तुझे तेरे रोते रहनेपर भी जो पुरुष स्वप्नमें अपनी स्त्री बना लेगा, वह शत्रुसूदन शूरवीर पुरुष ही तेरा पति होगा ॥ २९½ ॥

इत्युवाच वचो हृष्टा देवी तव मनोगतम् ॥ ३० ॥
न हि तद् वचनं मिथ्या पार्वत्या यदुदाहृतम्।
सा त्वं किमिदमत्यर्थं रोदिषीन्दुनिभानने ॥ ३१ ॥

'हर्षमें भरी हुई पार्वती देवीने यह तुम्हारे मनके अनुरूप बात कही थी। पार्वतीजीने जो कह दिया, वह वचन कभी मिथ्या नहीं हो सकता। अतः चन्द्रमुखि ! तुम इस घटनाके लिये यह अत्यन्त रोदन क्यों कर रही हो' ॥ ३०-३१ ॥

एवमुक्ता तया बाला स्मृत्वा देवीवचस्ततः।
अभवन्नष्टशोका सा बाणपुत्री शुभेक्षणा ॥ ३२ ॥

चित्रलेखाके ऐसा कहनेपर पार्वती देवीके वचनका स्मरण करके वह असुरबाला शुभलोचना बाणपुत्री उषा शोकरहित हो गयी ॥ ३२ ॥

उषोवाच

स्मरामि भामिनि वचो देव्याः क्रीडागते भवे ।
यथोक्तं सर्वमखिलं प्राप्तं हर्म्यतले मया ॥ ३३ ॥

उषा बोली—भामिनि ! जब महादेवजी क्रीडामें तत्पर थे, उस समय देवी पार्वतीजीने जो बात कही थी, वह मुझे याद आ रही है । उन्होंने जो कुछ कहा था, वह सब पूर्णरूपसे इस अट्टालिकाके भीतर मैंने अनुभव किया है ॥

भर्ता तु मम यद्येष लोकनाथस्य भार्यया ।
व्यादिष्टः स कथं ज्ञेयस्तत्र कार्यं विधीयताम् ॥ ३४ ॥

यदि भगवान् विश्वनाथकी भार्या पार्वती देवीने इसी पुरुषको मुझे पतिरूपमें प्रदान किया है तो उसका पता कैसे लगेगा ? इसके लिये कोई उपाय करो ॥ ३४ ॥

इत्येवमुक्ते वचने कुम्भाण्डदुहिता पुनः ।
व्याजहार यथान्यायमर्थतत्त्वविशारदा ॥ ३५ ॥

उषाके ऐसा कहनेपर अर्थतत्त्वके ज्ञानमें कुशल कुम्भाण्ड-कुमारी चित्रलेखाने पुनः यह न्यायोचित बात कही—॥

न हि तस्य कुलं देवि न कीर्तिं नापि पौरुषम् ।
कश्चिज्जानाति तत्त्वेन किमिदं त्वं विमुह्यसे ॥ ३६ ॥

'देवि ! उस पुरुषका न तो कोई कुल जानता है, न उसकी कीर्ति और पुरुषार्थका ही किसीको ठीक-ठीक पता है; फिर इस विषयको लेकर तुम क्यों मोहित हो रही हो ॥३६॥

अदृष्टश्चाश्रुतश्चैव दृष्टः स्वप्ने च यः शुभे ।
कथं ज्ञेयो भवेद् भीरु सोऽस्माभी रतितस्करः ॥ ३७ ॥

'शुभे ! भीरु ! जिसको तुमने सपनेमें देखा है, उसे दूसरे किसीने न तो कभी देखा है और न उसके विषयमें कुछ सुना ही है, फिर हम तुम्हारे उस रति तस्करका पता कैसे लगा सकती हैं ? ॥ ३७ ॥

येन त्वमसितापाङ्गि मत्तकाशिनि विक्रमात् ।
रुदती प्रसभं भुक्ता प्रविश्यान्तःपुरं सखि ॥ ३८ ॥
न ह्यसौ प्राकृतः कश्चिद् यः प्रविष्टः प्रसह्य ते ।
नगरं लोकविख्यातमेकः शत्रुनिबर्हणः ॥ ३९ ॥

'मतवाली सी प्रतीत होनेवाली और कजरारे नेत्रोंवाली सखि ! जिसने अन्तःपुरमें घुसकर तुम्हारे रोते रहनेपर भी बलपूर्वक तुम्हारा उपभोग किया है, वह कोई साधारण मनुष्य नहीं है । जो तुम्हारे इस लोकविख्यात नगरमें बलपूर्वक अकेला ही घुस आया, वह कोई शत्रुमर्दन शूरवीर ही हो सकता है ॥ ३८-३९ ॥

आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ च महौजसौ ।
न शक्ताः शोणितपुरं प्रवेष्टुं भीमविक्रमाः ॥ ४० ॥

'बारह आदित्य, आठ वसु, ग्यारह रुद्र और दोनों महाबली अश्विनीकुमार—ये भयानक पराक्रमी देवता भी शोणितपुरमें प्रवेश नहीं कर सकते ॥ ४० ॥

सोऽयमेतैः शतगुणैर्विशिष्टश्चारिसूदनः ।
प्रविष्टः शोणितपुरं बाणमाक्रम्य मूर्धनि ॥ ४१ ॥

'उपर्युक्त देवता यदि सौगुने होकर आ जायँ तो उनसे विशिष्ट यह शत्रुसूदन वीर होगा, जिसने बाणासुरके मस्तकपर पैर रखकर शोणितपुरमें प्रवेश किया है ॥ ४१ ॥

यस्या नैवंविधो भर्ता भवेद् युद्धविशारदः ।
कस्तस्या जीवितेनार्थो भोगैर्वाप्यम्बुजेक्षणे ॥ ४२ ॥

'कमललोचने ! जिस नारीका पति ऐसा युद्धविशारद वीर न हो, उसके जीवन अथवा भोगोंसे क्या लाभ ? ॥४२॥

धन्यास्यनुगृहीतासि यस्यास्ते पतिरीदृशः ।
प्राप्तो देव्याः प्रसादेन कन्दर्पसमविक्रमः ॥ ४३ ॥

'तुम धन्य हो, तुमपर देवीका महान् अनुग्रह है; क्योंकि तुम्हें पार्वती देवीके प्रसादसे ऐसा कामदेव-तुल्य पराक्रमी पति प्राप्त हुआ है ॥ ४३ ॥

इदं तु यत् कार्यतमं शृणु त्वं तन्मयेरितम् ।
विज्ञेयो यस्य पुत्रो वै यन्नामा यत्कुलश्च सः ॥ ४४ ॥

'इस समय जो यह सबसे महान् कार्य है, वह मेरे मुखसे सुनो । पहले तुम्हें इस बातको जान लेना चाहिये कि वह किसका पुत्र है ? उसका क्या नाम है ? और वह किस कुलमें उत्पन्न हुआ है ?' ॥ ४४ ॥

इत्येवमुक्ते वचने तत्रोषा काममोहिता ।
उवाच कुम्भाण्डसुतां कथं ज्ञास्याम्यहं सखि ॥ ४५ ॥

उसके ऐसा कहनेपर वहाँ काममोहित उषा कुम्भाण्ड-कुमारीसे बोली—'सखि ! यह सब मैं कैसे जानूँगी ॥ ४५ ॥

त्वमेव चिन्तय सखि नोत्तरं प्रतिभाति मे ।
स्वकार्ये मुह्यते लोको यथा जीवं लभाम्यहम् ॥ ४६ ॥

'सखि ! तुम्हीं कोई उपाय सोचो, मुझे तो कोई उत्तर नहीं सूझता । अपने कार्यमें प्रायः सब लोग मोहित हो जाते हैं । अतः तुम्हीं कोई ऐसा उपाय करो, जिससे मुझे नूतन जीवन प्राप्त हो' ॥ ४६ ॥

उषाया वचनं श्रुत्वा रामा वाक्यमिदं पुनः ।
उवाच रुदतीं चोषां कुम्भाण्डदुहिता सखी ॥ ४७ ॥

उषाकी यह बात सुनकर उसकी सखी कुम्भाण्डकुमारी रामा (जो चित्रलेखा अप्सराके अंशसे उत्पन्न होनेके कारण चित्रलेखा भी कही जाती थी) रोती हुई उषासे पुनः इस प्रकार बोली—॥ ४७ ॥

कुशला ते विशालाक्षि सर्वथा संधिविग्रहे ।
अप्सरा चित्रलेखा वै क्षिप्रं विज्ञाप्यतां सखि ॥ ४८ ॥

'विशाल नेत्रोंवाली सखि ! तुम यह बात शीघ्र ही चित्रलेखा अप्सराको सूचित कर दो, वह तुम्हारे संधि-विग्रह (मन्त्रणा देने) के कार्यमें सर्वथा कुशल है ॥ ४८ ॥

अस्याः सर्वमशेषेण त्रैलोक्यं विदितं सदा ।
एवमुक्ता तदैवोषा हर्षेणागतविस्मया ॥ ४९ ॥

'उसे समस्त त्रिलोकीकी सारी बातें सदा ज्ञात रहती हैं।' उसके ऐसा कहनेपर उषाको तत्काल बड़ा हर्ष और विस्मय हुआ ॥ ४९ ॥

तामप्सरसमानाय्य चित्रलेखां सखीं प्रियाम् ।
कृताञ्जलिपुटा दीना उषा वचनमब्रवीत् ॥ ५० ॥

उसने अपनी प्यारी सखी चित्रलेखा नामक अप्सराको बुलवाकर दोनों हाथ जोड़ दीनभावसे अपना हार्दिक दुःख निवेदन किया ॥ ५० ॥

सा तच्छ्रुत्वा तु वचनमुषायाः परिकीर्तितम् ।
आश्वासयामास सखी बाणपुत्रीं यशस्विनीम् ॥ ५१ ॥

उषाकी कही हुई बात सुनकर सखी चित्रलेखाने उस यशस्विनी बाणपुत्रीको आश्वासन दिया ॥ ५१ ॥

ततः सा विस्मयाविष्टा वचनं प्राह दुर्वचम् ।
चित्रलेखामप्सरसं प्रणयात् तां सखीमिदम् ॥ ५२ ॥

तब आश्चर्यचकित हुई उषाने अपनी सखी चित्रलेखा नामक अप्सराको सम्बोधित करके बड़े प्यारसे यह कठिनाईसे कहनेयोग्य बात कही—॥ ५२ ॥

परमं शृणु मे वाक्यं यत् त्वां वक्ष्यामि भामिनि।
भर्तारं यदि मेऽद्य त्वं नानयिष्यसि मत्प्रियम्॥ ५३ ॥
कान्तं पद्मपलाशाक्षं मत्तमातङ्गगामिनम् ।
त्यक्ष्याम्यहं ततः प्राणानचिरात् तनुमध्यमे ॥ ५४ ॥

'भामिनि ! मैं तुमसे जो उत्तम बात कहती हूँ, उसे सुनो । मेरे प्रियतम पति बड़े ही कमनीय हैं, उनके नेत्र प्रफुल्ल कमलदलके समान सुन्दर हैं, वे मतवाले हाथीके समान मन्दगतिसे चलते हैं, पतली कमरवाली सखि ! यदि तुम आज मेरे उन प्राणनाथको यहाँ नहीं ले आओगी तो मैं शीघ्र ही अपने प्राणोंका परित्याग कर दूँगी' ॥ ५३-५४ ॥

चित्रलेखाब्रवीद् वाक्यमुषां हर्षयती शनैः ।
नैषोऽर्थः शक्यतेऽस्माभिर्वेत्तुं भामिनि सुव्रते ॥५५ ॥

यह सुनकर चित्रलेखा उषाका हर्ष बढ़ाती हुई धीरे-धीरे यों बोली—'उत्तम व्रतका पालन करनेवाली भामिनि ! तुम्हारे इस मनोरथको मैं किसी तरह जान नहीं सकती हूँ ॥

न कुलेन न वर्णेन न शीलेन न रूपतः ।
न देशतश्च विज्ञातः स हि चारो मया सखि ॥ ५६ ॥

'सखि ! तुम्हारे उस चित्तचोरका कुल, वर्ण, शील, रूप और देश कुछ भी तो मुझे ज्ञात नहीं है ॥ ५६ ॥

किं तु कर्तुं यथा शक्यं बुद्धिपूर्वं मया सखि ।
प्राप्तं च शृणु मे वाक्यं यथा काममवाप्स्यसि ॥ ५७ ॥

'सखि ! फिर भी मैं बुद्धिपूर्वक जैसा जो कुछ कर सकती हूँ, करूँगी; इस समय जो कर्तव्य प्राप्त है, उसके विषयमें मेरी बात सुनो, जिससे तुम अपना मनोरथ पा लोगी ॥

देवदानवयक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।
ये विशिष्टाः प्रभावेण रूपेणाभिजनेन च ॥ ५८ ॥
यथाप्रभावं तान् सर्वानालिखिष्याम्यहं सखि ।
मनुष्यलोके ये चापि प्रवरा लोकविश्रुताः ॥ ५९ ॥

'देवता, दानव, यक्ष, गन्धर्व, नाग और राक्षस—इनमें जो जो प्रभाव, रूप और कुलकी दृष्टिसे बढ़े-चढ़े हैं, उन सबका उनके प्रभावके अनुसार ही मैं चित्र बनाऊँगी । सखि ! मनुष्य-लोकमें भी जो विश्वविख्यात श्रेष्ठ पुरुष हैं, उनका भी चित्र अङ्कित करूँगी ॥ ५८-५९ ॥

सप्तरात्रेण ते भीरु दर्शयिष्यामि तानहम् ।
ततो विज्ञाय पादस्थं भर्तारं प्रतिपत्स्यसे ॥ ६० ॥

'भीरु ! सात रातमें उन सबके चित्र बनाकर मैं तुम्हें उन सबका दर्शन कराऊँगी । तदनन्तर पहचान लेनेपर तुम मनोनीत पतिको अपने पैरोंपर पड़ा हुआ पाओगी' ॥६०॥

सा चित्रलेखया प्रोक्ता उषा हितचिकीर्षया ।
क्रियतामेवमित्याह चित्रलेखां सखीं प्रियाम् ॥ ६१ ॥

चित्रलेखाने हित-साधन करनेकी इच्छासे जब पूर्वोक्त बात कही, तब उषा अपनी प्यारी सखी चित्रलेखासे बोली, 'अच्छा, ऐसा ही करो' ॥ ६१ ॥

ततः कुशलहस्तत्वाद् यथालेख्यं समन्ततः ।
इत्युक्त्वा सप्तरात्रेण कृत्वा लेख्यगतांस्तु तान्॥ ६२ ॥
चित्रपट्टगतान् मुख्यानानयामास शोभना ।

तब 'तथास्तु' कहकर चित्रलेखाने सब ओरसे यथायोग्य चित्र तैयार किये; क्योंकि इस कलामें उसके हाथ सधे हुए थे । उसने सात रातोंमें सब प्रमुख पुरुषोंके चित्र अङ्कित कर लिये । फिर वह सुन्दरी चित्रपट्टमें स्थापित हुए उन सब लोगोंको वहाँ ले आयी ॥ ६२½ ॥

ततः प्रास्तीर्य पट्टं सा चित्रलेखा स्वयंकृतम् ॥ ६३ ॥
उषायै दर्शयामास सखीनां तु विशेषतः ।

तदनन्तर चित्रलेखाने अपने बनाये हुए उस चित्रपट्टको फैलाकर उषाको तथा विशेषतः उसकी सब सखियोंको भी दिखाया ॥ ६३½ ॥

एते देवेषु ये मुख्यास्तथा दानववंशजाः ॥ ६४ ॥
किन्नरोरगयक्षाणां राक्षसानां समन्ततः ।
गन्धर्वासुरदैत्यानां ये चान्ये भौमिनः स्मृताः ॥ ६५ ॥

वह बोली—'ये देवताओंमें जो मुख्य-मुख्य पुरुष हैं, उनके चित्र हैं तथा इस ओर दानववंशी वीर अङ्कित किये गये हैं। इनके चारों ओर किन्नर, नाग, यक्ष और राक्षसोंके चित्र हैं; गन्धर्व, असुर, दैत्य तथा अन्यान्य सर्पोंके भी चित्र हैं ॥ ६४-६५ ॥

मनुष्याणां च सर्वेषां ये विशिष्टतमा नराः।
तानेतान् पश्य सर्वांस्त्वं यथैव लिखितान् मया ॥ ६६ ॥

'समस्त मनुष्योंमें जो विशिष्टतम पुरुष हैं, वे इधर हैं। इन सबको जैसा मैंने अङ्कित किया है, देखो ॥ ६६ ॥

यस्ते भर्ता यथारूपः स मया लिखितः सखि।
तं त्वं प्रत्यभिजानीहि स्वप्ने यं दृष्टवत्यसि ॥ ६७ ॥

'सखि! जो तुम्हारा पति है और उसका जैसा रूप है, वह सब मैंने अङ्कित किया है। तुमने स्वप्नमें जिसे देखा है, उसे इस चित्रपट्टमें पहचानो' ॥ ६७ ॥

ततः क्रमेण सर्वांस्तान् दृष्ट्वा सा मत्तकाशिनी।
देवदानवगन्धर्वविद्याधरगणानथ ।
अतीत्य च यदून् सर्वान् ददर्श यदुनन्दनम् ॥ ६८ ॥

तब मतवाली-सी प्रतीत होनेवाली उषाने क्रमशः उन सबको देखकर देवता, दानव, गन्धर्व और विद्याधरगणोंको लाँघकर समस्त यदुवंशियों तथा यदुनन्दन श्रीकृष्णको देखा ॥

तत्रानिरुद्धं दृष्ट्वा सा विस्मयोत्फुल्ललोचना।
उवाच चित्रलेखां तामयं चौरः स वै सखि ॥ ६९ ॥
येनाहं दूषिता पूर्वं स्वप्ने हर्म्यगता सती।
सोऽयं विज्ञातरूपो मे कुतोऽयं रतितस्करः ॥ ७० ॥

वहीं अनिरुद्धका चित्र देखकर उसके नेत्र आश्चर्यसे खिल उठे और वह चित्रलेखासे बोली—'सखि! यही वह चोर है, जिसने अट्टालिकापर सोते समय पहले स्वप्नमें आकर मुझे दूषित किया था। इसके रूपको तो मैं खूब पहचानती हूँ, परंतु यह रतिचोर कहाँसे आया था, यह नहीं जान सकी ॥

चित्रलेखे वदस्वैनं तत्त्वतो मम शोभने।
कुलशीलाभिजनतो नाम किं चास्य भामिनि।
ततः पश्चाद् विधास्यामि कार्यस्यास्य विनिश्चयम् ॥ ७१ ॥

'शोभने! चित्रलेखे! मुझे इसका ठीक-ठीक परिचय दो। भामिनि! इन चोर महोदयका कुल, शील, अभिजन और नाम क्या है? यह सब जान लेनेके पश्चात् मैं अपने इस कर्तव्यका निश्चय करूँगी' ॥ ७१ ॥

चित्रलेखोवाच

अयं त्रैलोक्यनाथस्य नप्ता कृष्णस्य धीमतः।
भर्ता तव विशालाक्षि प्राद्युम्निर्भीमविक्रमः ॥ ७२ ॥

चित्रलेखा बोली—विशाललोचने! ये तुम्हारे पति साक्षात् त्रिलोकीनाथ बुद्धिमान् भगवान् श्रीकृष्णके पोते हैं और प्रद्युम्नके पुत्र हैं। इनका पराक्रम बड़ा भयङ्कर है ॥ ७२ ॥

न ह्यस्ति त्रिषु लोकेषु सदृशोऽस्य पराक्रमे।
उत्पाट्य पर्वतानेव पर्वतैरेष घातयेत् ॥ ७३ ॥

पराक्रममें इनकी समानता करनेवाला तीनों लोकोंमें कोई नहीं है। ये पर्वतोंको ही उखाड़कर उन पर्वतोंद्वारा ही शत्रुओंका संहार कर सकते हैं ॥ ७३ ॥

धन्यास्यनुगृहीतासि यस्यास्ते यदुपुङ्गवः।
त्र्यक्षपत्न्या समादिष्टः सदृशः सज्जनः पतिः ॥ ७४ ॥

तुम धन्य हो, तुमपर देवीका बड़ा अनुग्रह है, जिससे तुम्हारे लिये पार्वतीजीने परम योग्य यदुकुलतिलक अनिरुद्धको पतिरूपमें प्रदान किया है। इनके पूर्वज श्रेष्ठतम पुरुष हैं ॥

उषोवाच

त्वमेवात्र विशालाक्षि योग्या भव वरानने।
न शक्या हि गतिश्चान्या अगत्या मे गतिर्भव ॥ ७५ ॥

उषा बोली—वरानने! विशाललोचने! तुम ही इस कार्यको करने योग्य हो। मुझे तुम्हारे सिवा दूसरा कोई सहारा नहीं मिल सकता। तुम मुझ अशरणको शरण देनेवाली बनो ॥

अन्तरिक्षचरा च त्वं योगिनी कामरूपिणी।
उपायस्यास्य कुशला क्षिप्रमानय मे प्रियम् ॥ ७६ ॥

तुम आकाशमें विचरनेवाली और इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली योगिनी हो, इस उपायके ज्ञानमें भी कुशल हो; अतः मेरे प्रियतमको शीघ्र ले आओ ॥ ७६ ॥

उपायश्चिन्त्यतां भीरु समग्रतर्क्य प्रिये सुखम्।
सिद्धार्था संनिवर्तस्व येनोपायेन सुन्दरि ॥ ७७ ॥

भीरु! सुन्दरी! मुझे प्रियसमागमका सुख कैसे मिले, इसपर भलीभाँति तर्क-वितर्क करके कोई ऐसा उपाय सोचो, जिससे सफलमनोरथ होकर लौटो ॥ ७७ ॥

भवेद्यापत्सु यन्मित्रं तन्मित्रं शस्यते बुधैः।
कामार्ता चास्मि सुश्रोणि भव मे प्राणधारिणी ॥ ७८ ॥

जो आपत्तिकालमें मित्र हो, उसी मित्रकी विद्वान् पुरुष प्रशंसा करते हैं। सुश्रोणि! मैं कामसे पीड़ित हो रही हूँ; तुम मेरे प्राणोंकी रक्षा करनेवाली बनो ॥ ७८ ॥

यद्येनं मे विशालाक्षि भर्तारममरोपमम्।
अद्य नानयसि क्षिप्रं प्राणांस्त्यक्ष्याम्यहं शुभे ॥ ७९ ॥

शुभे! विशाललोचने! यदि तुम मेरे इन देवोपम पतिको आज यहाँ नहीं ले आओगी तो मैं शीघ्र ही अपने प्राणोंका परित्याग कर दूँगी ॥ ७९ ॥

उषाया वचनं श्रुत्वा चित्रलेखाब्रवीद् वचः।
श्रोतुमर्हसि कल्याणि वचनं मे शुचिस्मिते ॥ ८० ॥

उषाकी यह बात सुनकर चित्रलेखा बोली—'कल्याणि! पवित्र मुसकानवाली उषे! पहले मेरी बात तो सुनो! ॥८०॥

यथा बाणस्य नगरी रक्ष्यते देवि सर्वशः।
द्वारकापि तथा भीरु दुराधर्षा सुरैरपि ॥ ८१ ॥

'देवि! जैसे बाणासुरकी नगरी सब ओरसे सुरक्षित है, भीरु! उसी प्रकार द्वारकापुरी भी है। देवता भी उसका पराभव नहीं कर सकते ॥ ८१ ॥

अयस्मयप्रतिच्छन्ना गुप्तद्वारा च सा पुरी।
गुप्ता वृष्णिकुमारैश्च तथा द्वारकवासिभिः ॥ ८२ ॥

'वह लोहेके किवाड़ोंसे ढकी हुई है। उस पुरीका प्रवेश-द्वार पूर्णतः गुप्त (सुरक्षित) है। वृष्णिवंशीकुमार तथा अन्य द्वारकावासी उस नगरीकी रक्षा करते हैं ॥ ८२ ॥

प्रान्ते सलिलसंयुक्ता विहिता विश्वकर्मणा।
रक्ष्यते पुरुषैर्घोरैः पद्मनाभस्य शासनात् ॥ ८३ ॥

'विश्वकर्माने उस पुरीका निर्माण किया है। उसके प्रान्त-भागमें समुद्रकी जलराशि ही खाईके रूपमें विद्यमान है। पद्मनाभ श्रीकृष्णके आदेशसे बड़े भयंकर पुरुष उसकी रक्षा करते हैं ॥ ८३ ॥

शैलप्राकारपरिखादुर्गमार्गप्रवेशिनी ।
सप्तप्राकाररचिता पर्वतैर्धातुमण्डितैः ॥ ८४ ॥

'पर्वत ही उसके परकोटे हैं। समुद्र ही खाई है। दुर्गके मार्गसे ही उसमें प्रवेश होता है। धातुमण्डित पर्वतोंके बने हुए सात परकोटोंसे वह पुरी घिरी हुई है ॥ ८४ ॥

न च शक्यमविज्ञातैः प्रवेष्टुं द्वारकां पुरीम्।
आत्मानं मां च रक्षस्व पितरं च विशेषतः ॥ ८५ ॥

'अपरिचित व्यक्ति द्वारकापुरीमें कभी प्रवेश नहीं कर सकते, अतः अनिरुद्धको लानेका हठ छोड़कर तुम अपनी, मेरी और विशेषतः अपने पिताकी रक्षा करो' ॥ ८५ ॥

उषोवाच

तव योगप्रभावेण शक्यं तत्र प्रवेशनम्।
बहुना किं प्रलापेन प्रतिज्ञा श्रूयतां मम ॥ ८६ ॥

उषा बोली—सखि! योगशक्तिके प्रभावसे तुम्हारा द्वारकापुरीमें प्रवेश हो सकता है। अधिक प्रलाप करनेसे क्या लाभ? मेरी प्रतिज्ञा सुन लो ॥ ८६ ॥

अनिरुद्धस्य वदनं पूर्णचन्द्रसमप्रभम्।
यद्यहं तन्न पश्यामि यास्यामि यमसादनम् ॥ ८७ ॥

यदि मैं अनिरुद्धका पूर्ण चन्द्रमाके समान कान्तिमान् वह मनोहर मुख नहीं देखूँगी तो यमलोकको चली जाऊँगी ॥ ८७ ॥

दूतमासाद्य कार्याणां सिद्धिर्भवति भामिनि।
तस्माद् दौत्येन मे गच्छ जीवन्तीं मां यदीच्छसि॥ ८८ ॥

भामिनि! अच्छे दूतको पाकर कार्योंकी सिद्धि हो जाती है; अतः यदि तुम मुझे जीवित रखना चाहती हो तो मेरी दूती बनकर द्वारकाको चली जाओ ॥ ८८ ॥

यदि त्वं मे विजानासि सख्यं प्रेम्णा च भाषितम्।
क्षिप्रमानय मे कान्तं तवास्मि शरणं गता ॥ ८९ ॥

यदि तुम मेरे सखित्वको जानती हो और प्रेमपूर्वक कही हुई मेरी बातपर विश्वास करती हो तो मेरे प्रियतम-को शीघ्र यहाँ ले आओ। मैं तुम्हारी शरणमें आयी हूँ ॥८९॥

जीवितस्य हि संदेहं क्षयं चैव कुलस्य च।
कामार्ता हि न पश्यन्ति कामिन्यो मदविक्लवाः ॥ ९० ॥

प्राणोंके लिये संशय उपस्थित हो और कुलका भी संहार हो जाय, किंतु कामपीडित मदमत्त कामिनियाँ इन बातोंकी ओर नहीं देखती हैं ॥ ९० ॥

प्रयत्नो युज्यते कार्येष्विति शास्त्रनिदर्शनम्।
त्वं च शक्ता विशालाक्षि द्वारकायां प्रवेशने ॥ ९१ ॥
संस्तुतासि मया भीरु कुरु मे प्रियदर्शनम्।

सभी कार्योंके लिये प्रयत्न करना उचित है, यह शास्त्र-की आज्ञा है। विशाललोचने! तुम द्वारकापुरीमें प्रवेश करनेमें समर्थ हो। भीरु! मैंने तुम्हारी बड़ी स्तुति की है। तुम मुझे मेरे प्रियतमका दर्शन करा दो ॥ ९१½ ॥

चित्रलेखोवाच

सर्वथा संस्तुता तेऽहं वाक्यैरमृतसोदरैः ॥ ९२ ॥
कारिता च समुद्योगं प्रियैः कान्तैश्च भाषितैः।
एषा गच्छाम्यहं भीरु क्षिप्रं वै द्वारकां पुरीम् ॥ ९३ ॥

चित्रलेखा बोली—सखि! तुम्हारे अमृतोपम वचनों-द्वारा मेरी सब प्रकारसे स्तुति ही की गयी है। तुम्हारे इन प्रिय एवं मनोरम वचनोंने मुझे इस कार्यके लिये उद्योग करनेको विवश कर दिया है। भीरु! यह देखो, अब मैं शीघ्र ही द्वारकापुरीको जाती हूँ ॥ ९२-९३ ॥

भर्तारमानयाम्यद्य तव वृष्णिकुलोद्भवम्।
अनिरुद्धं महाबाहुं प्रविश्य द्वारकां पुरीम् ॥ ९४ ॥

आज तुम्हारे पति वृष्णिवंशावतंस महाबाहु अनिरुद्धको मैं द्वारकापुरीमें प्रवेश करके ले आऊँगी ॥ ९४ ॥

सा वचस्तथ्यमशिवं दानवानां भयावहम्।
उक्त्वा चान्तर्हिता क्षिप्रं चित्रलेखा मनोजवा ॥ ९५ ॥

यह वचन यथार्थ होनेके साथ ही दानवोंके लिये अमङ्गलकारक और भयावह था। इसे कहकर मनके समान वेगशालिनी चित्रलेखा तत्काल अन्तर्धान हो गयी ॥ ९५ ॥

सखीभिः सहिता ह्युषा चिन्तयन्ती तु सा स्थिता।
तृतीये तु मुहूर्ते सा नष्टा बाणपुरात् तदा ॥ ९६ ॥

उषा अपनी सखियोंके साथ अभीष्ट कार्यका चिन्तन

करती हुई वहीं खड़ी रही; किंतु चित्रलेखा उस समय तृतीय मुहूर्तमें बाणपुरसे अदृश्य हुई थी ॥ ९६ ॥

सखीप्रियं चिकीर्षन्ती पूजयन्ती तपोधनान्।
क्षणेन समनुप्राप्ता द्वारकां कृष्णपालिताम् ॥ ९७ ॥

सखीका प्रिय करनेकी इच्छा लिये तपस्वी मुनियोंका पूजन करती हुई चित्रलेखा एक ही क्षणमें श्रीकृष्ण-द्वारा सुरक्षित द्वारकापुरीमें जा पहुँची ॥ ९७ ॥

कैलासशिखराकारैः प्रासादैरुपशोभिताम्।
ददर्श द्वारकां रम्यां दिवि तारामिव स्थिताम् ॥ ९८ ॥

कैलासशिखरके समान ऊँचे-ऊँचे महलोंसे सुशोभित रमणीय द्वारकापुरीको उसने आकाशमें प्रकाशित होती हुई ताराके समान देखा ॥ ९८ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि उषाहरणे चित्रलेखाया द्वारकागमने अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें उषाहरणके प्रसङ्गमें चित्रलेखाका द्वारकागमनविषयक एक सौ अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११८ ॥

एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

चित्रलेखा और नारदजीका संवाद, चित्रलेखाका नारदजीसे तामसी विद्या ग्रहणकर अनिरुद्धको शोणितपुर ले जाना, उषा और अनिरुद्धका गान्धर्व-विवाह, अनिरुद्धका बाणासुरके सैनिकों तथा बाणासुरके साथ युद्ध, उनका नागपाशमें बँधकर बंदी होना तथा नारदजीका द्वारका जाना

वैशम्पायन उवाच

अथ द्वारवतीं प्राप्य स्थिता सा भवनान्तिके।
प्रवृत्तिहरणार्थाय चित्रलेखा व्यचिन्तयत् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं--जनमेजय ! तदनन्तर द्वारकापुरीके पास पहुँचकर चित्रलेखा एक घरके पास खड़ी हो गयी और अनिरुद्धके पास संदेश भेजनेके लिये कोई युक्ति सोचने लगी ॥ १ ॥

अथ चिन्तयती सा तु बुद्धिबुद्ध्यर्थनिश्चयम्।
अपश्यन्नारदं तत्र ध्यायन्तमुदके मुनिम् ॥ २ ॥

बुद्धिसे बोद्धव्य विषयका जो निश्चय होता है, उसीका विचार करती हुई चित्रलेखाने वहाँ नारदमुनिको देखा, जो समुद्रके जलमें ध्यान लगाये बैठे थे ॥ २ ॥

तं दृष्ट्वा चित्रलेखा तु हर्षेणोत्फुल्ललोचना।
उपसृत्याभिवाद्याथ तत्रैवाधोमुखी स्थिता ॥ ३ ॥

उन्हें देखकर चित्रलेखाके नेत्र हर्षसे खिल उठे। वह उनके पास गयी और उन्हें प्रणाम करके वहीं नीचे मुँह किये खड़ी हो गयी ॥ ३ ॥

नारदस्त्वाशिषं दत्त्वा चित्रलेखामथाब्रवीत्।
किमर्थमिह सम्प्राप्ता श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ ४ ॥

नारदजीने आशीर्वाद देकर चित्रलेखासे कहा--'यहाँ किसलिये आयी हो, यह मैं ठीक-ठीक सुनना चाहता हूँ' ॥ ४ ॥

देवर्षिमथ तं दिव्यं नारदं लोकपूजितम्।
कृताञ्जलिपुटा भूत्वा चित्रलेखा त्वथाब्रवीत् ॥ ५ ॥

तब चित्रलेखा दोनों हाथ जोड़कर लोकपूजित दिव्य देवर्षि नारदसे इस प्रकार बोली--॥ ५ ॥

भगवञ्छ्रूयतां वाक्यं दौत्येनाहमिहागता।
अनिरुद्धं मुने नेतुं यदर्थं च शृणुष्व मे ॥ ६ ॥

'भगवन् ! मेरी बात सुनिये। मैं दूती होकर यहाँ आयी हूँ। मुने ! मैं अनिरुद्धको यहाँसे ले जाना चाहती हूँ, किस लिये, यह मुझसे सुनिये ॥ ६ ॥

नगरे शोणितपुरे बाणो नाम महासुरः।
तस्य कन्या वरारोहा नाम्नोषेति च विश्रुता ॥ ७ ॥

'शोणितपुर नगरमें जो बाण नामसे प्रसिद्ध महान् असुर है, उसके एक सुन्दर अङ्गवाली कन्या है, जो उषाके नामसे विख्यात है ॥ ७ ॥

भगवन् सानुरक्ता च प्राद्युम्नि पुरुषोत्तमम्।
देव्या वरविसर्गेण तस्या भर्ता विनिर्मितः ॥ ८ ॥

'भगवन् ! वह प्रद्युम्नकुमार पुरुषोत्तम अनिरुद्धके प्रति अनुरक्त है; देवी पार्वतीके वरदानके अनुसार अनिरुद्ध ही उसके पति नियत हुए हैं ॥ ८ ॥

तं च नेतुं समायाता तत्र सिद्धिं विधत्स्व मे।
मया नीतेऽनिरुद्धे तु नगरं शोणिताह्वयम् ॥ ९ ॥
प्रवृत्तिः पुण्डरीकाक्षे त्वयाऽऽख्येया महामुने।

'मैं उन्हींको ले जानेके लिये आयी हूँ। मेरे उद्देश्यकी सिद्धिका कोई उपाय कीजिये। महामुने ! जब मैं अनिरुद्धको शोणितपुर नगरमें पहुँचा दूँ, तब आप कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णको यह समाचार बतावें ॥ ९½ ॥

अवश्यं भविता चैव कृष्णेन सह विग्रहः।
बाणस्य सुमहान् संख्ये दिव्यो हि स महासुरः॥ १०॥

'अवश्य ही भगवान् श्रीकृष्णके साथ बाणासुरका महान् युद्ध होगा। वह महान् असुर समराङ्गणमें दिव्य शक्तिसे सम्पन्न होता है॥ १०॥

न च शक्तोऽनिरुद्धस्तं युद्धे जेतुं महासुरम्।
सहस्रबाहुमायान्तं जयेत् कृष्णो महाभुजः॥ ११॥

'वह महान् असुर जब सहस्र भुजाओंसे युक्त होकर युद्धभूमिमें पदार्पण करेगा, उस समय अनिरुद्ध उसे नहीं जीत सकते; महाबाहु श्रीकृष्ण ही उसपर विजय पा सकते हैं॥ ११॥

भगवन् संनिकर्षे ते यदर्थमहमागता।
कथं हि पुण्डरीकाक्षो ज्ञापितस्तदिदं भवेत्॥ १२॥

'भगवन्! मैं आपके निकट जिस अभिप्रायसे आयी हूँ, वह यह है कि कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णको यह बात कैसे बतायी जाय?॥ १२॥

त्वत्प्रसादाच्च भगवन् न मे कृष्णाद् भयं भवेत्।
स हि तत्त्वार्थदृष्टिस्तु अनिरुद्धः कथं ह्रियेत्॥ १३॥

'भगवन्! आपकी कृपासे मुझे भगवान् श्रीकृष्णसे कोई भय नहीं है; क्योंकि वे तत्त्वार्थदर्शी हैं। परंतु अनिरुद्धका अपहरण कैसे किया जाय?॥ १३॥

क्रुद्धो हि स महाबाहुस्त्रैलोक्यमपि निर्दहेत्।
पौत्रशोकाभिसंतप्तः शापेन स दहेत माम्॥ १४॥

'महाबाहु श्रीकृष्ण यदि क्रुद्ध हो जायँ तो समस्त त्रिलोकीको भी दग्ध कर सकते हैं। पौत्रशोकसे संतप्त होकर अपने शापसे मुझे जला सकते हैं॥ १४॥

तत्रोपायं च भगवंश्चिन्तितुं वै त्वमर्हसि।
यथा ह्यूषा लभेत् कान्तं मम चैवाभयं भवेत्॥ १५॥

'अतः भगवन्! इस विषयमें आप ही कोई ऐसा उपाय सोचिये, जिससे उषा अपने प्रियतमको प्राप्त कर ले और मुझे भी कोई भय न हो'॥ १५॥

इत्येवमुक्तो भगवांश्चित्रलेखां स नारदः।
उवाच स शुभं वाक्यं मा भैस्त्वमभयं शृणु॥ १६॥

उसके ऐसा कहनेपर ऐश्वर्यशाली नारद मुनिने चित्रलेखासे यह शुभ वचन कहा—'चित्रलेखे! तुम डरो मत! मैं भयके निवारणका उपाय बताता हूँ, सुनो॥ १६॥

त्वया नीतेऽनिरुद्धे तु कन्यावेश्मप्रवेशिते।
यदि युद्धं भवेत् तत्र स्मर्तव्योऽहं शुचिस्मिते॥ १७॥

'शुचिस्मिते! तुम जब अनिरुद्धको ले जाओ और उनका कन्याके महलमें प्रवेश हो जाय, तब यदि युद्ध होनेकी सम्भावना हो तो मुझे भी स्मरण करना॥ १७॥

ममैष परमः कामो युद्धं द्रष्टुं मनोरमे।
तद् दृष्ट्वा च महाप्रीतिः प्रवृत्तिश्च दृढा भवेत्॥ १८॥

'मनोरमे! युद्ध देखनेके लिये मुझे बड़ी अभिलाषा रहती है और उसे देखकर बहुत प्रसन्नता होती है। साथ ही युद्ध करानेकी मेरी प्रवृत्ति और दृढ़ होती है॥ १८॥

गृह्यतां तामसी विद्या सर्वलोकप्रमोहिनी।
कृतकृत्यस्तु ते देवि एष विद्यां ददाम्यहम्॥ १९॥

'तुम मुझसे तामसी विद्या ग्रहण कर लो, जो सब लोगोंको मोहमें डालनेवाली है। देवि! इस विद्याकी सिद्धिके लिये जो पुरश्चरण आदि कार्य करने पड़ते हैं, वे सब मैंने ही कर दिये हैं। इस प्रकार यह सिद्ध की हुई विद्या मैं तुम्हें दे रहा हूँ'॥ १९॥

एवमुक्ते तु वचने नारदेन महर्षिणा।
तथेति वचनं प्राह चित्रलेखा मनोजवा॥ २०॥

महर्षि नारदके ऐसा कहनेपर मनके समान वेगवाली चित्रलेखाने 'तथास्तु' कहकर उनकी आज्ञा स्वीकार कर ली॥ २०॥

अभिवाद्य महात्मानमृषीणां नारदं वरम्।
सा जगामानिरुद्धस्य गृहं चैवान्तरिक्षगा॥ २१॥

इसके बाद ऋषियोंमें श्रेष्ठ महात्मा नारदको प्रणाम करके वह आकाशमार्गसे अनिरुद्धके घरकी ओर चली॥ २१॥

ततो द्वारवतीमध्ये कामस्य भवनं शुभम्।
तत्समीपेऽनिरुद्धस्य भवनं सा विवेश ह॥ २२॥

द्वारकाके मध्यभागमें कामावतार प्रद्युम्नका सुन्दर भवन था और उसीके समीप अनिरुद्धका महल था, जिसमें चित्रलेखाने प्रवेश किया॥ २२॥

सौवर्णवेदिकास्तम्भं रुक्मवैडूर्यतोरणम्।
माल्यदामावसक्तं च पूर्णकुम्भोपशोभितम्॥ २३॥
बर्हिकण्ठनिभग्रीवं प्रासादैरेकसंचयैः।
मणिप्रवालविस्तीर्णं देवगन्धर्वनादितम्॥ २४॥

उस भवनमें सोनेकी वेदियाँ बनी थीं और सोनेके ही खम्भ लगे थे। उसके फाटक सोने और वैदूर्यमणिसे बनाये गये थे। वहाँ फूल-मालाओंकी बंदनवारें लगी थीं। भरे हुए कलश उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। एक ही विशालकाष्ठ या पाषाणपर बिना खंभेके बने हुए प्रासादोंके कारण वह भवन मोरके कण्ठभागकी भाँति शोभा पाता था। उस भवनमें मणि और मूँगे इस प्रकार जड़े गये थे, मानो उन्हींके बने हुए बिछौने बिछे हुए हों। वहाँ देवगन्धर्वोंके संगीतकी ध्वनि गूँज रही थी॥ २३-२४॥

ददर्श भवनं यत्र प्राद्युम्निरवसत् सुखम्।
ततः प्रविश्य सहसा भवनं तस्य तन्महत् ॥ २५ ॥
तत्रानिरुद्धं सापश्यच्चित्रलेखा वराप्सराः।
मध्ये परमनारीणां तारापतिमिवोदितम् ॥ २६ ॥

चित्रलेखाने उस भवनको देखा, जहाँ प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्ध सुखपूर्वक निवास करते थे। उनके उस विशाल भवनमें सहसा प्रवेश करके श्रेष्ठ अप्सरा चित्रलेखाने सुन्दरी नारियोंके मध्यभागमें अनिरुद्धको देखा, मानो ताराओंके बीच तारापति चन्द्रमा उदित हुए हों ॥ २५-२६ ॥

क्रीडाविहारे नारीभिः सेव्यमानमितस्ततः।
पिबन्तं मधु माध्वीकं श्रिया परमया युतम् ॥ २७ ॥

क्रीड़ाविहारके स्थानमें इधर-उधर बहुत-सी सुन्दरियाँ उनकी सेवामें लगी थीं। वे मधुर मधुका पान करते हुए उत्कृष्ट शोभासे प्रकाशित हो रहे थे ॥ २७ ॥

वरासनगतं तत्र यथा चैडविलं तथा।
वाद्यते समतालं च गीयते मधुरं तथा ॥ २८ ॥

धनाध्यक्ष कुबेरके समान वे एक श्रेष्ठ सिंहासनपर विराजमान थे। उनके सामने समतालमें वाद्य बज रहा था और मधुर स्वरमें गान हो रहा था ॥ २८ ॥

न च तस्य मनस्तत्र तमेवार्थमचिन्तयत्।
स्त्रियः सर्वगुणोपेता नृत्यन्ते तत्र तत्र वै ॥ २९ ॥

किंतु उस वाद्य और गानमें उनका मन नहीं लगता था। वे उसी विषयका (उषाके समागमका) चिन्तन कर रहे थे। सर्वगुणसम्पन्न सुन्दरी स्त्रियाँ जहाँ-तहाँ नृत्य कर रही थीं ॥

न चास्य मनसस्तुष्टिं चित्रलेखा प्रपश्यति।
न चाभिरमते भोगैर्न चापि मधु सेवते ॥ ३० ॥

परंतु चित्रलेखाने देखा, अनिरुद्धके मनको कहीं भी संतोष नहीं प्राप्त होता है। ये न तो भोगोंके साथ रमते हैं और न मधुका ही सेवन करते हैं ॥ ३० ॥

व्यक्तमस्य हि तत्स्वप्नो हृदये परिवर्तते।
इति तत्रैव बुद्ध्या च निश्चिता गतसाध्वसा ॥ ३१ ॥

निश्चय ही इनके हृदयमें भी वही स्वप्न चक्कर लगा रहा है। वह अपनी बुद्धिसे वहीं इस निश्चयपर पहुँच गयी और उसका भय दूर हो गया ॥ ३१ ॥

सा दृष्ट्वा परमस्त्रीणां मध्ये शक्रध्वजोपमम्।
चिन्तयाविष्टहृदया चित्रलेखा मनस्विनी ॥ ३२ ॥

श्रेष्ठ एवं सुन्दरी स्त्रियोंके बीचमें इन्द्रध्वजके समान शोभा पानेवाले अनिरुद्धको देखकर मनस्विनी चित्रलेखा मन-ही-मन इस प्रकार चिन्ता करने लगी ॥ ३२ ॥

कथं कार्यमिदं कार्यं कथं स्वस्ति भवेदिति।
सान्तर्हिता चिन्तयित्वा चित्रलेखा यशस्विनी ॥ ३३ ॥
तामस्या च्छादयामास विद्यया शुभलोचना।

'यह कार्य कैसे करना चाहिये, किस तरह करनेसे कल्याण प्राप्त होगा' इस तरह विचार करके सुन्दर नेत्रोंवाली यशस्विनी चित्रलेखाने अदृश्य होकर तामसी विद्याके द्वारा अनिरुद्धके सिवा अन्य सबको आच्छादित कर दिया ॥

ततोऽन्तरिक्षादेवाशु प्रासादोपर्यधिष्ठिता ॥ ३४ ॥
प्राद्युम्निं वचनं प्राह श्लक्ष्णं मधुरया गिरा।

फिर आकाशसे ही शीघ्र आकर वह महलकी छतपर खड़ी हो गयी और प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्धसे मधुर वाणीमें यह स्नेहयुक्त वचन बोली ॥ ३४½ ॥

चक्षुर्दत्त्वा तु सा तस्मै कृत्वा चात्मनिदर्शनम् ॥ ३५ ॥
विविक्ते सा च वै देशे तं वाक्यमिदमब्रवीत्।

पहले दिव्यदृष्टि देकर उसने उन्हें अपने स्वरूपका दर्शन कराया, फिर एकान्त प्रदेशमें उनसे इस प्रकार कहना आरम्भ किया— ॥ ३५½ ॥

अपि ते कुशलं वीर सर्वत्र यदुनन्दन ॥ ३६ ॥
अहस्तावत् प्रदोषो वा कच्चिद् गच्छति ते सुखम्।
शृणुष्व त्वं महाबाहो विज्ञप्तिं मे रतीसुत ॥ ३७ ॥

'वीर यदुनन्दन! आपके लिये सर्वत्र कुशल तो है न? आपका दिन और प्रदोषकाल सुखसे बीतता है न? महाबाहु रतिकुमार! मैं तुम्हारे लिये एक सूचना लायी हूँ, तुम इसे सुनो ॥ ३६-३७ ॥

उषाया मम सख्यास्तु वाक्यं वक्ष्यामि तत्त्वतः।
स्वप्ने तु या त्वया दृष्टा स्त्रीभावं चापि भाविता ॥ ३८ ॥

'मैं अपनी सखी उषाकी बात ठीक-ठीक बताऊँगी, जिसको आपने सपनेमें देखा और अपनी पत्नी बना लिया ॥

बिभर्ति हृदये या त्वामुषया प्रेषिता त्वहम्।
रुदन्ती जृम्भती चैव निःश्वसन्ती मुहुर्मुहुः ॥ ३९ ॥

'वह आपको ही अपने हृदयमें धारण करती है। उषाके भेजनेपर ही मैं यहाँ आयी हूँ। वह बेचारी बार-बार रोती, अँगड़ाई लेती और लंबी साँस खींचती है ॥ ३९ ॥

त्वद्दर्शनपरा सौम्य कामिनी परितप्यते।
यदि त्वं यास्यसे वीर धारयिष्यति जीवितम् ॥ ४० ॥

'सौम्य! वह आपके दर्शनकी बाट जोहती हुई कामके अधीन हो बड़ा कष्ट पा रही है। वीर! यदि आप उसके पास जायँ और मिलें, तभी वह जीवन धारण कर सकेगी ॥ ४० ॥

अदर्शनेन मरणं तस्या नास्त्यत्र संशयः।
यदि नारीसहस्रं ते हृदिस्थं यदुनन्दन ॥ ४१ ॥
स्त्रियाः कामयमानायाः कर्तव्या हस्तधारणा।

'यदि आपका दर्शन उसे नहीं मिला तो उसकी मृत्यु निश्चित है, इसमें कोई संशय नहीं है। यदुनन्दन ! यदि आपके हृदयमें सहस्रों नारियोंने स्थान बना लिया हो तो भी आपको चाहनेवाली एक अनुरक्त स्त्रीका हाथ आपको अवश्य पकड़ना चाहिये ॥ ४१½ ॥

त्वं च तस्या वरोत्सर्गे दत्तो देव्या मनोरथः ॥ ४२ ॥
चित्रपट्टं मया दत्तं त्वच्चिह्नं दृश्य जीवति ।

'देवी पार्वतीने वरदान देते समय आपहीको उसका मनोवाञ्छित पति प्रदान किया है; मैंने उसे आपका चित्रपट दिया है। उसीमें आपके चिह्नका अवलोकन करके वह जी रही है ॥

सानुक्रोशो यदुश्रेष्ठ भव तस्या मनोरथे ॥ ४३ ॥
उषा ते पतते मूर्ध्ना वयं च यदुनन्दन ।

'यदुश्रेष्ठ ! आप उसका मनोरथ पूर्ण करनेके लिये दयालु बनें। यदुनन्दन ! उषा आपके चरणोंमें सिर रखकर प्रणाम करती है। हम सखियाँ भी आपको माथ नवाती हैं ॥४३½॥

श्रूयतां चोद्भवस्तस्याः कुलशीलं च यादृशम् ॥ ४४ ॥
संस्थानं प्रकृतिं चास्याः पितरं च ब्रवीमि ते ।

'आप उषाकी उत्पत्ति सुन लें। उसका कुल और शील जैसा है, उसे भी जान लें; उसकी आकृति, स्वभाव और पिताका भी परिचय आपको देती हूँ ॥ ४४½ ॥

वैरोचनिसुतो वीरो बाणो नाम महासुरः ॥ ४५ ॥
स राजा शोणितपुरे तस्य त्वामिच्छते सुता ।
त्वद्भावगतचित्ता सा त्वन्मयं चापि जीवितम् ॥ ४६ ॥

'विरोचनकुमार बलिका वीर पुत्र बाण नामक महान् असुर शोणितपुरका राजा है। उसकी पुत्री उषा आपको पति बनाना चाहती है। उसका चित्त सदा आपके ही चिन्तनमें लगा रहता है, उसका जीवन भी आप ही हैं ॥ ४५-४६ ॥

मनोरथकृतो भर्ता देव्या दत्तो न संशयः ।
त्वत्संगमात् सा सुश्रोणी प्राणान् धारयते शुभा॥४७॥

'देवी पार्वतीने आपको ही उसके लिये मनके अनुरूप पति दिया है, इसमें संशय नहीं। सुन्दर कटिप्रदेशवाली शुभलक्षणा उषा आपके समागमकी आशा लेकर ही प्राणोंको धारण करती है' ॥ ४७ ॥

चित्रलेखावचः श्रुत्वा सोऽनिरुद्धोऽब्रवीदिदम् ।
दृष्टा स्वप्ने मया सा हि तन्मत्तः शृणु शोभने ॥ ४८ ॥
रूपं कान्तिं मतिं चैव संयोगं रुदितं तथा ।
एवं सर्वमहोरात्रं मुह्यामि परिचिन्तयन् ॥ ४९ ॥

चित्रलेखाकी बात सुनकर अनिरुद्धने उससे इस प्रकार कहा—'शोभने ! मैंने उसे सपनेमें देखा है। उसका परिणाम क्या हुआ ? यह मुझसे सुनो। मैं दिन-रात उसके रूप, कान्ति, मति, संयोगसुख तथा रोदन आदि सभी बातोंका इसी तरह चिन्तन करता हुआ मोहमें पड़ा रहता हूँ ॥ ४८-४९ ॥

यद्यहं समनुग्राह्यो यदि सख्यं त्वमिच्छसि ।
नयस्व चित्रलेखे मां द्रष्टुमिच्छाम्यहं प्रियाम् ॥ ५० ॥

'चित्रलेखे ! यदि मैं तुम्हारे अनुग्रहका पात्र हूँ और यदि तुम मुझसे मैत्री चाहती हो तो मुझे अपने साथ ले चलो। मैं प्राणप्यारी उषाको देखना चाहता हूँ ॥ ५० ॥

कामसंतापसंतप्तः प्रियासङ्गमकामतः ।
एषोऽञ्जलिर्मया बद्धः सत्यं स्वप्नं कुरुष्व मे ॥ ५१ ॥

'मैं कामजनित तापसे संतप्त हूँ; अतः प्रियतमाके सङ्गमकी कामनासे मैंने तुम्हारे सामने यह अञ्जलि बाँध रखी है, मेरे स्वप्नको सत्य कर दिखाओ' ॥ ५१ ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा चित्रलेखा वराप्सराः ।
सफलोऽद्य मम क्लेशः सख्या मे यत् प्रयाचितम् ॥५२॥

अनिरुद्धकी यह बात सुनकर श्रेष्ठ अप्सरा चित्रलेखा मन-ही-मन यह कहने लगी कि आज मेरा क्लेश उठाना सफल हो गया। मेरी सखीने जो वस्तु माँगी थी, वह मुझे मिल गयी ॥

वैशम्पायन उवाच

ईप्सितं तस्य विज्ञाय अनिरुद्धस्य भामिनी ।
चित्रलेखा ततस्तुष्टा तथेति च तमब्रवीत् ॥ ५३ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! अनिरुद्धका मनोरथ जानकर भामिनी चित्रलेखा बहुत प्रसन्न हुई और बोली, 'अच्छा ऐसा ही करूँगी' ॥ ५३ ॥

हर्म्ये स्त्रीगणमध्यस्थं कृत्वा चान्तर्हितं तदा ।
उत्पपात गृहीत्वा सा प्राद्युम्निं युद्धदुर्मदम् ॥ ५४ ॥

अट्टालिकामें स्त्रियोंके बीचमें बैठे हुए रणदुर्मद प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्धको अदृश्य करके उन्हें साथ ले चित्रलेखा आकाशमें उड़ चली ॥ ५४ ॥

सा तमध्वानमागम्य सिद्धचारणसेवितम् ।
सहसा शोणितपुरं प्रविवेश मनोजवा ॥ ५५ ॥

वह मनके समान वेगशालिनी थी। उसने सिद्धों और चारणोंसे सेवित आकाशमार्गमें आकर सहसा शोणितपुरमें प्रवेश किया ॥ ५५ ॥

अदर्शनं तमानीय मायया कामरूपिणी ।
अनिरुद्धं महाभागा यत्रोषा तत्र गच्छति ॥ ५६ ॥

वह कामरूपिणी अप्सरा अनिरुद्धको मायासे अदृश्य करके जहाँ महाभागा उषा थी, वहाँ गयी ॥ ५६ ॥

उषाया दर्शयच्चैनं चित्राभरणभूषितम् ।
चित्राम्बरधरं वीरं रहस्यमररूपिणम् ॥ ५७ ॥

वहाँ उसने उषाको एकान्तमें विचित्र आभूषणोंसे विभूषित तथा विचित्र वस्त्रधारी देवतुल्य रूपवाले वीर अनिरुद्धका दर्शन कराया ॥ ५७ ॥

तत्रोषा विस्मिता दृष्ट्वा हर्म्यस्था सखिसंनिधौ।
प्रवेशयामास च तं तदा सा स्वगृहं ततः ॥ ५८ ॥

वहाँ अट्टालिकामें सखियोंके समीप बैठी हुई उषा अनिरुद्धको देखकर चकित हो उठी। उसने तत्काल उन्हें अपने महलके भीतर प्रवेश कराया ॥ ५८ ॥

प्रहर्षोत्फुल्लनयना प्रियं दृष्ट्वार्थकोविदा।
सा हर्म्यस्था तमर्घ्येण यादवं समपूजयत् ॥ ५९ ॥

प्रियतमका दर्शन करके उषाके नेत्र हर्षसे खिल उठे। स्वार्थसाधनमें कुशल उषाने अट्टालिकामें ही स्थित हो अर्घ्य निवेदन करके यदुकुलनन्दन अनिरुद्धका पूजन किया ॥

चित्रलेखां परिष्वज्य प्रियाख्यानैरतोषयत्।
त्वरिता कामिनी प्राह चित्रलेखां भयातुरा ॥ ६० ॥

फिर चित्रलेखाको हृदयसे लगाकर प्रिय वचनोंके द्वारा उसे संतुष्ट किया। इसके बाद कामिनी उषा भयसे व्याकुल हो तुरंत ही चित्रलेखासे बोली—॥ ६० ॥

सखीदं वै कथं कार्यं गुह्यकार्यविशारदे।
गुह्ये कृते भवेत् स्वस्ति प्रकाशे जीवितक्षयः ॥ ६१ ॥

'कार्यसाधनमें कुशल सखि! इस कार्यको गुप्त कैसे रखा जाय? गुप्त रखनेपर ही कल्याण हो सकता है। इसे प्रकाशित कर देनेपर प्राणोंपर संकट आ सकता है,' ॥ ६१ ॥

चित्रलेखाब्रवीद् वाक्यं शृणु त्वं निश्चयं सखि।
कृतं पुरुषकारेण दैवं नाशयते क्षणात् ॥ ६२ ॥

तब चित्रलेखा बोली—'सखि! मेरा निश्चय सुनो! पुरुषार्थद्वारा किये गये कार्यको दैव क्षणभरमें नष्ट कर देता है ॥ ६२ ॥

यदि देव्याः प्रसादस्ते ह्यनुकूलो भविष्यति।
अद्य मायाकृतं गुह्यं न कश्चिज्ज्ञास्यते नरः ॥ ६३ ॥

'यदि पार्वतीदेवीका कृपाप्रसाद तुम्हारे अनुकूल होगा तो आज मायाद्वारा छिपाकर किये गये इस गुप्त कार्यको कोई नहीं जान सकेगा' ॥ ६३ ॥

सख्या वै एवमुक्ता सा पर्यवस्थितचेतना।
एवमेतदिति प्राह सानिरुद्धमिदं वचः ॥ ६४ ॥

सखीके ऐसा कहनेपर उषाकी चित्तवृत्ति स्थिर हुई। वह बोली, 'तुम्हारा कहना ठीक है', फिर उसने अनिरुद्धसे कहा—॥ ६४ ॥

दिष्ट्या स्वप्नगतश्चौरो दृश्यते सुभगः पतिः।
यत्कृते तु वयं खिन्ना दुर्लभप्रियकाङ्क्षया ॥ ६५ ॥

'सौभाग्यकी बात है कि सपनेमें आया हुआ वह चोर आज सुन्दर पतिके रूपमें प्रत्यक्ष दिखायी देता है, जिसके लिये हम सब लोग खिन्न हो रही थीं, दुर्लभ प्रियतमकी आकाङ्क्षा रखनेके कारण भारी चिन्तामें पड़ गयी थीं ॥ ६५ ॥

कच्चित् तव महाबाहो कुशलं सर्वतोगतम्।
हृदयं हि मृदु स्त्रीणां तेन पृच्छाम्यहं तव ॥ ६६ ॥

'महाबाहो! आपके लिये सर्वत्र कुशल तो है न! स्त्रियोंका हृदय कोमल होता है, इसलिये मैं आपका कुशल-समाचार पूछ रही हूँ' ॥ ६६ ॥

तस्यास्तद् वचनं श्रुत्वा उषायाः श्लक्ष्णमर्थवत्।
सोऽप्याह यदुशार्दूलः शुभाक्षरतरं वचः ॥ ६७ ॥

उषाका वह अर्थभरा स्नेहयुक्त वचन सुनकर यदुकुलसिंह अनिरुद्ध भी सुन्दर अक्षरोंसे युक्त बात बोले ॥ ६७ ॥

हर्षविप्लुतनेत्रायाः पाणिनाश्रु प्रमृज्य च।
प्रहस्य सस्मितं प्राह हृदयग्राहकं वचः ॥ ६८ ॥

पहले उन्होंने अपने हाथसे आनन्दके आँसुओंसे भरे हुए नेत्रवाली उषाके आँसू पोंछे, फिर हँसकर मुसकराते हुए वे ऐसी बात बोले, जो चित्तको चुराये लेती थी—॥ ६८ ॥

कुशलं मे वरारोहे सर्वत्र मितभाषिणि।
त्वत्प्रसादेन मे देवि प्रियमावेदयामि ते ॥ ६९ ॥

'वरारोहे! तुम्हारे प्रसादसे मेरे लिये सर्वत्र कुशल है। बहुत कम बोलनेवाली देवि! मैं तुम्हें यह प्रिय संवाद निवेदन करता हूँ ॥ ६९ ॥

अदृष्टपूर्वश्च मया देशोऽयं शुभदर्शने।
निशि स्वप्ने यथा दृष्टः सकृत्कन्यापुरे तथा ॥ ७० ॥

'शुभदर्शने! यह देश मेरे लिये पहलेका देखा हुआ नहीं था, केवल एक बार रातको सपनेमें कन्याओंके अन्तःपुरमें इसे जैसा देखा था, वैसा ही आज भी यह दिखायी देता है ॥ ७० ॥

एवमेवमहं भीरु त्वत्प्रसादादिहागतः।
न च तद् रुद्रपत्न्या वै मिथ्या वाक्यं भविष्यति ॥ ७१ ॥

'भीरु! तुम्हारे प्रसादसे ही मेरा इस प्रकार यहाँ आगमन हुआ है। रुद्रपत्नी उमा देवीकी बात कभी मिथ्या नहीं होगी ॥ ७१ ॥

देव्यास्ते प्रीतिमाज्ञाय त्वत्प्रियार्थं च भामिनि।
अनुप्राप्तोऽस्मि चाद्यैव प्रसीद शरणं गतः ॥ ७२ ॥

'भामिनि! पार्वतीदेवीका तुमपर बड़ा प्रेम है—यह जानकर तुम्हारा प्रिय करनेके लिये ही मैं आज यहाँ आया हूँ। मुझपर प्रसन्न होओ, मैं तुम्हारी शरणमें आया हूँ,' ॥ ७२ ॥

इत्युक्ता त्वरमाणा सा गुह्यदेशे स्वलंकृता।
कान्तेन सह संयुक्ता स्थिता वै भीतभीतवत् ॥ ७३ ॥

अनिरुद्धके ऐसा कहनेपर सुन्दर अलंकारोंसे अलंकृत हुई उषा अपने प्रियतमके साथ संयुक्त हो तुरंत ही गुप्त-स्थानमें जा पहुँची। उस समय वह भयभीत-सी जान पड़ती थी ॥ ७३ ॥

ततश्चोद्वाहधर्मेण गान्धर्वेण समीयतुः।
अन्योन्यं रमतुस्तौ तु चक्रवाकौ यथा दिवा ॥ ७४ ॥

तदनन्तर वे दोनों गान्धर्व विवाहके नियमसे परस्पर दाम्पत्यभाव स्वीकार करके एक दूसरेसे मिले, जैसे चकवे दिनमें समागम करते हैं, उसी प्रकार उन दोनोंने परस्पर रमण किया ॥ ७४ ॥

पतिना सानिरुद्धेन मुमुदे तु वराङ्गना।
कान्तेन सह संयुक्ता दिव्यवस्त्रानुलेपना ॥ ७५ ॥

दिव्य वस्त्र और अनुलेपन धारण करनेवाली श्रेष्ठ नारी उषा अपने प्रियतम पति अनिरुद्धसे मिलकर बहुत ही प्रसन्न हुई ॥ ७५ ॥

रममाणानिरुद्धेन अविज्ञाता सुता तदा।
तस्मिन्नेव क्षणे प्राप्ते यदूनामृषभो हि सः ॥ ७६ ॥
दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्यस्रगनुलेपनः।
उषया सह संयुक्तो विज्ञातो बाणरक्षिभिः ॥ ७७ ॥

अनिरुद्धके साथ रमण करती हुई अपनी पुत्रीके विषयमें उस समय बाणासुरको कोई समाचार ज्ञात नहीं हुआ। परंतु बाणासुरके द्वारा नियुक्त हुए जो गुप्त पहरेदार थे, उन्होंने उसी क्षण यह जान लिया कि दिव्य माल्य, दिव्य वस्त्र, दिव्य हार और दिव्य अनुलेपन धारण करनेवाले यदुकुलतिलक अनिरुद्धने उषाके साथ समागम किया है ॥ ७६-७७ ॥

ततस्तैश्चारपुरुषैर्बाणस्यावेदितं द्रुतम्।
यथा दृष्टमशेषेण कन्यायास्तदतिक्रमम् ॥ ७८ ॥

तब उन गुप्तचरोंने कन्याका अपराध जिस तरह देखा था, वह सब शीघ्र ही बाणासुरको निवेदन कर दिया ॥ ७८ ॥

ततः किङ्करसैन्यं तु व्यादिष्टं भीमकर्मणा।
बलेः पुत्रेण वीरेण बाणेनामित्रघातिना ॥ ७९ ॥

तब भयानक कर्म करनेवाले शत्रुघाती बलिपुत्र वीर बाणासुरने किङ्करोंकी सेनाको आदेश दिया—॥ ७९ ॥

गच्छध्वं सहिताः सर्वे हन्यतामेव दुर्मतिः।
येन नः कुलचारित्रं दूषितं दूषितात्मना ॥ ८० ॥

'सैनिको! तुम सब लोग एक साथ जाओ और उस दुर्बुद्धि मनुष्यको मार डालो, जिसने अपने हृदयको तो दूषित कर ही लिया था, हमारे कुलके सदाचारको भी कलङ्कित कर दिया ॥ ८० ॥

उषायां धर्षितायां हि कुलं नो धर्षितं महत्।
असम्प्रदत्तां योऽस्माभिः स्वयंग्राहमधर्षयत् ॥ ८१ ॥

'उषाके कलङ्कित हो जानेसे हमारा महान् कुल कलङ्कित हो गया। इस दुष्ट मनुष्यने हमारे दिये बिना ही स्वयं उषाको ग्रहण कर लिया और उसकी पवित्रता नष्ट कर दी ॥ ८१ ॥

अहो वीर्यमहो धैर्यमहो धाष्टर्यं च दुर्मतेः।
यः पुरं भवनं चेदं प्रविष्टो नः स बालिशः ॥ ८२ ॥

'अहो! इस दुष्ट बुद्धिवाले पुरुषका पराक्रम अद्भुत है, धैर्य और धृष्टता भी अद्भुत है, जिससे यह नादान न केवल हमारे नगरमें अपितु हमारे इस घरमें भी घुस आया' ॥

एवमुक्त्वा पुनस्तांस्तु किङ्करांश्चोदयद् भृशम्।
ते तस्याज्ञामथो गृह्य सुसंनद्धा विनिर्ययुः ॥ ८३ ॥
यत्रानिरुद्धो ह्यभवत् तत्रागच्छन् महाबलाः ॥ ८४ ॥

ऐसा कहकर बाणासुरने पुनः किंकरोंको विशेषरूपसे प्रेरित किया। उसकी आज्ञा पाकर वे कवच आदिसे सुसज्जित हो युद्धके लिये निकल पड़े। वे सब-के-सब बड़े बलवान् थे; अतः जहाँ अनिरुद्ध थे, वहाँ बेखटके जा पहुँचे ॥

नानाशस्त्रोद्यतकरा नानारूपा भयंकराः।
दानवाः समभिक्रुद्धाः प्राद्युम्निवधकाङ्क्षिणः ॥ ८५ ॥

उनके हाथोंमें नाना प्रकारके शस्त्र उठे हुए थे, उनके रूप अनेक प्रकारके थे, वे भय उत्पन्न करनेवाले दानव अनिरुद्धके वधकी इच्छासे अत्यन्त कुपित हो उठे ॥ ८५ ॥

रुरोद तद्बलं दृष्ट्वा बाष्पेणावृतलोचना।
प्राद्युम्निवधभीता सा बाणपुत्री यशस्विनी ॥ ८६ ॥

किङ्करोंकी उस सेनाको देखकर यशस्विनी बाणपुत्री उषाके नेत्रोंमें आँसू भर आये। वह अनिरुद्धके मारे जानेके भयसे भीत हो रोने लगी ॥ ८६ ॥

ततस्तु रुदतीं दृष्ट्वा तामूषां मृगलोचनाम्।
हा हा कान्तेति वेपन्तीमनिरुद्धोऽभ्यभाषत ॥ ८७ ॥

वह 'हा प्रियतम! हा प्राणनाथ!' कहकर काँप रही थी। मृगनयनी उषाको रोती देख अनिरुद्धने उससे कहा—॥ ८७ ॥

अभयं तेऽस्तु सुश्रोणि मा भैस्त्वं हि मयि स्थिते।
सम्प्राप्तो हर्षकालस्ते नेहास्ति भयकारणम् ॥ ८८ ॥

'सुश्रोणि! तुम्हें भय नहीं होना चाहिये। मेरे रहते हुए तुम डरो मत। यह तो तुम्हारे लिये हर्षका समय आया है। इसमें भयका कोई कारण नहीं है ॥ ८८ ॥

कृत्स्नोऽयं यदि बाणस्य भृत्यवर्गो यशस्विनि।
आगच्छति न मे चिन्ता भीरु पश्याद्य विक्रमम् ॥ ८९ ॥

'यशस्विनि! यदि बाणासुरका सारा सेवकसमुदाय आ

जाय तो भी मेरे लिये चिन्ताकी बात नहीं है। भीरु ! तुम आज मेरा पराक्रम देखो' ॥ ८९ ॥

तस्य सैन्यस्य निनदं श्रुत्वाभ्यागच्छतस्ततः।
सहसैवोत्थितः श्रीमान् प्राद्युम्निः किमिति ब्रुवन् ॥ ९० ॥

अपनी ओर आती हुई उस सेनाका कोलाहल सुनकर प्रद्युम्नकुमार श्रीमान् अनिरुद्ध 'यह क्या है?' ऐसा कहते हुए सहसा उठकर खड़े हो गये ॥ ९० ॥

अथ सोऽपश्यत बलं नानाप्रहरणोद्यतम्।
स्थितं समन्ततस्तत्र परिवार्य गृहं महत् ॥ ९१ ॥

तदनन्तर उन्होंने देखा कि उस विशाल गृहको चारों ओरसे घेरकर नाना प्रकारके आयुधोंसे सुसज्जित हुई सेना खड़ी है ॥ ९१ ॥

ततोऽभ्यगच्छत् त्वरितो यत्र तद्वेष्टितं बलम्।
क्रुद्धः स्वबलमास्थाय अदशद् दशनच्छदम् ॥ ९२ ॥

तब वे तुरंत ही कुपित हो अपने बलका भरोसा करके उस स्थानकी ओर चल दिये, जहाँ वह सेना घेरा डालकर खड़ी थी। उस समय उन्होंने अपने ओठको दाँतों तले दबा लिया था ॥ ९२ ॥

ततो योद्धमपोढानां बाणेयानां निशम्य तु।
सा चित्रलेखास्मरत नारदं देवदर्शनम् ॥ ९३ ॥

इतनेमें ही बाणासुरके सैनिकोंको युद्धके लिये उपस्थित देख चित्रलेखाने देवदर्शी नारदजीका स्मरण किया ॥ ९३ ॥

ततो निमेषमात्रेण सम्प्राप्तो मुनिपुङ्गवः।
स्मृतोऽथ चित्रलेखायाः पुरं शोणितसाह्वयम् ॥ ९४ ॥

फिर तो चित्रलेखाके स्मरण करनेपर मुनिवर नारदजी पलक मारते-मारते शोणितपुरमें आ पहुँचे ॥ ९४ ॥

अन्तरिक्षे स्थितस्तत्र सोऽनिरुद्धमथाब्रवीत्।
मा भयं स्वस्ति ते वीर प्राप्तोऽस्म्यद्य पुरं तव ॥ ९५ ॥

वहाँ आकाशमें स्थित होकर उन्होंने अनिरुद्धसे कहा—'वीर ! तुम्हारा कल्याण हो। तुम डरना मत। मैं भी अब तुम्हारे नगरमें आ पहुँचा हूँ' ॥ ९५ ॥

ततश्च नारदं दृष्ट्वा सोऽभिवाद्य महाबलः।
प्रहृष्टमानसो भूत्वा युद्धार्थमभिवर्तत ॥ ९६ ॥

नारदजीको उपस्थित देख महाबली अनिरुद्धने उन्हें प्रणाम किया और प्रसन्नचित्त होकर वे युद्धके लिये तैयार हो गये ॥ ९६ ॥

ततस्तेषां स्वनं श्रुत्वा सर्वेषामेव गर्जताम्।
सहसैवोत्थितः शूरस्तोत्रार्दित इव द्विपः ॥ ९७ ॥

उस समय गर्जना करते हुए उन सभी सैनिकोंका कोला-हल सुनकर शूरवीर अनिरुद्ध अङ्कुशसे पीड़ित हुए हाथीकी भाँति सहसा उठकर चल दिये ॥ ९७ ॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य संदष्टौष्ठं महाभुजम्।
प्रासादाच्चावरोहन्तं भयार्ता विप्रदुद्रुवुः ॥ ९८ ॥

ओठको दाँतोंसे दबाकर महलसे उतरते और अपनी ओर आते हुए महाबाहु अनिरुद्धको देखकर कितने ही सैनिक भयसे व्याकुल होकर भाग खड़े हुए ॥ ९८ ॥

अन्तःपुरद्वारगतं परिघं गृह्य चातुलम्।
वधाय तेषां चिक्षेप नानायुद्धविशारदः ॥ ९९ ॥

अन्तःपुरके द्वारपर रखे हुए अनुपम परिघको हाथमें लेकर नाना प्रकारके युद्धोंमें कुशल अनिरुद्धने उन सैनिकोंके वधके लिये उसे चलाया ॥ ९९ ॥

ते सर्वे बाणवर्षैश्च गदाभिर्मुशलैस्तथा।
असिभिः शक्तिभिः शूलैर्निजघ्नू रणगोचरे ॥ १०० ॥

तब वे समस्त सैनिक रणभूमिमें दिखायी देनेवाले अनिरुद्धपर बाण, गदा, मुसल, खड्ग, शक्ति और शूलोंद्वारा प्रहार करने लगे ॥ १०० ॥

स हन्यमानो नाराचैः परिघैश्च समन्ततः।
दानवैः समभिक्रुद्धैः प्राद्युम्निः शस्त्रकोविदैः ॥ १०१ ॥
नाक्षुभ्यत् सर्वभूतात्मा नदन् मेघ इवोष्णगे।
आविध्य परिघं घोरं तेषां मध्ये व्यतिष्ठत।
सूर्यो दिवि चरन् मध्ये मेघानामिव सर्वशः ॥ १०२ ॥

क्रोधमें भरे हुए शस्त्रकुशल दानवोंद्वारा चारों ओरसे नाराचों और परिघोंका प्रहार होनेपर भी प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्ध क्षुब्ध नहीं हुए; क्योंकि वे सम्पूर्ण भूतोंके आत्मा हैं। वे वर्षाकालके मेघकी भाँति गर्जना करते और भयंकर परिघ घुमाते हुए उन शत्रुओंके बीचमें खड़े हो गये। मानो आकाशमें मेघमण्डलीके भीतर सब ओर विचरते हुए सूर्य शोभा पा रहे हों ॥ १०१-१०२ ॥

दण्डकृष्णाजिनधरो नारदो हृष्टमानसः।
साधु साध्विति वै तत्र सोऽनिरुद्धमभाषत ॥ १०३ ॥

उस समय दण्ड और काला मृगचर्म धारण करनेवाले नारदजी मनमें हर्ष भरकर अनिरुद्धसे बोले—'वीर ! बहुत अच्छा ! बहुत अच्छा !!' ॥ १०३ ॥

ते हन्यमाना रौद्रेण परिघेणामितौजसा।
प्राद्रवन्त भयात् सर्वे मेघा वातेरिता यथा ॥ १०४ ॥

उस अमित ओजवाले भयंकर परिघकी मार खाकर वे समस्त सैनिक भयसे भाग खड़े हुए। मानो हवाके वेगसे बादल छिन्न-भिन्न हो गये हों ॥ १०४ ॥

विद्राव्य दानवान् वीरः परिघेण सुविक्रमः।
अनिरुद्धो रणे हृष्टः सिंहनादं ननाद च ॥ १०५ ॥

उत्तम पराक्रमी वीर अनिरुद्ध अपने परिघकी मारसे दानवोंको भगाकर रणभूमिमें बड़े हर्षके साथ सिंहनाद करने लगे ॥ १०५ ॥

घर्मान्ते तोयदो व्योम्नि नदन्निव महास्वनः ।
तिष्ठध्वमिति चुक्रोश दानवान् युद्धदुर्मदान् ॥१०६॥
प्राद्युम्निर्व्यहनच्चापि सर्वाञ्छत्रुनिवर्हणः ।

जैसे वर्षाकालमें आकाशके भीतर छाये हुए मेघ बड़े जोर-जोरसे गर्जना करते हैं, उसी प्रकार शत्रुसूदन प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्धने गर्जना करके उन रणदुर्मद दानवोंसे चिल्लाकर कहा—'अरे ! खड़े रहो ।' साथ ही उन्होंने सबका संहार आरम्भ कर दिया ॥ १०६½ ॥

तेन ते समरे सर्वे हन्यमाना महात्मना ॥१०७॥
यतो बाणस्ततो भीता ययुर्युद्धपराङ्मुखाः ।

उन महामनस्वी वीरके द्वारा समराङ्गणमें मारे जाते हुए वे समस्त सैनिक युद्धसे विमुख हो गये और भयभीत होकर उस स्थानपर गये, जहाँ बाणासुर विद्यमान था ॥ १०७½ ॥

ततो बाणसमीपस्थाः श्वसन्तो रुधिरोक्षिताः ॥१०८॥
न शर्म लेभिरे दैत्या भयविक्लवचेतसः ।

बाणासुरके समीप खड़े होकर वे सभी दानव लंबी साँस खींचने लगे; उन सबके शरीर रक्तसे रँग गये थे; भयके कारण उनका चित्त व्याकुल हो गया था, अतः उन दैत्योंको चैन नहीं मिलता था ॥ १०८½ ॥

मा भैष्ट मा भैष्ट इति राज्ञा ते तेन चोदिताः ॥१०९॥
त्रासमुत्सृज्य चैकस्था युध्यध्वं दानवर्षभाः ।

तब राजा बाणासुरने उन्हें आदेश देते हुए कहा—'दानवशिरोमणियो ! डरो मत ! डरो मत !! त्रास छोड़ एक साथ खड़े होकर युद्ध करो' ॥ १०९½ ॥

तानुवाच पुनर्बाणो भयविक्लवलोचनान् ॥११०॥
किमिदं लोकविख्यातं यश उत्सृज्य दूरतः ।
भवन्तो यान्ति वैक्लव्यं क्लीबा इव विचेतसः ॥१११॥

उसके इतना कहनेपर भी उनकी आँखें भयसे व्याकुल ही बनी रहीं यह देख बाणासुरने पुनः उनसे कहा—'यह क्या बात है कि तुमलोग अपने विश्वविख्यात यशको दूरसे ही त्यागकर कायरोंके समान व्याकुल और अचेत हो रहे हो ? ॥

कोऽयं यस्य भयत्रस्ता भवन्तो यान्त्यनेकशः ।
कुलापदेशिनः सर्वे नानायुद्धविशारदाः ॥११२॥

'यह कौन है, जिसके भयसे डरकर, तुमलोग झुंड-के-झुंड भागे जा रहे हो । तुम सब लोगोंका कुल विख्यात है तथा तुम नाना प्रकारके युद्धोंकी कलामें निपुण हो (तो भी प्रममें यह कायरता कैसे आयी ?) ॥ ११२ ॥

भवद्भिर्न हि मे कार्यं युद्धसाहाय्यमद्य वै ।
अब्रवीद् ध्वंसतेत्येवं मत्समीपाच्च नश्यत ॥११३॥

'अच्छा, भाग जाओ ! अब तुमलोगोंसे मुझे युद्धविषयक सहायता नहीं लेनी है, मेरे पाससे दूर हो जाओ' ॥ ११३ ॥

अथ तान् वाग्भिरुग्राभिस्त्रासयन् बहुधा बली ।
व्यादिदेश रणे शूरानन्यानयुतशः पुनः ॥११४॥

इस प्रकार बलवान् बाणासुरने अपने कठोर वचनोंद्वारा उनको बारंबार त्रास देते हुए दूसरे रणवीर योद्धाओंको, जिनकी संख्या दस हजारके लगभग थी, पुनः युद्धके लिये आज्ञा दी ॥ ११४ ॥

प्रमाथगणभूयिष्ठं व्यादिष्टं तस्य निग्रहे ।
अनीकं सुमहारौद्रं नानाप्रहरणोद्यतम् ॥११५॥

तत्पश्चात् उसने अनिरुद्धको बंदी बनानेके लिये एक महाभयंकर सेनाको आदेश दिया, जिसमें अधिकांश प्रमथगण थे । वह सेना नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित थी ॥

अथान्तरिक्षं बहुधा विद्युत्वद्भिरिवाम्बुदैः ।
बाणानीकैः समभवद् व्याप्तं संदीप्तलोचनैः ॥११६॥

फिर तो बिजलीवाले मेघोंकी भाँति चमकीले नेत्रोंवाले बाणासुरके सैनिकोंसे आकाशका बहुत बड़ा भाग व्याप्त हो गया ॥ ११६ ॥

केचित् क्षितिस्थाः प्राक्रोशन् गजा इव समन्ततः ।
अन्तरिक्षे व्यराजन्त घर्मान्त इव तोयदाः ॥११७॥

कुछ सैनिक पृथ्वीपर ही खड़े हो सब ओर हाथियोंकी भाँति चिग्घाड़ रहे थे तथा कुछ लोग वर्षाकालके बादलोंकी भाँति आकाशमें ही शोभा पाते थे ॥ ११७ ॥

ततस्तत् सुमहत् सैन्यं समेतमभवत् पुनः ।
तिष्ठ तिष्ठेति च तदा वाचोऽश्रूयन्त सर्वशः ॥११८॥

तदनन्तर वह विशाल सेना फिर एकत्र हो गयी । उस समय उसमें सब ओर 'ठहरो, खड़े रहो' ये ही बातें सुनायी देती थीं ॥ ११८ ॥

अनिरुद्धो रणे वीरः स च तानभ्यवर्तत ।
तदाश्चर्यं समभवद् यदेकस्तु समागतः ॥११९॥

वीर अनिरुद्ध अकेले ही उन सबका सामना कर रहे थे । एकने ही जो उस विशाल सेनाका सामना किया, यह उस समय एक महान् आश्चर्यकी बात हुई ॥ ११९ ॥

अयुध्यत महावीर्यैर्दानवैः सह संयुगे ।
तेषामेव च जग्राह परिघांस्तोमरानपि ॥१२०॥

वे रणभूमिमें उन महापराक्रमी दानवोंके साथ युद्ध करने लगे । उन्होंने शत्रुओंके ही परिघों तथा तोमरोंको ले लिया ॥ १२० ॥

तैरेव च तदा युद्धे ताञ्जघान महाबलः ।
पुनः परिघमुत्सृज्य प्रगृह्य रणमूर्धनि ॥१२१॥

उन महाबली वीरने उन्हीं परिघोंद्वारा उस समय युद्धमें उन शत्रुओंका संहार किया। वे युद्धके मुहानेपर बारंबार परिघको छोड़ते और ग्रहण करते थे ॥ १२१ ॥

स तेन विचरन् मार्गानेकः शत्रुनिबर्हणः ।
भ्रान्तमुद्भ्रान्तमाविद्धमाप्लुतं विप्लुतं प्लुतम् ॥१२२॥
इति प्रकाराद् द्वात्रिंशद् विचरन्नाभ्यदृश्यत ।

शत्रुसूदन अनिरुद्ध उस परिघसे अनेक पैंतरे दिखाते हुए युद्धमें अकेले ही विचरते थे। वे भ्रान्त[1], उद्भ्रान्त[2], आविद्ध[3], आप्लुत[4], विप्लुत[5] और प्लुत[6] आदि बत्तीस[7] प्रकारके पैंतरोंसे विचरते हुए दिखायी दिये ॥ १२२½ ॥

एकं सहस्रशश्चात्र ददृशू रणमूर्धनि ॥१२३॥
क्रीडन्तं बहुधा युद्धे व्यादितास्यमिवान्तकम् ।

रणभूमिमें युद्धके मुहानेपर मुँह बाये हुए कालके समान अनेक प्रकारसे परिघ चलानेकी क्रीडा करते हुए एक ही अनिरुद्धको शत्रुओंने सहस्रोंकी संख्यामें देखा ॥ १२३½ ॥

ततस्तेनाभिसंतप्ता रुधिरौघपरिप्लुताः ॥१२४॥
पुनर्भग्नाः प्राद्रवन्त यत्र बाणो व्यवस्थितः ।

उस समय उनसे संतप्त हो रक्तके प्रवाहमें डूबे हुए दानव फिर अपना व्यूह भङ्ग करके भाग खड़े हुए और जहाँ बाणासुर खड़ा था, वहाँ जा पहुँचे ॥ १२४½ ॥

गजवाजिरथौघैस्ते चोह्यमानाः समन्ततः ॥१२५॥
कृत्वा चार्तस्वरं घोरं दिशो जग्मुर्हतौजसः ।

हाथी, घोड़े तथा रथसमूह उन्हें चारों ओर लिये जा रहे थे। वे हतोत्साह दानव घोर आर्त्तनाद करके सम्पूर्ण दिशाओंमें भागे जा रहे थे ॥ १२५½ ॥

एकैकस्योपरि तदा तेऽन्योन्यं भयपीडिताः ॥१२६॥
वमन्तः शोणितं जग्मुर्विषादाद् विमुखा रणे ।

वे उस समय भयसे पीड़ित हो भागते समय परस्पर एक-एकके ऊपर चढ़ जाते थे तथा अधिक खेदके कारण युद्धसे विमुख हो रक्त वमन करते हुए पलायन कर रहे थे ॥

न बभूव पुरा देवैर्युध्यतां तादृशं भयम् ॥१२७॥
यादृशं युध्यमानानामनिरुद्धेन संयुगे ।

पूर्वकालमें देवताओंके साथ युद्ध करते समय भी उन दानवोंको वैसा भय नहीं हुआ था, जैसा समराङ्गणमें अनिरुद्धके साथ युद्ध करते समय हुआ था १२७½ ॥

केचिद् वमन्तो रुधिरं ह्यपतन् वसुधातले ॥१२८॥
दानवा गिरिशृङ्गाभा गदाशूलासिपाणयः ।

कितने ही पर्वत-शिखरके समान विशालकाय दानव हाथोंमें गदा, शूल और तलवार लिये रक्त वमन करते हुए पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ १२८½ ॥

ते बाणमुत्सृज्य रणे जग्मुर्भयसमाकुलाः ॥१२९॥
विशालमाकाशतलं दानवा निर्जितास्तदा ।

उस समय रणभूमिमें पराजित हुए दानव भयसे व्याकुल हो बाणासुरको वहीं छोड़कर विशाल आकाशमें भाग गये ॥

निःशेषभग्नां महतीं दृष्ट्वा तां वाहिनीं तदा ॥१३०॥
बाणः क्रोधात् प्रजज्वाल समिद्धोऽग्निरिवाध्वरे ।

जैसे यज्ञमें समिधा पाकर अग्नि प्रज्वलित हो उठती है, उसी प्रकार उस समय अपनी विशाल सेनाको पूर्णरूपसे भग्न हुई देख बाणासुर क्रोधसे जल उठा ॥ १३०½ ॥

अन्तरिक्षचरो भूत्वा साधुवादी समन्ततः ॥१३१॥
नारदो नृत्यति प्रीतो ह्यनिरुद्धस्य संयुगे ।

इधर युद्धमें अनिरुद्धके पराक्रमसे प्रसन्न हुए नारदजी आकाशमें सब ओर विचरते और उन्हें साधुवाद देते हुए नृत्य करने लगे ॥ १३१½ ॥

एतस्मिन्नन्तरे चैव बाणः परमकोपनः ॥१३२॥
कुम्भाण्डसंगृहीतं तु रथमास्थाय वीर्यवान् ।
ययौ यत्रानिरुद्धो वै उद्यतासी रथे स्थितः ॥१३३॥

इसी बीचमें अत्यन्त क्रोधी और बलवान् बाणासुर कुम्भाण्डद्वारा नियन्त्रित रथपर आरूढ़ हो उसी रथपर

---

१. तलवार या परिघको गोलाकार घुमाना भ्रान्त कहलाता है, इससे शत्रुके प्रहारको निष्फल किया जाता है ।

२. तलवार या परिघ चलानेका दूसरा पैंतरा—जिसमें हाथको ऊँचा करके उसे घुमाया जाता है ।

३. तलवार या परिघ चलानेके बत्तीस हाथोंमेंसे एक, जिसमें तलवार या परिघको अपने चारों ओर घुमाकर दूसरेके चलाये हुए वारको व्यर्थ या खाली करते हैं ।

४. सब ओर घूम-घूमकर उछलते हुए परिघ या तलवारको चलाना ।

५. विशिष्ट रूपसे परिघका सञ्चालन करके शत्रु-सेनामें विप्लव मचा देना ।

६. सामान्यतः कूद-कूदकर शत्रुके सम्मुख परिघ या तलवारको चलाना ।

७. तलवार या परिघ चलानेके बत्तीस हाथ गिनाये गये हैं, जिनके नाम ये हैं—भ्रान्त, उद्भ्रान्त, आविद्ध, आप्लुत, विप्लुत, प्लुत, सृत, संचान्त, समुदीर्ण, निग्रह, प्रग्रह, पदावकर्षण, संधान, मस्तकभ्रामण, भुजभ्रामण, पाश, पाद, विबन्ध, भूमि, उद्भ्रमण, गति, प्रत्यागति, आक्षेप, पातन, उत्थानकम्प्लुति, लघुता, सौष्ठव, शोभा, स्थैर्य, दृढमुष्टिता, तिर्यक्प्रचार और [illegible]चार ।

बैठा हुआ उस स्थानपर गया, जहाँ अनिरुद्ध तलवार हाथमें लिये खड़े थे ॥ १३२-१३३ ॥

पट्टिशासिगदाशूलमुद्यम्य च परश्वधान् ।
बभौ बाहुसहस्रेण शक्रो ध्वजशतैरिव ॥१३४॥
बद्धगोधाङ्गुलित्रैश्च बाहुभिः स महाभुजः ।
नानाप्रहरणोपेतः शुशुभे दानवोत्तमः ॥१३५॥

बाणासुर अपनी सहस्र भुजाओंसे पट्टिश, खड्ग, गदा, शूल और फरसे उठा सैकड़ों ध्वजोंसे युक्त देवराज इन्द्रके समान शोभा पाता था। जिनकी अँगुलियोंमें गोधाचर्मके दस्ताने बँधे हुए थे, उन भुजाओंसे नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लिये वह महाबाहु दानवराज बड़ी शोभा पा रहा था ॥

सिंहनादं नदन् क्रुद्धो विस्फारितमहाधनुः ।
अब्रवीत् तिष्ठ तिष्ठेति क्रोधसंरक्तलोचनः ॥१३६॥

उसके नेत्र क्रोधसे लाल हो रहे थे; वह क्रोधमें भरकर सिंहके समान दहाड़ता और अपने विशाल धनुषको खींचता हुआ बोला—'अरे खड़ा रह ! खड़ा रह !!' ॥ १३६ ॥

वचनं तस्य संश्रुत्य प्राद्युम्निरपराजितः ।
बाणस्य वदनं संख्ये समुद्वीक्ष्य ततोऽहसत् ॥१३७॥

बाणासुरकी बात सुनकर और युद्धस्थलमें उसके मुखपर दृष्टि डालकर अपराजित वीर प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्ध हँसने लगे ॥ १३७ ॥

किङ्किणीशतनिर्घोषं रक्तध्वजपताकिनम् ।
ऋष्यचर्मावनद्धाङ्गं दशनल्वं महारथम् ॥१३८॥

बाणासुरका विशाल रथ दस नल्व (चार हजार हाथ) के बराबर था; उसमें सैकड़ों छोटी-छोटी घंटियाँ लगी थीं; जिनकी ध्वनि सब ओर गूँजती रहती थी; उस रथकी ध्वजा-पताकाएँ लाल रङ्गकी थीं तथा उस रथके प्रत्येक अवयवपर ऋष्यनामक मृगविशेषका चमड़ा मढ़ा हुआ था ॥ १३८ ॥

तस्य वाजिसहस्रं तु रथे युक्तं महात्मनः ।
पुरा देवासुरे युद्धे हिरण्यकशिपोरिव ॥१३९॥

उस महाकाय दानवके रथमें एक सहस्र घोड़े जुते हुए थे; ठीक उसी तरह जैसे पूर्वकालमें देवासुर संग्रामके अवसर-पर हिरण्यकशिपुके रथमें जोते गये थे ॥ १३९ ॥

तमापतन्तं ददृशे दानवं यदुपुङ्गवः ।
सम्प्रहृष्टस्ततो युद्धे तेजसा चाप्यपूर्यत ॥१४०॥

यदुकुलतिलक अनिरुद्धने जब उस दानवको आक्रमण करते देखा; तब वे युद्धके लिये हर्ष और उत्साहसे भर गये तथा महान् तेजसे सम्पन्न हो गये ॥ १४० ॥

असिचर्मधरो वीरः स्वस्थः संग्रामलालसः ।
नरसिंहो यथा पूर्वमादिदैत्यवधोद्यतः ॥१४१॥

जैसे पूर्वकालमें आदिदैत्य हिरण्यकशिपुका वध करनेके लिये उद्यत हुए भगवान् नरसिंह शोभा पाते थे, उसी प्रकार संग्रामकी लालसासे ढाल और तलवार धारण किये स्वस्थ-भावसे खड़े हुए वीर अनिरुद्ध सुशोभित होते थे ॥ १४१ ॥

आपतन्तं ददर्शाथ खड्गचर्मधरं तदा ।
खड्गचर्मधरं तं तु दृष्ट्वा बाणः पदातिनम् ॥१४२॥
प्रहर्षमतुलं लेभे प्राद्युम्निवधकाङ्क्षया ।

उस समय बाणासुरने अनिरुद्धको ढाल और तलवार लिये अपने सामने आते देखा। उन्हें केवल ढाल और तलवार धारण किये पैदल आते देख उन्हें मार डालनेकी इच्छासे बाणासुरको अनुपम हर्ष प्राप्त हुआ ॥ १४२½ ॥

तनुत्रेण विहीनश्च खड्गपाणिश्च यादवः ॥१४३॥
अजेय इति तं मत्वा युद्धायाभिमुखः स्थितः ।

कवचसे रहित तथा केवल खड्ग हाथमें लिये होनेपर भी यादववीर अनिरुद्ध बाणासुरको 'यह अजेय है' ऐसा मानते हुए भी निःशङ्क हो उसके सामने युद्धके लिये खड़े हुए ॥ १४३½ ॥

अनिरुद्धं रणे बाणो जितकाशी महाबलः ॥१४४॥
वाचं चोवाच संक्रुद्धो गृह्यतां हन्यतामिति ।

विजयसे सुशोभित होनेवाला महाबली बाणासुर कुपित हो रणभूमिमें अनिरुद्धसे बोला—'इसे पकड़ो, मारो' ॥

वाचं च ब्रुवतस्तस्य श्रुत्वा प्राद्युम्निराहवे ॥१४५॥
बाणस्य ब्रुवतः क्रोधाद्धसमानोऽभ्युदैक्षत ।

उस समराङ्गणमें इस तरह बोलते हुए बाणासुरकी बात सुनकर हँसते हुए प्रद्युम्नकुमारने क्रोधपूर्वक उसकी ओर देखा॥

उषां भयपरित्रस्तां रुदतीं तत्र भामिनीम् ॥१४६॥
अनिरुद्धः प्रहस्याथ समाश्वास्य च तां स्थितः ।

वहाँ भयसे संत्रस्त हो रोती हुई भामिनी उषाको सान्त्वना देकर अनिरुद्ध हँसते हुए युद्धके लिये खड़े हो गये॥

अथ बाणः शरौघाणां क्षुद्रकाणां समन्ततः ॥१४७॥
चिक्षेप समरे क्रुद्धो ह्यनिरुद्धवधेप्सया ।
अनिरुद्धस्तु चिच्छेद काङ्क्षंस्तस्य पराजयम् ॥१४८॥

तदनन्तर समरभूमिमें कुपित हुए बाणासुरने अनिरुद्धके वधकी इच्छासे उनपर चारों ओरसे क्षुद्रक नामक बाणसमूहोंका प्रहार आरम्भ किया। किंतु अनिरुद्धने उसे पराजित करनेकी इच्छा रखकर उसके सारे बाणोंको तलवारसे ही काट डाला॥

ववर्ष शरजालानि क्षुद्रकाणां समन्ततः ।
बाणोऽनिरुद्धशिरसि काङ्क्षंस्तस्य रणे वधम् ॥१४९॥

तब बाणासुरने पुनः रणभूमिमें अनिरुद्धके वधकी

अभिलाषासे उनके सिरपर सब ओरसे क्षुद्रक नामवाले बाण-समूहोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ १४९ ॥

ततो बाणसहस्राणि चर्मणा व्यवधूय सः ।
बभौ प्रमुखतस्तस्य स्थितः सूर्य इवोदये ॥१५०॥

उस समय उसके हजारों बाणोंको ढालसे ही इधर-उधर करके अनिरुद्ध उसके सामने खड़े हो उदयकालके सूर्यकी भाँति शोभा पाने लगे ॥ १५० ॥

सोऽभिभूय रणे बाणमास्थितो यदुनन्दनः ।
सिंहः प्रमुखतो दृष्ट्वा गजमेकं यथा वने ॥१५१॥

रणभूमिमें बाणासुरका तिरस्कार करके यदुनन्दन अनिरुद्ध उसी तरह निर्भय खड़े रहे, जैसे वनमें सिंह अपने सामने एक हाथीको देखकर निर्भय खड़ा रहता है ॥ १५१॥

ततो बाणः स बाणौघैर्मर्मभेदिभिराशुगैः ।
विव्याध निशितैस्तीक्ष्णैः प्राद्युम्निमपराजितम् ॥१५२॥

तदनन्तर बाणासुरने अपराजित वीर प्रद्युम्नकुमारको मर्मभेदी, शीघ्रगामी, तेज किये हुए, पैने बाणसमूहोंद्वारा घायल कर दिया ॥ १५२ ॥

समाहतस्ततो बाणैः खड्गचर्मधरोऽपतत् ।
तमापतन्तं निशितैरभ्यहन् सायकैस्तथा ॥१५३॥

उन बाणोंसे घायल होनेपर अनिरुद्ध ढाल और तलवार लिये बाणासुरपर टूट पड़े। उन्हें आक्रमण करते देख उस असुरने तीखे सायकोंसे उनपर और भी चोट की ॥ १५३ ॥

सोऽतिविद्धो महाबाहुर्बाणैः संनतपर्वभिः ।
क्रोधेनाभिप्रजज्वाल चिकीर्षुः कर्म दुष्करम् ॥१५४॥

झुकी हुई गाँठवाले बाणोंसे अत्यन्त घायल होनेपर महाबाहु अनिरुद्ध क्रोधसे जल उठे और दुष्कर कर्म करनेकी इच्छा करने लगे ॥ १५४ ॥

रुधिरौघप्लुतैर्गात्रैर्बाणवर्षैः समाहितः ।
अभिभूतः सुसंक्रुद्धो ययौ बाणरथं प्रति ॥१५५॥
असिभिर्मुसलैः शूलैः पट्टिशैस्तोमरैस्तथा ।
सोऽतिविद्धः शरौघैश्च प्राद्युम्निर्न व्यकम्पत ॥१५६॥

बाणोंकी वर्षासे आच्छादित हो अनिरुद्धके सारे अङ्ग खूनसे लथपथ हो गये, इस तरह पराभव प्राप्त होनेसे अनिरुद्धका क्रोध बहुत बढ़ गया और वे बाणासुरके रथकी ओर चल दिये। उस समय तलवारों, मुसलों, शूलों, पट्टिशों, तोमरों और बाणसमूहोंसे अत्यन्त घायल होनेपर भी प्रद्युम्न-कुमार कम्पित नहीं हुए ॥ १५५-१५६ ॥

आप्लुत्य सहसा क्रुद्धो रथेषां तस्य सोऽच्छिनत्।
जघान चाश्वान् खड्गेन बाणस्य रणमूर्धनि ॥१५७॥

सहसा क्रोधपूर्वक उछलकर उन्होंने बाणासुरके रथके हरसेको काट दिया और युद्धके मुहानेपर तलवारसे ही उसके घोड़ोंको मार डाला ॥ १५७ ॥

तं पुनः शरवर्षेण पट्टिशैस्तोमरैरपि ।
चकारान्तर्हितं बाणो युद्धमार्गविशारदः ॥१५८॥

तब युद्धमार्गके ज्ञानमें निपुण बाणासुरने पुनः पट्टिशों, तोमरों और बाणोंकी वर्षा करके अनिरुद्धको ढँक दिया ॥

हतोऽयमिति विज्ञाय प्राणदन् नैर्ऋता गणाः ।
ततोऽवप्लुत्य सहसा रथपार्श्वे व्यवस्थितः ॥१५९॥

अब यह मारा गया ऐसा जानकर वे दैत्य गर्जना करने लगे; इतनेमें ही अनिरुद्ध सहसा कूदकर रथके पार्श्वभागमें खड़े हो गये ॥ १५९ ॥

शक्तिं बाणस्ततः क्रुद्धो घोररूपां भयानकाम् ।
जग्राह ज्वलितां घोरां घण्टामालाकुलां रणे ॥१६०॥
ज्वलनादित्यसंकाशां यमदण्डोग्रदर्शनाम् ।
प्राहिणोत् तामसङ्गेन महोल्कां ज्वलितामिव ॥१६१॥

तब कुपित हुए बाणासुरने रणभूमिमें एक घोर एवं भयानक शक्ति हाथमें ली, जो अग्निके समान प्रज्वलित हो रही थी; वह घोर शक्ति घंटाओंकी मालाओंसे व्याप्त थी। उसका तेज अग्नि और सूर्यके समान जान पड़ता था तथा वह यमदण्डके समान भयानक दिखायी देती थी; उस दैत्यने निर्भय होकर जलती हुई उल्काके समान वह शक्ति अनिरुद्ध-पर चला दी ॥ १६०-१६१ ॥

तामापतन्तीं सम्प्रेक्ष्य जीवितान्तकरीं तदा ।
सोऽभिप्लुत्य तदा शक्तिं जग्राह पुरुषोत्तमः ॥१६२॥
निर्बिभेद ततो बाणं तया शक्त्या महाबलः ।
सा भित्त्वा तस्य देहं वै प्राविशद् धरणीतलम् ॥१६३॥

उस समय जीवनका अन्त कर देनेवाली उस शक्तिको अपने ऊपर आती देख पुरुषप्रवर महाबली अनिरुद्धने उछलकर तत्काल उसे हाथसे पकड़ लिया और उसी शक्तिसे बाणासुरको विदीर्ण कर डाला; वह शक्ति उसके शरीरको विदीर्ण करती हुई पृथ्वीमें समा गयी ॥ १६२-१६३ ॥

स गाढविद्धो व्यथितो ध्वजयष्टिं समाश्रितः ।
ततो मूर्च्छाभिभूतं तं कुम्भाण्डो वाक्यमब्रवीत् ॥१६४॥

उस शक्तिकी गहरी चोटसे पीड़ित हो बाणासुरने ध्वज-दण्डका सहारा ले लिया। उसे मूर्च्छित हुआ देख कुम्भाण्डने उससे कहा—॥ १६४ ॥

उपेक्षसे दानवेन्द्र किमेवं शत्रुमुद्यतम् ।
लब्धलक्षो ह्ययं वीरो निर्विकारोऽद्य दृश्यते ॥१६५॥

'दानवराज ! इस प्रकार उद्यत हुए शत्रुकी उपेक्षा किस लिये करते हो। इस वीरने अपना लक्ष्य पा लिया है, अतः आज निर्विकार दिखायी देता है ॥ १६५ ॥

मायामाश्रित्य युध्यस्व नायं वध्योऽन्यथा भवेत्।
आत्मानं मां च रक्षस्व प्रमादात् किमुपेक्षसे ॥१६६॥

'मायाका आश्रय लेकर युद्ध करो, अन्यथा यह मारा नहीं जा सकेगा। तुम अपनी और मेरी भी रक्षा करो। प्रमादवश उपेक्षा क्यों करते हो ॥ १६६ ॥

वध्यतामयमद्यैव न नः सर्वान् विनाशयेत्।
अन्यांश्च शतशो हत्वा उषां नीत्वा व्रजिष्यति ॥१६७॥

'इसको अभी मार डालो; कहीं ऐसा न हो यह हम सब लोगोंका नाश कर डाले; यदि तुम सावधान नहीं हुए तो यह अन्य सैकड़ों वीरोंको मारकर उषाको भी लेकर चला जायगा' ॥ १६७ ॥

कुम्भाण्डवचनैरेवं दानवेन्द्रः प्रणोदितः।
वाचं रूक्षामभिक्रुद्धः प्रोवाच वदतां वरः ॥१६८॥

कुम्भाण्डके वचनोंसे इस प्रकार प्रेरित हुआ वक्ताओंमें श्रेष्ठ दानवराज बाण अत्यन्त कुपित हो यह रूखी बात बोला—॥

एषोऽहमस्य विदधे मृत्युं प्राणहरं रणे।
आदास्याम्यहमेतं वै गरुत्मानिव पन्नगम् ॥१६९॥

'यह लो ! मैं अभी रणभूमिमें इसे मौतके हवाले कर देता हूँ, जो इसके प्राण हर लेगी। जैसे गरुड़ सर्पको दबोच लेता है, उसी प्रकार मैं भी इसे अपने काबूमें कर लूँगा' ॥

इत्येवमुक्त्वा सरथः सध्वजः साश्वसारथिः।
गन्धर्वनगराकारस्तत्रैवान्तरधीयत ॥१७०॥

ऐसा कहकर रथ, ध्वज, घोड़े और सारथिसहित बाणासुर गन्धर्वनगरके समान वहीं अन्तर्धान हो गया ॥१७०॥

मुमोच निशितान् बाणांश्छन्नो मायाधरो बली।
विज्ञायान्तर्हितं बाणं प्राद्युम्निरपराजितः ॥१७१॥
पौरुषेण समायुक्तः सम्प्रैक्षत दिशो दश।

वह मायाधारी बलवान् दानव स्वयं छिपकर अनिरुद्धपर पैने बाणोंकी वर्षा करने लगा। बाणासुरको अदृश्य हुआ जान अपराजित वीर अनिरुद्ध पुरुषार्थसे युक्त हो दसों दिशाओंकी ओर देखने लगे ॥ १७१½ ॥

आस्थाय तामसीं विद्यां तदा क्रुद्धो बलेः सुतः ॥१७२॥
मुमोच विशिखांस्तीक्ष्णांश्छन्नो मायाधरो बली।

तब क्रोधमें भरे हुए मायाधारी बलिपुत्र बलवान् बाणासुरने तामसी विद्याका आश्रय ले छिपे रहकर तीखे बाणोंका प्रहार आरम्भ किया ॥ १७२½ ॥

प्राद्युम्निर्विशिखैर्बद्धः सर्पभूतैः समन्ततः ॥१७३॥
वेष्टितो बहुधा तस्य देहः पन्नगराशिभिः।

उस समय प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्ध सर्पाकार बाणोंद्वारा चारों ओरसे बँध गये। उनका शरीर सर्पसमूहोंसे बारंबार आवेष्टित हो गया ॥ १७३½ ॥

स तु वेष्टितसर्वाङ्गो बद्धः प्राद्युम्निराहवे ॥१७४॥
निष्प्रयत्नः कृतस्तस्थौ मैनाक इव पर्वतः।

युद्धमें सारे अङ्ग सर्पोंसे वेष्टित एवं बद्ध हो जानेके कारण प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्ध निश्चेष्ट कर दिये गये और वे मैनाक पर्वतकी भाँति अचलभावसे खड़े हो गये ॥ १७४½ ॥

ज्वालावलीढवदनैः सर्पभोगैर्विचेष्टितः ॥१७५॥
अभितः पर्वताकारः प्राद्युम्निरभवद् रणे।

मुखसे आग उगलनेवाले सर्पोंके शरीरोंद्वारा सब ओरसे आवेष्टित एवं चेष्टाहीन हुए अनिरुद्ध उस रणभूमिमें पर्वतके समान प्रतीत होते थे ॥ १७५½ ॥

निष्प्रयत्नगतिश्चापि सर्पवक्त्रमयैः शरैः ॥१७६॥
न विव्यथे स भूतात्मा सर्वतः परिवेष्टितः।

सर्पमुख बाणोंद्वारा सब ओरसे परिवेष्टित हो अपना प्रयत्न और गति अवरुद्ध हो जानेपर भी सर्वभूतात्मा अनिरुद्ध मनमें व्यथित नहीं हुए ॥ १७६½ ॥

ततस्तं वाग्भिरुग्राभिः संरब्धः समतर्जयत् ॥१७७॥
बाणो ध्वजं समाश्रित्य प्रोवाचामर्षितो वचः।

तब रोषमें भरे हुए बाणासुरने कठोर वचनोंद्वारा अनिरुद्धको फटकारा; फिर उसने ध्वजका सहारा लेकर अमर्षयुक्त हो यह बात कही—॥ १७७½ ॥

कुम्भाण्ड वध्यतां शीघ्रमयं वै कुलपांसनः ॥१७८॥
चारित्रं येन मे लोके दूषितं दूषितात्मना।

'कुम्भाण्ड ! इस कुलाङ्गारका शीघ्र वध कर डालो, जिस दूषित हृदयवाले दुष्टने ससारमें मेरे यशको कलङ्कित कर दिया' ॥

इत्येवमुक्ते वचने कुम्भाण्डो वाक्यमब्रवीत् ॥१७९॥
राजन् वक्ष्याम्यहं किंचित् तन्मे शृणु यदिच्छसि।

बाणासुरके ऐसा कहनेपर मन्त्री कुम्भाण्डने कहा—'राजन् ! इस विषयमें मैं कुछ कहना चाहता हूँ। यदि आपकी इच्छा हो तो मेरी उस बातको सुन लें ॥ १७९½ ॥

अयं विज्ञायतां कस्य कुतो वायमिहागतः ॥१८०॥
केन वायमिहानीतः शक्रतुल्यपराक्रमः।

'पहले इस बातको जान लीजिये, यह किसका पुत्र है और कहाँसे यहाँ आया है अथवा इस इन्द्रतुल्य पराक्रमी वीरको कौन यहाँ ले आया है ? ॥ १८०½ ॥

मयायं बहुशो राजन् दृष्टो युध्यन् महारणे ॥१८१॥
क्रीडन्निव च युद्धेषु दृश्यते देवसूनुवत्।

'राजन् ! मैंने इस महासमरमें युद्ध करते समय इसकी ओर बारंबार देखा है। यह युद्धभूमिमें देवकुमारके समान क्रीड़ा करता-सा दिखायी देता था ॥ १८१½ ॥

बलवान् सत्त्वसम्पन्नः सर्वशस्त्रविशारदः ॥१८२॥
नायं वधकृतं दोषमर्हते दैत्यसत्तम।

'दैत्यप्रवर ! यह बलवान्, धैर्यसम्पन्न तथा सम्पूर्ण शस्त्रविद्यामें प्रवीण है। अतः वधरूप दोषका पात्र नहीं है ॥

गान्धर्वेण विवाहेन कन्येयं तव संगता ॥१८३॥
अदेया ह्यप्रतिग्राह्या अतश्चिन्त्य वधं कुरु।

'आपकी कन्याने गान्धर्व विवाहके द्वारा इसके साथ समागम किया है। अतः न तो अब वह दूसरेको देने योग्य रह गयी है और न दूसरेके द्वारा ग्रहण करने योग्य ही; अतः खूब सोच-विचारकर इसका वध कीजिये ॥ १८३½ ॥

विज्ञाय च वधं वास्य पूजां वास्य करिष्यसि ॥१८४॥
वधे ह्यस्य महान् दोषो रक्षणे सुमहान् गुणः।

'पहले इसका परिचय प्राप्त करके फिर वध अथवा पूजन कीजियेगा। इसका वध करनेमें महान् दोष है और रक्षा करनेमें महान् गुण ॥ १८४½ ॥

अयं हि पुरुषोत्कृष्टः सर्वथा मानमर्हति ॥१८५॥
सर्वतो वेष्टिततनुर्न व्यथत्येष भोगिभिः।
कुलशौण्डीर्यवीर्यैश्च सत्त्वेन च समन्वितः ॥१८६॥

'यह पुरुषोंमें श्रेष्ठ होनेके कारण सर्वथा सम्मानके योग्य है। देखिये ! सर्पोंने सब ओरसे इसके शरीरको जकड़ लिया है तो भी यह व्यथित नहीं होता है। अपने कुलके अभिमान, बल-पराक्रम तथा धैर्यसे सम्पन्न है ॥ १८५-१८६ ॥

पश्य राजन् महावीर्यैरन्वितः पुरुषोत्तमः।
न नो गणयते सर्वान् वधं प्राप्तोऽप्ययं बली ॥१८७॥

'राजन् ! देखिये तो सही ! महाबली सर्पोंसे बद्ध होकर वधावस्थाको प्राप्त होनेपर भी यह बलवान् पुरुषोत्तम वीर हम सब लोगोंको कुछ भी नहीं गिनता है ॥ १८७ ॥

यदि मायाप्रभावेण नात्र बद्धो भवेदयम्।
सर्वान् सुरगणान् संख्ये योधयेन्नात्र संशयः ॥१८८॥

'यदि यह मायाके प्रभावसे बाँधा न गया होता तो रणभूमिमें केवल असुरोंसे ही नहीं, समस्त देवताओंसे भी युद्ध कर सकता था, इसमें संशय नहीं है ॥ १८८ ॥

सर्वसंग्राममार्गज्ञो भवेद् वीर्याधिकस्तव।
शोणितौघप्लुतैर्गात्रैर्नागभोगैश्च वेष्टितः ॥१८९॥
त्रिशिखां भ्रुकुटिं कृत्वा न चिन्तयति नः स्थितान्।

'यह युद्धके सभी मार्गोंका ज्ञाता तथा बल-पराक्रममें आपसे भी बढ़कर है। इसके सारे अङ्ग खूनसे लथपथ हो गये हैं। इसे सर्पके शरीरोंसे जकड़ दिया गया है तो भी यह भौंहोंको तीन जगहसे टेढ़ी करके यहाँ खड़े हुए हमलोगोंको कुछ भी नहीं समझता है ॥ १८९½ ॥

इमामवस्थां नीतोऽपि स्वबाहुबलमाश्रितः ॥१९०॥
न चिन्तयति राजंस्त्वां वीर्यवान् कोऽप्यसौ युवा।

'राजन् ! इस अवस्थाको पहुँच जानेपर भी यह अपने बाहुबलका भरोसा करके आपकी कोई परवा नहीं करता है। वास्तवमें यह युवक कोई अद्भुत पराक्रमी वीर है ॥१९०½॥

सहस्रबाहोः समरे द्विबाहुः समवस्थितः।
न चिन्तयति ते वीर्यमयं वीर्यमदान्वितः ॥१९१॥
उचितं यदि ते राजन् ज्ञेयो वीर्यबलान्वितः।

'सहस्रबाहुके साथ समरभूमिमें यह दो ही बाँहोंका वीर खड़ा है, किंतु अपने बल-पराक्रमके मदसे उन्मत्त हो आपके बल-वीर्यको कुछ नहीं समझता ॥ १९१½ ॥

कन्या चेयं न चान्यस्य निर्यात्ये तेन संगता ॥१९२॥
यदि चेष्टतमः कश्चिदयं वंशे महात्मनाम्।
ततः पूजामयं वीरः प्राप्स्यते चासुरोत्तम ॥१९३॥

'असुरप्रवर ! आपकी यह कन्या इसके साथ सम्बन्ध स्थापित कर चुकी है, अतः अब दूसरेको नहीं दी जा सकती। यदि यह किन्हीं महात्मा पुरुषोंके कुलमें उत्पन्न हो तो हमारे लिये परम अभीष्ट है। उस दशामें यह वीर हमसे पूजा प्राप्त करेगा ॥ १९२-१९३ ॥

रक्ष्यतामिति चोक्त्वैव तथास्त्विति च तस्थिवान्।
एवमुक्ते तु वचने कुम्भाण्डेन महात्मना ॥१९४॥
तथेत्याह च कुम्भाण्डं बाणः शत्रुनिषूदनः।

'अतः आप इसकी रक्षा कीजिये।' इतना कहकर ही कुम्भाण्ड चुप हो गये। महात्मा कुम्भाण्डके ऐसी बात कहनेपर शत्रुसूदन बाणासुर भी उनसे 'तथास्तु' कहकर चुपचाप बैठा रहा ॥ १९४½ ॥

संरक्षिणस्ततो दत्त्वा अनिरुद्धस्य धीमतः ॥१९५॥
ययौ स्वमेव भवनं बलेः पुत्रो महायशाः।

तदनन्तर ! बुद्धिमान् अनिरुद्धके लिये पहरेदार देकर महायशस्वी बलिपुत्र बाणासुर अपने घरको ही चला गया ॥

संयतं मायया दृष्ट्वा अनिरुद्धं महाबलम् ॥१९६॥
ऋषीणां नारदः श्रेष्ठोऽव्रजद् द्वारवतीं प्रति।
ततो ह्याकाशमार्गेण मुनिर्द्वारवतीं गतः ॥१९७॥

महाबली अनिरुद्धको मायाद्वारा बँधा हुआ देख मुनिश्रेष्ठ नारद आकाशमार्गसे द्वारकापुरीकी ओर चल दिये ॥ १९६-१९७ ॥

गते ऋषीणां प्रवरे सोऽनिरुद्धो व्यचिन्तयत्।
नष्टोऽयं दानवः क्रूरो युद्धमेष्यत्यसंशयः ॥१९८॥

मुनिप्रवर नारदजीके चले जानेपर अनिरुद्ध मन-ही-मन इस प्रकार विचार करने लगे—यह क्रूर दानव कहीं छिप गया है। पुनः युद्धके लिये आयेगा, इसमें संशय नहीं है ॥१९८॥

स गत्वा नारदस्तत्र शङ्खचक्रगदाधरम्।
ज्ञापयिष्यति तत्त्वेन इममर्थं न संशयः ॥१९९॥

नारदजी वहाँ जाकर शङ्ख-चक्र-गदाधर भगवान् श्रीकृष्णसे यह सब समाचार ठीक-ठीक बतायेंगे, इसमें कोई संदेह नहीं है ॥ १९९ ॥

नागैर्विचेष्टितं दृष्ट्वा उषा प्राद्युम्निमातुरा।
रुरोद बाष्परुद्धाक्षी तामाह रुदतीं पुनः ॥२००॥

साँपोंसे बँधकर अनिरुद्ध चेष्टाहीन हो गये हैं, यह देख व्याकुल हुई उषा फूट-फूटकर रोने लगी। उसके नेत्र आँसुओंसे भर गये, तब उस रोती हुई उषासे अनिरुद्धने कहा—॥

किमिदं रुद्यते भीरु मा भैस्त्वं मृगलोचने।
पश्य सुश्रोणि सम्प्राप्तं मत्कृते मधुसूदनम् ॥२०१॥
यस्य शङ्खध्वनिं श्रुत्वा बाहुशब्दं बलस्य च।
दानवा नाशमेष्यन्ति गर्भाश्चासुरयोषिताम् ॥२०२॥

'भीरु ! तुम इस तरह रोती क्यों हो ? मृगलोचने ! भयभीत न हो। सुश्रोणि ! देखो, भगवान् मधुसूदन मेरे लिये यहाँ आना ही चाहते हैं। जिनके शङ्खनादको, भुजाओंके शब्दको और बलकी चर्चाको सुनकर दानव नष्ट हो जायँगे और असुरोंकी स्त्रियोंके गर्भ गिर जायँगे' ॥ २०१-२०२ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तानिरुद्धेन उषा विश्रम्भमागता।
नृशंसं पितरं चैव शोचते सा सुमध्यमा ॥२०३॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! अनिरुद्धके ऐसा कहनेपर उषाको विश्वास हो गया। वह सुन्दर कटिप्रदेशवाली सुन्दरी अब अपने निर्दय पिताके लिये शोक करने लगी ॥ २०३ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि बाणानिरुद्धयुद्धे एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें बाणासुर और अनिरुद्धका युद्धविषयक एक सौ उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११९ ॥

विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

अनिरुद्धके द्वारा आर्यादेवीकी स्तुति और देवीका प्रसन्न होकर उन्हें बन्धनके कष्टसे मुक्त करना

वैशम्पायन उवाच

यदा बाणपुरे वीरः सोऽनिरुद्धः सहोषया।
संनिरुद्धो नरेन्द्रेण बाणेन बलिसूनुना ॥ १ ॥
तदा देवीं कोटवतीं रक्षार्थं शरणं गतः।
यद् गीतमनिरुद्धेन देव्याः स्तोत्रमिदं शृणु ॥ २ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! जब उषाके साथ वीर अनिरुद्ध बलिकुमार राजा बाणासुरके द्वारा बाणनगरमें बंदी बना लिये गये, तब वे अपनी रक्षाके लिये कोटवती देवीकी शरणमें गये। उस समय अनिरुद्धने जिस स्तोत्रका गान किया था, वह इस प्रकार है; सुनो ॥ १-२ ॥

अनन्तमक्षयं दिव्यमादिदेवं सनातनम्।
नारायणं नमस्कृत्य प्रवरं जगतां प्रभुम् ॥ ३ ॥
चण्डीं कात्यायनीं देवीमार्यां लोकनमस्कृताम्।
वरदां कीर्तयिष्यामि नामभिर्हरिसंस्तुतैः ॥ ४ ॥

जो अनन्त, अक्षय, दिव्य, आदिदेव और सनातन हैं, उन सर्वश्रेष्ठ जगदीश्वर नारायणदेवको नमस्कार करके विश्ववन्दित वरदायिनी चण्डी कात्यायनी आर्या देवीका मैं श्रीहरिके द्वारा प्रशंसित नामोंसे कीर्तन करूँगा ॥ ३-४ ॥

ऋषिभिर्दैवतैश्चैव वाक्पुष्पैरर्चितां शुभाम्।
तां देवीं सर्वदेहस्थां सर्वदेवनमस्कृताम् ॥ ५ ॥

ऋषियों और देवताओंने वाणीरूपी पुष्पोंद्वारा जिन मङ्गलमयी देवीकी पूजा की है, जो सबके शरीरमें विराजमान हैं तथा सम्पूर्ण देवता जिन्हें नमस्कार करते हैं, उन आर्या देवीका मैं गुणगान करूँगा ॥ ५ ॥

अनिरुद्ध उवाच

महेन्द्रविष्णुभगिनीं नमस्यामि हिताय वै।
मनसा भावशुद्धेन शुचिः स्तोष्ये कृताञ्जलिः॥ ६ ॥

अनिरुद्धने कहा—जो देवराज इन्द्र और भगवान् विष्णुकी बहिन हैं, उन देवीको मैं अपने हितके लिये नमस्कार करता हूँ तथा हाथ जोड़कर पवित्र हो भावशुद्ध हृदयसे उनकी स्तुति करना चाहता हूँ ॥ ६ ॥

गौतमीं कंसभयदां यशोदानन्दवर्द्धिनीम्।
मेध्यां गोकुलसम्भूतां नन्दगोपस्य नन्दिनीम् ॥ ७ ॥

जो गौतमी (गोदावरी) स्वरूपा, कंसको भय देनेवाली, यशोदाका आनन्द बढ़ानेवाली, पवित्र, गोकुलमें आविर्भूत तथा नन्दगोपकी नन्दिनी हैं, उन आर्यादेवीको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ७ ॥

प्राज्ञां दक्षां शिवां सौम्यां दनुपुत्रविमर्दिनीम् ।
तां देवीं सर्वदेहस्थां सर्वभूतनमस्कृताम् ॥ ८ ॥

जो प्राज्ञा (बुद्धिमती एवं विदुषी), दक्षा, कल्याणस्वरूपा, सौम्या, दानवमर्दिनी, सबके शरीरमें विद्यमान तथा सम्पूर्ण भूत द्वारा वन्दित हैं, उन आर्यादेवीको मेरा प्रणाम है॥

दर्शनीं पूरणीं मायां वह्निसूर्यशशिप्रभाम् ।
शान्तिं ध्रुवां च जननीं मोहनीं शोषणीं तथा ॥ ९ ॥
सेव्यां देवैः सर्षिगणैः सर्वदेवनमस्कृताम् ।
कालीं कात्यायनीं देवीं भयदां भयनाशिनीम् ॥१०॥

जो दर्शनी (दृष्टिशक्ति), पूरणी (मनोरथोंकी पूर्ति करनेवाली), मायास्वरूपा, अग्नि, सूर्य और चन्द्रमाके समान कान्तिवाली, शान्तिमयी, ध्रुवा (अविनाशिनी), सबकी जननी, मोहिनी तथा शोषणी हैं, ऋषियोंसहित सम्पूर्ण देवता जिनकी सेवा करते हैं, समस्त देवता जिनके चरणोंमें शीश झुकाते हैं, जो काली, कात्यायनी देवी, भयदायिनी तथा भयनाशिनी हैं, उनको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ९-१० ॥

कालरात्रिं कामगमां त्रिनेत्रां ब्रह्मचारिणीम् ।
सौदामिनीं मेघरवां वेतालीं विपुलाननाम् ॥ ११ ॥

जो कालरात्रि, इच्छानुसार सर्वत्र जा सकनेवाली, त्रिनेत्रधारिणी और ब्रह्मचारिणी हैं, जो विद्युत्स्वरूपा, मेघके समान गर्जना करनेवाली, वेताली और विशाल मुखवाली हैं, उन देवीको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ११ ॥

यूथस्याद्यां महाभागां शकुनीं रेवतीं तथा ।
तिथीनां पञ्चमीं षष्ठीं पूर्णमासीं चतुर्दशीम् ॥ १२ ॥

जो यूथकी प्रधान अध्यक्षा, महासौभाग्यशालिनी, शकुनि, रेवती आदि ग्रहस्वरूपा तथा तिथियोंमें पञ्चमी, षष्ठी, पूर्णमासी और चतुर्दशीस्वरूपा हैं, उन देवीको नमस्कार है ॥

सप्तविंशतिऋक्षाणि नद्यः सर्वा दिशो दश ।
नगरोपवनोद्यानद्वाराट्टालकवासिनीम् ॥ १३ ॥

सत्ताईस नक्षत्र, सम्पूर्ण नदियाँ और दसों दिशाएँ— ये जिनके स्वरूप हैं, जो नगरों, उपवनों, उद्यानों और अट्टालिकाओंमें उनकी अधिष्ठात्री देवीके रूपमें निवास करती हैं, उन आर्यादेवीको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १३ ॥

ह्रीं श्रीं गङ्गां च गन्धर्वां योगिनीं योगदां सताम् ।
कीर्तिमाशां दिशं स्पर्शां नमस्यामि सरस्वतीम् ॥१४॥

जो ह्री (लज्जा), श्री (लक्ष्मी या सम्पत्ति), गङ्गा, गन्धर्वा (श्रीराधा), योगिनी तथा सत्पुरुषोंको योग प्रदान करनेवाली हैं, उन कीर्ति, आशा, दिशा, स्पर्शा एवं सरस्वती नामवाली देवीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ १४ ॥

वेदानां मातरं चैव सावित्रीं भक्तवत्सलाम् ।
तपस्विनीं शान्तिकरीमेकानंशां सनातनीम् ॥ १५ ॥

जो वेदोंकी माता, भक्तवत्सला सावित्री, तपस्विनी, शान्तिकरी, एकानंशा एवं सनातनस्वरूपा हैं, उन आर्यादेवीको नमस्कार है ॥ १५ ॥

कौटीर्यां मदिरां चण्डामिलां मलयवासिनीम् ।
भूतधात्रीं भयकरीं कूष्माण्डीं कुसुमप्रियाम् ॥ १६ ॥

जो कुटीरवासिनी, मत्त बना देनेवाली, अत्यन्त कोपना, इला, मलयवासिनी, सम्पूर्ण भूतोंको धारण करनेवाली, भयङ्करी, कूष्माण्डी और कुसुमप्रिया हैं, उन देवीको मेरा नमस्कार है ॥

दारुणीं मदिरावासां विन्ध्यकैलासवासिनीम् ।
वराङ्गनां सिंहरथीं बहुरूपां वृषध्वजाम् ॥ १७ ॥

जिनका स्वभाव दारुण है, आवासस्थान भी मत्त बना देनेवाला है, जो विन्ध्य और कैलास पर्वतपर निवास करती हैं, श्रेष्ठ अङ्गना हैं, सिंह जिनका रथ या वाहन है, जो बहुत-से रूप धारण करनेवाली तथा वृषभ-चिह्नसे चिह्नित ध्वजवाली हैं, उन देवीको नमस्कार है ॥ १७ ॥

दुर्लभां दुर्जयां दुर्गां निशुम्भभयदर्शिनीम् ।
सुरप्रियां सुरां देवीं वज्रपाण्यनुजां शिवाम् ॥ १८ ॥

जो दुर्लभ, दुर्जय, दुर्गम, निशुम्भासुरको भय दिखानेवाली, देवप्रिया, सुरस्वरूपा तथा वज्रपाणि इन्द्रकी अनुजा हैं, उन कल्याणमयी देवीको नमस्कार है ॥ १८ ॥

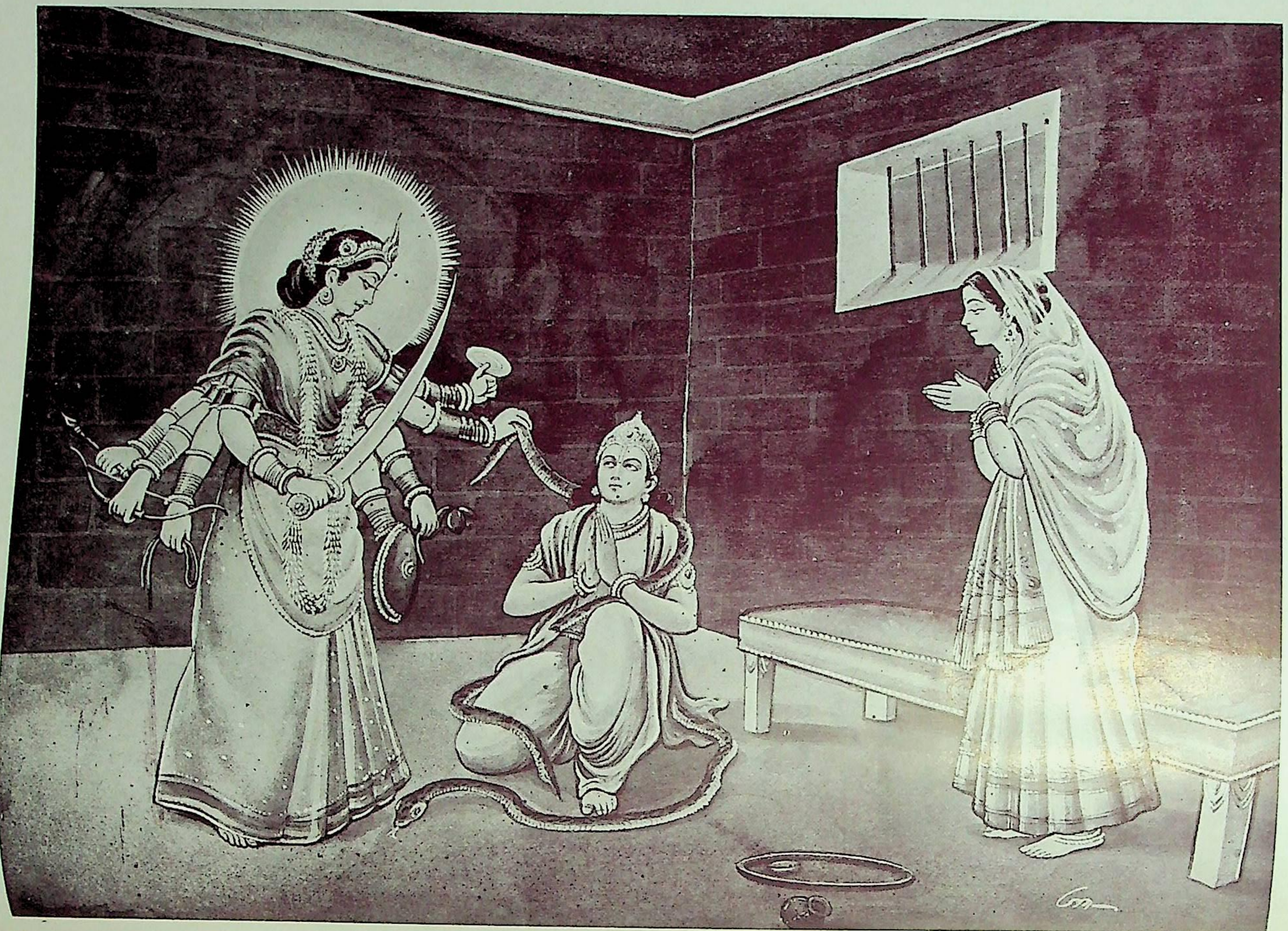
किरातीं चीरवसनां चौरसेनानमस्कृताम् ।
आज्यपां सोमपां सौम्यां सर्वपर्वतवासिनीम् ॥ १९ ॥

जो किरात-वेष धारण करनेवाली, चीर-वस्त्रधारिणी तथा चोरोंकी सेनासे नमस्कृत हैं तथा जो घृत पानेवाली, सोमरसका पान करनेवाली, सौम्यस्वरूपा तथा समस्त पर्वतोंमें निवास करनेवाली हैं, उन देवीको मैं नमस्कार करता हूँ ॥

निशुम्भशुम्भमथनीं गजकुम्भोपमस्तनीम् ।
जननीं सिद्धसेनस्य सिद्धचारणसेविताम् ॥ २० ॥
चरां कुमारप्रभवां पार्वतीं पर्वतात्मजाम् ।

जो निशुम्भ और शुम्भका संहार करनेवाली हैं, जिनके स्तन हाथीके कुम्भस्थलके समान जान पड़ते हैं तथा सिद्ध और चारण जिनकी सेवामें लगे रहते हैं, जो कार्तिकेयकी जननी हैं, जिनसे कुमारकी उत्पत्ति हुई है तथा जो पर्वतकी पुत्री होनेपर भी सर्वत्र विचरनेवाली हैं, उन पार्वती देवीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ २०½ ॥

पञ्चाशद्देवकन्यानां पत्न्यो देवगणस्य च ॥ २१ ॥
कद्रुपुत्रसहस्रस्य पुत्रपौत्रवरस्त्रियः ।
माता पिता जगन्मान्या दिवि देवाप्सरोगणैः ॥ २२ ॥
ऋषिपत्नीगणानां च यक्षगन्धर्वयोषिताम् ।
विद्याधराणां नारीषु साध्वीषु मनुजासु च ॥ २३ ॥



देवीके द्वारा अनिरुद्धकी नागपाशसे मुक्ति

एवमेतासु नारीषु सर्वभूताश्रया ह्यसि ।
नमस्कृतासि त्रैलोक्ये किन्नरोद्गीतसेविते ॥ २४ ॥

पचास देवकन्याओंमें, जो देवताओंकी पत्नियाँ हैं उनमें, कद्रूके जो हजारों पुत्र हैं—उनके पुत्रों और पौत्रोंकी जो सुन्दरी स्त्रियाँ हैं—उनमें, माता और पितामें, स्वर्गके देवताओं और अप्सराओंसहित ऋषिपत्नियोंमें, यक्षों और गन्धर्वोंकी स्त्रियोंमें, विद्याधरोंकी नारियोंमें और सती-साध्वी मानवी स्त्रियोंमें, इस प्रकार इन उपर्युक्त महिलाओंमें आप जगन्माता देवीका निवास है; क्योंकि आप सम्पूर्ण भूतोंका आश्रय हैं। तीनों लोकोंमें सर्वत्र आपके चरणोंमें मस्तक झुकाया जाता है । किन्नरलोग उच्च स्वरसे गीत गाकर आपकी सेवा करते हैं ॥ २१–२४ ॥

अचिन्त्या ह्यप्रमेयासि यासि सासि नमोऽस्तु ते ।
एभिर्नामभिरन्यैश्च कीर्तिता ह्यसि गौतमि ॥ २५ ॥

आप अचिन्त्य और अप्रमेय हैं, जो हैं सो हैं, आपको नमस्कार है । गौतमनन्दिनी ! इन पूर्वोक्त नामोंसे और दूसरे नामोंसे भी आपका ही कीर्तन होता है ॥ २५ ॥

त्वत्प्रसादादविघ्नेन क्षिप्रं मुच्येय बन्धनात् ।
अवेक्षस्व विशालाक्षि पादौ ते शरणं व्रजे ॥ २६ ॥
सर्वेषामेव बन्धानां मोक्षणं कर्तुमर्हसि ।

विशाललोचने ! मैं आपकी कृपासे बिना किसी विघ्न-बाधाके शीघ्र बन्धनमुक्त हो जाऊँ । आप मेरे ऊपर कृपादृष्टि करें; मैं आपके चरणोंकी शरण लेता हूँ । आप मुझे सभी बन्धनोंसे छुड़ाने योग्य हैं ॥ २६½ ॥

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च चन्द्रसूर्याग्निमारुताः ॥ २७ ॥
अश्विनौ वसवश्चैव विश्वेसाध्यास्तथैव च ।
मरुता सह पर्जन्यो धाता भूमिर्दिशो दश ॥ २८ ॥
गावो नक्षत्रवंशाश्च ग्रहा नद्यो ह्रदास्तथा ।
सरितः सागराश्चैव नानाविद्याधरोरगाः ॥ २९ ॥
तथा नागाः सुपर्णाश्च गन्धर्वाप्सरसां गणाः ।
कृत्स्नं जगदिदं प्रोक्तं देव्या नामानुकीर्तनात् ॥ ३० ॥

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, वायु, अश्विनीकुमार, वसु, विश्वेदेव, साध्यगण, मरुद्गण, पर्जन्य, धाता, भूमि, दसों दिशाएँ, गौ, नक्षत्रसमूह, ग्रहगण, नदियाँ, सरोवर, सरिताएँ, समुद्र, नाना विद्याधर, सर्प, नाग, गरुड़, गन्धर्व और अप्सराओंके समूह—इस प्रकार देवीके नामोंका बारंबार कीर्तन करनेसे इस सम्पूर्ण जगत्का कीर्तन हो जाता है ॥ २७–३० ॥

देव्याः स्तवमिमं पुण्यं यः पठेत् सुसमाहितः ।
सा तस्मै सप्तमे मासि वरमग्र्यं प्रयच्छति ॥ ३१ ॥

जो एकाग्रचित्त होकर देवीके इस पवित्र स्तोत्रका पाठ करता है, देवी उसे सातवें महीनेमें उत्तम वर प्रदान करती हैं॥

अष्टादशभुजा देवी दिव्याभरणभूषिता ।
हारशोभितसर्वाङ्गी मुकुटोज्ज्वलभूषणा ॥ ३२ ॥

देवीकी अठारह भुजाएँ हैं। वे दिव्य आभरणोंसे विभूषित हैं । हारसे उनके सारे अङ्ग सुशोभित हैं । मुकुटकी आभासे उनके आभूषण चमक उठे हैं ॥ ३२ ॥

कात्यायनि स्तूयसे त्वं वरमग्र्यं प्रयच्छसि ।
अतः स्तवीमि त्वां देवीं वरदे वामलोचने ॥ ३३ ॥

कात्यायनि ! जब आपकी स्तुति की जाती है, तब आप उत्तम वर प्रदान करती हैं । अतः वरदायिनि वामलोचने ! मैं आप देवीकी स्तुति करता हूँ ॥ ३३ ॥

नमोऽस्तु ते महादेवि सुप्रीता मे सदा भव ।
प्रयच्छ त्वं वरं ह्यायुः पुष्टिं चैव क्षमां धृतिम् ॥ ३४ ॥
बन्धनस्थो विमुच्येयं सत्यमेतद् भवेदिति ।

महादेवि ! आपको नमस्कार है । आप सदा मुझपर सुप्रसन्न रहें और मुझे श्रेष्ठ आयु, पुष्टि, क्षमा और धैर्य प्रदान करें । मैं बन्धनमें पड़ा हुआ हूँ, किंतु इससे मुक्त हो जाऊँ—मेरा यह संकल्प सत्य हो ॥ ३४½ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवं स्तुता महादेवी दुर्गा दुर्गपराक्रमा ॥ ३५ ॥
सांनिध्यं कल्पयामास अनिरुद्धस्य बन्धने ।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार स्तुति की जानेपर दुर्गम पराक्रम प्रकट करनेवाली महादेवी दुर्गाने बन्धनागारमें अनिरुद्धके पास आकर उन्हें दर्शन दिया ॥ ३५½ ॥

अनिरुद्धहितार्थाय देवी शरणवत्सला ॥ ३६ ॥
बद्धं बाणपुरे वीरमनिरुद्धं व्यमोक्षयत् ।
सान्त्वयामास तं वीरमनिरुद्धममर्षणम् ॥ ३७ ॥

उस शरणागतवत्सला देवीने बाणनगरमें बँधे हुए वीर अनिरुद्धको उनका हित-साधन करनेके लिये बन्धनसे मुक्त कर दिया । साथ ही उन अमर्षशील वीर अनिरुद्धको सान्त्वना प्रदान की ॥ ३६-३७ ॥

पूजयामास तां वीरः सोऽनिरुद्धः प्रतापवान् ।
प्रसादं दर्शयामास अनिरुद्धस्य बन्धने ॥ ३८ ॥

उस समय प्रतापी वीर अनिरुद्धने देवीका पूजन किया । देवीने बन्धनागारमें अनिरुद्धको अपनी कृपाका प्रत्यक्ष दर्शन कराया ॥ ३८ ॥

---

१. पचास देवकन्याएँ यहाँ दक्ष प्रजापतिकी पुत्रियाँ हैं। उनमेंसे २७ सोमको, १३ कश्यपको और १० धर्मको ब्याही गयी थीं । इस प्रकार इनकी संख्या पचास है ।

नागपाशेन बद्धस्य तस्योषाहृतचेतसः।
स्फोटयित्वा कराग्रेण पञ्जरं वज्रसंनिभम् ॥ ३९ ॥
रुद्धं बाणपुरे वीरं सानिरुद्धमभाषत।
सान्त्वयन्ती वचो देवी प्रसादाभिमुखी तदा ॥ ४० ॥

जो नागपाशमें बँधे हुए थे और उषाने जिनके चित्तको चुरा लिया था, उन अनिरुद्धके वज्रतुल्य पिंजरेको अपने हाथके अग्रभागसे तोड़-फोड़कर देवीने बाणपुरमें अवरुद्ध हुए वीर अनिरुद्धको मुक्त कर दिया और कृपा करनेके लिये उद्यत हो उन्हें सान्त्वना देते हुए इस प्रकार कहा ॥ ३९-४० ॥

श्रीदेव्युवाच

चक्रायुधो मोक्षयितानिरुद्ध
त्वां बन्धनादाशु सहस्व कालम्।
छित्त्वा स बाणस्य सहस्रबाहुं
पुरीं निजां नेष्यति दैत्यसूदनः ॥ ४१ ॥

श्रीदेवीने कहा—अनिरुद्ध ! चक्रधारी भगवान् श्रीकृष्ण शीघ्र आकर तुम्हें पूर्णतः इस बन्धनसे छुड़ायँगे, तबतक कुछ कालतक इस कष्टको सहन करो। वे दैत्य-सूदन श्रीहरि बाणासुरकी सहस्र भुजाओंका छेदन करके तुम्हें अपनी पुरीको ले जायँगे ॥ ४१ ॥

ततोऽनिरुद्धः पुनरेव देवीं
तुष्टाव हृष्टः शशिकान्तवक्त्रः।

तदनन्तर चन्द्रमाके समान कमनीय मुखवाले अनिरुद्धने प्रसन्न होकर पुनः देवीका स्तवन किया ॥ ४१½ ॥

अनिरुद्ध उवाच

नमोऽस्तु ते देवि वरप्रदे शिवे
नमोऽस्तु ते देवि सुरारिनाशिनि ॥ ४२ ॥

अनिरुद्ध बोले—कल्याणस्वरूपे ! वरदायिनि देवि ! आपको नमस्कार है। देवशत्रुओंका नाश करनेवाली देवि ! आपको प्रणाम है ॥ ४२ ॥

नमोऽस्तु ते कामचरे सदाशिवे
नमोऽस्तु ते सर्वहितैषिणि प्रिये।
नमोऽस्तु ते भीतिकरि द्विषां सदा
नमोऽस्तु ते बन्धनमोक्षकारिणि ॥ ४३ ॥

इच्छानुसार विचरनेवाली सदाशिवे ! आपको नमस्कार है। सबका हित चाहनेवाली सर्वप्रिये ! आपको नमस्कार है। शत्रुओंको सदा भय देनेवाली देवि ! आपको प्रणाम है तथा बन्धनसे छुड़ानेवाली देवि ! आपको नमस्कार है ॥ ४३ ॥

ब्रह्माणीन्द्राणि रुद्राणि भूतभव्यभवे शिवे।
त्राहि मां सर्वभीतिभ्यो नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ ४४ ॥

ब्रह्माणि ! इन्द्राणि ! रुद्राणि ! भूत, वर्तमान और भविष्य-स्वरूपे शिवे ! सब प्रकारके भयोंसे मेरी रक्षा करें। नारायणि ! आपको नमस्कार है ॥ ४४ ॥

नमोऽस्तु ते जगन्नाथे प्रिये दान्ते महाव्रते।
भक्तिप्रिये जगन्मातः शैलपुत्रि वसुन्धरे ॥ ४५ ॥
त्राहि मां त्वं विशालाक्षि नारायणि नमोऽस्तु ते।
त्रायस्व सर्वदुःखेभ्यो दानवानां भयंकरि ॥ ४६ ॥

जगत्‌की रक्षा करनेवाली प्रिय देवि ! आपको नमस्कार है। मन और इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाली महाव्रतधारिणी भक्तिप्रिये ! जगन्मातः ! गिरिराजनन्दिनि ! वसुन्धरे ! विशाल नेत्रोंवाली नारायणि ! आप मेरी रक्षा कीजिये ! आपको नमस्कार है। दानवोंको भय देनेवाली देवि ! सब प्रकारके दुःखोंसे मेरा परित्राण कीजिये ॥ ४५-४६ ॥

रुद्रप्रिये महाभागे भक्तानामार्तिनाशिनि।
नमामि शिरसा देवीं बन्धनस्थो विमोक्षितः ॥ ४७ ॥

रुद्रप्रिये ! भक्तोंकी पीड़ा दूर करनेवाली महाभागे ! मैं चरणोंमें मस्तक झुकाकर आप देवीको नमस्कार करता हूँ। आपने मुझे बन्धनमें रहते हुए भी मुक्त कर दिया ॥ ४७ ॥

वैशम्पायन उवाच

आर्यास्तवमिदं पुण्यं यः पठेत् सुसमाहितः।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति।
बन्धनस्थो विमुच्येत सत्यं व्यासवचो यथा ॥ ४८ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! जो एकाग्रचित्त होकर इस पवित्र आर्यास्तोत्रका पाठ करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकमें जाता है और यदि बन्धनमें पड़ा हो तो उससे मुक्त हो जाता है। जैसा कि व्यासजीका सत्य वचन है ॥ ४८ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि अनिरुद्धकृत आर्यास्तवो नाम विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें आर्यास्तवविषयक एक सौ बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२० ॥

एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

अनिरुद्धके अपहरणसे रनवासमें शोक, श्रीकृष्ण और यादवोंकी चिन्ता, गुप्तचरोंकी नियुक्ति और उनकी विफलता, नारदजीका आगमन और अनिरुद्धका समाचार-निवेदन, श्रीकृष्णके द्वारा गरुड़का आवाहन और स्तवन, गरुड़द्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति और श्रीकृष्णका शोणितपुरको प्रस्थान

वैशम्पायन उवाच

ततोऽनिरुद्धस्य गृहे रुरुदुः सर्वयोषितः।
प्रियं नाथमपश्यन्त्यः कुरर्य इव संघशः॥ १॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर अनिरुद्धके महलमें रहनेवाली समस्त सुन्दरियाँ अपने प्रिय स्वामीको न देखकर झुंड-की-झुंड एकत्र हो कुररियोंकी भाँति विलाप करने लगीं—॥ १॥

अहो धिक्किमिदं नाथनाथे कृष्णे व्यवस्थिते।
अनाथा इव संत्रस्ता रुदिमो भयपीडिताः॥ २॥

'अहो! धिक्कार है, यह क्या हुआ? नाथोंके भी नाथ श्रीकृष्णके रहते हुए हमलोग अनाथकी भाँति संत्रस्त और भयसे पीड़ित हो रोदन करती हैं॥ २॥

यस्येन्द्रप्रमुखा देवाः सादित्याः समरुद्गणाः।
बाहुच्छायामुपाश्रित्य वसन्ति दिवि निर्वृताः॥ ३॥
तस्योत्पन्नमिदं लोके भयदस्य महाभयम्।
तस्यानिरुद्धः पौत्रस्तु वीरः केनापि नो हृतः॥ ४॥

'जिनकी भुजाओंकी छायाका आश्रय ले आदित्यों और मरुद्गणोंसहित इन्द्र आदि सभी देवता स्वर्गमें सुखपूर्वक निवास करते हैं। लोकमें भय देनेवाले (या दूसरोंके भयका निवारण करनेवाले) उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णके समक्ष आज यह महान् भय उत्पन्न हो गया। उनके वीर पौत्र हमारे स्वामी अनिरुद्धको आज किसीने हर लिया॥ ३-४॥

अहो नास्ति भयं नूनं तस्य लोके सुदुर्मतेः।
वासुदेवस्य यः क्रोधमुत्पादयति दुःसहम्॥ ५॥

'अहो! उस दुर्बुद्धिको निश्चय ही संसारमें कोई भय नहीं है, जो भगवान् वासुदेवके हृदयमें दुःसह क्रोध उत्पन्न कर रहा है॥ ५॥

व्यादितास्यस्य यो मृत्योर्दंष्ट्राग्रे परिवर्तते।
स वासुदेवं समरे मोहादभ्युदियाद् रिपुः॥ ६॥

'जो मुँह बाकर खड़ी हुई मौतकी दाढ़ोंके सामने चक्कर लगाता है, वही मोहवश समराङ्गणमें शत्रुभावसे भगवान् वासुदेवके सामने जा सकता है॥ ६॥

इदमेवंविधं कृत्वा विप्रियं यदुपुङ्गवे।
कथं जीवन् विमुच्येत साक्षादपि शचीपतिः॥ ७॥

'यदुकुलतिलक श्रीकृष्णके प्रति यह ऐसा अप्रिय बर्ताव करके साक्षात् शचीपति इन्द्र भी कैसे जीवित छूट सकता है?॥ ७॥

हृतनाथाः स्म शोच्याः स्म वयं नाथं विना कृताः।
विप्रयोगेण नाथस्य कृतान्तवशगाः कृताः॥ ८॥

'हाय! हमारे नाथका अपहरण हो जानेसे हम सब-की-सब अनाथ एवं शोचनीय हो गयीं। अपने स्वामीके वियोगसे हम कालके अधीन कर दी गयीं'॥ ८॥

इत्येवं ता वदन्त्यश्च रुदन्त्यश्च पुनः पुनः।
नेत्रजं वारि मुमुचुरशिवं परमाङ्गनाः॥ ९॥

वे सुन्दरी अङ्गनाएँ इस प्रकार बारंबार विलाप करती और रोती हुई अपने नेत्रोंसे अमङ्गलसूचक आँसू बहाने लगीं॥ ९॥

तासां बाष्पाम्बुपूर्णानि नयनानि चकाशिरे।
सलिलेनाप्लुतानीव पङ्कजानि जलागमे॥ १०॥

उनके अश्रुजलसे भरे हुए नेत्र वर्षाकालमें जलसे भीगे हुए कमलोंके समान प्रकाशित हो रहे थे॥ १०॥

तासामरालपक्ष्माणि राजयन्ति शुभानि च।
रुधिरेणाप्लुतानीव नयनानि चकाशिरे॥ ११॥

उनके कुटिल बरौनियोंसे युक्त सुन्दर एवं लाल नेत्र खूनमें डूबे हुए-से प्रतीत होते थे॥ ११॥

तासां हर्म्यतलस्थानां पूर्ण आसीन्महास्वनः।
कुररीणामिवाकाशे रुदतीनां सहस्रशः॥ १२॥

अट्टालिकाओंमें बैठकर रोती हुई उन सुन्दरियोंका सब ओर फैला हुआ वह आर्तनाद आकाशमें सहस्रों कुररियोंके करुण-क्रन्दनके समान जान पड़ता था॥ १२॥

ते श्रुत्वा निनदं घोरमपूर्वं भयमागतम्।
उत्पेतुः सहसा स्वेभ्यो गृहेभ्यः पुरुषर्षभाः॥ १३॥

उस भयंकर आर्तनादको सुनकर किसी अपूर्व भयके आगमनका अनुमान करके वे पुरुषप्रवर यादव अपने-अपने घरोंसे सहसा उछल पड़े॥ १३॥

कस्मादेषोऽनिरुद्धस्य श्रूयते सुमहास्वनः।
गृहे कृष्णाभिगुप्तानां कुतो नो भयमागतम्॥ १४॥

वे सोचने लगे 'अनिरुद्धके महलमें यह महान् कोलाहल क्यों सुनायी देता है? श्रीकृष्णके संरक्षणमें रहनेवाले हमलोगोंके घरमें यह भय कहाँसे आ गया?'॥ १४॥

इत्येवमूचुस्तेऽन्योन्यं स्नेहविक्लवगद्गदाः ।
अधर्षिता यथा सिंहा गुहाभ्य इव निःसृताः ॥ १५ ॥

इस प्रकार वे एक-दूसरेसे कहने लगे । उस समय उनकी वाणी स्नेहजनित विकलताके कारण गद्गद हो रही थी । जिन्हें कभी किसीका तिरस्कार नहीं सहना पड़ा हो ऐसे सिंह जैसे गुफासे निकले हों, उसी प्रकार वे यादव भी अपने घरोंसे निकल पड़े ॥ १५ ॥

संनाहभेरी कृष्णस्य आहता महती तदा ।
यस्याः शब्देन ते सर्वे समागम्य च धिष्ठिताः ॥ १६ ॥

भगवान् श्रीकृष्णके यहाँ युद्धकी तैयारीके लिये सूचना देनेवाला विशाल डंका तत्काल बज उठा, जिसके शब्दसे समस्त यादव वहाँ एकत्र होकर खड़े हो गये ॥ १६ ॥

किमेतदिति तेऽन्योन्यं समपृच्छन्त यादवाः ।
अन्योन्यस्य हि ते सर्वे यथावृत्तमवेदयन् ॥ १७ ॥

वे यदुवंशी परस्पर पूछने लगे कि 'क्या बात है ?' फिर जो जानकार थे, उन सबने एक दूसरेको यथार्थ बात बता दी ॥ १७ ॥

ततस्ते बाष्पपूर्णाक्षाः क्रोधसंरक्तलोचनाः ।
निःश्वसन्तो व्यतिष्ठन्त यादवा युद्धदुर्मदाः ॥ १८ ॥

तब वे रणदुर्मद यादव नेत्रोंमें आँसू भरकर क्रोधसे लाल आँखें किये लंबी साँस खींचते हुए खड़े हो गये ॥१८॥

तूष्णींभूतेषु सर्वेषु विपृथुर्वाक्यमब्रवीत् ।
कृष्णं प्रहरतां श्रेष्ठं निःश्वसन्तं मुहुर्मुहुः ॥ १९ ॥

समस्त यादव वहाँ आकर चुपचाप खड़े हो गये । तब विपृथुने बारंबार दीर्घ निःश्वास लेते हुए योद्धाओंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णसे इस प्रकार कहा—॥ १९ ॥

किमिदं चिन्तयाविष्टः पुरुषेन्द्र भवानिह ।
तव बाहुबलप्राणाः स्वास्थिताः सर्वयादवाः ॥ २० ॥

'पुरुषोत्तम ! आप यहाँ इस प्रकार चिन्तामग्न क्यों हैं ? समस्त यादव आपके ही बाहुबलके भरोसे जीवन धारण करके यहाँ सुखपूर्वक रहते हैं ॥ २० ॥

भवन्तमाश्रिताः कृष्ण संविभक्ताश्च सर्वशः ।
तथैव बलवाञ्शक्रस्त्वय्यावेश्य जयाजयौ ॥ २१ ॥
सुखं स्वपिति निःशङ्कः कथं त्वं चिन्तयान्वितः ।
शोकसागरमक्षोभ्यं सर्वे ते ज्ञातयो गताः ॥ २२ ॥

'श्रीकृष्ण ! ये सब आपकी शरणमें हैं और आपने सबको पृथक्-पृथक् सुख-सुविधा प्रदान की है । इसी प्रकार बलवान् इन्द्र भी आपपर ही जय-पराजयका भार रखकर बिना किसी डर-भयके सुखपूर्वक सोते हैं । फिर आप कैसे चिन्तामें डूबे हुए हैं । आपके ये समस्त बन्धु-बान्धव आपकी यह दशा देखकर शोकके अक्षोभ्य समुद्रमें मग्न हो गये हैं ॥२१-२२॥

तान् मज्जमानानेकस्त्वं समुद्धर महाभुज ।
किमेवं चिन्तयाविष्टो न किंचिदपि भाषसे ॥ २३ ॥
चिन्तां कर्तुं वृथा देव न त्वमर्हसि माधव ।

'महाबाहो ! आप अकेले ही इन डूबते हुए कुटुम्बीजनोंका उद्धार कीजिये । इस तरह चिन्तामग्न होकर आप क्यों कुछ भी नहीं बोल रहे हैं ? देव ! माधव ! आपको व्यर्थ चिन्ता नहीं करनी चाहिये' ॥ २३½ ॥

इत्येवमुक्तः कृष्णस्तु निःश्वस्य सुचिरं बहु ॥ २४ ॥
प्राह वाक्यं स वाक्यज्ञो बृहस्पतिरिव स्वयम् ।

विपृथुके ऐसा कहनेपर बातचीतके मर्मको समझनेवाले श्रीकृष्णने बहुत देरतक लंबी साँस खींचकर साक्षात् बृहस्पतिके समान यह बात कही ॥ २४½ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

विपृथो चिन्तयाविष्टो ह्येतत्कार्यमचिन्तयम् ॥ २५ ॥
विचिन्तयंस्त्वहं चास्य कार्यस्य न लभे गतिम् ।

श्रीकृष्ण बोले—विपृथो ! मैं चिन्तामग्न होकर इसी कार्यके विषयमें विचार कर रहा था; किंतु बहुत सोचनेपर भी मैं इस कार्यका कोई निश्चित आधार न पा सका ॥२५½॥

तथाहं भवताप्युक्तो नोत्तरं विदधे क्वचित् ॥ २६ ॥

इसीलिये तुम्हारे पूछनेपर भी मैंने कोई उत्तर नहीं दिया ॥ २६ ॥

दाशार्हगणमध्येऽहं वदाम्यर्थवतीं गिरम् ।
शृणुध्वं यादवाः सर्वे यथा चिन्तान्वितो ह्यहम् ॥ २७ ॥

आज समस्त दाशार्हगणोंके बीच मैं यह अभिप्रायपूर्ण बात कह रहा हूँ । यादवो ! तुम सब लोग सुन लो कि मैं क्यों चिन्तित हो उठा हूँ ॥ २७ ॥

अनिरुद्धे हृते वीरे पृथिव्यां सर्वपार्थिवाः ।
अशक्ता इति मंस्यन्ते सर्वानस्मान् सबान्धवान् ॥ २८ ॥

वीर अनिरुद्धका इस तरह अपहरण हो जानेपर भूमण्डलके समस्त भूपाल बन्धु बान्धवोंसहित हम सब लोगोंको शक्तिहीन समझेंगे ॥ २८ ॥

आहुकश्चैव नो राजा हृतः शाल्वेन वै पुरा ।
प्रत्यानीतः स चास्माभिर्युद्धं कृत्वा सुदारुणम् ॥ २९ ॥

पूर्वकालमें शाल्वने हमारे राजा उग्रसेनको हर लिया था; तब हमने अत्यन्त दारुण युद्ध करके उन्हें वापस लौटाया था ॥ २९ ॥

प्रद्युम्नश्चापि नो बालः शम्बरेण हृतो ह्यभूत् ।
स तं निहत्य समरे प्राप्तो रुक्मिणिनन्दनः ॥ ३० ॥

हमारे प्रद्युम्नको भी बाल्यावस्थामें शम्बरासुरने चुरा

लिया था, परंतु रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्न समराङ्गणमें उस असुरका वध करके स्वयं चले आये ॥ ३० ॥

इदं तु सुमहत् कष्टं प्राद्युम्निः क्व प्रवासितः।
एवंविधमहं दोषं न स्मरे मनुजर्षभाः ॥ ३१ ॥

किंतु यह तो सबसे बढ़कर महान् कष्टकी बात है कि प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्ध कहीं परदेशमें पहुँचा दिये गये और हमें पतातक नहीं चला। नरश्रेष्ठ यादवो ! ऐसा दोष कभी प्राप्त हुआ हो, इसका मुझे स्मरण नहीं है ॥ ३१ ॥

भस्मना गुण्ठितः पादो येन मे मूर्ध्नि पातितः।
तस्याहं सानुबन्धस्य हरिष्ये जीवितं रणे ॥ ३२ ॥

जिसने मेरे मस्तकपर अपना राखसे लिपटा हुआ पैर रखा है, सगे-सम्बन्धियोंसहित उस दुरात्माके प्राणोंको मैं रणभूमिमें अवश्य हर लूँगा ॥ ३२ ॥

इत्येवमुक्ते कृष्णेन सात्यकिर्वाक्यमब्रवीत्।
चाराः कृष्ण प्रणीयन्तामनिरुद्धस्य मार्गणे।
सपर्वतवनोद्देशां मार्गन्तु वसुधामिमाम् ॥ ३३ ॥

श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर सात्यकि बोले—'श्रीकृष्ण ! अनिरुद्धकी खोजके लिये गुप्तचर भेजे जायँ तथा वे पर्वत और वनस्थलीसहित इस सारी पृथ्वीमें उनका अनुसंधान करें'॥

आहुकं प्राह कृष्णस्तु स्मितं कृत्वा वचस्तदा।
आभ्यन्तराश्च बाह्याश्च व्यादिश्यन्तां चरा नृप॥ ३४ ॥

तब श्रीकृष्णने मुसकराकर राजा उग्रसेनसे कहा— 'नरेश्वर ! आप बाह्य और आभ्यन्तर (प्रकट और गुप्त) चरोंको इस कार्यके लिये नियुक्त कीजिये' ॥ ३४ ॥

वैशम्पायन उवाच

केशवस्य वचः श्रुत्वा आहुकस्त्वरितोऽभवत्।
अन्वेषणेऽनिरुद्धस्य स चारान् दिष्टवांस्तदा ॥ ३५ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! भगवान् श्रीकृष्णका यह वचन सुनकर राजा उग्रसेन बड़ी उतावलीके साथ उठे। उन्होंने अनिरुद्धकी खोजके लिये तत्काल प्रकट एवं गुप्त चर नियुक्त कर दिये ॥ ३५ ॥

ततश्चारास्तु व्यादिष्टाः पार्थिवेन यशस्विना।
हया रथाश्च व्यादिष्टाः पार्थिवेन महात्मना।
अभ्यन्तरं च मार्गध्वं बाह्यतश्च समन्ततः ॥ ३६ ॥

यशस्वी भूपाल महामना उग्रसेनने चरोंको नियुक्त करके उनके लिये घोड़े और रथ भी दे दिये और यह आज्ञा दी— 'तुमलोग भीतर-बाहर सब ओर अनिरुद्धको ढूँढ़ो ॥ ३६ ॥

वेणुमन्तं लताविष्टं तथा रैवतकं गिरिम्।
ऋक्षवन्तं गिरिं चैव मार्गध्वं त्वरिता हयैः ॥ ३७ ॥

'घोड़ोंपर सवार हो शीघ्रतापूर्वक जाकर वेणुमान्, लताविष्ट, रैवतक तथा ऋक्षवान् पर्वतपर उनकी खोज करो ॥

एकैकं तत्र चोद्यानं मार्गध्वं काननानि च।
यातव्यं चापि निःशङ्कमुद्यानानि समन्ततः ॥ ३८ ॥
हयानां च सहस्राणि रथानां चाप्यनेकशः।
आरुह्य त्वरिताः सर्वे मार्गध्वं यदुनन्दनम् ॥ ३९ ॥

'वहाँका एक-एक उद्यान और जंगल-झाड़ी छान डालो, उद्यानोंमें सब ओर बेखटके चले जाना; हजारों घोड़ों और बहुसंख्यक रथोंपर आरूढ हो तुम सब लोग बड़ी उतावलीके साथ यदुनन्दन अनिरुद्धका पता लगाओ' ॥ ३८-३९ ॥

सेनापतिरनाधृष्टिरिदं वचनमब्रवीत्।
कृष्णमक्लिष्टकर्माणमच्युतं भीतभीतवत् ॥ ४० ॥

तदनन्तर सेनापति अनाधृष्टिने अनायास ही महान् कर्म करनेवाले अच्युत श्रीकृष्णसे डरते-डरते-से इस प्रकार कहा—॥

शृणु कृष्ण वचो मह्यं रोचते यदि ते प्रभो।
चिरात् प्रभृति मे वक्तुं भवन्तं जायते मतिः ॥ ४१ ॥

'प्रभो ! श्रीकृष्ण ! यदि आपको जँचे तो मेरी बात भी सुनें। बड़ी देरसे मेरे मनमें यह बात आ रही थी कि मैं आपसे कुछ कहूँ ॥ ४१ ॥

असिलोमा पुलोमा च निसुन्दनरकौ हतौ।
सौभः शाल्वश्च निहतौ मैन्दो द्विविद एव च ॥ ४२ ॥

'आपके द्वारा असिलोमा और पुलोमा मारे गये। निसुन्द और नरक कालके गालमें डाल दिये गये। सौभ विमान और उसके स्वामी राजा शाल्व भी नष्ट कर दिये गये। मैन्द और द्विविद भी मारे गये ॥ ४२ ॥

हयग्रीवश्च सुमहान् सानुबन्धस्त्वया हतः।
तादृशे विग्रहे वृत्ते देवहेतोः सुदारुणे ॥ ४३ ॥
सर्वाण्येतानि कर्माणि निःशेषाणि रणे रणे।
कृतवानसि गोविन्द पार्ष्णिग्राहश्च नास्ति ते ॥ ४४ ॥

'महान् असुर हयग्रीव सगे सम्बन्धियोंसहित आपके हाथसे मारा गया। देवताओंके लिये वैसे-वैसे अत्यन्त भयङ्कर युद्ध आपने किये हैं। गोविन्द ! प्रत्येक रणक्षेत्रमें आपने ये सारे कर्म पूर्णरूपसे सम्पन्न किये हैं, किंतु आपका साथ देनेवाला कोई नहीं है ॥ ४३-४४ ॥

इदं कर्म त्वया कृष्ण सानुबन्धं महत् कृतम्।
पारिजातस्य हरणे यत् कृतं कर्म दुष्करम् ॥ ४५ ॥

'श्रीकृष्ण ! पारिजातका हरण करते समय अपने जो दुष्कर कर्म किया था, वह सबसे महान् था। आपके द्वारा किया गया यह पारिजात-हरणरूपी कर्म परिणामसहित सबसे उत्कृष्ट है ॥ ४५ ॥

तत्र शक्रस्त्वया कृष्ण ऐरावतशिरोगतः ।
निर्जितो बाहुवीर्येण त्वया युद्धविशारदः ॥ ४६ ॥

'श्रीकृष्ण ! उस समय आपने अपने बाहुबलसे ऐरावतकी पीठपर बैठे हुए युद्धविशारद इन्द्रको भी पराजित कर दिया॥

तेन वैरं त्वया सार्धं कर्तव्यं नात्र संशयः ।
वैरानुबन्धश्च महांस्तेन कार्यस्त्वया सह ॥ ४७ ॥

'अतः इसमें कोई संशय नहीं कि देवराज इन्द्र आपके साथ वैर कर सकते हैं । उनका आपके साथ महान् वैर बाँधना अवश्य सम्भव है ॥ ४७ ॥

तत्रानिरुद्धहरणं कृतं भगवता स्वयम् ।
न ह्यन्यस्य भवेच्छक्तिर्वैरनिर्यातनं प्रति ॥ ४८ ॥

'अतः अनिरुद्धका अपहरण स्वतः इन्द्रने ही किया है । दूसरे किसीमें इस तरह वैरका बदला लेनेकी शक्ति नहीं हो सकती' ॥ ४८ ॥

इत्येवमुक्ते वचने कृष्णो नाग इव श्वसन् ।
उवाच वचनं धीमाननाधृष्टिं महाबलम् ॥ ४९ ॥

उनके ऐसी बात कहनेपर बुद्धिमान् भगवान् श्रीकृष्णने हाथीके समान उच्छ्वास लेकर महाबली अनाधृष्टिसे इस प्रकार कहा—॥ ४९ ॥

सेनानीस्तात मा मैवं न देवाः क्षुद्रकर्मिणः ।
नाकृतज्ञा न च क्लीबा नावलिप्ता न बालिशाः ॥ ५० ॥

'तात ! सेनापते ! ऐसी बात न कहो, न कहो, देवता ऐसा नीच कर्म करनेवाले नहीं होते । वे न तो अकृतज्ञ होते हैं, न कायर । न घमंडी होते हैं, न मूर्ख ॥ ५० ॥

देवतार्थं च मे यत्नो महान् दानवसंक्षये ।
तेषां प्रियार्थं च रणे हन्मि दृप्तान् महाबलान् ॥ ५१ ॥

'देवताओंके लिये ही मेरा दानव-संहारके निमित्त महान् प्रयत्न होता रहता है । उन्हींका प्रिय करनेके लिये मैं रणमें अभिमानी और महाबली असुरोंका वध करता हूँ ॥ ५१ ॥

तत्परस्तन्मनाश्चास्मि तद्भक्तस्तत्प्रिये रतः ।
कथं पापं करिष्यन्ति विज्ञायैवंविधं हि माम् ॥ ५२ ॥

'मैं शरीरसे उन देवताओंके हितमें तत्पर रहता हूँ, मनसे उन्हींका हित-चिन्तन करता हूँ, उनमें भक्तिभाव रखता हूँ और उन्हींका प्रिय करनेमें लगा रहता हूँ । मुझे ऐसा जानकर भी वे मेरे साथ दुर्व्यवहार क्यों करेंगे ॥ ५२ ॥

अक्षुद्राः सत्यवन्तश्च नित्यं भक्तानुकम्पिनः ।
तेभ्यो न विद्यते पापं बालिशत्वात् प्रभाषसे ॥ ५३ ॥

'देवता क्षुद्रतासे रहित, सत्यवादी तथा भक्तजनोंपर सदा कृपा करनेवाले होते हैं । उनसे पाप नहीं हो सकता । तुम विवेकशून्य होनेके कारण उनके सम्बन्धमें उपर्युक्त बात कह रहे हो ॥ ५३ ॥

कदाचिदिह पुंश्चल्या अनिरुद्धो हृतो भवेत् ।
देवेषु समहेन्द्रेषु नैतत् कर्म विधीयते ॥ ५४ ॥

'कदाचित् यह सम्भव हो सकता है कि किसी पुंश्चली स्त्रीने यहाँ आकर अनिरुद्धका अपहरण किया हो । इन्द्रसहित देवताओंमेंसे किसीके द्वारा ऐसा कर्म नहीं बन सकता' ॥५४॥

वैशम्पायन उवाच

एवं चिन्तयमानस्य कृष्णस्याद्भुतकर्मणः ।
कृष्णस्य वचनं श्रुत्वा ततोऽक्रूरोऽब्रवीद् वचः ॥ ५५ ॥
मधुरं श्लक्ष्णया वाचा अर्थवाक्यविशारदः ।
यच्छक्रस्य प्रभो कार्यं तदस्माकं विनिश्चितम् ॥ ५६ ॥
अस्माकं चापि यत्कार्यं तद्धि कार्यं शचीपतेः ।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! ऐसा विचार करते हुए अद्भुतकर्मा श्रीकृष्णका यह वचन सुनकर अर्थयुक्त वचन बोलनेमें चतुर अक्रूरने स्नेहयुक्त वाणीमें मधुर स्वरसे कहा—'प्रभो ! इन्द्रका जो कार्य है, वह निश्चय ही हमलोगोंका भी है । इसी प्रकार जो हमारा कार्य है, वह शचीपति इन्द्रका भी है ॥ ५५-५६½ ॥

संरक्ष्याश्च वयं देवैरस्माभिश्चापि देवताः ।
देवतार्थं वयं चापि मानुषत्वमुपागताः ॥ ५७ ॥

'देवताओंको हमारी रक्षा करनी चाहिये और हमें देवताओंकी; क्योंकि हमलोग भी देवताओंके लिये ही मानव-शरीरमें आये हैं' ॥ ५७ ॥

एवमक्रूरवचनैश्चोदितो मधुसूदनः ।
स्निग्धगम्भीरया वाचा पुनः कृष्णोऽभ्यभाषत ॥५८॥

अक्रूरके इन वचनोंसे प्रेरित होकर मधुसूदन भगवान् श्रीकृष्णने पुनः स्निग्ध गम्भीर वाणीमें कहा—॥ ५८ ॥

नायं देवैर्न गन्धर्वैर्न यक्षैर्न च राक्षसैः ।
प्रद्युम्नपुत्रोऽपहृतः पुंश्चल्या नु महायशः ॥ ५९ ॥

'महायशस्वी अक्रूरजी ! प्रद्युम्नपुत्र अनिरुद्धका अपहरण देवताओं, गन्धर्वों, यक्षों और राक्षसोंने नहीं किया है । निश्चय ही यह किसी पुंश्चली (व्यभिचारिणी) स्त्रीका काम है ॥ ५९ ॥

मायाविदग्धाः पुंश्चल्यो दैत्यदानवयोषितः ।
ताभिर्हृतो न संदेहो नान्यतो विद्यते भयम् ॥ ६० ॥

'दैत्यों और दानवोंकी जो पुंश्चली स्त्रियाँ हैं, वे मायामें निपुण होती हैं । उन्हींके द्वारा अनिरुद्धका अपहरण हुआ है, इसमें संदेह नहीं है । दूसरे किसीसे यह भय नहीं प्राप्त हुआ है ॥ ६० ॥

वैशम्पायन उवाच

इत्येवमुक्ते वचने कृष्णेन तु महात्मना।
अथावगम्य तत्त्वेन यद् भूतं यदुमण्डले।
उदतिष्ठन्महानादस्तदा कृष्णं प्रशंसयन्॥ ६१॥

वैशम्पायनजी कहते हैं--राजन्! महात्मा श्रीकृष्णके ऐसी बात कहनेपर यदुमण्डलमें जो कुछ हुआ था, उसको ठीकसे जान लेनेपर वहाँ श्रीकृष्णकी प्रशंसासे भरा हुआ महान् शब्द प्रकट हुआ॥ ६१॥

हर्षयन् स तु सर्वेषां सूतमागधवन्दिनाम्।
मधुरः श्रूयते घोषो यादवस्य निवेशने॥ ६२॥

यदुपति श्रीकृष्णके महलमें सबके हर्षको बढ़ाता हुआ सूतों, मागधों और बन्दियोंका वह मधुर घोष सबको सुनायी देने लगा॥ ६२॥

ते चाराः सर्वतः सर्वे सभाद्वारमुपागताः।
शनैर्गद्गदया वाचा इदं वचनमब्रुवन्॥ ६३॥

इतनेमें ही वे सब गुप्तचर सब ओरसे खोज करके सभाद्वारपर लौट आये और धीरे-धीरे गद्गद वाणीमें इस प्रकार बोले—॥ ६३॥

उद्यानानि गुहाः शैलाः सभा नद्यः सरांसि च।
एकैकं शतशो राजन् मार्गितं न च दृश्यते॥ ६४॥

'राजन्! सारे उद्यान, गुफाएँ, पर्वत, धर्मशाले, नदियाँ और सरोवर छान डाले गये। एक-एक स्थानपर सौ-सौ बार खोज की गयी; परंतु कहीं अनिरुद्धका दर्शन नहीं हुआ'॥

अन्ये कृष्णं चरा राजन्नुपागम्य तदाब्रुवन्।
सर्वे नो विदिता देशाः प्राद्युम्निर्न च दृश्यते॥ ६५॥

राजन्! दूसरे चर भी भगवान् श्रीकृष्णके पास आकर कहने लगे—'प्रभो! हमें सब देशोंका पता है, सर्वत्र खोज की गयी, किंतु कहीं भी प्रद्युम्नकुमारका पता नहीं लग रहा है॥

यदन्यत् संविधातव्यं विधानं यदुनन्दन।
तदाज्ञापय नः क्षिप्रमनिरुद्धस्य मार्गणे॥ ६६॥

'यदुनन्दन! अनिरुद्धके अन्वेषणके लिये अब और जो कुछ कार्य करना हो, उसके लिये हमें शीघ्र आज्ञा दीजिये'॥

ततस्ते दीनमनसः सर्वे बाष्पाकुलेक्षणाः।
अन्योन्यमभ्यभाषन्त किमतः कार्यमुत्तमम्॥ ६७॥

चरोंकी ये बातें सुनकर सबका मन उदास हो गया। सबके नेत्रोंमें आँसू भर आये और सब एक-दूसरेसे कहने लगे—'इससे उत्तम कार्य अब और क्या करना चाहिये?'॥ ६७॥

संदष्टौष्ठपुटाः केचित् केचिद् बाष्पाकुलेक्षणाः।
केचिद् भ्रुकुटिमास्थाय चिन्तयन्त्यर्थसिद्धये॥ ६८॥

किसीने क्रोधवश दाँतोंसे ओठ दबा लिये, किन्हींके नेत्रोंमें आँसू भर आये और कोई भौंहें टेढ़ी करके कार्यसिद्धिके उपायपर विचार करने लगे॥ ६८॥

एवं चिन्तयतां तेषां बह्वर्थमभिभाषितम्।
अनिरुद्धः कुतश्चेति सम्भ्रमः सुमहानभूत्॥ ६९॥

इस प्रकार चिन्तन करते हुए उन यादवोंके मुखसे अनेक तरहकी बातें निकलीं। 'अनिरुद्ध कहाँ गये?' इस प्रश्नको लेकर सबके हृदयमें महान् सम्भ्रम उत्पन्न हो गया॥

अन्योन्यमभिवीक्षन्ते यादवा जातमन्यवः।
तां निशां विमनस्कास्ते गमयेयुः कथंचन।
अनिरुद्धो हृतश्चेति पुनः पुनररिंदम॥ ७०॥

शत्रुदमन नरेश! उस समय कुपित और खिन्न हुए यादव एक दूसरेका मुँह देखने लगे। अनिरुद्धके अपहरणकी बारंबार चर्चा करते हुए उन्होंने उदास मनसे किसी तरह वह रात बितायी॥ ७०॥

एवं च ब्रुवतां तेषां प्रभाता रजनी तदा।
ततस्तूर्यनिनादैश्च शङ्खानां च महास्वनैः।
प्रबोधनं महाबाहोः कृष्णस्याक्रियतालये॥ ७१॥

इस तरह आपसमें बात करते हुए ही उनकी रात बीत गयी और प्रातःकाल आ गया। तदनन्तर महाबाहु श्रीकृष्णके भवनमें सबको जगानेके लिये बड़े जोर-जोरसे भाँति-भाँतिके बाजे बजने लगे और शङ्खोंकी भी गम्भीर ध्वनि होने लगी॥ ७१॥

ततः प्रभाते विमले प्रादुर्भूते दिवाकरे।
प्रविवेश सभामेको नारदः प्रहसन्निव॥ ७२॥

तत्पश्चात् निर्मल प्रभातमें जब सूर्यदेवका उदय हुआ, उस समय अकेले नारदजीने हँसते हुए-से वहाँ यादवोंकी सभामें प्रवेश किया॥ ७२॥

दृष्ट्वा तु यादवान् सर्वान् कृष्णेन सह संगतान्।
ततः स जयशब्देन माधवं प्रत्यपूजयत्॥ ७३॥

श्रीकृष्णके साथ एकत्र हुए समस्त यादवोंकी ओर देखकर उन्होंने 'जय हो, जय हो' कहकर माधव (श्रीकृष्ण) का समादर किया॥ ७३॥

उग्रसेनादयस्ते च तमृषिं प्रत्यपूजयन्।
अथाभ्युत्थाय विमनाः कृष्णः समितिदुर्जयः।
मधुपर्कं च गां चैव नारदाय ददौ प्रभुः॥ ७४॥

फिर उग्रसेन आदिने नारदजीका पूजन किया। इसके बाद रणदुर्जय भगवान् श्रीकृष्णने उदास मनसे उठकर नारदजीको मधुपर्क तथा एक गौ समर्पित की॥ ७४॥

सोपविश्यासने शुभ्रे सर्वास्तरणसंवृते।
सुखासीनो यथान्यायमुवाचेदं वचोऽर्थवत्॥ ७५॥

स्वागत-सत्कारके पश्चात् जब नारदजी सब प्रकारके बिछौनोंसे ढके हुए शुभ्र आसनपर सुखपूर्वक बैठ गये, तब वे यथोचित रीतिसे यह अर्थयुक्त वचन बोले ॥ ७५ ॥

नारद उवाच

किमेवं चिन्तयाविष्टा निःसङ्गा गतमानसाः ।
उत्साहहीनाः सर्वे वै क्लीबा इव समासते ॥ ७६ ॥

नारदजीने कहा—आज क्या बात है कि समस्त यादव इस तरह चिन्तामग्न, असंग, अनमने और उत्साहहीन होकर क्लीबों (कायरों)के समान चुपचाप बैठे हैं ? ॥ ७६ ॥

इत्येवमुक्ते वचने नारदेन महात्मना ।
वासुदेवोऽब्रवीद् वाक्यं श्रूयतां भगवन्निदम् ॥ ७७ ॥

महात्मा नारदके इस तरह पूछनेपर भगवान् श्रीकृष्ण बोले—'भगवन् ! इसका कारण सुनिये—॥ ७७ ॥

अनिरुद्धो हृतो ब्रह्मन् केनापि निशि सुव्रत ।
यस्यार्थे सर्व एवास्म चिन्तयाविष्टचेतसः ॥ ७८ ॥

'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले ब्रह्मन् ! यहाँ रात्रिके समय किसीने अनिरुद्धका अपहरण कर लिया है। उन्हींके लिये हम सब लोग यहाँ चिन्तित-चित्त होकर बैठे हैं ॥ ७८ ॥

एष ते यदि वृत्तान्तः श्रुतो दृष्टोऽपि वा मुने ।
भगवन् कथ्यतां साधु प्रियमेतन्ममानघ ॥ ७९ ॥

'निष्पाप मुने ! भगवन् ! यदि यह वृत्तान्त आपने कहीं सुना या देखा हो तो अच्छी तरह बताइये, यह मेरा प्रिय विषय है' ॥ ७९ ॥

इत्येवमुक्ते वचने केशवेन महात्मना ।
प्रहस्यैतद् वचः प्राह श्रूयतां मधुसूदन ॥ ८० ॥

महात्मा केशवके ऐसी बात कहनेपर नारदजी ठठाकर हँस पड़े और इस प्रकार बोले—'मधुसूदन ! सुनिये—॥

निर्वृत्तं सुमहद् युद्धं देवासुरसमं महत् ।
अनिरुद्धस्य चैकस्य बाणस्यापि महामृधे ॥ ८१ ॥

'एक महासमरमें एक ओर अकेले अनिरुद्ध थे और दूसरी ओर सेनासहित बाणासुर था। इन दोनोंमें महान् देवासुर-संग्रामके समान बड़ा भारी युद्ध हुआ है ॥ ८१ ॥

उषा नाम सुता तस्य बाणस्याप्रतिमौजसः ।
तस्यार्थे चित्रलेखा वै जहाराशु तमप्सराः ॥ ८२ ॥

'अप्रतिम बलशाली बाणासुरकी एक पुत्री है, जिसका नाम उषा है। उसीके लिये चित्रलेखा अप्सरा शीघ्रतापूर्वक अनिरुद्धको हर ले गयी ॥ ८२ ॥

उभयोरपि तत्रासीन्महायुद्धं सुदारुणम् ।
प्राद्युम्निबाणयोः संख्ये बलिवासवयोरिव ॥ ८३ ॥

'वहाँ अनिरुद्ध और बाणासुर दोनोंमें अत्यन्त भयंकर महान् युद्ध हुआ। ठीक उसी तरह, जैसे देवासुर-संग्राममें बलि और इन्द्रका युद्ध हुआ था ॥ ८३ ॥

अस्माभिश्चापि तद् युद्धं दृष्टं सुमहदद्भुतम् ।
अनिरुद्धो भयात् तेन संयुगेष्वनिवर्तिना ॥ ८४ ॥
बाणेन मायामास्थाय बद्धो नागैर्महाबलः ।

'मैंने भी उस महान् एवं अद्भुत युद्धको अपनी आँखों देखा है। युद्धसे पीछे न हटनेवाले बाणासुरने भयभीत होकर मायाका सहारा लिया और नागपाशसे महाबली अनिरुद्धको बाँध लिया ॥ ८४½ ॥

व्यादिष्टस्तु वधस्तस्य बाणेन गरुडध्वज ॥ ८५ ॥
तं निवारितवान् मन्त्री कुम्भाण्डो नाम तस्य ह ।

'गरुडध्वज ! उस समय उसने अनिरुद्धके वधकी आज्ञा दे दी, परंतु उसके मन्त्री कुम्भाण्डने उसे वैसा करनेसे रोक दिया ॥ ८५½ ॥

कुमारस्यानिरुद्धस्य तेनासक्तेन संयुगे ॥ ८६ ॥
बाणेन मायामास्थाय सर्पैर्नियमनं कृतम् ।
उत्तिष्ठतु भवाञ्छीघ्रं यशसे विजयाय च ॥ ८७ ॥

'युद्धमें आसक्त हुए बाणासुरने मायाका सहारा लेकर सर्पमय बाणोंद्वारा कुमार अनिरुद्धको बाँधा है; अतः अब आप यश और विजयके लिये शीघ्र उठिये ॥ ८६-८७ ॥

नायं संरक्षितुं कालः प्राणांस्तात जयैषिणाम् ।
प्राणैः किंचिद्गतैर्वीरो धैर्यमालम्ब्य तिष्ठति ॥ ८८ ॥

'तात ! विजयकी अभिलाषा रखनेवाले वीरोंके लिये यह अपने प्राणोंको बचाकर बैठनेका समय नहीं है। वीर पुरुष प्राणोंके कुछ संकटमें पड़ जानेपर धैर्यका सहारा लेकर शत्रुके सामने डटा रहता है' ॥ ८८ ॥

वैशम्पायन उवाच

इत्येवमुक्ते वचने वासुदेवः प्रतापवान् ।
प्रायात्रिकान् वै सम्भारानाज्ञापयत वीर्यवान् ॥ ८९ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! उनके ऐसा कहनेपर पराक्रमी एवं प्रतापी वीर वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णने रण-यात्राके लिये उपयुक्त सामग्री तैयार करनेकी आज्ञा दे दी ॥ ८९ ॥

ततश्चन्दनचूर्णैश्च लाजैश्चैव समन्ततः ।
निर्ययौ स महाबाहुः कीर्यमाणो जनार्दनः ॥ ९० ॥

तदनन्तर महाबाहु जनार्दन यात्राके लिये घरसे बाहर निकले। उस समय उनके ऊपर चारों ओरसे चन्दनचूर्ण और लावा बिखेरे जा रहे थे ॥ ९० ॥

नारद उवाच

स्मरणं वैनतेयस्य कर्तुमर्हसि माधव।
न ह्यन्येन तदध्वानं शक्यं गन्तुं महाभुज ॥ ९१ ॥

(इतनेमें ही) नारदजी बोले—माधव ! विनतानन्दन गरुड़का स्मरण कीजिये। महाबाहो ! उनके सिवा दूसरा कोई उस मार्गपर नहीं जा सकता ॥ ९१ ॥

आकर्णय तमध्वानं गन्तव्यमतिदुर्जयम्।
एकादश सहस्राणि योजनानां जनार्दन ॥ ९२ ॥
तदितः शोणितपुरं प्राद्युम्निर्यत्र साम्प्रतम्।

जनार्दन ! मेरी बात सुनिये। जिस मार्गपर आपको चलना है, वह अत्यन्त दुर्गम है। प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्ध इस समय जहाँ विद्यमान हैं, वह शोणितपुर यहाँसे ग्यारह हजार योजनकी दूरीपर है ॥ ९२½ ॥

मनोजवो महावीर्यो वैनतेयः प्रतापवान् ॥ ९३ ॥
समाह्वयस्व गोविन्द स हि त्वां तत्र नेष्यति।
एकेन सुमुहूर्तेन बाणं संदर्शयिष्यति ॥ ९४ ॥

गोविन्द ! महापराक्रमी और प्रतापी विनतानन्दन गरुड मनके समान वेगशाली हैं। आप उन्हींका आवाहन कीजिये। वे ही आपको वहाँ पहुँचायेंगे। वे एक ही मुहूर्तमें आपको बाणासुरके सामने उपस्थित कर देंगे ॥ ९३-९४ ॥

वैशम्पायन उवाच

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा सस्मार गरुडं तदा।
स कृष्णपार्श्वमागम्य प्राञ्जलिर्गरुडः स्थितः ॥ ९५ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! नारदजीका यह वचन सुनकर भगवान् श्रीकृष्णने उस समय गरुडका स्मरण किया। स्मरण करते ही वे श्रीकृष्णके पास आकर हाथ जोड़कर खड़े हो गये ॥ ९५ ॥

प्रणम्याथ वचः प्राह वैनतेयो महाबलः।
वासुदेवं महात्मानं श्लक्ष्णं मधुरया गिरा ॥ ९६ ॥

महात्मा वासुदेवको प्रणाम करके महाबली गरुड उनसे स्नेहयुक्त मधुर वाणीमें बोले ॥ ९६ ॥

गरुड उवाच

पद्मनाभ महाबाहो किमर्थं संस्मृतो ह्यहम्।
कृत्यं ते यदिहात्रास्ति श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ ९७ ॥

गरुडने कहा—पद्मनाभ ! महाबाहो ! आपने किस लिये मेरा स्मरण किया है। यहाँ आपको मुझसे जो काम है, उसे मैं ठीक-ठीक सुनना चाहता हूँ ॥ ९७ ॥

कस्य पक्षपरिक्षेपैर्नाशयामि पुरीं प्रभो।
प्रभावात्तव गोविन्द को न विद्याद् बलं मम ॥ ९८ ॥

प्रभो ! आज्ञा दीजिये, मैं अपने पंखोंके प्रहारसे किसकी पुरीका नाश कर डालूँ ? गोविन्द ! आपके प्रभावसे मेरे बलको कौन नहीं जानता है ? ॥ ९८ ॥

गदावेगं च ते वीर चक्राग्निं च महाभुज।
नावबुध्यति मूढात्मा को दर्पान्नाशमेष्यति ॥ ९९ ॥

वीर ! महाबाहो ! कौन मूढ़चित्त पुरुष आपकी गदाके वेग और सुदर्शन चक्रके तेजको नहीं जानता है ? वह अपने घमंडके कारण नष्ट हो जायगा ॥ ९९ ॥

हलं सिंहमुखं कस्य वनमाली नियोक्ष्यति।
कस्य देहस्तु निर्भिन्नो मेदिनीं यास्यति प्रभो ॥ १०० ॥

प्रभो ! वनमालाधारी बलरामजी सिंहके-से मुखवाले अपने हलका प्रहार आज किसपर करनेवाले हैं ? किसका शरीर आज छिन्न-भिन्न होकर पृथ्वीपर गिरनेवाला है ? ॥

कस्य शङ्खरवैः प्राणान् मोहयिष्यसि माधव।
कोऽयं सपरिवारोऽद्य यास्यते यमसादनम् ॥ १०१ ॥

माधव ! आप अपनी शङ्खध्वनिसे किसके प्राणोंको मोहित करनेवाले हैं। यह कौन है, जो आज परिवारसहित यमलोकमें जाना चाहता है ॥ १०१ ॥

एवमुक्ते तु वचने वैनतेयेन धीमता।
वासुदेवो वचः प्राह शृणु त्वं वदतां वर ॥ १०२ ॥

बुद्धिमान् विनतानन्दन गरुड़के ऐसा कहनेपर वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण बोले—'वक्ताओंमें श्रेष्ठ गरुड़ ! सुनो ॥

बलेः पुत्रेण बाणेन प्राद्युम्निरपराजितः।
उषायाः कारणे बद्धो नगरे शोणिताह्वये।
अनिरुद्धस्तु कामार्तो बद्धो नागैर्विषोल्बणैः ॥ १०३ ॥

'बलिके पुत्र बाणासुरने अपराजित वीर प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्धको उषाके साथ सम्बन्ध स्थापित करनेके कारण शोणितपुरमें बंदी बना लिया है। कामपीड़ित अनिरुद्धको उसने प्रचण्ड विषवाले सर्पोंके द्वारा बाँध रखा है ॥ १०३ ॥

तस्य मोक्षार्थमाहूतो मया त्वं पतगेश्वर।
तव वेगसमो नास्ति पक्षिणां प्रवरो भवान्।
अशक्यं च तदध्वानं गन्तुमन्येन काश्यप ॥ १०४ ॥

'पक्षिराज ! उन्हीं अनिरुद्धको बन्धनसे छुड़ानेके लिये मैंने तुम्हारा आवाहन किया है। वेगमें तुम्हारी समानता करनेवाला दूसरा कोई नहीं है। तुम पक्षियोंमें सबसे श्रेष्ठ हो। कश्यपनन्दन ! तुम्हारे सिवा दूसरे किसीके लिये उस मार्गपर चलना असम्भव है ॥ १०४ ॥

तत्र प्रापय मां शीघ्रं यत्र प्राद्युम्निरावसत्।
वैदर्भी ते स्नुषा वीर रुदती पुत्रगृद्धिनी ॥ १०५ ॥
त्वत्प्रसादाद् भवत्येषा पुत्रेण सह भामिनी।

'जहाँ प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्ध निवास करते हैं, वहाँ

शीघ्र मुझे पहुँचा दो। वीर! विदर्भराज रुक्मीकी पुत्री शुभाङ्गी, जो तुम्हारी पुत्रवधू लगती है, अपने पुत्रसे मिलनेकी इच्छा रखकर रो रही है। तुम्हारी कृपासे यह भामिनी अपने पुत्रसे मिल सके—ऐसा प्रयत्न करो॥ १०५½॥

अमृतं तु हृतं पूर्वं त्वया पन्नगनाशन॥१०६॥
मया सह समागम्य तस्मिन् काले महाभुज।
अभवन्मे ध्वजश्चैव त्वद्भक्ताः सर्ववृष्णयः।
सखित्वं मानयस्वाद्य भक्तिं च पतगेश्वर॥१०७॥

'सर्पशत्रो! तुमने पूर्वकालमें (देवताओंको पराजित करके) अमृतका अपहरण किया था। महाबाहो! वह समय तुम्हें याद होगा जब कि तुम मेरे साथ मिलकर मेरे ध्वजरूप हुए थे। ये समस्त वृष्णिवंशी तुम्हारे भक्त हैं। पक्षिराज! आज तुम हमारी मैत्री तथा भक्तिका आदर करो।१०६-१०७।

तव वेगसमो नास्ति पक्षिणो न च ते समाः।
सुपर्ण सुकृतेन त्वां शपे पन्नगनाशन॥१०८॥

'तुम्हारे वेगकी समानता करनेवाला दूसरा कोई नहीं है। दूसरे पक्षी भी तुम्हारे समान नहीं है। सर्पनाशन गरुड़! मैं पुण्यकी शपथ खाकर तुमसे यह बात कह रहा हूँ॥१०८॥

दासीभावं गता माता मोक्षितैकाकिना पुरा।
पक्षविक्षेपमात्रेण हता योधास्त्वया पुरा॥१०९॥

'पूर्वकालमें जब माता विनता दासीभावको प्राप्त हुई थीं। उस समय तुमने अकेले ही उनका उद्धार किया था। अपने पंखोंके प्रहारमात्रसे पहले तुमने बहुत-से योद्धाओंका संहार कर डाला है॥ १०९॥

भवान् सुरगणान् सर्वान् पृष्ठमारोप्य विक्रमात्।
गच्छ मे ह्यगमान् देशान् विजयश्च तवाश्रयात्॥११०॥

'तुम इन समस्त यादववीरोंको, जो देवगणोंके अंशसे उत्पन्न हैं, अपनी पीठपर बिठाकर पराक्रमपूर्वक मेरे साथ उन अगम्य देशोंमें चलो। तुम्हारे भरोसे ही आज हमारी विजय है॥ ११०॥

गुरुत्वान्मेरुतुल्यस्त्वं लघुत्वात् पवनोपमः।
भूते भव्ये भविष्ये च न ते तुल्योऽस्ति विक्रमे॥१११॥

'तुम गुरुतामें मेरुके समान और शीघ्रतापूर्वक चलनेमें वायुके तुल्य हो। भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालोंमें तुम्हारे समान विक्रमशाली दूसरा कोई नहीं है॥ १११॥

सत्यसंध महाभाग वैनतेय महाद्युते।
अनिरुद्धेक्षणेनाद्य साहाय्यमुपकल्प्यताम्॥११२॥

'महातेजस्वी, महाभाग, सत्यप्रतिज्ञ, विनतानन्दन! आज अनिरुद्धसे मिला देनेमें तुम हमारी सहायता करो॥

गरुड उवाच

अत्यद्भुतमिदं वाक्यं तव कृष्ण महाभुज।
त्वत्प्रसादाच्च विजयः सर्वत्रैव महाभुज॥११३॥

गरुड़ बोले—महाबाहो! श्रीकृष्ण! आपकी यह बात तो बड़ी अद्भुत है। बड़ी बाँहवाले प्रभो! आपकी कृपासे ही सर्वत्र विजय होती है॥ ११३॥

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि संस्तवान्मधुसूदन।
स्तोतव्यस्त्वं मया कृष्ण स्तौषि मां त्वं महाभुज॥

मधुसूदन! आपने जो मेरी स्तुति-प्रशंसा की है, इससे मैं धन्य हो गया। यह आपने मुझपर महान् अनुग्रह किया। महाबाहु श्रीकृष्ण! मुझे आपकी स्तुति करनी चाहिये, किंतु आप उलटे मेरी ही स्तुति कर रहे हैं॥ ११४॥

वेदाध्यक्षः सुराध्यक्षः सर्वकामप्रदो भवान्।
अमोघदर्शनस्त्वं हि वरार्थिषु वरप्रदः॥११५॥

आप सम्पूर्ण वेदोंके अध्यक्ष (उनके द्वारा प्रतिपादित सर्वसाक्षी चेतन परमात्मा) हैं। देवताओंके भी स्वामी तथा सम्पूर्ण कामनाओंके दाता हैं। आपका दर्शन अमोघ है। आप वरार्थी पुरुषोंको वर देनेवाले हैं॥ ११५॥

चतुर्भुजश्चतुर्मूर्तिश्चातुर्होत्रप्रवर्तकः।
चातुराश्रम्यहोता च चतुर्नेता महाकविः॥११६॥

आपकी चार भुजाएँ हैं। वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—ये चार आपकी मूर्तियाँ हैं। आप चातुर्होत्र यज्ञके प्रवर्तक हैं। चारों आश्रमोंमें होता हैं। चारों पुरुषार्थोंकी प्राप्ति करानेवाले तथा महाज्ञानी हैं॥ ११६॥

धनुर्धरश्चक्रधरो भवाञ्छङ्खधरो महान्।
भवान् पूर्वेषु देहेषु ख्यातो भूमिधरः प्रभो॥११७॥

आप शार्ङ्ग धनुष, सुदर्शन चक्र और पाञ्चजन्य शङ्ख धारण करनेवाले महान् विष्णु हैं। प्रभो! आप अपने पूर्वविग्रहों (कूर्म, वराह आदि अवतारों) में धरणीधरके रूपमें विख्यात हैं॥ ११७॥

लाङ्गली मुसली चक्री देवकीतनयो भवान्।
चाणूरमथनश्चैव गोप्रियः कंसहा भवान्॥११८॥

आप ही हलधर, मुसलधारी और चक्र धारण करनेवाले हैं। आप देवकीके पुत्र, चाणूरका संहार करनेवाले, गौओंके प्रिय तथा कंसका वध करनेवाले हैं॥ ११८॥

गोवर्धनधरश्चैव मल्लारिर्मल्लभावनः।
मल्लप्रियो महामल्लो महापुरुष इत्यपि॥११९॥

आप ही गोवर्धनधारी हैं। आप मल्लोंके शत्रु, मल्लोंके पोषक, मल्लोंके प्रेमी, महामल्लस्वरूप तथा महापुरुष हैं॥

विप्रप्रियो विप्रहितो विप्रज्ञो विप्रभावनः।

ब्रह्मण्यश्च वरेण्यश्च भवान् दामोदरः स्मृतः ।
प्रलम्बमथनश्चैव केशिहा दानवान्तकः ॥१२०॥

आप ब्राह्मणोंके प्रिय, ब्राह्मणोंके हितैषी, ब्राह्मणोंके ज्ञाता, ब्राह्मणोंके पालक तथा ब्राह्मणभक्त हैं। आप ही सर्वश्रेष्ठ दामोदर कहे गये हैं। आपने ही बलभद्ररूपसे प्रलम्बासुरका संहार किया है। आप केशीके हन्ता तथा दानवोंके काल हैं ॥१२०॥

असिलोम्नश्च हन्ता च तथा रावणनाशनः ।
विभीषणस्य भगवान् राज्यदो वालिनाशनः ॥१२१॥

आपने ही असिलोमाका वध किया है। आप ही वाली तथा रावणका विनाश करनेवाले और विभीषणको राज्य देनेवाले भगवान् श्रीराम हैं ॥ १२१ ॥

सुग्रीवराज्यदाता त्वं बलिराज्यापहारकः ।
रत्नहर्ता महारत्नं समुद्रोदरसम्भवम् ॥१२२॥

सुग्रीवको राज्य प्रदान करनेवाले भी आप ही हैं। आपने ही (वामनरूप धारण करके) बलिके राज्यका अपहरण किया है। आप कौस्तुभ और लक्ष्मी नामक रत्नोंको ग्रहण करनेवाले हैं। आप ही समुद्रके गर्भसे उत्पन्न धन्वन्तरि नामक महारत्न हैं ॥ १२२ ॥

वरुणश्च भवान् ख्यातो भवांश्च सरिदुद्भवः ।
भवान् खड्गधरो धन्वी धनुर्धरवरो महान् ॥१२३॥

आप ही वरुण नामसे विख्यात हैं। आप ही सरिताओंकी उत्पत्तिके स्थान मेरु हैं। आप नन्दक नामक खड्ग धारण करनेवाले, धन्वी एवं धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ महान् वीर हैं ॥१२३॥

दाशार्ह इति विख्यातो महाधन्वा धनुःप्रियः ।
गोविन्द इति विख्यात उदधिस्त्वं च सुव्रत ॥१२४॥

आप दाशार्ह नामसे विख्यात हैं। आपका धनुष विशाल है। आप धनुषके प्रेमी हैं। उत्तमव्रतधारी श्रीकृष्ण! आप ही गोविन्द नामसे प्रसिद्ध तथा आप ही समुद्र हैं ॥ १२४ ॥

आकाशश्च तपश्चैव समुद्रमथनो भवान् ।
भवान् स्वर्गो बहुफलो भवान् स्वर्गचरो महान् ॥१२५॥

आप आकाश और तप हैं। आप ही समुद्रका मन्थन करनेवाले हैं। अनेक फलोंसे युक्त स्वर्ग आपका ही स्वरूप है। आप ही स्वर्गमें विचरनेवाले महान् पुरुष हैं ॥ १२५ ॥

त्वमेव च महामेघो बीजनिष्पत्तिरेव च ।
त्रैलोक्यमथनस्त्वं च क्रोधलोभमनोरथः ॥१२६॥

आप ही महान् मेघ हैं। आपसे ही बीजोंकी सिद्धि होती है। आप ही क्रोध आदिके रूपसे तीनों लोकोंको मथते रहते हैं। आप क्रोध, लोभ और मनोरथरूप हैं ॥ १२६ ॥

भवान् कामप्रदश्चैव कामः सर्वधनुर्धरः ।
संवर्तो वर्तनश्चैव प्रलयो निलयो महान् ॥१२७॥

आप महान् परमेश्वर ही कामनाओंके दाता तथा समस्त धनुर्धरोंको धारण करनेमें समर्थ कामदेव हैं। आप ही संहारक और उत्पादक हैं तथा आप ही प्रलय एवं रक्षाके स्थान हैं ॥

हिरण्यगर्भो रूपज्ञो रूपवान् मधुसूदनः ।
ईशस्त्वं च महादेव असंख्येयगुणान्वितः ॥१२८॥
स्तोतुमिच्छसि मां देव स्तोतव्यस्त्वं यदूत्तम ।

महादेव! आप ही सब रूपोंके ज्ञाता हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) हैं। आप ही रूपवान् मधुसूदन (विष्णु) हैं तथा आप ही असंख्य गुणोंसे सम्पन्न ईश्वर (शिव) हैं। यदुवर! देव! आप स्वयं ही स्तुतिके योग्य हैं तो भी मेरी स्तुति करना चाहते हैं (यह कितने आश्चर्यकी बात है) ॥ १२८½ ॥

चक्षुषा ये त्वया घोराः प्राणिनो हि निरीक्षिताः ॥१२९॥
हतास्ते यमदण्डेन तिर्यङ्‌निरयगामिनः ।

जिन घोर प्राणियोंको आपने रोषपूर्ण दृष्टिसे देखा है, वे यमदण्डसे मारे गये हैं तथा पशु-पक्षियोंकी योनियों एवं नरकमें गिरनेवाले हैं ॥ १२९½ ॥

ये त्वया परमप्रीत्या प्राणिनो वै निरीक्षिताः ॥१३०॥
इह च प्रेत्य ते सर्वे सर्वथा स्वर्गगामिनः ।
एष तेऽहं महाबाहो वशगः शासने स्थितः ॥१३१॥

परंतु जिन प्राणियोंको आपने बड़े प्यारसे देखा है, वे सब इह लोकमें हों या परलोकमें सर्वथा स्वर्गलोकमें ही जानेके अधिकारी हैं। महाबाहो! यह मैं आपकी आज्ञाके अधीन होकर सब प्रकारसे आपके शासनमें स्थित हूँ ॥१३०-१३१॥

जयस्थानं ततः कृत्वा गरुडः प्राह केशवम् ।
अयमस्मि स्थितो वीर आरुहस्व महाबल ॥१३२॥

तदनन्तर गरुड़ने जयस्थान (प्रस्थानकी मुद्रा) बनाकर भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—'महाबली वीर! यह मैं आपकी सेवामें खड़ा हूँ। आप मेरी पीठपर आरूढ़ होइये' ॥१३२॥

ततः कण्ठे परिष्वज्य माधवो गरुडं ततः ।
सखे शत्रुविनाशाय अर्घ्योऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥१३३॥

यह सुनकर माधवने गरुड़को कण्ठसे लगाकर कहा—'सखे! शत्रुओंके विनाशके लिये यह अर्घ्य ग्रहण करो' ॥

दत्त्वार्घ्यं परया प्रीत्या शङ्खचक्रगदासिभृत् ।
आरुरोह महाबाहुः सुपर्णं पुरुषोत्तमः ॥१३४॥

इस प्रकार परम प्रसन्नतापूर्वक अर्घ्य देकर शङ्ख, चक्र, गदा और खड्ग धारण करनेवाले महाबाहु पुरुषोत्तम श्रीहरि गरुड़पर आरूढ़ हुए ॥ १३४ ॥

कृष्णस्य पार्श्वमागम्य हर्षादेवास्थितोऽभवत् ।
कृष्णकेशः प्रबलयो विष्णुः कृष्णश्च वर्णतः ॥१३५॥

तत्पश्चात् काले केशोंवाले बलरामजी श्रीकृष्णके पास

आकर हर्षपूर्वक बैठ गये; विष्णुस्वरूप श्रीकृष्ण वर्णसे भी कृष्ण ही थे। उन्होंने अपने हाथोंमें उत्तम वलय (कड़े) धारण कर रखे थे ॥ १३५ ॥

चतुर्दंष्ट्रश्चतुर्बाहुश्चतुर्वेदषडङ्गवित् ।
श्रीवत्साङ्कोऽरविन्दाक्ष ऊर्ध्वरोमा मृदुत्वचः ॥ १३६ ॥

उनके मुखमें चार दाढ़ें सुशोभित थीं। वे चार भुजाएँ धारण किये हुए थे, छहों अङ्गोंसहित चारों वेदोंके ज्ञाता थे। उनके वक्षःस्थलमें श्रीवत्सचिह्न शोभा पाता था। उनके नेत्र प्रफुल्ल कमलके समान सुशोभित थे। रोमावलियाँ ऊपरकी ओर उठी हुई थीं और त्वचा बहुत ही कोमल थी ॥ १३६ ॥

समाङ्गुलिः समनखो रक्ताङ्गुलिनखान्तरः ।
स्निग्धगम्भीरनिर्घोषो वृत्तबाहुर्महाभुजः ॥ १३७ ॥

उनकी सभी अँगुलियाँ समानरूपसे सुन्दर और सुडौल थीं। नख भी बराबर थे, अङ्गुलियों और नखोंके भीतरका भाग लाल था। उनकी वाणीका घोष स्निग्ध एवं गम्भीर था। भुजाएँ गोलाकार एवं विशाल थीं ॥ १३७ ॥

आजानुबाहुस्ताम्रास्यः सिंहविस्पष्टविक्रमः ।
सहस्रमिव सूर्याणां दीप्यमानः प्रकाशते ॥ १३८ ॥

उनकी भुजाएँ घुटनोंतक लंबी थीं। मुखका रंग लाल था। उनका चलना-फिरना और पराक्रम सुस्पष्टतः सिंहके समान था। वे सहस्रों सूर्योंके समान देदीप्यमान होकर प्रकाशित होते थे ॥ १३८ ॥

यः प्रभुर्भाति विश्वात्मा भूतानां भावनो विभुः ।
यस्याष्टगुणमैश्वर्यं ददौ प्रीतः प्रजापतिः ॥ १३९ ॥
प्रजापतीनां साध्यानां त्रिदशानां च शाश्वतः ।
स्तूयमानः स्तवैर्दिव्यैः सूतमागधवन्दिभिः ।
ऋषिभिश्च महाभागैर्वेदवेदाङ्गपारगैः ॥ १४० ॥
संविधानमथाज्ञाप्य द्वारकायां महाबलः ।
गमनाय मतिं चक्रे वासुदेवः प्रतापवान् ॥ १४१ ॥

जो सर्वव्यापी भूतभावन प्रभु सम्पूर्ण विश्वके आत्मारूपसे प्रकाशित होते हैं। जिन्हें वामनावतारके समय प्रजापति कश्यपने प्रसन्न होकर अणिमा आदि आठ गुणोंसे युक्त ऐश्वर्य प्रदान किया है। जो प्रजापतियों, साध्यों और देवताओंमें सनातन पुरुष माने जाते हैं, उन महाबली एवं प्रतापी वासुदेव भगवान् श्रीकृष्णने द्वारकामें यात्राकी तैयारीके लिये आज्ञा देकर शोणितपुरको जानेका विचार किया। उस समय सूत, मागध, वन्दीजन तथा वेद-वेदाङ्गोंके पारंगत विद्वान् महाभाग महर्षिगण दिव्य स्तोत्रोंद्वारा उनकी स्तुति कर रहे थे ॥

आस्थितो गरुडं देवस्तस्य चानु हलायुधः ।
पृष्ठतोऽनु बलस्यापि प्रद्युम्नः शत्रुकर्षणः ॥ १४२ ॥

पहले भगवान् श्रीकृष्ण गरुड़पर आरूढ़ हुए थे। उनके पीछे हलधर बलरामजी और बलरामजीके भी पीछे शत्रुसूदन प्रद्युम्न गरुड़पर बैठे थे ॥ १४२ ॥

जय बाणं महाबाहो ये चास्यानुगता रणे ।
न हि ते प्रमुखे स्थातुं कश्चिच्छक्तो महामृधे ॥ १४३ ॥

(भगवान्की यात्राके समय अन्तरिक्षमें यह वाणी सुनायी दी—) 'महाबाहो! आप बाणासुरको तथा उसके जो अनुयायी हों, उनको भी रणभूमिमें पराजित कीजिये। महासमरमें कोई भी आपके सामने ठहर नहीं सकता ॥ १४३ ॥

प्रसादे ते ध्रुवा लक्ष्मीर्विजयश्च पराक्रमे ।
विजेष्यसि रणे शत्रुं दैत्येन्द्रं सहसैनिकम् ॥ १४४ ॥

'आपके प्रसादमें लक्ष्मीका अटल निवास है और पराक्रममें विजय प्रतिष्ठित है। आप रणभूमिमें अपने शत्रु दैत्यराज बाणको उसके सैनिकोंसहित परास्त कर देंगे' ॥ १४४ ॥

सिद्धचारणसंघानां महर्षीणां च सर्वशः ।
शृण्वन् वाचोऽन्तरिक्षे वै प्रययौ केशवो रणे ॥ १४५ ॥

इस प्रकार अन्तरिक्षमें सिद्धों और चारणोंके समुदायों तथा सम्पूर्ण महर्षियोंकी कही हुई बातें सुनते हुए भगवान् केशव युद्धके लिये प्रस्थित हुए ॥ १४५ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि कृष्णप्रयाणे एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें श्रीकृष्णका प्रस्थानविषयक एक सौ इक्कीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२१ ॥

द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

श्रीकृष्ण, बलभद्र और प्रद्युम्नका शोणितपुरके लिये प्रस्थान, गरुड़का आहवनीय अग्निको शान्त करना, श्रीकृष्णद्वारा अग्निगणोंकी पराजय, बाणासुरके सैनिकोंके साथ श्रीकृष्ण आदिका युद्ध, त्रिशिरा ज्वरका आक्रमण और श्रीकृष्णके साथ उसका युद्ध

वैशम्पायन उवाच

ततस्तूर्यनिनादैश्च शङ्खानां च महास्वनैः ।
वन्दिमागधसूतानां स्तवैश्चापि सहस्रशः ॥ १ ॥

स तूर्मुखैर्जयाशीर्भिः स्तूयमानो हि मानवैः ।
बभार रूपं सोमार्कशुक्राणां प्रतिमं तदा ॥ २ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर नाना-

प्रकारके वाद्योंकी ध्वनियों तथा शङ्खोंके गम्भीर घोषोंके साथ सूत, मागध और वन्दीजन उत्तम स्तोत्रोंद्वारा भगवान्‌की स्तुति करने लगे। ऊपरको मुख किये खड़े हुए मनुष्य उन्हें विजयसूचक आशीर्वाद देने लगे। उस समय भगवान्‌ने सोम, सूर्य और शुक्रके समान तेजस्वी रूप धारण कर लिया था॥ १-२॥

अतीव शुशुभे रूपं व्योम्नि तस्योत्पतिष्यतः।
वैनतेयस्य भद्रं ते बृंहितं हरितेजसा॥ ३॥

राजन्! तुम्हारा भला हो! आकाशमें उड़ते हुए विनतानन्दन गरुडका रूप भगवान् श्रीहरिके तेजसे व्याप्त होकर अधिक शोभा पाने लगा॥ ३॥

अथाष्टबाहुः कृष्णस्तु पर्वताकारसंनिभः।
विबभौ पुण्डरीकाक्षो विकाङ्क्षन् बाणसंक्षयम्॥ ४॥

तदनन्तर कमलनयन श्रीकृष्ण आठ भुजाएँ धारण करके बाणासुरका विनाश चाहते हुए पर्वतके समान विशालकाय हो अधिक शोभा पाने लगे॥ ४॥

असिचक्रगदाबाणा दक्षिणं पार्श्वमास्थिताः।
चर्म शार्ङ्गं तथा वज्रं शङ्खं चैवास्य वामतः॥ ५॥

खड्ग, चक्र, गदा और बाण—ये चार आयुध उनके दाहिने पार्श्वमें खड़े थे; ढाल, धनुष, वज्र और शङ्ख—ये वामपार्श्वमें स्थित थे॥ ५॥

शीर्षाणां वै सहस्रं तु विहितं शार्ङ्गधन्वना।
सहस्रं चैव कायानां वहन् संकर्षणस्तदा॥ ६॥

उस समय शार्ङ्गधन्वा भगवान् श्रीकृष्णने अपने सहस्रों सिर बना लिये और संकर्षण सहस्रों शरीर धारण करने लगे॥

श्वेतप्रहरणोऽधृष्यः कैलास इव शृङ्गवान्।
प्रस्थितो गरुडेनाथ उद्यन्निव निशाकरः॥ ७॥

श्वेत आयुधसे युक्त अजेय वीर बलराम शिखरयुक्त कैलासके समान शोभा पाते थे। वे गरुड़के द्वारा यात्रा करते समय उदयकालके चन्द्रमाकी भाँति प्रकाशित हो रहे थे॥

सनत्कुमारस्य वपुः प्रादुरासीन्महात्मनः।
प्रद्युम्नस्य महाबाहोः संग्रामे विक्रमिष्यतः॥ ८॥

संग्राममें पराक्रम करनेको उद्यत हुए महाबाहु प्रद्युम्नके शरीरमें महात्मा सनत्कुमारका स्वरूप प्रकट हो गया॥ ८॥

स पक्षबलविक्षेपैर्विधुन्वन् पर्वतान् बहून्।
जगाम मार्गं बलवान् वातस्य प्रतिषेधयन्॥ ९॥

बलवान् गरुड़ अपने पङ्खोंके बलपूर्वक संचालनसे बहुसंख्यक पर्वतोंको कम्पित करते और वायुका मार्ग रोकते हुए चले॥ ९॥

अथ वायोरतिगतिमास्थाय गरुडस्तदा।
सिद्धचारणसंघानां शुभं मार्गमवातरत्॥ १०॥

तत्पश्चात् वायुसे भी बढ़कर तीव्र गतिका आश्रय ले गरुड़ तत्काल ही सिद्धों और चारणसमूहोंके शुभ मार्गपर जा पहुँचे॥ १०॥

अथ रामोऽब्रवीद् वाक्यं कृष्णमप्रतिमं रणे।
स्वाभिः प्रभाभिर्हीनाः स्म कृष्ण कस्मादपूर्ववत्॥ ११॥

उस समय बलरामजीने रणभूमिमें अनुपम शक्तिशाली श्रीकृष्णसे इस प्रकार कहा—'कृष्ण! हमलोग अपनी स्वाभाविक कान्तिसे रहित हो अपूर्ववत् कैसे हो गये?॥ ११॥

सर्वे कनकवर्णाभाः संवृत्ताः स्म न संशयः।
किमिदं ब्रूहि नस्तत्त्वं किं मेरोः पार्श्वगा वयम्॥ १२॥

'हम सब लोगोंकी अङ्गकान्ति सुवर्णके समान हो गयी है, इसमें संशय नहीं है; ऐसा क्यों हुआ? यह हमें ठीक ठीक बताओ, क्या हम मेरुपर्वतके आसपास चल रहे हैं?'॥ १२॥

श्रीभगवानुवाच

मन्ये बाणस्य नगरमभ्यासस्थमरिंदम।
रक्षार्थं तस्य निर्यातो वह्निरेष स्थितो ज्वलन्॥ १३॥

श्रीभगवान् बोले—शत्रुदमन! मैं समझता हूँ बाणासुरका नगर अब निकट ही है। उसकी रक्षाके लिये बाहर निकलकर यह अग्निदेव प्रज्वलित होते हुए खड़े हैं॥ १३॥

अग्नेराहवनीयस्य प्रभया स्म समाहताः।
तेन नो वर्णवैरूप्यमिदं जातं हलायुध॥ १४॥

भैया हलायुध! हमलोग आहवनीय अग्निकी प्रभासे आहत हैं; इसीसे हमारी अङ्गकान्तिमें यह परिवर्तन आ गया है॥ १४॥

श्रीराम उवाच

यदि स्म संनिकर्षस्था यदि निष्प्रभतां गताः।
तद् विधत्स्व स्वयं बुद्ध्या यदत्रानन्तरं हितम्॥ १५॥

बलरामजीने पूछा—श्रीकृष्ण! यदि हमलोग शोणितपुरके निकट हैं और यदि इस अग्निकी प्रभासे आहत होकर हमलोग निष्प्रभ हो गये हैं तो अब तुम स्वयं ही बुद्धिसे सोचकर बताओ कि अब यहाँ क्या करनेसे हमारा हित होगा॥

श्रीभगवानुवाच

कुरुष्व वैनतेय त्वं यच्च कार्यमनन्तरम्।
त्वया विधाने विहिते करिष्याम्यहमुत्तमम्॥ १६॥

श्रीभगवान् बोले—विनतानन्दन! अब यहाँ जो आवश्यक कर्तव्य हो, वह तुम्हीं करो। तुम्हारे द्वारा इस अग्निके निवारणका उपाय कर लिये जानेपर मैं उत्तम पराक्रम प्रकट करूँगा॥ १६॥

वैशम्पायन उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु गरुडो वासुदेवस्य भाषितम्।
चक्रे मुखसहस्रं हि कामरूपी महाबलः॥ १७॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णका यह कथन सुनकर इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले महाबली गरुडने अपने हजारों मुख बना लिये॥ १७॥

गङ्गामुपागमत् तूर्णं वैनतेयो महाबलः ।
आप्लुत्याकाशगङ्गायामापीय सलिलं बहु ॥ १८ ॥
प्रववर्षोपरि गतो वैनतेयः प्रतापवान् ।
तेनाग्निं शमयामास बुद्धिमान् विनतात्मजः ॥ १९ ॥

तत्पश्चात् वे महाबली विनतानन्दन तुरंत ही गङ्गाजीके तटपर गये । वहाँ आकाशगङ्गामें उतरकर प्रतापी गरुडने बहुत-सा जल पी लिया और अग्निदेवके ऊपर जाकर वर्षा की । उस उपायसे बुद्धिमान् विनताकुमारने पूर्वोक्त अग्निको बुझा दिया ॥ १८-१९ ॥

अग्निराहवनीयस्तु ततः शान्तिमुपागमत् ।
तं दृष्ट्वाहवनीयं तु शान्तमाकाशगङ्गया ।
परमं विस्मयं गत्वा सुपर्णो वाक्यमब्रवीत् ॥ २० ॥

फिर तो आहवनीय अग्निदेव शान्त हो गये । आकाश-गङ्गाके जलसे आहवनीय अग्निको शान्त हुआ देख गरुड़ महान् आश्चर्यमें पड़कर बोले—॥ २० ॥

अहो वीर्यमथाग्नेस्तु यो दहेद् युगसंक्षये ।
यथेह वर्णवैरूप्यं चक्रे कृष्णस्य धीमतः ॥ २१ ॥

'अहो ! अग्निका बल तो अद्भुत है, क्योंकि वे महाप्रलयके समय तीनों लोकोंको दग्ध कर सकते हैं; जैसे कि यहाँ इन्होंने बुद्धिमान् श्रीकृष्णके रूप-रंगमें परिवर्तन ला दिया था ॥

त्रयस्त्रयाणां लोकानां पर्याप्ता इति मे मतिः ।
कृष्णः संकर्षणश्चैव प्रद्युम्नश्च महाबलः ॥ २२ ॥

'(तथापि श्रीकृष्णके प्रभावसे आकाश-गङ्गाद्वारा यह बुझ गये) मेरा तो यह विश्वास है कि श्रीकृष्ण, संकर्षण और महाबली प्रद्युम्न—ये तीन वीर तीनों लोकोंका सामना करनेके लिये पर्याप्त हैं' ॥ २२ ॥

ततः प्रशान्ते दहने सम्प्रतस्थे स पक्षिराट् ।
स्वपक्षबलविक्षेपं कुर्वन् घोरं महास्वनम् ॥ २३ ॥

तदनन्तर आग बुझ जानेपर पक्षिराज गरुड़ अपने पंखोंके बलपूर्वक संचालनसे भयंकर एवं महान् कोलाहल करते हुए आगे बढ़े ॥ २३ ॥

तं दृष्ट्वा विस्मयं तत्र रुद्रस्यानुचराग्नयः ।
आस्थिता गरुडं ह्येते नानारूपा भयावहाः ॥ २४ ॥
किमर्थमिह सम्प्राप्ताः के वापीमे जनास्त्रयः ।

वहाँ उन्हें देखकर रुद्रके अनुचर अग्निगणोंको बड़ा विस्मय हुआ । वे सोचने लगे, 'ये नाना रूपधारी भयंकर वीर गरुड़पर चढ़कर किस लिये यहाँ आये हैं तथा ये तीनों पुरुष कौन हैं ?' ॥ २४½ ॥

निश्चयं नाधिगच्छन्ति ते गिरिव्रजवह्नयः ॥ २५ ॥
प्रावर्तयंश्च संग्रामं तैस्त्रिभिः सह यादवैः ।

इस प्रकार पर्वतोंपर विचरनेवाले वे अग्निगण किसी निश्चयपर नहीं पहुँच सके; अतः उन्होंने उन तीनों यादव-वीरोंके साथ युद्ध छेड़ दिया ॥ २५½ ॥

तेषां युद्धप्रसक्तानां संनादः सुमहानभूत् ॥ २६ ॥
तं च श्रुत्वा महानादं सिंहानामिव गर्जताम् ।
अथाङ्गिराः स्वपुरुषं प्रेषयामास बुद्धिमान् ॥ २७ ॥

युद्धमें आसक्त हुए उन अग्नियोंका महान् सिंहनाद प्रकट होने लगा । दहाड़ते हुए सिंहोंके समान उनके उस महानादको सुनकर बुद्धिमान् अङ्गिराने अपने एक पुरुषको वहाँ भेजा ॥ २६-२७ ॥

यत्र तद् वर्तते युद्धं तत्र गच्छस्व मा चिरम् ।
दृष्ट्वा तत् सर्वमागच्छ इत्युक्तः प्रहितस्त्वरन् ॥ २८ ॥

उन्होंने उससे कहा—'जहाँ वह युद्ध हो रहा है वहाँ शीघ्र जाओ और वह सब कुछ देखकर शीघ्र लौट आओ ।' ऐसा कहकर उन्होंने उसे बड़ी उतावलीके साथ भेजा ॥ २८ ॥

तथेत्युक्त्वा स तद् युद्धं वर्तमानमवैक्षत ।
अग्नीनां वासुदेवेन संसक्तानां महामृधे ॥ २९ ॥

तब 'बहुत अच्छा' कहकर उस पुरुषने महासमरमें भगवान् वासुदेवके साथ उलझे हुए अग्निगणोंके उस वर्तमान युद्धको देखा ॥ २९ ॥

ते जातवेदसः सर्वे कल्माषः कुसुमस्तथा ।
दहनः शोषणश्चैव तपनश्च महाबलः ॥ ३० ॥
स्वाहाकारस्य विषये प्रख्याताः पञ्च वह्नयः ।

वे सब-के-सब जातवेदा अग्नि थे; उनके नाम इस प्रकार थे—कल्माष, कुसुम, दहन, शोषण और महाबली तपन । ये स्वाहाकारविषयक पाँच प्रख्यात अग्नि कहे गये हैं ॥ ३०½ ॥

अथापरे महाभागाः स्वैरनीकैर्व्यवस्थिताः ॥ ३१ ॥
पिठरः पतगः स्वर्णः श्वागाधो भ्राज एव च ।
स्वधाकाराश्रयाः पञ्च अयुध्यंस्तेऽपि चाग्नयः ॥ ३२ ॥

इनके सिवा दूसरे महाभाग अग्नि भी अपने सैनिकोंके साथ खड़े थे, जिनके नाम थे—पिठर, पतग, स्वर्ण, श्वागाध और भ्राज । ये पाँच स्वधाकारका आश्रय लेकर रहनेवाले अग्नि कहे गये हैं; ये अग्नि भी वहाँ युद्ध कर रहे थे ॥

ज्योतिष्टोमविभागौ च वषट्काराश्रयौ पुनः ।
द्वावग्नी सम्प्रयुध्येते महात्मानौ महाद्युती ॥ ३३ ॥

इनके सिवा वषट्कारके आश्रयमें रहनेवाले दो महा-तेजस्वी और महामनस्वी अग्नि, जिनका नाम ज्योतिष्टोम और विभाग था, वहाँ युद्ध कर रहे थे ॥ ३३ ॥

आग्नेयं रथमास्थाय शरमुद्यम्य भास्वरम् ।
तयोर्मध्येऽङ्गिराश्चैव महर्षिर्विबभौ रणे ॥ ३४ ॥

इन दोनोंके बीचमें प्रमुख अग्नि महर्षि अङ्गिरा आग्नेय रथपर आरूढ़ हो एक तेजस्वी बाण हाथमें लिये रणभूमिमें प्रकाशित हो रहे थे ॥ ३४ ॥

स्थितमङ्गिरसं दृष्ट्वा विसृजन्तं शिताञ्छरान् ।
कृष्णः प्रोवाच संक्रुद्धः स्मयन्निव पुनः पुनः ॥ ३५ ॥

महर्षि अङ्गिराको पैने बाण छोड़ते हुए वहाँ स्थित देख क्रोधमें भरे हुए भगवान् श्रीकृष्ण बारंबार मुसकराते हुए-से बोले—॥ ३५ ॥

तिष्ठध्वमग्नयः सर्वे एष वो विदधे भयम्।
ममास्त्रतेजसा दग्धा दिशो यास्यथ विद्रुताः।
अथाङ्गिरास्त्रिशूलेन दीप्तेन समधावत ॥ ३६ ॥
आददान इव क्रोधात् कृष्णप्राणान् महामृधे।

'अग्नियो ! तुम सब लोग खड़े रहो ! मैं अभी तुम्हारे लिये भयकी सृष्टि करता हूँ। मेरे अस्त्रके तेजसे दग्ध होकर तुम स्वयं ही सम्पूर्ण दिशाओंमें भाग जाओगे।' यह सुनकर अङ्गिराने उस महासमरमें क्रोधपूर्वक चमकता हुआ त्रिशूल हाथमें लेकर श्रीकृष्णपर धावा किया, मानो वे उनके प्राण ले लेनेको उद्यत हों ॥ ३६½ ॥

त्रिशूलं तस्य दीप्तं तु चिच्छेद परमेषुभिः।
अर्धचन्द्रैस्तथा तीक्ष्णैर्यमान्तकनिभोपमैः ॥ ३७ ॥

श्रीकृष्णने अपने तीखे अर्द्धचन्द्राकार उत्तम बाणोंसे, जो यमराजके समान क्रूर और अन्तकके समान प्राणहारी थे, उनके चमकते हुए त्रिशूलको काट डाला ॥ ३७ ॥

स्थूणाकर्णेन बाणेन दीप्तेन स महामनाः।
विव्याधान्तकतुल्येन वक्षस्यङ्गिरसं ततः ॥ ३८ ॥

इसके बाद उन महामना श्रीहरिने स्थूणाकर्ण नामक कालसदृश तेजस्वी बाणद्वारा अङ्गिराकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी ॥ ३८ ॥

रुधिरौघप्लुतैर्गात्रैरङ्गिरा विह्वलन्निव।
विष्टब्धगात्रः सहसा पपात धरणीतले ॥ ३९ ॥

अङ्गिराका सारा शरीर लहूलुहान हो गया। उनकी देह अकड़ गयी और वे विह्वल होकर सहसा पृथ्वीपर गिर पड़े ॥

शेषास्ततोऽग्नयः सर्वे चत्वारो ब्रह्मणः सुताः।
आवाहयंस्तदा शीघ्रं बाणस्य पुरमन्तिकात् ॥ ४० ॥

तत्पश्चात् शेष सब अग्नि जो ब्रह्माजीके चार पुत्र हैं, उस समय उन्हें शीघ्र ही बाणासुरके नगरके निकट उठा ले गये ॥ ४० ॥

अथागमत् ततः कृष्णो यत्र बाणपुरं ततः।
अथ बाणपुरं दृष्ट्वा दूरात् प्रोवाच नारदः ॥ ४१ ॥

तत्पश्चात् श्रीकृष्ण जहाँ बाणासुरका नगर निकट था, वहाँ गये। बाणपुरको दूरसे ही देखकर नारदजीने कहा—॥ ४१ ॥

एतत् तच्छोणितपुरं कृष्ण पश्य महाभुज।
अत्र रुद्रो महातेजा रुद्राण्या सहितोऽवसत् ॥ ४२ ॥
गुहश्च बाणगुप्त्यर्थं सततं क्षेमकारणात्।

'महाबाहु श्रीकृष्ण ! देखिये, यही शोणितपुर है। यहाँ महातेजस्वी रुद्रने देवी रुद्राणीके साथ निवास किया है। बाणासुरकी रक्षा तथा उसके क्षेमके लिये कार्तिकेय भी यहाँ सदा निवास करते हैं' ॥ ४२½ ॥

नारदस्य वचः श्रुत्वा कृष्णः सम्प्रहसन् ब्रवीत् ॥ ४३ ॥
क्षणं चिन्तयतामत्र श्रूयतां च महामुने।
यदि वावतरेद् रुद्रो बाणसंरक्षणं प्रति ॥ ४४ ॥
शक्तितो वयमप्यत्र सह योत्स्याम तेन वै।

नारदजीकी यह बात सुनकर श्रीकृष्ण हँसते हुए बोले—'महामुने ! आप यहाँ मेरी बात सुनिये और क्षणभर उसपर विचार कीजिये। यदि बाणासुरकी रक्षाके लिये भगवान् रुद्र उतर आयेंगे तो हमलोग भी अपनी शक्तिके अनुसार उनके साथ युद्ध अवश्य करेंगे' ॥ ४३—४४½ ॥

एवं विवदतोस्तत्र कृष्णनारदयोस्तदा ॥ ४५ ॥
प्राप्ता निमेषमात्रेण शीघ्रगा गरुडेन ते।

इस प्रकार वहाँ नारद और श्रीकृष्णमें बातचीत हो रही थी कि गरुड़के द्वारा शीघ्र चलकर वे सब लोग निमेषमात्रमें जा पहुँचे ॥ ४५½ ॥

ततः शङ्खं समाधाय वदने पुष्करेक्षणः ॥ ४६ ॥
वायुवेगसमुद्भूतो मेघश्चन्द्रमिवोद्गिरन्।

तब कमलनयन श्रीकृष्णने शङ्खको अपने मुँहसे लगाकर बजाया। उस समय ऐसा जान पड़ता था मानो कोई मेघ वायुके वेगसे प्रेरित होकर चन्द्रमाको उगल रहा हो ॥ ४६½ ॥

ततः प्रध्माप्य तं शङ्खं भयमुत्पाद्य वीर्यवान् ॥ ४७ ॥
प्रविवेश पुरं कृष्णो बाणस्याद्भुतकर्मणः।

इस प्रकार उस शङ्खको बजाकर असुरोंके मनमें भय उत्पन्न करके पराक्रमी श्रीकृष्णने अद्भुत कर्म करनेवाले बाणासुरके पुरमें प्रवेश किया ॥ ४७½ ॥

ततः शङ्खप्रणादैश्च भेरीणां च महास्वनैः ॥ ४८ ॥
बाणानीकानि सहसा संनह्यन्त समन्ततः।

तदनन्तर शङ्खोंके शब्दों और भेरियोंके गम्भीर घोषोंसे प्रेरित हो बाणासुरकी सारी सेनाएँ सहसा सब ओरसे कवच आदि पहनकर युद्धके लिये तैयार हो गयीं ॥ ४८½ ॥

ततः किंकरसैन्यं तु व्यादिष्टं समरे भयात् ॥ ४९ ॥
कोटिशश्चापि बहुशो दीप्तप्रहरणास्तदा।

तत्पश्चात् बाणासुरने भयके कारण युद्धके लिये अपने किङ्कर नामक सैनिकोंको आज्ञा दी। उनकी संख्या कई करोड़की थी। उन सबके पास चमकीले अस्त्र-शस्त्र थे ॥

तदसंख्येयमेकस्थं महाभ्रघनसंनिभम् ॥ ५० ॥
नीलाञ्जनचयप्रख्यमप्रमेयमथाक्षयम्।

एक स्थानपर खड़ी हुई वह असंख्य सेना महान् मेघोंकी घटाके समान जान पड़ती थी। उसकी कान्ति नीली अञ्जनराशिके समान दिखायी देती थी। वह अप्रमेय और अक्षय थी ॥ ५०½ ॥

दीप्तप्रहरणाः सर्वे दैत्यदानवराक्षसाः ॥ ५१ ॥
प्रमाथगणमुख्याश्च अयुध्यन् कृष्णमव्ययम्।

उस सेनामें जो दैत्य, दानव और राक्षस थे, उन सबके

हाथोंमें चमकीले अस्त्र-शस्त्र शोभा पा रहे थे। भगवान् शिवके प्रमथगणोंमें जो मुख्य-मुख्य वीर थे, वे भी वहाँ आकर अविनाशी भगवान् शिवके साथ युद्ध करने लगे ॥ ५१½ ॥

सर्वतस्तैः प्रदीप्ताङ्गैः सार्चिष्मद्भिरिवाग्निभिः ॥ ५२ ॥
अभ्युपेत्य तदात्युग्रैर्यक्षराक्षसकिन्नरैः ।
पीयते रुधिरं तेषां चतुर्णामपि संयुगे ॥ ५३ ॥

चमकीले अस्त्र-शस्त्र धारण करनेके कारण जो लपटोंसे युक्त अग्नियोंके समान प्रतीत होते थे, वे भयंकर यक्ष, राक्षस और किन्नर सब ओरसे निकट आकर युद्धस्थलमें श्रीकृष्ण, बलभद्र, प्रद्युम्न और गरुड़—इन चारोंका रक्त पीनेकी चेष्टा करने लगे ॥ ५२-५३ ॥

तद् बलं तु समासाद्य बलभद्रो महाबलः ।
प्रोवाच वचनं तत्र परस्य बलनाशनः ॥ ५४ ॥

शत्रुओंकी सेनाका नाश करनेवाले महाबली बलभद्र बाणासुरकी उस सेनाको निकट पाकर श्रीकृष्णसे इस प्रकार बोले ॥ ५४ ॥

कृष्ण कृष्ण महाबाहो विधत्स्वैषां महद् भयम् ।
इति संचोदितः कृष्णो बलभद्रेण धीमता ॥ ५५ ॥
तेषां वधार्थमाग्नेयं जग्राह पुरुषोत्तमः ।
अस्त्रमस्त्रविदां श्रेष्ठो यमान्तकसमप्रभः ।

'कृष्ण ! कृष्ण ! महाबाहो ! इनके लिये महान् भय उपस्थित करो।' बुद्धिमान् बलभद्रके द्वारा इस प्रकार प्रेरित हो अस्त्रवेताओंमें श्रेष्ठ पुरुषोत्तम श्रीकृष्णने उन शत्रुओंके वधके लिये आग्नेयास्त्र हाथमें लिया। उस समय वे यम और अन्तकके समान भयंकर जान पड़ते थे ॥ ५५½ ॥

प्रविधूयासुरगणान् क्रव्यादानस्त्रतेजसा ॥ ५६ ॥
प्रययौ त्वरया युक्तो यत्र दृश्येत तद् बलम् ।

अपने अस्त्रके तेजसे उन मांसभक्षी असुरोंको नष्ट करके श्रीकृष्ण बड़ी उतावलीके साथ उस स्थानपर गये, जहाँ वह शत्रुसेना दिखायी दे रही थी ॥ ५६½ ॥

शूलपट्टिशशक्त्यृष्टिपिनाकपरिघायुधम् ॥ ५७ ॥
प्रमाथगणभूयिष्ठं बलं तदभवत् क्षितौ ।

शूल, पट्टिश, शक्ति, ऋष्टि, पिनाक और परिघ आदि आयुधोंसे युक्त वह सेना, जिसमें प्रमथगणोंकी अधिकता थी, भूतलपर खड़ी थी ॥ ५७½ ॥

शैलमेघप्रतीकाशैर्नानारूपैर्भयानकैः ।
वाहनैः संघशः सर्वे योधास्तत्रावतस्थिरे ॥ ५८ ॥

पर्वत और मेघोंके समान दिखायी देनेवाले नाना रूपधारी भयानक वाहनोंपर आरूढ़ हो वे समस्त योद्धा वहाँ संघबद्ध होकर खड़े थे ॥ ५८ ॥

वातोद्भूतैरिव घनैर्विप्रकीर्णैरिवाचलैः ।
शुशुभे तत्र बहुलैर्बलीकैर्दृढधन्विभिः ॥ ५९ ॥

सुदृढ़ धनुष धारण करनेवाले बहुसंख्यक सैनिकोंसे, जो वायुद्वारा उड़ाये गये छिन्न-भिन्न बादलों तथा बिखरे हुए पर्वतोंके समान दूरतक फैले हुए थे, उस स्थानकी बड़ी शोभा हो रही थी ॥ ५९ ॥

मुसलैरसिभिः शूलैर्गदाभिः परिघैस्तथा ।
अगाधं तदसंख्येयं शुशुभे सर्वतो बलम् ॥ ६० ॥

वह असंख्य एवं अगाध सेना सब ओरसे मुसल, खड्ग, शूल, गदा और परिघ आदिके द्वारा सुशोभित हो रही थी ॥

ततः संकर्षणो देवमुवाच मधुसूदनम् ।
कृष्ण कृष्ण महाबाहो यदेतद् दृश्यते बलम् ।
एतैः सह रणे योद्धुमिच्छामि पुरुषोत्तम ॥ ६१ ॥

तब संकर्षणने भगवान् मधुसूदनसे कहा—'कृष्ण ! कृष्ण ! महाबाहो ! पुरुषोत्तम ! यह जो सेना दिखायी देती है, रणभूमिमें इसके सैनिकोंके साथ मैं युद्ध करना चाहता हूँ'॥

श्रीकृष्ण उवाच

ममाप्येवैव संजाता बुद्धिरित्यब्रवीच्च तम् ।
एभिः सह रणे योद्धुमिच्छेयं योधसत्तमैः ॥ ६२ ॥
युद्ध्यतः प्राङ्मुखस्याग्रतस्तु सुपर्णो वै ममाग्रतः ।
सव्यपार्श्वे तु प्रद्युम्नस्तथा मे दक्षिणे भवान् ।
रक्षितव्यमथान्योन्यमस्मिन् घोरे महामृधे ॥ ६३ ॥

श्रीकृष्ण बोले—'मेरे मनमें भी ऐसा विचार उत्पन्न हुआ है।' ऐसा कहकर वे पुनः उनसे बोले, भैया ! रणभूमिमें इन श्रेष्ठ योद्धाओंके साथ मैं युद्ध करना चाहता हूँ। पूर्वाभिमुख होकर युद्ध करते समय मेरे आगे-आगे तो गरुड़ रहें, बायीं ओर प्रद्युम्न हों और दाहिनी ओर आप रहें। इस घोर महायुद्धमें हमें एक दूसरेकी रक्षा करनी चाहिये ॥

वैशम्पायन उवाच

एवं ब्रुवन्तस्तेऽन्योन्यमधिरूढाः खगोत्तमम् ।
गिरिशृङ्गनिभैर्घोरैर्गदामुसललाङ्गलैः ॥ ६४ ॥
युध्यतो रौहिणेयस्य रौद्रं रूपमभूत् तदा ।
युगान्ते सर्वभूतानां कालस्येव दिधक्षतः ॥ ६५ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! परस्पर ऐसी बात-चीत करके पक्षिप्रवर गरुड़पर चढ़े हुए वे तीनों वीर युद्ध करने लगे। पर्वतके शिखरोंकी भाँति भयंकर गदा, मुसल और हलसे युद्ध करते हुए रोहिणीकुमार बलभद्रका रूप उस समय वैसा ही भयंकर हो उठा, जैसा कि प्रलयकालमें सम्पूर्ण भूतोंको दग्ध कर देनेकी इच्छावाले कालका रूप होता है ॥ ६४-६५ ॥

आकृष्य लाङ्गलाग्रेण मुसलेनावशेथयत् ।
चचारातिबलो रामो युद्धमार्गविशारदः ॥ ६६ ॥

युद्धमार्गोंके विशेषज्ञ अत्यन्त बलशाली बलराम रणभूमिमें सब ओर विचरने लगे। वे हलके अग्रभागसे शत्रुओंको खींचकर उन्हें मुसलसे मार गिराते थे ॥ ६६ ॥

प्रद्युम्नः शरजालैस्तान् समन्तात् पर्यवारयत् ।
दानवान् पुरुषव्याघ्रो युद्ध्यमानान् महाबलः ॥ ६७ ॥

पुरुषसिंह महाबली प्रद्युम्नने बाणोंका जाल-सा बिछाकर वहाँ जूझते हुए दानवोंको सब ओरसे ढक दिया ॥ ६७ ॥

स्निग्धाञ्जनचयप्रख्यः शङ्खचक्रगदाधरः ।
प्रध्माय बहुशः शङ्खमयुध्यत जनार्दनः ॥ ६८ ॥

चिकनी अञ्जनराशिके समान कान्तिमान् जनार्दन अपने हाथोंमें शङ्ख, चक्र और गदा लिये हुए थे। वे बारंबार शङ्ख बजाकर युद्ध करने लगे ॥ ६८ ॥

पक्षप्रहारनिहता नखतुण्डाग्रदारिताः ।
नीता वैवस्वतपुरं वैनतेयेन धीमता ॥ ६९ ॥

बुद्धिमान् विनतानन्दन गरुड़ने बहुत-से दानवोंको पंजों और चोंचके अग्रभागसे विदीर्ण करके तथा कितनोंको पंखोंके प्रहारसे हताहत करके यमलोक पहुँचा दिया ॥६९॥

तैर्हन्यमानं दैत्यानामनीकं भीमविक्रमम् ।
अभज्यत तदा संख्ये बाणवर्षसमाहतम् ॥ ७० ॥

उन चारोंके द्वारा मारी जाती हुई भयानक पराक्रमवाली दैत्य-सेनाके पाँव उखड़ गये। वह युद्धस्थलमें बाणोंकी वर्षासे क्षत-विक्षत हो गयी थी ॥ ७० ॥

भज्यमानेष्वनीकेषु त्रातुकामः समभ्ययात् ।
ज्वरस्त्रिपादस्त्रिशिराः षड्भुजो नवलोचनः ॥ ७१ ॥
भस्मप्रहरणो रौद्रः कालान्तकयमोपमः ।
नदन् मेघसहस्रेण तुल्यो निर्घातनिःस्वनः ॥ ७२ ॥

जब इस प्रकार सारी सेनाएँ भागने लगीं, तब उनकी रक्षा करनेके लिये त्रिशिरा नामक ज्वर सामने आया। उसके तीन पैर, तीन सिर, छः बाँहें और नौ आँखें थीं। भस्म ही उसका आयुध था। वह काल, अन्तक और यमके समान भयंकर दिखायी देता था। वह जब सिंहनाद करता, तब गर्जते हुए हजारों मेघोंके समान प्रतीत होता था। उसकी आवाज वज्रकी गड़गड़ाहटके समान जान पड़ती थी ॥

निःश्वसञ्जृम्भमाणश्च निद्रान्विततनुर्भृशम् ।
नेत्राभ्यामाकुलं वक्त्रं मुहुः कुर्वन् भ्रमन् मुहुः॥७३ ॥

वह बारंबार लंबी साँस खींचता और जँभाई लेता था। उसका शरीर निद्रासे अत्यन्त आकुल प्रतीत होता था। वह बारंबार घूमता और अपने दोनों नेत्रोंसे युक्त मुखको व्यथासे व्याकुल बना लेता था ॥ ७३ ॥

संहृष्टरोमा ग्लानाक्षो भग्नचित्त इव श्वसन् ।
हलायुधमभिक्रुद्धः साक्षेपमिदमब्रवीत् ॥ ७४ ॥

उसके रोंगटे खड़े हो रहे थे। नेत्र आदि इन्द्रियाँ गली जा रही थीं। वह भग्नचित्त (हतोत्साह) सा होकर साँस लेता था। उसने क्रोधमें भरकर हलधरसे यह आक्षेपयुक्त बात कही—॥ ७४ ॥

किमेवं बलमत्तोऽसि न मां पश्यसि संयुगे ।
तिष्ठ तिष्ठ न मे जीवन् मोक्ष्यसे रणमूर्धनि ॥ ७५ ॥

'तुम क्यों इस प्रकार बलसे उन्मत्त हो रहे हो ? क्या इस युद्धस्थलमें तुम मुझे नहीं देखते हो ? खड़े रहो, खड़े रहो ! आज इस युद्धके मुहानेपर तुम मेरे हाथसे जीवित नहीं छूट सकोगे' ॥ ७५ ॥

इत्येवमुक्त्वा प्रहसन् हलायुधमुपाद्रवत् ।
युगान्ताग्निनिभैर्घोरैर्मुष्टिभिर्जनयन् भयम् ॥ ७६ ॥

ऐसा कहकर जोर-जोरसे हँसते हुए त्रिशिराने हल नामक आयुध धारण करनेवाले बलरामजीपर आक्रमण किया। वह प्रलयाग्निके समान अपने भयानक मुक्कोंसे भय उत्पन्न कर रहा था ॥ ७६ ॥

चरतस्तत्र संग्रामे मण्डलानि सहस्रशः ।
रौहिणेयस्य शीघ्रेण नावस्थानमदृश्यत ॥ ७७ ॥

रोहिणीकुमार बलभद्र वहाँ संग्राममें सहस्रों पैंतरे बदलते हुए शीघ्रतापूर्वक विचर रहे थे। अतः कहीं उनका ठहरना उसे नहीं दिखायी दिया ॥ ७७ ॥

तस्य भस्म तदा क्षिप्तं ज्वरेणाप्रतिमौजसा ।
शैघ्र्याद् वक्षो निपतितं शरीरे पर्वतोपमे ॥ ७८ ॥

तब उस अप्रतिम बलशाली ज्वरने बड़ी फुर्तीसे उनके ऊपर भस्म फेंका, जो उनके पर्वताकार शरीरमें छातीपर जाकर गिरा ॥ ७८ ॥

तद् भस्म वक्षसस्तस्य मेरोः शिखरमागमत् ।
प्रदीप्तं पतितं तत्र गिरिशृङ्गं व्यदारयत् ॥ ७९ ॥

वह भस्म उनकी छातीसे मेरुपर्वतके शिखरपर आ गिरा। वहाँ गिरते ही वह प्रज्वलित हो उठा और उसने उस पर्वत-शिखरको विदीर्ण कर डाला ॥ ७९ ॥

शेषेण चापि जज्वाल भस्मना कृष्णपूर्वजः ।
निःश्वसञ्जृम्भमाणश्च निद्रान्विततनुर्भृशम् ॥ ८० ॥

जो भस्म उनके वक्षःस्थलपर शेष रह गया, उतनेहीसे श्रीकृष्णके बड़े भैया जलने लगे। वे बारंबार साँस और जँभाई लेने लगे। उनका शरीर निद्रासे अत्यन्त अभिभूत हो गया ॥ ८० ॥

नेत्रयोराकुलत्वं च मुहुः कुर्वन् भ्रमंस्तथा ।
संहृष्टरोमा ग्लानाक्षः क्षिप्तचित्त इव श्वसन् ॥ ८१ ॥

वे बारंबार नेत्रोंसे व्याकुलता प्रकट करने और चक्कर काटने लगे। उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया। उनकी नेत्र आदि इन्द्रियाँ गलने लगीं। वे विक्षिप्तचित्त-से होकर लंबी साँस खींचने लगे ॥ ८१ ॥

ततो हलधरो भग्नः कृष्णमाह विचेतनः ।
कृष्ण कृष्ण महाबाहो प्रदीप्तोऽस्म्यभयं कुरु ॥ ८२ ॥
दह्यामि सर्वतस्तात कथं शान्तिर्भवेन्मम ।

उस समय हलधरने हतोत्साह एवं अचेत होकर श्रीकृष्णसे कहा—'कृष्ण ! कृष्ण ! महाबाहो ! मैं जल रहा हूँ। मेरा भय दूर करो। तात ! मेरे शरीरमें सब ओरसे जलन हो रही है। मुझे किस तरह शान्ति प्राप्त हो' ॥ ८२½ ॥

इत्येवमुक्ते वचने बलेनामिततेजसा ॥ ८३ ॥
प्रहस्य वचनं प्राह कृष्णः प्रहरतां वरः ।
न भेतव्यमितीत्युक्त्वा परिष्वक्तो हलायुधः ॥ ८४ ॥
कृष्णेन परमस्नेहात् ततो दाहात् प्रमुच्यत ।

अमिततेजस्वी बलदेवने जब ऐसी बात कही, तब प्रहार करनेवालोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णने उनसे हँसकर कहा—'भैया !

डरो मत।' ऐसा कहकर श्रीकृष्णने बड़े स्नेहके साथ हलधरको हृदयसे लगाया। फिर तो वे तत्काल ही उस दाहसे मुक्त हो गये ॥ ८३-८४½ ॥

मोक्षयित्वा बलं तत्र दाहात् तु मधुसूदनः ॥ ८५ ॥
प्रोवाच परमक्रुद्धो वासुदेवो ज्वरं तदा ।

बलरामजीको वहाँ ज्वरजनित दाहसे मुक्त करके अत्यन्त कुपित हुए वसुदेवनन्दन मधुसूदनने उस समय उस ज्वरसे कहा ॥ ८५½ ॥

श्रीभगवानुवाच

एह्येहि ज्वर युध्यस्व या ते शक्तिर्महामृधे ॥ ८६ ॥
यच्च ते पौरुषं सर्वं तद् दर्शयतु नो भवान् ।

श्रीभगवान् बोले—ज्वर ! आओ, आओ, युद्ध करो। तुम्हारी जो शक्ति है और तुममें जो पुरुषार्थ है, वह सब हमें इस महासमरमें दिखाओ ॥ ८६½ ॥

सव्येतराभ्यां बाहुभ्यामेवमुक्तो ज्वरस्तदा ॥ ८७ ॥
चिक्षेपैनं महद् भस्म ज्वालागर्भं महाबलः ।

उनके ऐसा कहनेपर उस महाबली ज्वरने अपनी दोनों दाहिनी भुजाओंसे उनके ऊपर वह महान् भस्म फेंका, जिसके भीतर ज्वाला छिपी हुई थी ॥ ८७½ ॥

ततः प्रदीप्तगात्रस्तु मुहूर्तमभवत् प्रभुः ॥ ८८ ॥
कृष्णः प्रहरतां श्रेष्ठः शमं चाग्निर्गतस्ततः ।

उस भस्मसे दो घड़ीके लिये प्रहार करनेवालोंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णका सारा शरीर जल उठा; परंतु फिर वह आग अपने-आप बुझ गयी ॥ ८८½ ॥

ततस्तैर्भुजगाकारैर्बाहुभिस्तु त्रिभिस्तदा ॥ ८९ ॥
जघान कृष्णं ग्रीवायां मुष्टिनैकेन चोरसि ।

तब उस त्रिशिराने अपनी तीन सर्पाकार भुजाओंसे श्रीकृष्णके कण्ठमें प्रहार किया और एक मुक्केसे उनकी छातीपर चोट की ॥ ८९½ ॥

स सम्प्रहारस्तुमुलस्तयोः पुरुषसिंहयोः ॥ ९० ॥
ज्वरस्य तु महायुद्धे कृष्णस्य तु महौजसः ।
पर्वतेषु पतन्तीनामशनीनामिव स्वनः ॥ ९१ ॥

(फिर श्रीकृष्ण भी उस ज्वरको पीटने लगे।) उस महायुद्धमें ज्वर और महातेजस्वी श्रीकृष्ण दोनों पुरुषसिंहोंमें भयंकर मुष्टिका प्रहार होने लगा। उसका शब्द पर्वतोंपर गिरती हुई बिजलियोंकी गड़गड़ाहटके समान प्रतीत होता था॥

कृष्णज्वरभुजाघातैर्युद्धमासीत् सुदारुणम् ।
नैवमेवं प्रहर्तव्यमिति तत्र महास्वनः ।
मुहूर्तमभवद् युद्धमन्योन्यं तु महात्मनोः ॥ ९२ ॥

श्रीकृष्ण और ज्वर दोनोंमें भुजाओंके आघातसे अत्यन्त भयंकर युद्ध हो रहा था। 'ऐसे नहीं, ऐसे प्रहार करना चाहिये' यह शब्द वहाँ बड़े जोर-जोरसे सुनायी देता था। इस प्रकार उन दोनों महात्माओंमें दो घड़ीतक परस्पर युद्ध चलता रहा॥

ततो ज्वरं कनकविचित्रभूषणं
न्यपीडयद् भुजयुगलेन संयुगे ।
जगत्क्षयं समुपनयञ्जगत्पतिः
शरीरधृग् गगनचरं महामृधे ॥ ९३ ॥

तदनन्तर मानवशरीर धारण करके प्रकट हुए जगदीश्वर श्रीहरिने उस महासमरमें सोनेके विचित्र आभूषणोंसे विभूषित उस आकाशचारी ज्वरको अपनी दोनों भुजाओंसे धर दबाया। उस समय ऐसा जान पड़ता था कि वे जगदीश्वर सारे संसारका संहार कर डालेंगे ॥ ९३ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि कृष्णज्वरयुद्धे द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें श्रीकृष्ण और ज्वरका युद्धविषयक एक सौ बाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२२ ॥

त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

श्रीकृष्णसे पराजित हुए ज्वरका उनकी शरणमें जाना, उनसे वर पाना और उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर रणभूमिसे हट जाना

वैशम्पायन उवाच

मृतमित्यभिविज्ञाय ज्वरं शत्रुनिषूदनः ।
कृष्णो भुजबलाभ्यां तु चिक्षेपाथ महीतले ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! उस ज्वरको मरा हुआ जानकर शत्रुसूदन श्रीकृष्णने अपनी बलिष्ठ भुजाओंसे उठाकर उसे पृथ्वीपर फेंक दिया ॥ १ ॥

मुक्तमात्रः स बाहुभ्यां कृष्णदेहं विवेश ह ।
अमुक्त्वा विग्रहं तस्य कृष्णस्याप्रतिमौजसः ॥ २ ॥

श्रीकृष्णकी भुजाओंसे छूटते ही वह उनके शरीरके भीतर घुस गया; वह अमिततेजस्वी श्रीकृष्णके श्रीविग्रहको छोड़कर न जा सका ॥ २ ॥

स ह्याविष्टस्तथा तेन ज्वरेणाप्रतिमौजसा ।
कृष्णः स्खलन्निव मुहुः क्षितौ गाढं व्यवर्तत ॥ ३ ॥

उस अप्रतिम बलशाली ज्वरसे आविष्ट होकर श्रीकृष्ण बारंबार लड़खड़ाते हुए-से पृथ्वीपर बैठ गये और जोर-जोरसे लोटने लगे ॥ ३ ॥

जृम्भते श्वसते चैव वल्गते च पुनः पुनः ।
रोमाञ्चोत्थितगात्रश्च निद्रया चाभिभूयते ॥ ४ ॥

वे बारंबार जँभाई लेते, लंबी साँस खींचते और उछलते-कूदते थे; उनके सम्पूर्ण अङ्गोंमें रोमाञ्च हो आया और वे निद्रासे अभिभूत होने लगे ॥ ४ ॥

ततः स्थैर्यं समालम्ब्य कृष्णः परपुरंजयः ।
विकुर्वति महायोगी जृम्भमाणः पुनः पुनः ॥ ५ ॥

तदनन्तर किसी तरह स्थिरता धारण करके शत्रुनगरीपर विजय पानेवाले महायोगी श्रीकृष्ण बारंबार जँभाई लेते हुए विकारको प्राप्त होने लगे ॥ ५ ॥

ज्वराभिभूतमात्मानं विज्ञाय पुरुषोत्तमः ।
सोऽसृजज्ज्वरमन्यं तु पूर्वज्वरविनाशनम् ॥ ६ ॥

अपने आपको ज्वरसे आक्रान्त हुआ जान पुरुषोत्तम श्रीहरिने दूसरे ज्वरकी सृष्टि की, जो पूर्व ज्वरका विनाश करनेवाला था ॥ ६ ॥

घोरं वैष्णवमत्युग्रं सर्वप्राणिभयंकरम् ।
संसृष्टवान् स तेजस्वी तं ज्वरं भीमविक्रमम् ॥ ७ ॥

तेजस्वी श्रीकृष्णने जिस भयानक पराक्रमी ज्वरकी सृष्टि की थी, वह घोर वैष्णव ज्वर अत्यन्त उग्र तथा समस्त प्राणियोंके लिये भयङ्कर था ॥ ७ ॥

ज्वरः कृष्णविसृष्टस्तु गृहीत्वा तं ज्वरं बलात् ।
कृष्णाय हृष्टः प्रायच्छत् तं जग्राह ततो हरिः ॥ ८ ॥

श्रीकृष्णद्वारा रचे गये उस ज्वरने पूर्वोक्त त्रिशिरा ज्वर-को बलपूर्वक पकड़कर बड़े हर्षके साथ उसे श्रीकृष्णको समर्पित कर दिया। तब श्रीहरिने पुनः उस ज्वरको पकड़ लिया ॥ ८ ॥

ततस्तं परमक्रुद्धो वासुदेवो महाबलः ।
स्वगात्रात् स्वज्वरेणैव निष्कासयत वीर्यवान् ॥ ९ ॥

तब अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए महाबली पराक्रमी भगवान् वासुदेवने अपने ज्वरके द्वारा ही त्रिशिरा ज्वरको अपने शरीरसे निकलवा दिया ॥ ९ ॥

आविध्य भूतले चैनं शतधा कर्तुमुद्यतः ।
व्याघोषत ज्वरस्तत्र भोः परित्रातुमर्हसि ॥ १० ॥

तत्पश्चात् वे उसे पृथ्वीपर घुमाकर उसके सौ टुकड़े कर देनेको उद्यत हो गये, तब वहाँ उस ज्वरने यह पुकार की, 'प्रभो ! आप मेरी रक्षा करें' ॥ १० ॥

आविध्यमाने तस्मिंस्तु कृष्णेनामिततेजसा ।
अशरीरा ततो वाणी ह्यन्तरिक्षादभाषत ॥ ११ ॥

अमिततेजस्वी श्रीकृष्णके द्वारा उस ज्वरके घुमाये जाते समय आकाशसे शरीररहित वाणीने इस प्रकार कहा— ॥ ११ ॥

कृष्ण कृष्ण महाबाहो यदूनां नन्दिवर्धन ।
मा वधीर्ज्वरमेनं तु रक्षणीयस्त्वयानघ ॥ १२ ॥

'कृष्ण ! कृष्ण !! महाबाहो !!! यदुकुलका आनन्द बढ़ानेवाले निष्पाप श्रीकृष्ण ! आप इस ज्वरका बध न कीजिये, यह आपके द्वारा रक्षणीय है' ॥ १२ ॥

इत्येवमुक्ते वचने तं मुमोच हरिः स्वयम् ।
भूतभव्यभविष्यस्य जगतः परमो गुरुः ॥ १३ ॥

आकाशवाणीके ऐसा कहनेपर भूत, भविष्य और वर्तमान जगत्के परम गुरु साक्षात् श्रीहरिने उसे छोड़ दिया ॥ १३ ॥

कृष्णस्य पादयोर्मूर्ध्ना शरणं सोऽगमज्ज्वरः ।
एवं मुक्तो हृषीकेशं ज्वरो वाक्यमथाब्रवीत् ॥ १४ ॥

उनके हाथसे इस प्रकार मुक्त होकर वह ज्वर श्रीकृष्णके दोनों चरणोंमें मस्तक रखकर उन्हींकी शरणमें गया और उन भगवान् हृषीकेशसे इस प्रकार बोला— ॥ १४ ॥

शृणुष्व मम गोविन्द विज्ञाप्यं यदुनन्दन ।
यो मे मनोरथो देव तं त्वं कुरु महाभुज ॥ १५ ॥

'गोविन्द ! यदुनन्दन ! मेरा निवेदन सुनिये । देव ! महाबाहो ! मेरा जो मनोरथ है, उसे पूर्ण कीजिये ॥ १५ ॥

अहमेको ज्वरस्तात नान्यो लोके ज्वरो भवेत् ।
त्वत्प्रसादाद्धि देवेश वरमेनं वृणोम्यहम् ॥ १६ ॥

'तात ! देवेश्वर ! संसारमें मैं एक ज्वर हूँ, अब मेरे सिवा दूसरा कोई ज्वर न हो। आपकी कृपासे मैं इस वरको माँगता हूँ' ॥ १६ ॥

देव उवाच

एवं भवतु भद्रं ते यथा त्वं ज्वर काङ्क्षसे ।
वरार्थिनां वरो देयो भवांश्च शरणं गतः ॥ १७ ॥

श्रीभगवान‌ने कहा—ज्वर ! तुम्हारा भला हो, तुम जैसा चाहते हो, ऐसा ही हो।' मेरे लिये समी वरार्थियोंको वर देना उचित है, तुम तो वरार्थी होकर मेरी शरणमें आये हो (अतः तुम विशेष कृपाके पात्र हो) ॥ १७ ॥

एक एव ज्वरो लोके भवानस्तु यथा पुरा ।
योऽयं मया ज्वरः सृष्टो मय्येवैष प्रलीयताम् ॥ १८ ॥

तुम पहलेकी ही भाँति संसारमें एक ही ज्वरके रूपमें रहो। मैंने जो इस ज्वरकी सृष्टि की है, यह फिर मुझमें ही लीन हो जाय ॥ १८ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्ते तु वचने ज्वरं प्रति महायशाः ।
कृष्णः प्रहरतां श्रेष्ठः पुनर्वाक्यमुवाच ह ॥ १९ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! उस ज्वरके प्रति ऐसी बात कहकर प्रहार करनेवालोंमें श्रेष्ठ महायशस्वी श्रीकृष्ण पुनः इस प्रकार बोले ॥ १९ ॥

वासुदेव उवाच

शृणुष्व ज्वर संदेशं यथा लोके चरिष्यसि ।
सर्वजातिषु विश्रब्धं यथा स्थावरजङ्गमे ॥ २० ॥

वासुदेवने कहा—ज्वर ! मेरा संदेश सुनो, जिसके अनुसार तुम चराचर जगत्में सभी जातिके प्राणियोंके भीतर बेखटके विचरण करोगे ॥ २० ॥

त्रिधा विभज्य चात्मानं मत्प्रियं यदि काङ्क्षसे।
चतुष्पादान् भजैकेन द्वितीयेन च स्थावरान्॥ २१॥
तृतीयो यश्च ते भागो मानुषेषूपपत्स्यते।
त्रिधाभूतं वपुः कृत्वा पक्षिषु त्वं भव ज्वर॥ २२॥
चतुर्थो यस्तृतीयस्य भविष्यति स ते ध्रुवम्।
एकान्तरस्तृतीयस्तु स वै चातुर्थिको ज्वरः॥ २३॥

यदि तुम मेरा प्रिय करना चाहते हो तो अपने आपको तीन भागोंमें विभक्त करके एक भागसे चौपायोंका आश्रय लो, द्वितीय भागसे वृक्ष, पर्वत आदि स्थावर वस्तुओंका सेवन करो तथा तुम्हारा जो तीसरा भाग है, वह मनुष्योंमें रहने योग्य होगा। ज्वर! इस प्रकार तुम अपने स्वरूपको तीन भागोंमें बाँटकर उपर्युक्त स्थानोंमें रहो तथा तुम्हारे तीसरे भागका जो एक चौथाई अंश है, वह पक्षियोंमें अटल भावसे स्थित होगा। यह तीसरी श्रेणीका जो ज्वर है, वह एक दिनका अन्तर देकर आनेपर एकान्तर या अँतरिया कहलायेगा, दो दिनका अन्तर देनेपर तिजरा और तीन दिनका अन्तर देकर आनेपर वही चातुर्थिक (चौथिया ज्वर) कहलायेगा॥ २१-२३॥

मानुषेष्वभिभेदेन वस त्वं प्रविभज्य वै।
जातिष्वथावशेषासु निवस त्वं शृणुष्व मे॥ २४॥

इन भेद-उपभेदोंके साथ अपने रूपका विभाजन करके तुम मनुष्योंमें निवास करो। साथ ही, जो शेष जातियाँ हैं, उनमें भी तुम वास करो। किस तरह? यह मुझसे सुनो-॥

वृक्षेषु कीटरूपेण तथा संकोचपत्रकः।
पाण्डुपत्रश्च विख्यातः फलेष्वातुर्यमेव च॥ २५॥

वृक्षोंमें तुम कीटरूपसे निवास करो, इसके सिवा वहाँ तुम संकोचपत्रक और पाण्डुपत्रक नामसे विख्यात होगे (वृक्षोंके जो पत्ते सिकुड़ने लगते हैं, यह उनमें संकोचपत्रक नामक ज्वर है और जो उनके पत्ते पीले पड़ने लगते हैं, यह उनमें पाण्डुपत्रक नामक ज्वर है) तथा वृक्षोंके फलोंमें आतुर्यनामसे तुम्हारी ख्याति होगी (फलोंके एक देशमें जाली पड़ जानेसे जो वे फल सिकुड़ने या सूखने लगते हैं, यह उनमें आतुर्यनामक ज्वरका लक्षण है)॥ २५॥

अपां तु नीलिकां विद्याच्छिखोद्भेदेन बर्हिणाम्।
पद्मिन्यादौ हिमो भूत्वा पृथिव्यामपि चोषरः॥ २६॥
गैरिकः पर्वतेष्वेव मत्प्रसादाद् भविष्यसि।

जलोंमें नीलिकाको ज्वर समझना चाहिये। मोरोंके सिरपर जो शिखा फूट निकलती है, उसीके रूपमें उनके भीतर तुम्हारा वास होगा। तुम कमलिनी आदिपर हिम (पाला), पृथ्वीमें ऊषर तथा पर्वतोंपर गेरू होकर मेरी कृपासे वहाँ निवास करोगे॥ २६½॥

गोष्वपस्मारको भूत्वा खोरकश्च भविष्यसि॥ २७॥
एवं त्वं बहुरूपेण भविष्यसि महीतले।

गौओंमें अपस्मारक (कामना) और खोरक (खुर-रोग) होकर रहोगे। इस प्रकार तुम पृथ्वीपर बहुत-से रूपोंमें प्रकट होओगे॥ २७½॥

दर्शनात् स्पर्शनाच्चापि प्राणिनां वधमेष्यसि॥ २८॥
ऋते देवमनुष्याणां नान्यस्त्वां विसहिष्यति।

तुम अपने दृष्टिगत और स्पर्शसे भी प्राणियोंका वध कर डालोगे। देवता और मनुष्योंके सिवा दूसरा कोई तुम्हारा वेग नहीं सह सकेगा॥ २८½॥

वैशम्पायन उवाच

कृष्णस्य वचनं श्रुत्वा ज्वरो हृष्टमना ह्यभूत्॥ २९॥
प्रोवाच वचनं किंचित् प्रणमित्वा कृताञ्जलिः।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर ज्वरका मन प्रसन्न हो गया। उसने हाथ जोड़कर प्रणाम करके कुछ बात कही॥ २९½॥

ज्वर उवाच

सर्वजातिप्रभुत्वेन कृतो धन्योऽस्मि माधव॥ ३०॥
भूयश्च ते वचः कर्तुमिच्छामि पुरुषर्षभ।
तदाज्ञापय गोविन्द किं करोमि महाभुज॥ ३१॥

ज्वर बोला—पुरुषप्रवर माधव! आपने सभी जातिके प्राणियोंपर मेरी प्रभुता स्थापित करके मुझे धन्य कर दिया। महाबाहु गोविन्द! अब मैं पुनः आपकी आज्ञाका पालन करना चाहता हूँ। अतः आज्ञा दीजिये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ॥ ३०-३१॥

अहमसुरकुलप्रमाथिना
त्रिपुरहरेण हरेण निर्मितः।
रणशिरसि विनिर्जितस्त्वया
प्रभुरसि देव तवास्मि किंकरः॥ ३२॥

देव! असुरकुलनाशक और त्रिपुरसंहारक भगवान् हरने मेरी सृष्टि की है, आज युद्धके मुहानेपर आपने मुझे पराजित कर दिया। अतः आप मेरे प्रभु हैं और मैं आपका किङ्कर हूँ॥ ३२॥

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यत् त्वया मत्प्रियं कृतम्।
आज्ञापय प्रियं किं ते चक्रायुध करोम्यहम्॥ ३३॥

चक्रधारी श्रीकृष्ण! आपने जो मेरा प्रिय किया, इससे मैं धन्य हो गया। आपके अनुग्रहका पात्र बन गया, अब आज्ञा दीजिये, मैं आपका कौन सा प्रिय कार्य सम्पन्न करूँ?॥

वैशम्पायन उवाच

ज्वरस्य वचनं श्रुत्वा वासुदेवोऽब्रवीद् वचः।
अभिसंधिं शृणुष्वाद्य यत् त्वां वक्ष्यामि निश्चयात्॥ ३४॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! ज्वरका यह वचन सुनकर वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णने कहा—'ज्वर! मैं क्या चाहता हूँ; यह सुनो। मैं निश्चित रूपसे तुमसे जो कुछ कहता हूँ, उसपर ध्यान दो'॥ ३४॥

श्रीभगवानुवाच

महाहवे तव मम च द्वयोरिमं
पराक्रमं भुजबलकेवलास्त्रयोः।

प्रणम्य मामेकमनाः पठेत् तु यः
स वै भवेज्ज्वर विगतज्ज्वरो नरः ॥ ३५ ॥

श्रीभगवान् बोले—ज्वर ! इस महासमरमें केवल बाहुबल ही हमारा-तुम्हारा अस्त्र रहा है; जो मुझे प्रणाम करके एकचित्त होकर हम दोनोंके इस पराक्रमका पाठ करे, वह मनुष्य अवश्य ज्वररहित हो जाय ॥ ३५ ॥

त्रिपाद् भस्मप्रहरणस्त्रिशिरा नवलोचनः।
स मे प्रीतः सुखं दद्यात् सर्वामयपतिर्ज्वरः ॥ ३६ ॥

जिसके तीन पैर हैं, भस्म ही आयुध है, तीन सिर हैं और नौ नेत्र हैं, वह समस्त रोगोंका अधिपति ज्वर प्रसन्न होकर मुझे सुख प्रदान करे ॥ ३६ ॥

आद्यन्तवन्तः कवयः पुराणाः
सूक्ष्मा बृहन्तोऽप्यनुशासितारः।
सर्वाञ्ज्वरान् घ्नन्तु ममानिरुद्ध-
प्रद्युम्नसंकर्षणवासुदेवाः ॥ ३७ ॥

जगत्के आदि और अन्त जिनके हाथोंमें हैं, जो ज्ञानी, पुराणपुरुष, सूक्ष्मस्वरूप, परम महान् और सबके अनुशासक हैं, वे अनिरुद्ध, प्रद्युम्न, संकर्षण और भगवान् वासुदेव सम्पूर्ण ज्वरोंका नाश करें (इस प्रकार प्रार्थना करनेवालोंका ज्वर दूर हो जाय) ॥ ३७ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तस्तु कृष्णेन ज्वरः साक्षान्महात्मना।
प्रोवाच यदुशार्दूलमेवमेतद् भविष्यति ॥ ३८ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! साक्षात् महात्मा श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर ज्वरने उन यदुश्रेष्ठसे कहा—'यह ऐसा ही होगा'॥

वरं लब्ध्वा ज्वरो हृष्टः कृष्णाच्च समयं पुनः।
प्रणम्य शिरसा कृष्णमपक्रान्तस्ततो रणात् ॥ ३९ ॥

श्रीकृष्णसे वर पाकर और उनकी शर्तको स्वीकार करके ज्वरको बड़ा हर्ष हुआ। वह मस्तक झुकाकर श्रीकृष्णको प्रणाम करनेके अनन्तर उस रणक्षेत्रमे दूर चला गया ॥३९॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि ज्वरकृष्णसंवादे त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें ज्वर और श्रीकृष्णका संवादविषयक एक सौ तेईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२३ ॥

चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

बाणासुरकी सेनाका पलायन, भगवान् शङ्करका अपने गणोंके साथ युद्धके लिये आगमन, भगवान् श्रीकृष्ण और रुद्रका युद्ध तथा बाणासुरका युद्धभूमिमें पदार्पण

वैशम्पायन उवाच

ततस्ते त्वरिताः सर्वे त्रयस्त्रय इवाग्नयः।
वैनतेयमथारुह्य युध्यमाना रणे स्थिताः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर तीन अग्नियोंके समान वे सब तीनों वीर बड़ी उतावलीके साथ गरुड़पर आरूढ़ हो शत्रुओंके साथ युद्ध करते हुए रणभूमिमें डटे रहे ॥ १ ॥

ततः सर्वाण्यनीकानि बाणवर्षैरवाकिरन्।
अर्दयन् वैनतेयस्था नदन्तोऽतिबलाद् रणे ॥ २ ॥

गरुडपर चढ़े हुए उन वीरोंने सिंहनाद करके बाणासुरकी समस्त सेनाओंको अपनी बाणवर्षासे ढक दिया और अत्यन्त बलपूर्वक उन्हें पीड़ा देना आरम्भ किया ॥ २ ॥

चक्रलाङ्गलपातैश्च बाणवर्षैश्च पीडितम्।
संचुकोप महानीकं दानवानां दुरासदम् ॥ ३ ॥

चक्र और हलकी मारसे तथा बाणोंकी वर्षासे पीड़ित होकर दानवोंकी वह दुर्जय विशाल सेना अत्यन्त कुपित हो उठी॥

कक्षेऽग्निरिव संवृद्धः शुष्केन्धनसमीरितः।
कृष्णबाणाग्निरुद्भूतो विवृद्धिं परमां गतः ॥ ४ ॥

जैसे तिनकोंके बोझमें आग लग जाय और सूखे ईंधनका सहारा पाकर वह और भी बढ़ जाय उसी प्रकार श्रीकृष्णके बाणोंसे जो अग्नि प्रकट हुई, वह अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त होने लगी ॥ ४ ॥

दानवानां सहस्राणि तस्मिन् समरमूर्धनि।
युगान्ताग्निरिवार्चिष्मान् दहमानो व्यराजत ॥ ५ ॥

वह उस युद्धके मुहानेपर सहस्रों दानवोंको दग्ध करती हुई ज्वाला-मालाओंसे मण्डित प्रलयाग्निके समान प्रकाशित हो रही थी ॥ ५ ॥

तां दीर्यमाणां महतीं नानाप्रहरणार्दिताम्।
सेनां बाणः समासाद्य वारयन् वाक्यमब्रवीत्॥ ६ ॥

नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे पीड़ित हो भागती हुई उस विशाल सेनाके पास पहुँचकर बाणासुर उसे रोकता हुआ इस प्रकार बोला—॥ ६ ॥

लाघवं समुपागम्य किमर्थं भयविक्लवाः।
दैत्यवंशसमुत्पन्नाः पलायध्वं महाहवात् ॥ ७ ॥

'वीरो ! तुम दैत्यवंशमें उत्पन्न होकर भी किसलिये लघुता (कायरता) का आश्रय ले भयसे व्याकुल हो इस महासमरसे पलायन कर रहे हो ॥ ७ ॥

कवचासिगदाप्रासखड्गचर्मपरश्वधान् ।
उत्सृज्योत्सृज्य गच्छन्ति किं भवन्तोऽन्तरिक्षगाः॥८॥

'कवच, खड्ग, गदा, प्रास, ढाल, तलवार और फरसे फेंक-फेंककर तुम आकाशमार्गसे क्यों भागे जा रहे हो ॥ ८ ॥

स्वजातिं चैव भावं च हरसंसर्गमेव च।
मानयद्भिर्न गन्तव्यमेषो ह्यहमवस्थितः ॥ ९ ॥

'अपनी जातिका, अपने वीरभावका तथा भगवान् शङ्करके साथ हमारा जो सम्पर्क है उसका सम्मान करते हुए तुमलोगोंको यहाँसे हटना नहीं चाहिये; देखो ! यह मैं युद्ध-भूमिमें डटा हुआ हूँ' ॥ ९ ॥

एवमुच्चरितं वाक्यं शृण्वन्तस्तदचिन्तयन् ।
अपाक्रामन्त ते सर्वे दानवा भयमोहिताः ॥ १० ॥

इस प्रकार कहे गये उत्साहवर्धक वाक्यको सुनते हुए भी उसकी परवा न करके वे समस्त दानव भयसे मोहित होकर भाग चले ॥ १० ॥

प्रमाथगणशेषं तु तदनीकमतिष्ठत ।
भग्नावशेषं युद्धाय पुनश्चक्रे मनस्तदा ॥ ११ ॥

अब उस सेनामें केवल प्रमथगण शेष रह गये; उन्हींको लेकर वह सेना वहाँ खड़ी थी । उस समय भागनेसे बचे-खुचे सैनिकोंने पुनः युद्धमें मन लगाया ॥ ११ ॥

कुम्भाण्डो नाम बाणस्य सखामात्यश्च वीर्यवान् ।
भग्नं स्वबलमालोक्य इदं वचनमब्रवीत् ॥ १२ ॥

बाणासुरके मन्त्री और सखा पराक्रमी कुम्भाण्डने अपनी सेनामें भगदड़ मची देख यह बात कही—॥ १२ ॥

एष बाणः स्थितो युद्धे शंकरोऽयं गुहस्तथा ।
किमर्थं बलमुत्सृज्य भवन्तो यान्ति मोहिताः ॥ १३ ॥

'वीरो ! ये राजा बाणासुर युद्धमें स्थित हैं । ये भगवान् शङ्कर और कार्तिकेयजी भी यहाँ विराजमान हैं । फिर तुम लोग मोहग्रस्त हो अपनी सेनाको छोड़कर किसलिये भाग रहे हो' ॥

प्राणांस्त्यक्त्वा पलायन्ते सर्वे दानवपुङ्गवाः ।
एवं कुम्भाण्डवाक्यं ते शृण्वन्तो भयविह्वलाः ।
चक्राग्निभयवित्रस्ताः सर्वे यान्ति दिशो दश ॥ १४ ॥

कुम्भाण्डका ऐसा वचन सुनते हुए भी वे समस्त दानवशिरोमणि भयसे व्याकुल हो प्राणोंका मोह छोड़कर पलायन करने लगे । वे सब-के-सब श्रीकृष्णकी चक्राग्निके भयसे थर्रा उठे थे; अतः दसों दिशाओंकी ओर भागे चले जा रहे थे॥

भग्नं बलं ततो दृष्ट्वा कृष्णेनामिततेजसा ।
संरक्तनयनः स्थाणुर्युद्धाय पर्यवर्तत ॥ १५ ॥

तदनन्तर अमित तेजस्वी श्रीकृष्णके द्वारा दानवसेना-में भगदड़ पड़ी देख भगवान् शङ्कर क्रोधसे लाल आँखें किये स्वयं युद्धके लिये उपस्थित हुए ॥ १५ ॥

बाणसंरक्षणं कर्तुं रथमास्थाय सुप्रभम् ।
देवः कुमारश्च तथा रथेनाग्निसमेन वै ॥ १६ ॥

वे बाणासुरकी रक्षा करनेके लिये उत्तम प्रभासे युक्त रथपर आरूढ़ होकर आये थे; साथ ही कुमार स्कन्ददेव भी अग्निके समान तेजस्वी रथके द्वारा वहाँ उपस्थित हुए थे ॥१६॥

नन्दीश्वरसमायुक्तं रथमास्थाय वीर्यवान् ।
संदष्टौष्ठपुटो रुद्रः प्राधावत यतो हरिः ॥ १७ ॥

नन्दीश्वरसे संयुक्त रथपर आरूढ़ हो पराक्रमी भगवान् रुद्र अपने ओष्ठको दाँतोंसे दबाकर उसी ओर दौड़े; जहाँ श्रीहरि विद्यमान थे ॥ १७ ॥

पिबन्निव तदाकाशं सिंहयुक्तो महास्वनः ।
रथो भाति घनोन्मुक्तः पौर्णमास्यां यथा शशी ॥१८॥

सिंहोंसे जुता हुआ उनका रथ ऐसी तीव्रगतिसे दौड़ रहा था, मानो आकाशको पिये लेता हो । उससे बड़ी भारी घरघराहट हो रही थी । वह रथ ऐसा जान पड़ता था, मानो मेघोंके आवरणसे मुक्त हुआ पूर्णमासीका चन्द्रमा प्रकाशित हो रहा हो ॥ १८ ॥

ततो गणसहस्रैस्तु नानारूपैर्भयावहैः ।
नदद्भिर्विविधान् नादान् रथो देवस्य शोभयन् ॥१९॥

तत्पश्चात् नाना प्रकारके सिंहनाद करते हुए नाना रूप-धारी सहस्रों भयंकर गणोंके साथ महादेवजीका रथ रणभूमिकी शोभा बढ़ाने लगा ॥ १९ ॥

केचित् सिंहमुखास्तत्र तथा व्याघ्रमुखाः परे ।
नागाश्वोष्ट्रमुखास्तत्र प्रवेपुर्गतिपीडिताः ॥ २० ॥

भगवान् शिवके गणोंमें कोई सिंहके समान मुखवाले थे तो कोई व्याघ्रके समान; कितनोंके मुख हाथी, घोड़े और ऊँटके समान थे; ये सब श्रीकृष्णके बाणोंसे अत्यन्त पीड़ित होकर थर-थर काँपने लगे ॥ २० ॥

व्यालयज्ञोपवीताश्च केचित् तत्र महाबलाः ।
खरोष्ट्रगजवक्त्राश्च अश्वग्रीवाश्च संस्थिताः ॥ २१ ॥

उनमेंसे कितने ही महाबली प्रमथगणोंने सर्पमय यज्ञो-पवीत धारण कर रखे थे; कितनोंके मुख गधे, ऊँट और हाथियोंके समान थे, कितने ही घोड़ोंकी-सी गर्दन लिये खड़े थे ॥ २१ ॥

छागमार्जारवक्त्राश्च मेषवक्त्रास्तथा परे ।
चीरिणः शिखिनश्चान्ये जटिलोर्ध्वशिरोरुहाः ॥ २२ ॥
भग्नाः परिपतन्ति स्म शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनैः ।

अन्य शिवगणोंके मुख भेड़, बकरे और बिलावोंके समान थे; कितने ही चीर वस्त्र धारण किये हुए थे, कितनोंके मस्तकपर शिखा सुशोभित हो रही थी; बहुतोंने जटाएँ बढ़ा रखी थीं और कितनोंके सिरके बाल ऊपरकी ओर उठे हुए थे । श्रीकृष्णके बाणोंसे घायल हो इन सबके पाँव उखड़ गये । ये शङ्ख एवं दुन्दुभियोंके शब्द सुनकर ही रणभूमिमें गिर पड़ते थे ॥ २२½ ॥

केचित् सौम्यमुखास्तत्र दिव्यैः शस्त्रैरलंकृताः॥ २३ ॥
नानापुष्पकृतापीडा नानाप्रहरणायुधाः ।

कितने ही शिवगणोंके मुख सौम्य थे, वे वहाँ दिव्य अस्त्र-शस्त्रोंसे सुशोभित होते थे । उन्होंने भाँति-भाँतिके फूलोंके मुकुट धारण किये थे और उनके आयुध भी अनेक प्रकारके थे ॥ २३½ ॥

वामना विकटाश्चैव सिंहव्याघ्रपरिच्छदाः ॥ २४ ॥
रुधिरार्द्रैर्महावक्त्रैर्महादंष्ट्रा बलिप्रियाः ।

कितने ही गण बौने और विकट आकारवाले थे; उन्होंने सिंहों और व्याघ्रोंकी खालोंसे अपने शरीरको ढक रखा था । कितनोंकी दाढ़ें बहुत बड़ी थीं और वे खूनसे

भीगे हुए विशाल मुखोंसे युक्त थे। उन्हें बलि अधिक प्रिय थी ॥ २४½ ॥

देवं समुपविर्यार्थ महाशत्रुप्रमर्दनम् ॥ २५ ॥
लीलायमानास्तिष्ठन्ति संग्रामाभिमुखोन्मुखाः ।

ये सब-के-सब बड़े-बड़े शत्रुओंका मर्दन करनेवाले महादेवजीको चारों ओरसे घेरकर लीलापूर्वक संग्रामके लिये उत्सुक हो मुँह ऊपर किये खड़े थे ॥ २५½ ॥

ततो दिव्यं रथं दृष्ट्वा रुद्रस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ २६ ॥
कृष्णो गरुडमास्थाय ययौ रुद्राय संयुगे ।

तदनन्तर अनायास ही महान् कर्म करनेवाले रुद्रदेवके दिव्य रथको देखकर गरुड़पर बैठे हुए श्रीकृष्ण भी भगवान् रुद्रके साथ युद्ध करनेके लिये गये ॥ २६½ ॥

वैनतेयस्थमायान्तमायान्तमग्रणीं हरिम् ॥ २७ ॥
विव्याध कुपितो बाणैर्नाराचानां शतेन सः ।

गरुड़की पीठपर बैठकर आते हुए यादवकुलके अग्रणी श्रीहरिको क्रोधमें भरे हुए भगवान् शिवने सौ नाराचोंसे घायल कर दिया ॥ २७½ ॥

स शरैरर्दितस्तेन हरेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ २८ ॥
हरिर्जग्राह कुपितो ह्यस्त्रं पार्जन्यमुत्तमम् ।

बिना क्लेशके ही बड़े-बड़े कर्म करनेवाले महादेवजीके द्वारा बाणोंसे पीड़ित किये जानेपर क्रोधमें भरे हुए श्रीहरिने उत्तम पार्जन्यास्त्र हाथमें लिया ॥ २८½ ॥

प्रचचाल ततो भूमिर्विष्णुरुद्रप्रपीडिता ॥ २९ ॥
नागाश्चोर्ध्वमुखास्तत्र विचेलुरभिपीडिताः ।

उस समय भगवान् विष्णु और रुद्रके भारसे अत्यन्त पीड़ित हुई भूमि काँपने लगी। आठों दिग्गज ऊपर मुँह किये पीड़ा पाकर विचलित हो उठे ॥ २९½ ॥

पर्वताः पतितास्तत्र जलधाराभिराप्लुताः ॥ ३० ॥
केचिन्मुमुचिरे तत्र शिखराणि समन्ततः ।

बहुत-से पर्वत जलकी धाराओंसे आप्लावित हो वहाँ धराशायी हो गये। कितने ही सब ओरसे अपने शिखरोंका परित्याग करने लगे ॥ ३०½ ॥

दिशश्च प्रदिशश्चैव भूमिराकाशमेव च ॥ ३१ ॥
प्रदीप्तानीव दृश्यन्ते स्थाणुकृष्णसमागमे ।
समन्ततश्च निर्घाताः पतन्ति धरणीतले ॥ ३२ ॥

भगवान् शिव और कृष्णके संघर्षके समय दिशाएँ, विदिशाएँ, पृथ्वी और आकाश—ये सभी प्रज्वलित-से दिखायी देते थे। भूतलपर सब ओरसे वज्रपात होने लगा ॥ ३१-३२ ॥

शिवाश्चैवाशिवान् नादान् नदन्ते भीमदर्शनाः ।
वासवश्चानदन् घोरं रुधिरं चाप्यवर्षत ॥ ३३ ॥

भयानक दिखायी देनेवाली गीदड़ियाँ अमङ्गलसूचक बोली बोलने लगीं। इन्द्र घोर गर्जना करते हुए रक्तकी वर्षा करने लगे ॥ ३३ ॥

उल्का च बाणसैन्यस्य पुच्छेनावृत्य तिष्ठति ।
प्रववौ मारुतश्चापि ज्योतींष्याकुलतां ययुः ॥ ३४ ॥
प्रभाहीनास्तथौषध्यो न चरन्त्यन्तरिक्षगाः ।

उल्का बाणासुरकी सेनाके पुच्छभागको आवृत करके स्थित हुई थी। वायु प्रचण्ड गतिसे बह रही थी और तारे व्याकुलताको प्राप्त हो रहे थे। ओषधियाँ निस्तेज हो गयीं और आकाशचारी प्राणी आकाशमें विचरण नहीं करते थे ॥

एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा सर्वदेवगणैर्वृतः ॥ ३५ ॥
त्रिपुरान्तकमुद्यन्तं ज्ञात्वा रुद्रमुपागमत् ।

इसी बीचमें समस्त देवताओंसे घिरे हुए ब्रह्माजी त्रिपुरनाशक रुद्रको युद्धके लिये उद्यत जानकर वहाँ आये ॥

गन्धर्वाप्सरसश्चैव यक्षा विद्याधरास्तथा ॥ ३६ ॥
सिद्धचारणसंघाश्च पश्यन्तोऽथ दिवि स्थिताः ।

गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, विद्याधर, सिद्ध और चारणोंके समुदाय भी वह युद्ध देखनेके लिये आकाशमें खड़े हो गये ॥ ३६½ ॥

ततः पार्जन्यमस्त्रं तत् क्षिप्तं रुद्राय विष्णुना ॥ ३७ ॥
ययौ ज्वलन्नथ तदा यतो रुद्रो रथस्थितः ।

इसी समय भगवान् श्रीकृष्णने रुद्रदेवपर पार्जन्यास्त्रका प्रहार किया। वह अस्त्र प्रज्वलित होकर उसी ओर चला, जहाँ रुद्रदेव रथपर विराजमान थे ॥ ३७½ ॥

ततः शतसहस्राणि शराणां नतपर्वणाम् ॥ ३८ ॥
निपेतुः सर्वतो दिग्भ्यो यतो हररथः स्थितः ।

फिर तो जहाँ भगवान् शङ्करका रथ खड़ा था, वहाँ सभी दिशाओंसे झुकी हुई गाँठवाले लाखों बाण गिरने लगे ॥

अथाग्नेयं महारौद्रमस्त्रमस्त्रविदां वरः ॥ ३९ ॥
मुमोच रुषितो रुद्रस्तदद्भुतमिवाभवत् ।

तब रोषमें भरे हुए अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ रुद्रदेवने वहाँ महारौद्र आग्नेयास्त्रका प्रयोग किया। वह अद्भुत-सा प्रतीत हुआ ॥

ततो विशीर्णदेहास्ते चत्वारोऽपि समन्ततः ॥ ४० ॥
नादृश्यन्त शरैश्छन्ना दह्यमानाश्च वह्निना ।
सिंहनादं ततश्चक्रुः सर्व एवासुरोत्तमाः ॥ ४१ ॥

उससे उन चारोंके शरीर सब ओरसे क्षत-विक्षत हो गये। वे बाणोंसे आच्छादित हो आगसे जलते हुए अदृश्य हो गये। यह देख सभी असुरप्रवर वीर वहाँ सिंहनाद करने लगे ॥

हतोऽयमिति विज्ञाय आग्नेयास्त्रेण वै तदा ।
ततस्तद् विसहित्वाऽऽजौ ह्यस्त्रमस्त्रविदां वरः ॥ ४२ ॥
जग्राह वारुणं सोऽस्त्रं वासुदेवः प्रतापवान् ।

उन्होंने यह समझ लिया था कि श्रीकृष्ण आग्नेयास्त्रसे मारे गये। तदनन्तर युद्धस्थानमें उस अस्त्रकी चोट सहकर अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ प्रतापी वासुदेवने वारुणास्त्र उठाया ॥

प्रयुक्ते वासुदेवेन वारुणास्त्रेऽतितेजसि ॥ ४३ ॥
आग्नेयं प्रशमं यातमस्त्रं वारुणतेजसा ।

वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णद्वारा अत्यन्त तेजस्वी वारुणास्त्रका प्रयोग होनेपर उसके तेजसे भगवान् शङ्करका आग्नेयास्त्र शान्त हो गया ॥ ४३½ ॥

तस्मिन् प्रतिहते त्वस्त्रे वासुदेवेन संयुगे ॥ ४४ ॥
पैशाचं राक्षसं रौद्रं तथैवाङ्गिरसं भवः ।
मुमोचास्त्राणि चत्वारि युगान्ताग्निनिभानि वै ॥ ४५ ॥

उस युद्धस्थलमें भगवान् वासुदेवद्वारा उस आग्नेयास्त्रके प्रतिहत हो जानेपर भगवान् शिवने पैशाच, राक्षस, रौद्र तथा आङ्गिरस नामक चार अस्त्र छोड़े, जो प्रलयाग्निके समान तेजस्वी थे ॥ ४४-४५ ॥

वायव्यमथ सावित्रं वासवं मोहनं तथा।
अस्त्राणां वारणार्थाय वासुदेवो व्यमुञ्चत ॥ ४६ ॥

तब भगवान् वासुदेवने उक्त चारों अस्त्रोंका निवारण करनेके लिये क्रमशः वायव्यास्त्र, सावित्रास्त्र, ऐन्द्रास्त्र तथा मोहनास्त्रका प्रयोग किया ॥ ४६ ॥

अस्त्रैश्चतुर्भिश्चत्वारि वारयित्वाशु माधवः।
मुमोच वैष्णवं सोऽस्त्रं व्यादितास्यान्तकोपमम् ॥ ४७॥

उन चारों अस्त्रोंसे उनके चारों अस्त्रोंका तत्काल निवारण करके लक्ष्मापति श्रीकृष्णने वैष्णवास्त्रका प्रयोग किया जो मुँह बाये हुए कालके समान प्रतीत होता था ॥ ४७ ॥

वैष्णवास्त्रे प्रयुक्ते तु सर्व एवासुरोत्तमाः।
भूतयक्षगणश्चैव बाणानीकं च सर्वशः ॥ ४८ ॥
दिशः सर्वाः प्राद्रवन्त भयमोहेन विक्लवाः।

वैष्णवास्त्रका प्रयोग होनेपर सभी असुरशिरोमणि वीर भूत, यक्षगण एवं बाणकी सारी सेना—ये सभी भय और मोहसे व्याकुल हो सम्पूर्ण दिशाओंकी ओर भाग गये ॥ ४८½ ॥

प्रमाथगणभूयिष्ठे दीर्णे सैन्ये महासुरः ॥ ४९ ॥
निर्जगाम ततो बाणो युद्धायाभिमुखस्त्वरन्।

जिसमें प्रमथगणोंकी अधिकता थी, उस सेनाके भी पलायन कर जानेपर महान् असुर बाण युद्धके लिये उत्सुक हो बड़ी उतावलीके साथ निकला ॥ ४९½ ॥

भीमप्रहरणैर्घोरैर्दैत्यैश्च सुमहाबलैः।
वृतो महारथैर्वीरैर्वज्रीव सुरसत्तमैः ॥ ५० ॥

जैसे वज्रधारी इन्द्र श्रेष्ठ देवताओंसे घिरे होते हैं, उसी प्रकार वह भयंकर अस्त्र-शस्त्रवाले महाबली एवं वीर महारथी घोर दैत्योंसे घिरा हुआ था ॥ ५० ॥

वैशम्पायन उवाच

जपैश्च मन्त्रैश्च तथौषधीभि-
र्महात्मनः स्वस्त्ययनं प्रचक्रुः।
स तत्र वस्त्राणि शुभाश्च गावः
फलानि पुष्पाणि तथैव निष्कान् ॥ ५१ ॥
बलेः सुतो ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छन्
विराजते तेन यथा धनेशः।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! उस समय ब्राह्मणलोग जप, मन्त्र और ओषधियोंद्वारा महामनस्वी बाणासुरके लिये स्वस्तिवाचन कर रहे थे और बलिकुमार बाण उन ब्राह्मणोंके लिये बहुत-से वस्त्र, शुभलक्षणा गौएँ, फल, फूल तथा स्वर्णमुद्राएँ देता हुआ धनाध्यक्ष कुबेरके समान शोभा पाता था ॥

सहस्रसूर्यो बहुकिङ्किणीकः
परार्ध्यजाम्बूनदरत्नचित्रः ॥ ५२ ॥
सहस्रचन्द्रायुततारकश्च
रथो महानग्निरिवावभाति।
तमास्थितो दानवसंगृहीतं
महाध्वजं कार्मुकधृक् स बाणः ॥ ५३ ॥

उसके विशाल रथमें सहस्रों सूर्योंके चिह्न बने थे, बहुत-सी छोटी-छोटी घंटियाँ लगी थीं। वह बहुमूल्य सुवर्ण तथा रत्नोंसे सुसज्जित होकर विचित्र शोभा धारण करता था। उसमें सहस्रों चन्द्रमा तथा दस हजार तारोंके चिह्न बने थे। वह महान् रथ अग्निके समान प्रकाशित हो रहा था। दानव कुम्भाण्डने उस रथकी रास अपने हाथमें ले रक्खी थी। उसपर विशाल ध्वजा फहरा रही थी और उसपर बैठे हुए बाणासुरने हाथमें धनुष ले रक्खा था ॥ ५२-५३ ॥

उद्वर्तयिष्यन् यदुपुङ्गवाना-
मतीव रौद्रं स बिभर्ति रूपम्।
स मन्युमान् वीररथौघसंकुलो
विनिर्ययौ तान् प्रति दैत्यसागरः ॥ ५४ ॥
वातप्रवृद्धस्तु तरङ्गसंकुलो
यथार्णवो लोकविनाशनाय।

वह उन यदुपुङ्गव वीरोंका संहार कर डालनेके लिये उद्यत हो अत्यन्त भयंकर रूप धारण किये हुए था, क्रोधमें भरा था और वीर रथियोंके समुदायसे घिरा हुआ था। वह दैत्यसागर उन यादववीरोंकी ओर बढ़ चला ठीक उसी तरह, जैसे वायुके वेगसे बढ़ा हुआ उत्ताल तरंगोंसे व्याप्त महासागर समस्त लोकोंका विनाश करनेके लिये अग्रसर हो रहा हो ॥

भीमानि संत्रासकरैर्वपुर्भि-
स्तान्यग्रतो भान्ति बलानि तस्य ॥ ५५ ॥
महारथान्युच्छ्रितकार्मुकाणि
सपर्वतानीव वनानि राजन्।
विनिःसृतः सागरतोयवासा-
दत्यद्भुतश्चाहवद्रष्टुकामः ॥ ५६ ॥

लोगोंके मनमें त्रास उत्पन्न करनेवाले शरीरोंके द्वारा भयंकर प्रतीत होनेवाली बहुत-सी सेनाएँ उसके आगे-आगे चल रही थीं। राजन्! विशाल रथों और उठे हुए धनुषोंसे युक्त वे सेनाएँ पर्वतसहित वनोंके समान प्रतीत होती थीं। अत्यन्त अद्भुत रूपवाला बाणासुर वह युद्ध देखनेके लिये समुद्रके निकटवर्ती वासस्थानसे निकलकर चला ॥ ५५-५६ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि रुद्रकृष्णयुद्धे चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें भगवान् रुद्र और श्रीकृष्णका युद्धविषयक एक सौ चौबीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२४ ॥

